KALYAN

Year 85 No. 2 - 7 2011

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

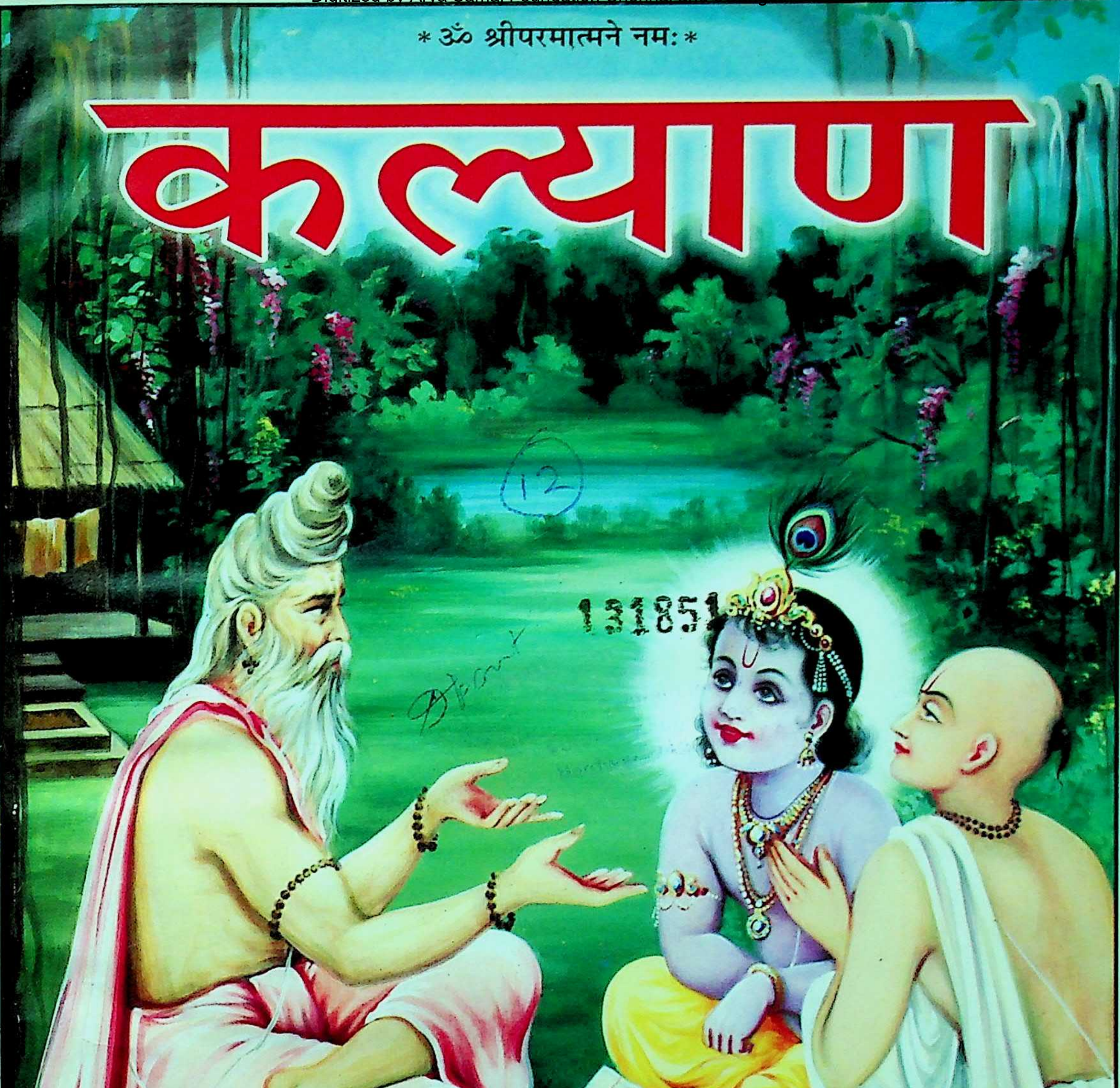

131851

वर्ष ८५

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या २-7

मूल्य ७ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

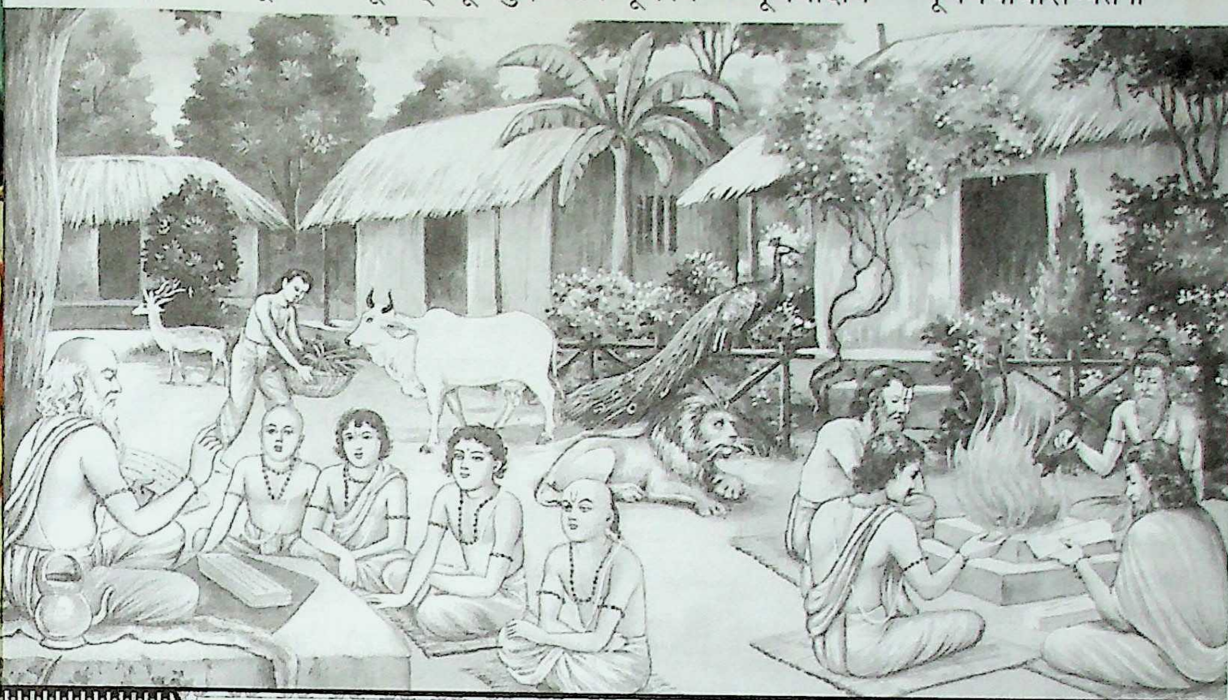

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

131851

वर्ष ८५ | गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, फरवरी २०११ ई० | संख्या २
पूर्ण संख्या १०११

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

श्रीरामद्वारा भरतजीको पादुका प्रदान करना

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥
भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥
मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ॥

[श्रीरामचरितमानस]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, फरवरी २०११ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीरामद्वारा भरतजीको पादुका प्रदान करना	५०९
२- कल्याण	५११
३- पतन या उत्थानके निर्वाचनमें मनुष्य स्वतन्त्र है (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५१२
४- भगवदर्पण ही कल्याणका साधन (श्रीगोपाल वैष्णवपीठाधीश्वर आचार्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)	५१६
५- 'रसना राम-राम रट रहिये' [कविता] (पं० श्रीकृष्णगोपालाचार्यजी 'गोपालमहाराज')	५१९
६- भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५२०
७- भगवल्लीलाका आश्रयण ही श्रेयस्कर (पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०)	५२३
८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५२५
९- माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनोंके प्रति कर्तव्य (श्रीरमेशचन्द्रजी बादल, एम०ए०, बी०एड०)	५२७
१०- भगवान्द्वारा प्रेमी भक्तोंको प्रेमदान (प्रेषक—श्रीपंकजकुमारजी झा)	५३०
११- 'प्रभु तज कुछ भी लायें न मन में' [कविता] (श्रीमनोहरलालजी गोस्वामी, एम०ए०, एम०एड०, साहित्यरत्न)	५३१
१२- 'दानं श्रेष्ठतमं मतम्' (श्रीगदाधरजी भट्ट)	५३२
१३- भगवान्‌का अपने भक्तोंको अभयदान (श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्त)	५३४
१४- 'जगत के सब वैभव बेकाम' [कविता] (श्रीमृदुलमोहनजी अवधिया)	५३५
१५- आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन (मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)	५३६
१६- अनुदानिनी धरती माँ (श्रीराकेशजी शर्मा)	५३८
१७- कामनाके त्यागसे भगवान्‌के दर्शन (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	५४०
१८- 'कीजै नन्द नन्दन सों प्रीती' [कविता] (डॉ० श्रीआद्याप्रसादसिंहजी 'प्रदीप')	५४२
१९- तिल-गुड़-सेवनका आयुर्वेदिक महत्त्व (वैद्य श्रीश्रीवल्लभजी शास्त्री)	५४३
२०- अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घायुका पर्याय है—हास्य (श्रीसीतारामजी गुप्त)	५४५
२१- बिश्नोई सम्प्रदायके साहित्यमें दानकी महिमा (श्रीविनोदजम्भदासजी कड़वासरा)	५४६
२२- चाँदीके वरकके नामपर मिठाइयोंमें गोमांस और जहर [प्रेषक—श्रीगौरांगजी अग्रवाल]	५४८
२३- दान-सम्बन्धी भाव-बोधके कुछ प्रेरक-प्रसंग (स्वामी डॉ० श्रीविश्वामित्रजी महाराज)	५५०
२४- पढ़ो, समझो और करो	५५३
२५- मनन करने योग्य	५५५

चित्र-सूची

१- गुरु सान्दीपनिद्वारा विद्या-दान	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- श्रीभरतजीको पादुका-दान	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- विभीषणको अभयदान	(इकरंगा)	५३५

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, मार्च २०११ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान् रामद्वारा श्रीरामेश्वर-पूजन	५६१
२- कल्याण	५६३
३- धर्म और उसका प्रचार (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	५६४
४- परमार्थतः अजर-अमरके लिये रोना व्यर्थ (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	५६७
५- प्रेमका अनुभव (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	५६८
६- धन साधन है या साध्य? (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती, सिहोरनिवासी)	५७०
७- सेवा (श्रीदिलीपजी देवनानी)	५७३
८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	५७४
९- 'ब्रजबयार' [कविता] (श्रीमुकुन्दजी गोस्वामी)	५७५
१०- संसार और भगवान् (श्रीभूपेन्द्रनाथजी सन्याल)	५७६
११- संत-उद्‌बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	५७९
१२- भगवत्प्रेमके सात्त्विक भाव (डॉ० पुष्पाजी मिश्रा, एम०ए०; पी-एच० डी०)	५८०
१३- 'सूने ब्रज में होली' [कविता] (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)	५८१
१४- सुन्दरकाण्डका सौन्दर्य (पं० श्रीकपिलदेवजी तैलंग, एम०ए०, बी०एड०)	५८२
१५- भगवत्प्राप्तिका सुगम साधन—भक्तियोग (श्रीघनश्यामदासजी मोदानी, बी०ए०, एल-एल०बी०)	५८६
१६- आरोग्यदान (डॉ० श्रीएम०एल० कौशल, आयुर्वेदरत्न)	५८९
१७- आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन (मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)	५९०
१८- 'मनुज आज संशय में पलता' [कविता] (श्रीसुन्दरलालजी बोहरा)	५९२
१९- अन्न-ब्रह्मकी उपासना (डॉ० अलकाजी सिंघल)	५९३
२०- पद्मावतमें दान-महिमा (श्रीइन्द्रदेवप्रसाद सिंहजी)	५९४
२१- जीवनकी राह और भगवद्‌गीता (श्रीगोपीकृष्णजी डालमिया)	५९६
२२- मनोरथ-सिद्धिका आधार चिन्तन है, चिन्ता नहीं (पं० श्रीरघुनाथजी शर्मा)	५९७
२३- दानविषयक कतिपय शंकाओंका समाधान (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)	५९८
२४- संत-वाणी	६००
२५- समभावकी साधना (श्रीप्रकाशजी रातड़िया)	६०१
२६- सन्त-चरित (पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दूबे)	६०२
२७- कृपानुभूति	६०३
२८- पढ़ो, समझो और करो	६०५
२९- मनन करने योग्य	६०८

चित्र-सूची

१- भगवती शाकम्भरी देवी	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- श्रीरामेश्वर-पूजन	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- दीर्घतपाका पत्नी एवं पुत्रोंके साथ आश्रमपर निवास	(इकरंगा)	५६७
४- अशोकवाटिकामें सीताजी	(,,)	५८२
५- श्रीरामदूत हनुमान्‌जी	(,,)	५८४

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | © (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

वर्ष ८५ | गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, मार्च २०११ ई० | संख्या ३
पूर्ण संख्या १०१२

भगवान् रामद्वारा श्रीरामेश्वर-पूजन

परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥
करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना॥
सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥
सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥
संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥
जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥

[श्रीरामचरितमानस]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, अप्रैल २०११ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान् श्रीनीलकण्ठ महादेवका ध्यान	६१३
२- कल्याण	६१५
३- सत्यकी शरणसे मुक्ति (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६१६
४- धन या धर्म (श्रीरोशनलालजी गोयल)	६१८
५- कर्तव्यपालनकी आवश्यकता (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	६१९
६- 'हर वन वृन्दावन लगता है' [कविता] (डॉ० श्रीदेवेन्द्रजी आर्य)	६२१
७- प्रेमका अनुभव (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६२२
८- निरन्तर भजनकी आवश्यकता (श्रीभँवरलालजी परिहार)	६२४
९- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६२८
१०- शोकनाशके उपाय (श्रीताराचन्दजी आहूजा)	६३०
११- संत-उद्‍बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	६३२
१२- 'सुखकी चाह, दुःखको बुलावा' (श्रीमहेन्द्रजी बंसल)	६३३
१३- खोज परम सत्यकी (श्रीरघुकुलतिलकजी)	६३५
१४- निरोगी शरीरसे ही मानव-जीवनके पुरुषार्थकी प्राप्ति (श्रीबरजोरसिंहजी, एम०ए०)	६३६
१५- आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन (मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)	६३७
१६- सत्संगति [कहानी] (श्री 'चक्र')	६३९
१७- गीताका सन्देश (पं० श्रीरामनारायणशास्त्रीजी आयुर्वेदाचार्य) [प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्र शास्त्री]	६४२
१८- कलियुगमें कल्याणका उपाय (श्रीसत्यस्वरूपजी माथुर)	६४४
१९- साक्षात् प्रेम भगवान् है, संसारी प्रेम आसक्ति (श्रीयज्ञप्रकाशजी बाजपेयी, शास्त्री)	६४६
२०- 'ब्रज में ऊधो' [कविता] (श्रीमृदुलमोहनजी अवधिया)	६४७
२१- जीवनकी सफलताका आधार—अभिवादन (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०)	६४८
२२- दानविषयक कतिपय शंकाओंका समाधान (स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)	६५०
२३- रक्तदान महादान (सुश्री अपर्णाजी पाण्डेय)	६५१
२४- नुकसानदायक है अण्डा-सेवन (श्रीरामनिवासजी लखोटिया)	६५२
२५- साधनोपयोगी पत्र	६५३
२६- व्रत-पर्वोत्सव [वैशाखमासके व्रत-पर्व]	६५५
२७- कृपानुभूति	६५६
२८- पढ़ो, समझो और करो	६५७
२९- मनन करने योग्य	६६०

चित्र-सूची

१- माँखन माँगनेकी अनोखी रीति .... (रंगीन) .... आवरण-पृष्ठ

२- नीलकण्ठ महादेव .... (,,) .... मुख-पृष्ठ

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

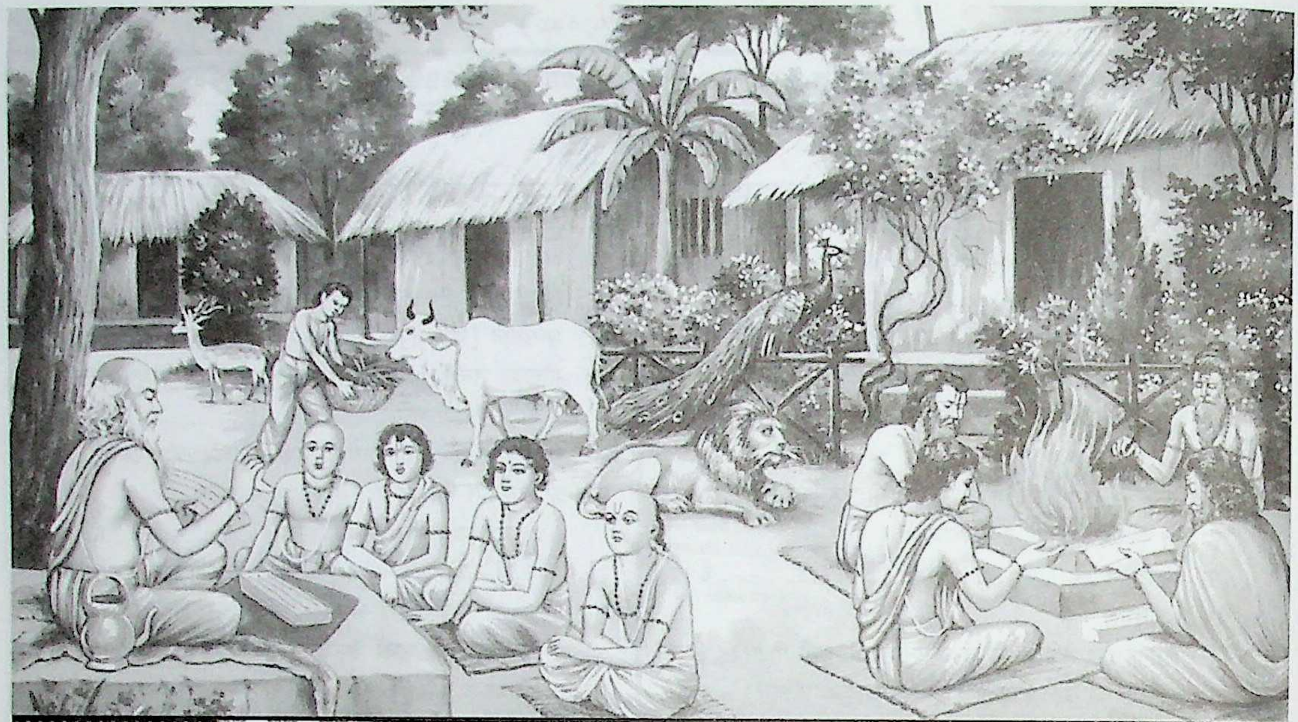

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

वर्ष ८५ | गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, अप्रैल २०११ ई० | संख्या ४

पूर्ण संख्या १०१३

Central Library Gurukul Kangri University Hardwar-249404 (U.A.)

भगवान् श्रीनीलकण्ठ महादेवका ध्यान

बालार्कायुततेजसं धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं
नागेन्द्रैः कृतभूषणं जपवटीं शूलं कपालं करैः।
खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत्पञ्चाननं सुन्दरं
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे॥

भगवान् श्रीनीलकण्ठ दस हजार बालसूर्योंके समान तेजस्वी हैं, सिरपर जटाजूट, ललाटपर अर्धचन्द्र और मस्तकपर साँपोंका मुकुट धारण किये हैं, चारों हाथोंमें जपमाला, शूल, नरकपाल और खट्वांग-मुद्रा है। तीन नेत्र हैं, पाँच मुख हैं, अति सुन्दर विग्रह है, बाघम्बर पहने हुए हैं और सुन्दर पद्मपर विराजित हैं। इन श्रीनीलकण्ठदेवका भजन करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, मई २०११ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'जय जय भगीरथनन्दिनि'	६६५
२- कल्याण	६६७
३- सत्यकी शरणसे मुक्ति (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६६८
४- संकल्पशक्तिकी महानता (श्रीबाबूलालजी शर्मा)	६७१
५- प्रेमका अनुभव (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६७३
६- 'पल-पल जलता है स्मशान' [कविता] (श्रीमती इन्दुमतीजी पाण्डेय)	६७५
७- सच्ची ममता (सुश्री माला माथुर)	६७६
८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६७७
९- 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (महन्त श्रीदीनबन्धुदासजी)	६७९
१०- आपका अभाव और अधूरापन (श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०)	६८१
११- समर्पण भाव (डॉ० श्री बी०के० शर्मा)	६८३
१२- आपकी असली चाह—क्या, क्यों, कैसे ? (डॉ० श्रीसुनीतकुमारजी कुलश्रेष्ठ)	६८५
१३- ईश्वरकी कृपा ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि (डॉ० श्रीरामेश्वर-प्रसादजी गुप्त, एम० ए०, पी-एच०डी०)	६८७
१४- भारतभूमिकी महिमा और इसका नामकरण (पं० श्रीशंकरलालजी तिवारी, एम०ए०)	६८९
१५- दो वृद्धाएँ [कहानी] (श्रीरमणलालजी सोनी) [अनु०—श्रीजयशंकर पंड्या]	६९१
१६- देवमन्दिर जानेके लौकिक एवं पारलौकिक लाभ [प्रे०—श्रीमती शान्तीदेवी विश्वनाथ टेकड़ेवाल फाउन्डेशन]	६९३
१७- ब्रह्मनिष्ठ वीतराग ऋषि श्रीआनन्दसरस्वतीजी महाराजका उपदेशामृत [प्रे०—श्रीजगदीशचन्द्रजी पालीवाल]	६९६
१८- दान एक साधना है (श्रीसर्वज्ञशेखर गुप्ता, एम०ए०)	६९७
१९- 'सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते' (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम०एस-सी०)	६९८
२०- श्रीमद्भगवद्गीतामें 'अविकम्प योग' (पं० श्रीशंकरदेवजी उपाध्याय शास्त्री)	७००
२१- आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन (मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)	७०२
२२- साधनोपयोगी पत्र	७०४
२३- व्रतोत्सव-पर्व [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]	७०६
२४- कृपानुभूति	७०७
२५- पढ़ो, समझो और करो	७०८
२६- मनन करने योग्य	७११
२७- एक महान् सन्तका अन्तिम सन्देश	७१२

चित्र-सूची

१- बालक ध्रुवपर भगवान्का अनुग्रह	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- मकरवाहिनी भागीरथी गंगा	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- स्वामी श्रीवासुदेवानन्दजी सरस्वती (टेम्बे स्वामी)	(इकरंगा)	७१२

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | © (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

वर्ष ८५ | गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, मई २०११ ई० | संख्या ५
पूर्ण संख्या १०१४

'जय जय भगीरथनन्दिनि'

जय जय भगीरथनन्दिनि, मुनि-चय चकोर-चन्दिनि,
नर-नाग-बिबुध-बन्दिनि जय जह्नु बालिका।
बिस्नु-पद-सरोजजासि, ईस-सीसपर बिभासि,
त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका॥ १॥
बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रयताप-हारि,
भँवर बर बिभंगतर तरंग-मालिका।
पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि धवलधार,
भंजन भव-भार, भक्ति-कल्पथालिका॥ २॥
निज तटबासी बिहंग, जल-थर-चर पसु-पतंग,
कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका।
तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस-बीर,
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका॥ ३॥

[विनय-पत्रिका]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, जून २०११ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान् श्रीद्वारकानाथजीका ध्यान	७१७
२- कल्याण	७१९
३- प्रतिकूलताका नाश (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७२०
४- 'ऐसी मूढ़ता या मनकी' [कविता]	७२१
५- आत्मकल्याण और विश्वकल्याण (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	७२२
६- अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७२५
७- अभयदान और आश्रयदानके अधिष्ठाता—भगवान् श्रीराम (डॉ० श्रीराधानन्दजी सिंह, एम०ए०, पी-एच०डी०, एल-एल०बी०, बी०एड०)	७२९
८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	७३१
९- अपरिग्रहवृत्तिसे अहिंसा एवं प्रेमका प्रादुर्भाव (श्रीसीतारामजी गुप्ता)	७३२
१०- सन्त उद्बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	७३३
११- संगका फल [एक सच्चा वैदिक आख्यान] (श्रीबलदेवजी उपाध्याय)	७३४
१२- श्रेयका साधन	७३७
१३- इच्छा ही बन्धन है और इच्छाका त्याग ही मुक्ति है	७३८
१४- भीख (एक भिखारी)	७३९
१५- 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः' (आचार्य श्रीशशिनाथजी झा)	७४०
१६- आत्माकी भाषा (प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम' एम.ए.,पी-एच.डी.)	७४२
१७- बाहरी साधनोंसे नहीं मिलती मनमें शान्ति (पं० श्रीविजयशंकरजी मेहता) [प्रे०—श्रीश्यामसुन्दरजी पटेल]	७४३
१८- प्रभुका खेल	७४४
१९- 'मानउँ एक भगति कर नाता' (पं० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय 'किशन महाराज')	७४६
२०- बूढ़े माता-पितासे मत छीनिये उनके पोते-पोतियोंका संसार (श्रीप्रेमनारायणजी गुप्ता)	७४८
२१- सिद्धशिरोमणि सन्त—बाबा श्रीमनोहरदासजी (श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्त)	७४९
२२- आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन (मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)	७५१
२३- दानकी महिमाका व्यावहारिक पक्ष (श्रीजगदीशचन्द्रजी मेहता)	७५४
२४- आँसूकी दो बूँदें (पं० श्रीशोभालालजी शास्त्री)	७५६
२५- साधनोपयोगी पत्र	७५७
२६- व्रतोत्सव-पर्व [आषाढ़मासके व्रत-पर्व]	७५९
२७- कृपानुभूति	७६०
२८- पढ़ो, समझो और करो	७६१
२९- मनन करने योग्य	७६४

चित्र-सूची

१- भगवती भुवनेश्वरी	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् श्रीद्वारकानाथजी	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- बालक शिवाजीद्वारा गोरक्षा	(इकरंगा)	७५१
४- हुमायूँकी गोमांससे घृणा	(,,)	७५३

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

वर्ष ८५ | गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, जून २०११ ई० | संख्या ६
पूर्ण संख्या १०१५

भगवान् श्रीद्वारकानाथजीका ध्यान

शङ्खं प्रसारितसुखं स्वपदाश्रितानां चक्रं सदा दमितदानवदैत्यचक्रम्।
कौमोदकीं भुवनमोदकरीं गदाग्र्यां पद्मालयाप्रियकरं प्रथितं च पद्मम्॥
संधारयन्तमतिचारुचतुर्भुजेषु श्रीवत्सकौस्तुभधरं वनमालयाऽऽढ्यम्।
सिन्धोस्तटे मुकुटकुण्डलमण्डितास्यं श्रीद्वारकेशमनिशं शरणं प्रपद्ये॥

जो अपने चरणाश्रित भक्तोंके लिये सुखका प्रसार करनेवाले शंखको, सदा दैत्यों और दानवोंके दलका दमन करनेवाले चक्रको, सम्पूर्ण भुवनोंको आनन्द प्रदान करनेवाली कौमोदकी नामक श्रेष्ठ गदाको तथा पद्मालया (लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी)-का प्रिय करनेवाले प्रख्यात पद्म-पुष्पको अपनी अत्यन्त मनोहर चार भुजाओंमें धारण किये रहते हैं, जिन्होंने अपने वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न तथा कौस्तुभ-मणि धारण कर रखी है, जो वनमालासे विभूषित हैं तथा जिनका मुखमण्डल किरीट और कुण्डलोंसे अलंकृत है, उन सिन्धु-तटवर्ती श्रीद्वारकानाथजीकी मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ। ['राम']

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, जुलाई २०११ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवान् श्रीभवानीशंकरकी वन्दना	७६९
२- कल्याण	७७१
३- भगवत्प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७७२
४- मानव-शरीर केवल ईश्वर-प्राप्तिके लिये ही है (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती, सिहोरवासी)	७७४
५- 'नाथ मेरे नयन नीर बहे' [कविता] (श्रीतेजपालजी उपाध्याय)	७७६
६- स्वाधीनता या स्वराज्य (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	७७७
७- महाशक्तिका आवाहन (श्रीमहेन्द्रजी मधुकर, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)	७७९
८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	७८२
९- आयुर्वेदमें दीर्घायुष्यप्राप्तिका उपाय (आयुर्वेदाचार्य पं० श्रीरामनारायणजी शास्त्री)	७८४
१०- पुरुषार्थ और भगवत्तत्त्व (श्रीघनश्यामदासजी मोदानी)	७८६
११- सच्चा धर्म—प्रेम और सेवा (श्रीभगवानदासजी केला)	७८८
१२- मानव-जीवनकी महिमा एवं लक्ष्य (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	७९०
१३- माँकी लीला (श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम० ए०, बी० एस-सी०)	७९२
१४- धर्मका प्रधान स्तम्भ—अक्रोध (श्रीरघुनाथप्रसादजी पाठक)	७९४
१५- महावीरदर्शन—पंच महाव्रत (श्रीप्रकाशजी रातड़िया)	७९७
१६- 'सब कर फल हरि भगति सुहाई' (श्रीरामकृष्ण रामानुजदास 'श्रीसन्तजी महाराज')	७९९
१७- 'ईश चरण में शरण चाहिये' [कविता] (डॉ० श्रीकमलेश्वरप्रसादजी त्रिपाठी)	८००
१८- 'हे गोविन्द! राखो शरण' (आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, विद्यावारिधि)	८०१
१९- 'हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति' (श्रीतुकारामजी असफल)	८०२
२०- बाबा श्रीचन्दजी महाराज (श्रीबलविन्द्रजी 'बालम')	८०३
२१- 'सखा श्याम सम नाहीं' [कविता] (वैद्य श्रीभँवरेश्वरजी मिश्र)	८०४
२२- साधनोपयोगी पत्र	८०५
२३- व्रतोत्सव-पर्व [श्रावणमासके व्रत-पर्व]	८०७
२४- कृपानुभूति	८०८
२५- पढ़ो, समझो और करो	८०९
२६- मनन करने योग्य	८१३
२७- भ्रष्टाचारकी मुहिम (राधेश्याम खेमका)	८१५

चित्र-सूची

१- गोष्ठमें प्रवेश करते हुए वनमाली	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भक्तोंके परम आराध्य श्रीभवानीशंकर	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- सवत्सा गौ	(इकरंगा)	८०१
४- बाबा श्रीचन्दजी महाराज	(,,)	८०३

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **Kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

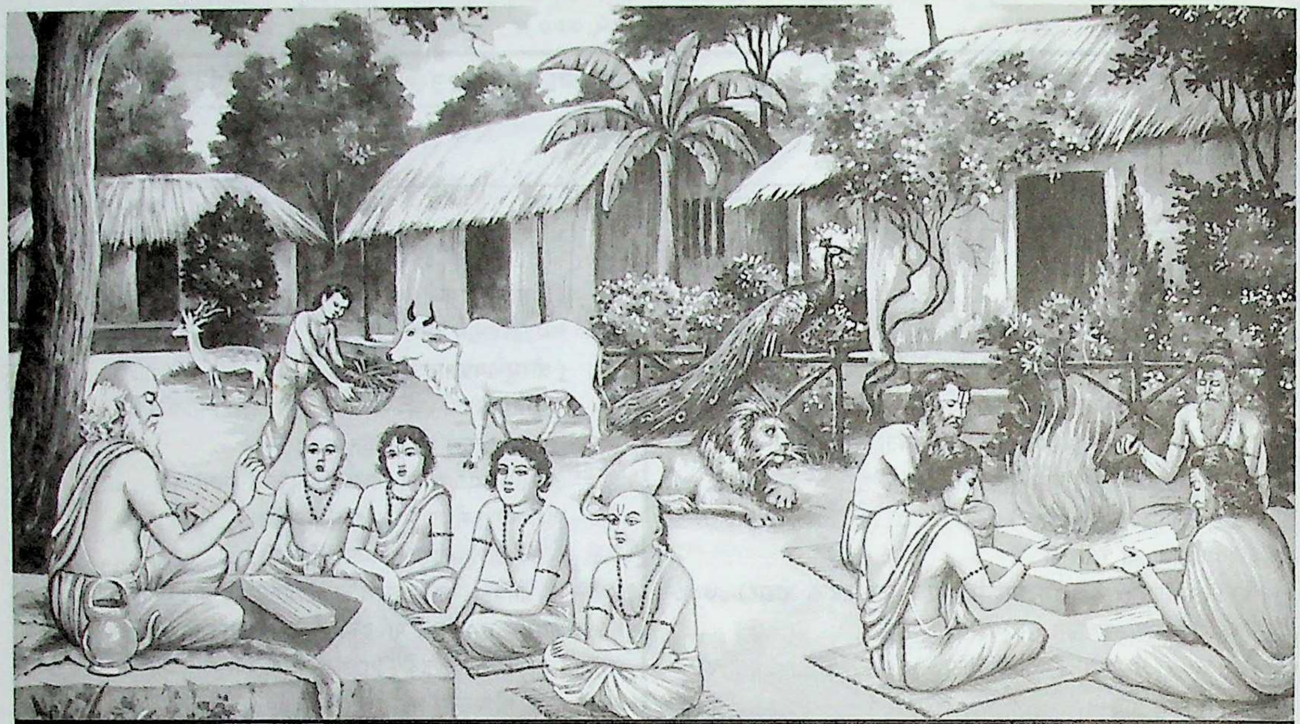

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

वर्ष ८५

गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०६८ श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, जुलाई २०११ ई०

संख्या ७

पूर्ण संख्या १०१६

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

भगवान् श्रीभवानीशंकरकी वन्दना

कर्पूरगौरं करुणावतारं
संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे
भवं भवानीसहितं नमामि॥

(शिवपुराण, ज्ञानसंहिता ६८।१८)

कर्पूरके समान गौरवर्णवाले, करुणाके अवतार, विश्वके मूल कारण, गलेमें नागराजका हार धारण करनेवाले तथा हृदयकमलमें सदा विराजमान रहनेवाले भगवान् शिवको भवानीसहित मैं प्रणाम करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

जबतक संसारके भोगकी चाह है, तबतक मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता। जितनी चाह बढ़ती जाती है, उतना ही दु:खोंका विस्तार भी होता जाता है; और ज्यों-ज्यों चाह पूरी होती जाती है, त्यों-त्यों और बढ़ती जाती है। चाह कभी घटती ही नहीं; फिर दु:ख कैसे घटे?

दु:खोंसे छूटना हो तो चाह छोड़ो, दु:खोंको कम करना हो तो चाह कम करो और चाह कम करनी हो तो चाहको पूरा करनेकी इच्छाका ही त्याग कर दो। चाहरूपी आगमें विषयरूपी घीकी आहुति मत दो; उसपर संतोषका शीतल जल छिड़ककर उसे बिलकुल बुझा दो, अन्यथा—***'बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते॥'***

विषय-सुखसे निराश होना सच्चे सुखकी प्राप्तिकी ओर बढ़ना है। विषयोंकी चिन्ता छूटे बिना सच्चे सुखका चिन्तन नहीं हो सकता। वे पुरुष वास्तवमें भाग्यवान् हैं, जो विषय-सुखसे अलग हैं। विषय-सुखसे वंचित होना भाग्यशालिता है, लिप्तता अभाग्यशालिता है।

जिसके सांसारिक विषय जितने अधिक होते हैं, वह प्राय: भगवान्से उतना ही अधिक दूर रहता है। विषयी पुरुषका वातावरण ही ऐसा बन जाता है कि उसके मनमें भगवान्की ओर झुकनेकी अभिलाषा सहजमें उत्पन्न नहीं होती। भगवत्प्राप्तिकी अभिलाषा सत्संग और सद्ग्रन्थोंके द्वारा भगवान्का प्रभाव जाननेसे उत्पन्न होती है। विषयी पुरुषोंको न तो सत्सङ्गका अवसर मिलता है और न सद्ग्रन्थोंके पढ़ने-सुननेके लिये ही समय मिलता है। फलत: उनमें भगवत्प्राप्तिकी अभिलाषाका उदय ही नहीं होता। यही उनकी अभाग्यशालिता है।

उदाहरण देखना हो तो अधिकतर राजाओं, अफसरों, धनियों और अमीरोंकी दशा देख लो। यदि इनमेंसे आप कोई हों तो अपने हृदयपर हाथ रखकर सोचो। यश:कामना, लोगोंपर प्रभाव बनाये रखना, मौज-शौक करना, खुशामदियोंसे घिरे रहना, चापलूसों और चंदा माँगनेवालोंसे तंग रहना, महल-मकान बनवाना, सैर-सपाटा करना, नाटक-सिनेमा देखना, विनोद करना, परनिन्दा और परचर्चाको कहना-सुनना, भोग-वासना पूर्ण करना, विरोधियोंको दबाना, समान सम्मान और कीर्तिवालोंको नीचा दिखाना इत्यादि कितने ही परम आवश्यक प्रतीत होनेवाले प्रपंच पीछे लगे रहते हैं। सुबह उठनेसे लेकर रातको सोनेतक किसी समय भगवन्नामस्मरण और सद्ग्रन्थके अध्ययनकी कल्पना ही मनमें नहीं आती। फिर भगवत्प्राप्तिकी अभिलाषा हो तो कैसे?

परंतु यह बात नहीं है कि सभी ऐसे ही होते हों। पूर्ण धन-दौलत, मान-सम्मान और पद-मर्यादामें रहते हुए भी भगवान्की ओर चित्त लगानेवाले पुरुष सदासे होते आये हैं और अब भी हैं; पर उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी होती है। पूर्वजन्मके विशेष साधनके बलसे ही वे प्रतिकूल वायुमण्डलमें रहकर अपनी स्थितिको सँभाले रहते हैं और लक्ष्यको नहीं भूलते। अस्तु!

जहाँतक बने, विषयोंका संग्रह न करो, विषयोंका चिन्तन न करो, विषयी पुरुषोंका संग न करो, विषयासक्ति बढ़ानेवाले दृश्य न देखो, बात न सुनो और इस तरहके ग्रन्थ न पढ़ो। विषयोंसे मनको हटाकर भगवान्में लगाओ और मानव-जीवनको सफल करो। विश्वके विषय वास्तवमें विष हैं; अत: 'अमृत' पाना और 'अमर' होना है तो परमेश्वरका पल्ला पकड़ो। तुम अमृतरूप परमात्माके ही पुत्र हो—**'अमृतस्य पुत्रा:।'** **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतन या उत्थानके निर्वाचनमें मनुष्य स्वतन्त्र है

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्य सम्पूर्ण सांसारिक दुःखों और दोषोंसे सदाके लिये सर्वथा सम्बन्धरहित होकर परमानन्द और परम शान्तिस्वरूप नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाय—इसके लिये गीतादि शास्त्रोंमें बहुतसे साधन बताये गये हैं और कहा गया है कि उस परमपदस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति सुगम होनेके कारण शीघ्र हो सकती है। यह बात विवेक-विचारसे समझमें आती है; किंतु फिर भी कार्यरूपमें न आनेके कारण कठिनता प्रतीत होती है। अतः निराशा-सी हो जाती है और साधनकी गति तीव्र, सन्तोषजनक और निरन्तर एक-सी नहीं रहती। इसका कारण क्या है और उपाय क्या है?—इस प्रकार बहुतसे साधक प्रश्न किया करते हैं। इसका उत्तर यह है कि शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंके तत्त्व-रहस्यको वास्तवमें यथार्थ न समझनेके कारण साध्य और साधनपर श्रद्धा-विश्वास पूर्णतया नहीं होते। इस श्रद्धा-विश्वासकी कमीके कारण ही साधनपर रुचि कम हो जाती है। इसीसे निराशा-सी उत्पन्न होकर साधनके लिये निरन्तर तत्परता नहीं रहती।

इसके लिये साधकको प्रथम तो साध्य वस्तुके तत्त्व-रहस्यको सत्संग और सत्-शास्त्रोंके द्वारा विवेकपूर्वक अच्छी तरह समझकर धारण करना चाहिये और दूसरे यह समझना चाहिये कि उस परमात्मासे बढ़कर अन्य कुछ भी साध्य वस्तु नहीं है। उसकी प्राप्ति हुए बिना इस दुःखसागरमय संसारसे जीवका छुटकारा नहीं हो सकता और संसारसे छुटकारा हुए बिना जीवको नित्य परम शान्ति मिल ही नहीं सकती। इसलिये उस साध्यस्वरूप परमात्माको लक्ष्य बनाकर शास्त्रनिर्दिष्ट मार्गोंमेंसे किसी एक मार्गके अनुसार सावधानी और तत्परतापूर्वक चलना चाहिये। तभी मनुष्य उस प्रापणीय महान् तत्त्वरूप परमात्माको प्राप्त कर सकता है।

मान लीजिये, एक व्यक्ति कलकत्तेसे काशी जाना चाहता है और वहाँतककी सड़क साफ है तथा साधन भी मोटरगाड़ीका उसके पास है। मोटरके अगले भागमें दो बिजलीकी लाइटें भी लगी हुई हैं, जो दो फर्लांगतक बराबर आगे-से-आगे रास्ता दिखाती रहती हैं; किंतु घोर अन्धकारमयी रात्रिका समय है और सड़कके अगल-बगल दोनों ओर गड्ढे एवं जंगल हैं तथा वह स्वयं ही मोटरचालक है। अतः वह सावधानीके साथ तत्परतासे मोटरको चलाये तो शीघ्र ही गन्तव्य स्थानपर पहुँच सकता है, किंतु वह मदिरा पीकर प्रमत्त हो असावधानीसे चलाये तो मार्गके अगल-बगलके गड्ढे और जंगलमें गिरकर महान् खतरेमें पड़ सकता है।

यह एक दृष्टान्त है। इसका अभिप्राय यह समझना चाहिये कि यहाँ साधन-विषयमें परमात्माका परमधाम ही काशी है। इस संसारसे निकलकर परमात्माको प्राप्त करनेका इच्छुक मनुष्य ही काशी जानेकी इच्छावाला व्यक्ति है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग—तीनों ही निष्कण्टक, स्वच्छ और सुगम सड़क (मार्ग) हैं। मनुष्य-शरीर ही मोटरगाड़ी है। उसमें आगे-से-आगे बराबर रास्ता दिखानेवाले विवेक और विचार ही मोटरमें लगी हुई दो लाइटें हैं। अज्ञानरूपी मोहमाया ही घोर अन्धकारमयी रात्रि है। दुर्गुण और दुराचार ही मार्गके दोनों ओरके गड्ढे और जंगल हैं। स्वयं साधक ही मोटरचालक है। सावधानीपूर्वक तेजीके साथ निरन्तर साधन करनेसे शीघ्र परमधामको प्राप्त होना ही सावधानीके साथ तत्परतासे सड़कपर मोटर चलानेसे शीघ्र गन्तव्य स्थानपर पहुँच जाना है। प्रमादपूर्वक मोहमें पड़ना ही मदिरा पीकर प्रमत्त होना है और तज्जनित असावधानीके कारण दुर्गुण-दुराचारमें पड़ना ही गड्ढे और जंगलमें गिरकर महान् खतरेमें पड़ जाना है।

इसलिये साधक सदा सावधान, जागरूक और अपने साधनमें तत्पर रहे; साधनमें शिथिलता कभी तनिक भी न आने दे। सर्वप्रथम तो साधकको अपने लिये यह निर्णय करना चाहिये कि गीता आदि शास्त्रोंमें निर्दिष्ट कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग—इन तीनोंमेंसे मेरे लिये कौन-सा साधन (मार्ग) ठीक है। उस निर्णयके करनेका तरीका यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि उन तीनों मार्गोंमेंसे जो मार्ग अपनी शक्ति, बुद्धि और समझके अनुकूल हो, जिसमें अपनी श्रद्धा, विश्वास और रुचि हो, उसको अपने लिये निश्चयपूर्वक चुन लेना चाहिये; क्योंकि वही उसके लिये सबसे बढ़कर सुगम, उत्तम और लाभदायक मार्ग है। जबतक मनुष्य गन्तव्य स्थानका और मार्गका निर्णय नहीं कर लेता, तबतक वह वहाँ जा ही नहीं सकता। मार्गका निर्णय कर लेनेके पश्चात् वह उस मार्गपर चलना शुरू कर दे और मार्गपर चलते समय ऐसी सावधानी रखे कि कहीं मार्गको छोड़कर विपरीत मार्ग यानी कुमार्गरूप गड्ढेमें न चला जाय। असावधानीमें हेतु हैं—संशय, भ्रम, अज्ञान, ममता, आसक्ति, प्रमाद और आलस्य। ये ही मनुष्यको सुखका प्रलोभन देकर मोहित करते हुए पतनके गर्तमें डाल देते हैं। इसलिये इन सबका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि इनके त्यागमें मनुष्य स्वतन्त्र है।

मनुष्य जिस कर्मको बुद्धिद्वारा बुरा समझता है, उसे करना भी नहीं चाहता; फिर भी छोड़ नहीं पाता और जिस कार्यको अच्छा समझता है, उसे करना चाहता है; फिर भी उसे कर नहीं पाता। इस प्रकार त्यागनेयोग्यको न त्यागना और करनेयोग्यको न करना—यही प्रमाद है। इस प्रमादमें मनुष्यका अज्ञान ही हेतु है। किंतु मूर्खतावश मनुष्य इसमें अपने प्रारब्धको, दूसरे व्यक्तियोंको, परिस्थितिको (घटनाको), अपने पूर्वके कर्मोंको, समयको अथवा कोई-कोई तो ईश्वरको भी कारण मान लेता है; किंतु इन सबमेंसे कोई भी कारण नहीं है। यह सब उसकी बेसमझी है। वस्तुतः वह स्वयं ही अपना कारण है; क्योंकि न करनेयोग्य काम-क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेष आदि दुर्गुण; झूठ, कपट, चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि दुराचार; खेल-तमाशा, नशा आदि दुर्व्यसन और व्यर्थ कर्मके त्यागमें तथा करनेयोग्य भक्ति, ज्ञान, योग, वैराग्य, सद्‌गुण, सदाचार आदिके सम्पादनमें भी यह स्वतन्त्र है; किंतु अज्ञानसे दूसरोंके मत्थे दोष मढ़कर अपनी सफाई देता है—यही इसकी बुरी आदत है। कोई-कोई साधक कहता है कि परमात्माकी प्राप्तिविषयक योग, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सद्‌गुण, सदाचार आदि जितने साधन हैं, वे मेरी समझमें भी आते हैं। उनको मैं हितकर भी मानता हूँ, श्रद्धा-विश्वास भी है, रुचि भी है; पर कर नहीं पाता। किंतु भलीभाँति विचार किया जाय तो वास्तवमें उसने साधनको परम हितकर समझा ही नहीं। हितकर न समझनेमें कारण श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही है। उस कमीके कारण ही साधनमें तत्परता और उत्साह नहीं होता। इसलिये गहराईसे विचार करना चाहिये।

जब हम यह समझ लेते हैं कि इस मिठाईमें विष मिला हुआ है, तब भूखों मरनेपर भी उस मिठाईको खाना नहीं चाहते। इसी प्रकार जब हम उस प्रमादको अनर्थकारक मान लेंगे तो फिर नहीं करनेयोग्य कर्मको कभी नहीं करेंगे और करनेयोग्य कर्मको अवश्य करेंगे। भगवान्‌की प्राप्तिको परम हितकर मान लेनेपर और उसके बिना हमारी बड़ी भारी हानि है—यह समझ लेनेपर यदि उसके साधनमें किसी प्रकारकी त्रुटि या बाधा पड़ती है तो उसको हम कैसे सहन कर सकेंगे। उसके लिये हमें घोर पश्चात्ताप और दुःख होगा। प्रापणीय वस्तुके लिये विरह-व्याकुलता और छटपटाहट होगी। उसको प्राप्त किये बिना हम रह नहीं सकेंगे। यदि ऐसा नहीं होता है तो इसमें श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही हेतु है। उन्हींके कारण रुचिकी कमी है और रुचिकी कमीसे साधनमें उत्साह और तत्परता नहीं होती। अतएव साधनकी शिथिलतामें मनुष्य स्वयं ही हेतु है। दूसरा कोई व्यक्ति, प्रारब्ध, परिस्थिति (घटना), देश, काल, कर्म या ईश्वर आदि कोई भी नहीं।

ईश्वर, महापुरुष और शास्त्र आदि तो साधककी सहायता करनेवाले हैं। उनसे तो मनुष्य चाहे जितनी सहायता ले सकता है। उनसे सहायता लेनेमें भी मनुष्य स्वतन्त्र है। परंतु मनुष्य अज्ञानसे ईश्वरको पाप करानेवाला मान लेता है और प्रमाणमें यह श्लोक भी कहता है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-
र्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

(पाण्डवगीता)

'मैं धर्मको जानता हूँ, पर मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्मको भी जानता हूँ, पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती; क्योंकि अपने हृदयमें स्थित कोई देव जिस प्रकार मुझे प्रेरित और नियुक्त करता है, वैसे ही मैं करता हूँ।'

किंतु यह सिद्धान्त दुर्योधनका है, जो सर्वथा त्याज्य है। पर सबसे उच्चकोटिका सिद्धान्त गीताका है, जिसमें साक्षात् भगवान्के वचन हैं। पाप होनेके विषयमें अर्जुनने भगवान्से पूछा था—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

(गीता ३। ३६)

'श्रीकृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है?'

इसके उत्तरमें भगवान्ने यह कहा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी नहीं अघानेवाला और बड़ा पापी है। इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।'

भगवान्ने कामकी उत्पत्ति रजोगुणसे बतलायी और रजोगुण रागस्वरूप ही है। भगवान् अर्जुनसे पहले भी कह चुके हैं—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥

(गीता २। ६२)

'विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।'

यहाँ यह स्पष्ट कर दिया गया कि आसक्तिसे कामकी और कामसे क्रोधकी उत्पत्ति होती है। सारे अनर्थोंका मूल आसक्ति ही है। इसलिये मनुष्यको स्त्री, पुत्र, धन, मकान, कुटुम्ब, शिष्य, मठ-आश्रम, मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा, पद, शरीर आदि किसी भी प्राणि-पदार्थ और क्रिया आदिमें भूलकर भी किंचिन्मात्र भी कभी आसक्ति नहीं करनी चाहिये। इस आसक्तिका कारण है—अहंता-ममता और अहंता-ममताका कारण है—अज्ञान (अविद्या)।

योगदर्शनमें बतलाया गया है—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम्०।

'अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (अहंता), आसक्ति, द्वेष और मरण-भय—ये पाँच क्लेश हैं। इन पाँचों क्लेशोंमें बादवाले चारोंका कारण अविद्या है। अर्थात् अविद्यासे ही अहंता और आसक्ति आदिकी उत्पत्ति होती है।'

अतः सारे क्लेशोंकी जड़ है अविद्या (अज्ञान)। इस अज्ञानसे संशय, भ्रम और प्रमादकी उत्पति होती है। अज्ञानका नाश होता है यथार्थ ज्ञानसे और उस यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें बहुतसे उपाय बतलाये गये हैं। ईश्वरमें भक्ति करनेसे तथा ईश्वरकी कृपासे ज्ञान होता है। भगवान्ने अर्जुनसे कहा है—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०। ९)

'निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही रमण करते हैं।'

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।'

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १०। ११)

'उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अज्ञानजनित अन्धकारको देदीप्यमान तत्त्वज्ञानरूपी दीपके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा निष्कामभावपूर्वक कर्तव्यपालनरूप कर्मयोगसे भी शुद्ध हुए अन्तःकरणमें अपने-आप ही यथार्थ ज्ञान प्रकट हो जाता है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

(गीता ४।३८)

'इस संसारमें यथार्थ ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निस्संदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है।'

इस प्रकार महापुरुषोंके बतलाये हुए साधनके अनुसार चलनेसे भी इस यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति उनकी कृपासे हो जाती है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४।३४)

'अर्जुन! उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ; उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्माको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस ज्ञानका उपदेश करेंगे।'

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥

(गीता ४।३५)

'पाण्डुपुत्र! जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा जिस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले आत्मामें और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखेगा।'

गीतादि शास्त्रोंके अर्थ और भावको समझकर उनका अध्ययन करनेसे भी यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान्ने बतलाया है—

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥

(गीता ४।२८)

'कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करते हैं।'

और गीताका स्वाध्याय करनेवालेके लिये भगवान् कहते हैं कि जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनोंके संवादरूप गीताशास्त्रको पढ़ेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा (गीता १८।७०)। इससे उसे यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। इस यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिमें प्रधान हेतु है श्रद्धा-विश्वास। भगवान्ने कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४।३९)

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।'

किंतु बिना श्रद्धाके किया हुआ सभी कुछ व्यर्थ है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(गीता १७।२८)

'अर्जुन! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह सब असत् है—इस प्रकार कहा जाता है। इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।' अतः सभी शुभकर्म श्रद्धापूर्वक ही करने चाहिये।

श्रद्धाकी प्राप्ति होती है अन्तःकरणकी शुद्धिसे—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(गीता १७।३)

'भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।'

अन्तःकरणकी शुद्धि होती है विवेक-वैराग्यपूर्वक भक्ति, ज्ञान और योगके साधनसे। इसलिये मनुष्यको उचित है कि भक्ति, ज्ञान और योगमेंसे जिसमें उसकी रुचि और विश्वास हो, उसीको लक्ष्य बनाकर उसे विवेक-वैराग्यपूर्वक परम उत्साह और तत्परतासे करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवदर्पण ही कल्याणका साधन

(श्रीगोपाल वैष्णवपीठाधीश्वर आचार्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

भारतीय वैदिक सनातन सद्धर्मके संरक्षणके लिये भगवान्ने चौरासी लाख योनियोंमें भटकते हुए जीवको पुण्य और पापके समान होनेपर मनुष्यकी योनिमें इस असार संसारमें जन्म देकर 'मानव'नामसे विभूषित किया है तथा पूर्वजन्मके संचित एवं क्रियमाण जो कर्म हैं, उनका फल भोगनेके लिये इस पवित्र भारतभूमिमें जन्म देकर महान् उपकार किया है। हम सभी उन परमपिता परमेश्वरके ऋणी हैं। स्वयं भगवान्ने गीतामें स्पष्ट कहा है—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'**। जीवात्मा और परमात्माका अंशांशिभावसे नित्य सम्बन्ध है। परमात्माका अंश जीव कहीं इस संसाररूपी भवाटवीमें भटक न जाय, इससे बचनेके अनेक उपाय शास्त्रोंमें निश्चित किये गये हैं, जिनका अवलम्ब लेकर प्राणी चाहे तो सदा-सर्वदाके लिये अपना कल्याण—उद्धार कर सकता है, जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो सकता है, भगवद्भक्तिके मार्गका आश्रय लेकर भगवत्प्राप्ति कर सकता है, परंतु इन सभी मनोरथोंकी पूर्णताके लिये अपनी भारतीय सनातन-परम्परासे प्रचलित वैदिक धर्मके शास्त्रीय सिद्धान्तोंके अनुसार कर्तव्यपालन करना परमावश्यक है; क्योंकि भारतीय शास्त्रोंमें प्राणिमात्रके कल्याणके अनेक विधि-विधान भगवदाज्ञाके रूपमें वर्णित हैं। भगवान्का आदेश है कि श्रुति, स्मृति—ये दो नेत्र हैं। इनमेंसे एकका अनुसरण करनेवाला एकाक्षी (काणा) कहा जाता है और दोनोंका ही अनुसरण न करनेवाला अन्धा कहा जाता है। भगवान् स्वयं कहते हैं कि श्रुति—वेद और स्मृति—धर्मशास्त्र—ये दोनों मेरी आज्ञा हैं, इनमें मेरी ही वाणी है। मेरा अंश होकर भी जीव इनका पालन नहीं करता और मनमानी करता है तो आज्ञाका उल्लंघन करनेवाला वह मेरा द्वेषी है तथा वैष्णव होते हुए भी मेरा प्रिय नहीं है—

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥

श्रीमद्भगवद्गीता स्वयं भगवान्के मुखसे निकली हुई सिद्धवाणी है। इसमें मनुष्यमात्रको अपने कर्तव्योंके पालनकी शिक्षा अर्जुनको लक्ष्य बनाकर प्रदान की गयी है। भगवान्ने मोहको प्राप्त हुए अर्जुनसे स्पष्ट कह दिया है कि कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें शास्त्र ही प्रमाण हैं, उन्हीं शास्त्रीय वचनोंसे अपना कर्तव्य जानकर कर्म करना चाहिये—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(गीता १६। २४)

इसके विपरीत जो शास्त्रीय विधिविधानको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न तो सिद्धिको प्राप्त करता है, न उसे सुख मिलता है और न परमगति ही उसे प्राप्त होती है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(गीता १६। २३)

इसलिये जो शास्त्रविधिके अनुसार कार्य करते हैं, उनको ही सत्फल प्राप्त होते हैं। सच्चे अर्थोंमें वे ही भगवान्की आज्ञाका पालन करते हैं। जबतक प्राणी कर्म करता रहता है, तबतक फलकी कामना भी निरन्तर हृदयमें बनी रहती है और जब उन सत्कर्मोंको भगवान्को समर्पण कर देता है, तो उन कर्मोंकी कर्मसंज्ञा हटकर भगवद्धर्म-संज्ञा हो जाती है, तब इसमें जीवका कोई कर्तृत्व नहीं रहता, सब कर्म भगवत्समर्पित—भगवान्के हो जाते हैं।

भारतीय सनातन शास्त्रोंमें उत्तम लोकप्राप्ति, इस लोकमें सुख-समृद्धि एवं यशकी प्राप्तिके लिये तथा प्राणीके कल्याणके लिये अनेक मार्ग वर्णन किये गये हैं, प्राणी अपनी रुचिके अनुसार उन-उन मार्गोंका अनुसरण करता हुआ कर्म करता है तथा जीवनयात्राको पूर्ण करता है। कर्मोंके अनुसार व्यक्ति धनी, दरिद्री, दाता, भोक्ता, साधनोंसे सम्पन्न, सुखी, दुःखी होता है—**'कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके'**। धनी होकर यज्ञ-दानादि सेवा करनेकी आज्ञा भगवान्ने दी है कि श्रद्धा तथा शक्तिके अनुसार भक्तिसे युक्त होकर सत्पात्रको दान अवश्य करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने सत्-मार्गसे कमाये हुए धनसे शास्त्रकी विधिके अनुसार देश, कालका विचार करके सत्पात्रको दान दे; क्योंकि भारतीय संस्कृतिमें दान अनेक प्रकारकी वस्तुओंके त्यागरूपमें वर्णित मिलता है। ऐसे अर्जित द्रव्यमेंसे त्याग या दान या समर्पणकी भावनासे इहलोकमें यश एवं नाम होता है। कर्तव्यपालन, परोपकार तथा दानके प्रभावसे स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति होती है। बाह्य भौतिक सुखोंसे रुचि हटाकर भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम भावसे दान देनेवाला—श्रीकृष्णार्पण करनेवाला अपने कल्याणके लिये भगवान्से प्रार्थना करके कहता है कि भगवन्! आपकी वस्तु आपको अर्पण कर रहा हूँ, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेवाला प्राणी स्वतः ही भगवान्का भक्त हो जाता है और समर्पणकी भावनासे युक्त होकर भगवदीय भावको प्राप्त कर लेता है। इस सदाचरणको देखकर जो अन्य संसारी जीव हैं, उनका भी कल्याण हो जाता है—**'यद् यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते'** (श्रीमद्भा० ६।२।४), **'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥'** (गीता ३।२१) इस प्रकार गीता एवं भागवत दोनोंका एक ही सिद्धान्त है, एकवाक्यता है। भगवान्की आज्ञा जो गीता या भागवतमें आयी है या अन्य शास्त्रीय ग्रन्थोंमें जो भी मार्ग बतलाये गये हैं, उनका अनुसरण करते हुए भगवत्प्रीतिके लिये जो धर्म-कर्म किये जाते हैं, उनका वास्तविक तात्पर्य यह है कि उस कर्मके करनेसे लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक निःश्रेयस—कल्याण सिद्ध हो जानेपर भगवत्प्रीति—भक्ति या मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकारके भावोंसे अभ्युदय एवं निःश्रेयस—लौकिक तथा अलौकिक दोनों फलोंकी प्राप्ति स्वाभाविक रूपसे सहजमें ही प्राप्त हो जाती है।

इस संसारमें प्राणी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्ति के लिये ही कुछ करता है तो सर्वप्रथम पुरुषार्थ आता है धर्म। सभीमें कर्म करना पड़ता है, तो धर्मको संगृहीत करना चाहिये। स्मृतियोंमें स्पष्ट वर्णन है—

अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥
यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये।
यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते॥

—इन वाक्योंसे सिद्ध होता है कि इस नश्वर मनुष्यशरीरसे तथा धन-सम्पत्तिसे इहलोक और परलोकमें सुखकारी धर्म-कर्मोंका आचरण अवश्य करना चाहिये। जिस धनको यहीं छोड़कर जाना है तो उसको किसीको क्यों न दे दिया जाय, जिसमें दान-परम्परा बनी रहे। **'यद् ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने। तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥'**

भाव यह है कि जिस धनको किन्ही विशिष्ट महापुरुषोंको—सत्पात्रोंको दिया जाय या अपने तथा अपने परिवारके साथ उपभोग कर लिया जाय, बस वही धन सफल धन है। शेषका क्यों रक्षण किया जाय? जिस धनके कमानेमें, रक्षा करनेमें, उपयोग करनेमें, चोरी होनेमें, छुपानेमें—सभीमें दुःख तथा कष्ट ही मिलता है, उस धनका संग्रह क्यों किया जाय?

जो व्यक्ति धनको पूर्वजोंके श्राद्धादिमें, मनुष्योंके सम्मानमें, दान-पुण्यमें तथा देवताओंकी यज्ञ-पूजा आदि सत्कर्ममें नहीं लगाते, वे मन्दाग्नि और दरिद्री होते हैं। इसलिये सभी अनर्थों—दुःखोंसे बचनेके लिये अर्जित धनको पहलेसे ही विभाजित करके रखे, जिससे जीवनयात्रा सफल एवं सुखकारी हो जाय। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट कहा गया है—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

इसमें स्वार्जित धनको पाँच भागोंमें बाँटनेकी आज्ञा है, जिसमें सर्वप्रथम (१) **धर्माय**—धर्मकर्मोंके लिये, जिसमें दान-यज्ञ-पूजनादि श्रद्धाके कार्य—अनुष्ठान एवं श्राद्धादि आते हैं। (२) **यशसे**—यशप्राप्तिके लिये, जीवमात्रके उपकारार्थ किये हुए पूर्तकर्म—मन्दिर, बाग-बगीचा, धर्मशाला, गोशाला, वापी, कूप-तालाब, घाट, विश्रामघर, अस्पताल आदि उपयोगी कार्य, छात्रवृत्ति आदिका वितरण, औषधि-वितरण आदि यशके कार्य हैं। (३) **अर्थाय**—कुछ धन संचित करना चाहिये, न जाने कब जरूरत आ पड़े। (४) **कामाय**—अपने पारिवारिक कार्योंके सम्पादनके लिये, ताकि जीवन-यापन चलता रहे। (५) **स्वजनाय**—कभी किसी स्वजन, सम्बन्धी या आश्रितों, गरीबोंके उपयोगमें सहायता करनेके लिये। इस कार्यसे इस लोक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकमें प्राणी प्रसन्न होकर सुखी रहता है। इससे सभीका कल्याण होता है। इस सिद्धान्तको मानकर दातव्य वस्तुका दान करता जाय। इसमें समयकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।

नीतिवचन—'**दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या**' इत्यादिसे सिद्ध होता है कि दान देना मुख्य धर्म है। धन होनेपर दाता बनो—यही धार्मिक, नैतिक अनुशासन शास्त्रोंमें वर्णित है। ये सभी कर्म इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख-समृद्धिरूप फलप्राप्तिके श्रेष्ठ साधन हैं। भगवान्ने भी श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें उद्धवगीतामें स्पष्ट कहा है—

मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन् मदपाश्रयः।
लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने॥
इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः।
लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया॥

—इन वचनोंमें भगवान्ने भक्तिमार्गके प्रति प्राणीके लिये संकेत एवं आज्ञा की है। जो अनन्य भावसे भगवान्की उपासना करते हैं या निरन्तर चिन्तन करते हुए भजन करते हैं या निष्काम भावसे भजते हैं या सेवा-पूजा करते हैं, ऐसे उन भक्तपुरुषोंका योगक्षेम भगवान् स्वयं उन्हें प्राप्त कराते हैं, वहन करते हैं।

सम्पूर्ण यज्ञों, दानों आदि सत्कर्मोंके भोक्ता तथा स्वामी भगवान् ही हैं, परंतु संसारी जीव उन्हें तात्त्विक दृष्टिसे नहीं जानते, तभी वे बार-बार संसारमें पुनर्जन्मके चक्रमें चलते रहते हैं। भगवान् कहते हैं—'**अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च**' और उन्होंने घोषणा भी कर दी है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

अर्थात् जो कोई भक्त मुझे प्रेम तथा श्रद्धासे—भक्तिसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि पदार्थ अर्पण करता है, उस दी हुई वस्तुको मैं सगुण रूपसे प्रकट होकर ग्रहण ही नहीं करता, अपितु उस शुद्धबुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्तकी दी हुई वस्तु—पत्र-पुष्प-फल-जलादि पदार्थोंको स्वयं खाता हूँ। इसलिये अर्जुन! तू जो भी कर्म करता है, जो भी खाता है, जो हवन करता है, जो दान करता है या देता है और जो तपस्या करता है, वह सब मुझे अर्पण कर—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥

—ये वचन केवल अर्जुनसे ही नहीं कहे हैं, अपितु अर्जुनको लक्ष्य बनाकर भगवान्ने प्राणिमात्रको उद्बोधित करते हुए अपनी प्राप्तिका मार्ग बतलाया है एवं सभीको प्रेरणा दी है कि मेरे बनो। यदि दाता बनते हो तो मुझे मन दो। भगवान् कहते हैं कि इस प्रकार मेरेमें मनको लगाकर जो मेरा ध्यान करनेवाले हैं या प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले हैं, उनको कुछ-न-कुछ प्रसादरूपमें—वरदानरूपमें तत्त्वज्ञानरूप योग मैं देता हूँ, जिससे भक्त मुझको प्राप्त कर ले और संसारमें भ्रमित न हो—'**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥**' (गीता १०। १०)

श्रद्धासे युक्त होकर भक्त जो भी देता है, वह मुझे प्राप्त होता है। यदि मन देने या भगवान्में अचल रूपसे स्थापन करनेकी सामर्थ्य नहीं हो तो भगवान्के नाम-लीला गुणोंका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, मनन; प्रत्येक श्वासमें भगवान्के नाम-मन्त्रोंका जप; भगवत्प्राप्तिविषयक शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा सेवा इत्यादि चेष्टाएँ बारम्बार करनी चाहिये या उनका अभ्यास करना चाहिये। भगवत्प्राप्तिके साधनोंको पुनः-पुनः करनेसे जीव आनन्दस्वरूप या आनन्दमय हो जाता है। यदि इस प्रकारके अभ्यासमें भी प्राणी असमर्थ हो तो सत्कर्मोंके करनेमें ही परायण हो जाय, निजी स्वार्थको त्यागकर परमेश्वरको ही परम आश्रय और परम गति, रक्षक समझकर निष्काम भावसे पतिव्रता स्त्रीकी तरह मन-वाणी और शरीरसे परमेश्वरके ही लिये यज्ञ, पूजन, तप, दानादि सम्पूर्ण कर्तव्य कर्म करे। यही भगवदर्थ कर्म करनेके परायण होना है। अभ्यास, ज्ञान, ध्यान—इन सबसे श्रेष्ठ त्यागको ही बतलाया गया है, क्योंकि त्यागसे ही परम शान्ति मिलती है। इस प्रकार भगवदर्थ कर्म करनेवाले पुरुषकी भगवान्में प्रीति, श्रद्धा और भक्ति हो जाती है तथा भगवान्का बराबर चिन्तन भी बना रहता है। इसलिये ध्यानसे कर्मफलका त्याग श्रेष्ठ कहा है। यह त्याग ही दानका पर्यायवाची है। इसे अर्पण, समर्पण, निवेदन, उत्सर्जना नामोंसे भी जाना जाता है।

भगवान्ने गीतामें दैवीसम्पत्से युक्त पुरुषोंके लक्षणोंमें इन दैवी सद्गुणोंका होना बतलाया है, जिनमें ये लक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलते हैं, वे ही सम्पत्तिशाली उत्तम धनवान् हैं, जैसे—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

(गीता १६। १—३)

यह दैवी सम्पत्ति मुक्तिका कारण बनती है और दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान, भ्रम, स्वार्थ आदि दुर्गुणरूप आसुरी सम्पत्तिवाले जीव बन्धनको प्राप्त होते हैं; क्योंकि दुर्गुणोंसे अहंता-ममताके वशीभूत होकर वे नित्य नये-नये मनोरथ करते रहते हैं और लौकिक पुरुषोंमें लिप्सा बढ़ाते हुए कहते हैं कि मैं बड़ा धनी हूँ, बड़े कुटुम्बवाला हूँ, मेरे समान कोई नहीं है, मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, सुख-सम्पत्तिका भोग करूँगा—इस प्रकार अज्ञानसे मोहित रहनेवाले या भ्रमित चित्तवाले जीव मोहरूप जालमें फँसकर विषयभोग-सुखोंमें अत्यन्त आसक्त होकर आसुरलोकों—अपवित्र लोकों—नरकोंमें पड़ते हैं। वे बिना श्रद्धासे, अहंकारसे, अपने-आपको सर्वश्रेष्ठ मानकर बिना विधिके यशके लिये केवल नाममात्रके यज्ञ-दानादि करते हैं, उनको पाखण्डके बलपर इस लोकमें भले ही यश-नाम-उपाधि मिल जाय, किंतु परलोकमें इन आसुरी भावोंके कारण अधोगति ही मिलती है। या तो नरकोंमें पड़ते हैं या बारम्बार आसुरी योनिमें ही जन्म लेते रहते हैं। ये सब नरकके द्वाररूप काम, क्रोध, लोभ, मोहके कारणसे ही आसुरी-सम्पद्से युक्त होकर दुःखी होते हैं। इसलिये इनका त्याग करना चाहिये। अपने कल्याणके लिये भगवदाज्ञानुसार बर्ताव करनेवाला ही परम गति—मोक्षको प्राप्त करता है। जो शास्त्रविधिको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाने आचरण करता है, उसे न सिद्धि मिलती है, न परम गति मिलती है और न सुख ही मिलता है, इसलिये कर्तव्यमें शास्त्र ही प्रमाण है, उसकी आज्ञाके अनुसार अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुकूल नियत कर्मोंके करनेसे ही इस लोक एवं परलोकमें प्राणी सुखी होता है।

भगवदाज्ञा है कि मुझे जो भली प्रकारसे जान लेता है कि मैं ही सत्पात्र हूँ, इसलिये जो भी किसीको दिया जायगा वह मुझको ही प्राप्त होगा। इस प्रकार जानकर सम्पूर्ण कर्मोंको करता हुआ वह मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

(गीता १८। ५६)

अतः निष्काम दानका अनन्त फल, पारमार्थिक कल्याण तभी सिद्ध होता है, जबकि निष्काम भावसे भगवान्‌को ही सत्पात्र—सर्वश्रेष्ठ मानकर उन्हें सर्वसमर्पण किया जाय, इसीमें कल्याण है। उदाहरणके लिये युधिष्ठिर महाराजने राजसूययज्ञमें भगवान्‌की अग्रपूजा करके अनन्त फल प्राप्त किया था तथा सर्वस्वदान-समर्पण करके राजा बलिने स्वात्मनिवेदनके भावको सार्थक सिद्ध कर दिया। ये दोनों प्रसंग निष्कामदानसे पारमार्थिक कल्याणके स्पष्ट उदाहरण हैं।

'रसना राम-राम रट रहिये'

(पं० श्रीकृष्णगोपालाचार्यजी 'गोपालमहाराज')

रसना राम-राम रट रहिये।
नाम राम कौ काम राम कौ, धाम राम कौ कहिये॥ १॥
हरि की कथा छाँड़ि काहूँ सौं, और बचन मत कहिये।
नहिं दुर्बचन उचारिये कबहूँ, कुटिल कुअवसर सहिये॥ २॥
जौं कछु मिलै प्रसाद राम कौ, प्रेम सहित सोइ पैये।
राम नाम अमृतधारा में, मल-मल खूब नहइये॥ ३॥
अति विनम्र आदर सह हरि के, चरित प्रेम सौं गैये।
'कृष्णगुपाल' ग्रहन करि यह गुन, जीवन सफल बनैये॥ ४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवत्स्वरूप भक्तशिरोमणि भरतजी भगवान् राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीसे सन्त-असन्तके लक्षण पूछना चाहते हैं, परंतु संकोचवश निवेदन करनेमें हिचकते हैं। भरतजी आदि भ्रातागण सब श्रीहनुमान्जीकी ओर देखते हैं, इसलिये कि श्रीहनुमान्जी भगवान्के अतिशय प्रिय भक्त हैं, वे हमारी ओरसे निवेदन कर दें। अन्तर्यामी प्रभु सब जानते ही थे, वे कहते हैं—'हनुमान्! कहो, क्या पूछना चाहते हो?' हनुमान्जी हाथ जोड़कर कहते हैं—'नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, परंतु शीलवश प्रश्न करते सकुचाते हैं।' प्रेमसिन्धु भगवान् कहते हैं—'हनुमान्! तुम तो मेरा स्वभाव जानते हो, भरतजीमें और मुझमें क्या कोई अन्तर है?' भरतजीने भगवान्के वचन सुनकर उनके चरण पकड़ लिये और अपने अनुरूप ही निवेदन किया—

नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह॥

(रा०च०मा० ७। ३६)

फिर उन्होंने सन्त-असन्तके भेद और लक्षण पूछे। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने पहले सन्तोंके अति सुन्दर लक्षण बतलाकर फिर असन्तोंका स्वभाव बतलाते हुए कहा—

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥
पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥
लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा॥

(रा०च०मा० ७। ३९। १—८, ७। ३९, ७। ४०। १—८)

यदि सच्चाईके साथ विचार करके देखा जाय तो न्यूनाधिकरूपमें ये सभी लक्षण आज हमारे मानव-समाजमें आ गये हैं। सारी दुनियाकी यही स्थिति है। सभी ओर मनुष्य आज काम-लोभपरायण होकर असुरभावापन्न होता जा रहा है। अपने देशकी स्थिति देखकर तो और भी चिन्ता तथा वेदना होती है। जिस देशमें त्यागको ही जीवनका लक्ष्य माना गया था, जहाँपर स्त्रीमात्रको स्वाभाविक ही माता माना जाता था, जहाँ परधनकी ओर मानसिक दृष्टि डालना भी भयानक पाप माना जाता था—उसको भारी जहर *'बिष तें बिष भारी'* माना जाता था, वहाँ आज कलाके नामपर परस्त्रियोंके साथ पर-पुरुषोंका अनैतिक सम्बन्ध बड़ी बुरी तरहसे बढ़ा जा रहा है और पर-धनकी तो कोई बात ही न रही। दूसरेके स्वत्वका येन-केन-प्रकारेण अपहरण करना ही बुद्धिमानी और चातुरी समझा जाता है। कुछ ही समय पूर्व ऐसा था कि मुँहसे जो कुछ कह दिया जाता था, उसको प्राणपणसे निबाहा जाता था। आज कानूनी दस्तावेज भी बदले जानेकी नीयतसे बनाये जाते हैं। मिथ्याभाषण तो स्वभाव बन गया है। बड़े-से-बड़े पुरुष स्वार्थके लिये झूठ बोलते हैं। बड़े-बड़े राष्ट्रोंके प्रसिद्ध अधिनायक, जनताके नेता, दलविशेषोंके संचालक, प्रख्यात संस्थाओंके पदाधिकारी, सरकारके ऊँचे-से-ऊँचे अधिकारी, बड़े-से-बड़े अफसर, छोटे-से-छोटे कर्मचारी, बड़े-बड़े व्यापारी तथा छोटे व्यापारी—सभी बेईमानीमें आज एक-से हो रहे हैं, मानो होड़ लगाकर एक-दूसरेसे आगे बढ़नेकी जी-तोड़ कोशिशमें लगे हुए हैं। चोर-बाजारी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार, अनैतिकता स्वभावगत हो गयी है। सभी मानो बेईमानीका बाजार सजाये, एक-दूसरेको लूटने, ठगने और उसकी जड़ काटनेके लिये तैयार बैठे हैं। ऐसे बहुत थोड़े लोग होंगे, जिनकी ईमानदारीमें विश्वास किया जा सके। नये-नये कानून बनते हैं और बेईमानीके नये-नये रास्ते निकलते जाते हैं। इसका कारण यही है कि जिनको कानून मानना है और जिनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिम्मे उसको मनवाना है, वे दोनों ही ईमानदार नहीं हैं। ऊपरसे एक-दूसरेको बेईमान बतलाते हुए भी दोनों ही नये-नये तरीकोंसे बेईमानी बढ़ानेमें लगे हैं। अफसर एवं राजकर्मचारी कहते हैं—'व्यापारी चोर हैं, इनको दण्ड मिलना चाहिये,' और व्यापारी अफसरों, अधिकारियों और राजकर्मचारियोंकी खुलेआम चोरी और बेईमानी देखते हैं। चोरी और बेईमानी कैसे बन्द हो? यह अशोभनीय और अवांछनीय परिस्थिति कैसे बदली जाय? अपने देशके लिये यह चिन्त्य है।

एक युग था, जिसमें लोगोंका यह विश्वास था कि सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी भगवान् सदा-सर्वदा-सर्वत्र हैं और वे हमारी प्रत्येक क्रियाको देखते हैं। हम एकान्तमें कोई पाप करते हैं, मनमें भी पापभावना करते हैं तो उसे भी भगवान् जानते-देखते हैं। इसलिये उनमें भगवान्से संकोच था। भगवान्के भयसे लोग बुरा कर्म करनेमें डरते थे।

इसके साथ ही चार बातें और हिन्दू-संस्कृतिमें छोटे-बड़े सबके स्वभावगत-सी हो गयी थीं—(१) मनुष्य-जीवनका चरम और परम उद्देश्य मोक्ष या भगवत्प्राप्ति है। इसी लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये मानव-जीवनमें साधन करना है। (२) पुनर्जन्म अवश्य होगा और उसमें हमें अपने अच्छे-बुरे कर्मोंका फल निश्चितरूपसे भोगना पड़ेगा। (३) शास्त्र सत्य हैं और उनके कथनानुसार सुख-दुःख हमारे कर्मोंके फल हैं। (४) कर्तव्य-पालन करना ही हमारा धर्म है, केवल अधिकार पाना धर्म नहीं। इन चारों बातोंके कारण स्वभावसे ही भोगोंके त्यागका महत्त्व था, उसीमें जीवनकी महत्ता मानी जाती थी। चोरी-जारी आदि पापोंका फल विविध योनियोंमें एवं नरकादिमें अवश्य भोगना पड़ेगा—यह विश्वास था। दूसरेकी किसी भी वस्तुपर मन चल जाना भी पाप है और उसे छल-बल-कौशलसे ले लेना तो महान् अपराध है—यह मान्यता थी। सुख-दुःख हमारे कर्मके अनिवार्य फल हैं। बुरे कर्म करनेपर उसका अच्छा फल हो ही नहीं सकता, फिर बुरा कर्म क्यों करें—यह दृढ़ भावना थी। और हमें शास्त्रानुसार अपना कर्तव्य-पालन करते जाना है, कर्मका फल तो भगवान्के हाथ है, हमारा फलमें अधिकार नहीं, कर्ममें ही अधिकार है—यह दृढ़ आस्था थी। इससे लोग स्वभावसे ही पापाचरणसे बचना चाहते थे और बचते थे।

आज ईश्वरका कोई भय नहीं। शास्त्रोंमें तथा कर्मोंके फल और पुनर्जन्ममें विश्वास उठता जा रहा है, सभी अधिकार चाहते हैं। कर्तव्यपर किसीका ध्यान नहीं है। शक्तिमत्ता, अधिकार और धनका लोभ इतना बढ़ गया है कि उसने मनुष्यको असुर ही नहीं, पिशाच बना दिया है। इसीसे आजका मानव एक-दूसरेपर खून चूसनेका दोष लगाता है और स्वयं मानो छल-बल-कौशलसे दिन-रात खून चूसनेका ही विशद व्यापार कर रहा है। उसने केवल इसी सिद्धान्तको मान लिया है कि किसी भी उपायसे हो, धनकी—भोग-पदार्थोंकी प्राप्ति होनी चाहिये; बस! यह कामोपभोग ही सब कुछ है—'**कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥**' (गीता १६। ११)

131851

मनुष्यके लिये उत्तम लोकोंमें जानेके सात बड़े सुन्दर उपाय सत्पुरुषोंने बतलाये हैं, जो ये हैं—(१) अपने धर्मपालनके लिये सुखपूर्वक नाना प्रकारके कष्टोंको स्वीकार करना, यह तप है। (२) देश, काल और पात्रको देखकर सत्कारपूर्वक निष्कामभावसे अपनी वस्तु दूसरेको देना दान है। (३) विषाद, कठोरता, चंचलता, व्यर्थचिन्तन, राग-द्वेष और मोह, वैर आदि कुविचारोंको चित्तसे हटाकर उसे परमात्मामें लगाना शम है। (४) विषयोंके समीप होनेपर भी इन्द्रियोंको उनकी ओर जानेसे रोक रखना दम है। (५) तन, मन, वचनसे बुरे कर्म करनेमें संकोच होना लज्जा है। (६) मनमें छल, कपट या दम्भका अभाव होना सरलता है। (७) बिना किसी भेदभावसे प्राणिमात्रके दुःखको देखकर हृदयका द्रवित हो जाना और उनके दुःखोंको दूर करनेके लिये चेष्टा करना दया है।

Central Library Gurukul Kangri University

इन सातोंका पालन करनेवाला पुरुष कल्याण-भाजन होता है, किंतु यदि इनके कारण वह अभिमान करता है तो उसके ये तप आदि गुण मानरूपी तमसे निष्फल होकर नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रोंमें कहा गया है—

यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति॥
अहङ्काराङ्कुरस्याग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति।

(देवीभाग० ४। ७। २५-२६)

अतः अभिमान तो किसी प्रकार न आने दे, जो मनुष्य श्रेष्ठ विद्या पढ़कर अपनेको ही पण्डित मानता है और अपनी विद्यासे दूसरके यशको घटाता है, उसको उत्तम लोककी प्राप्ति नहीं होती और उसकी पढ़ी हुई वह उत्तम ब्रह्मविद्या उसे ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं कराती। अध्ययन, मौन, अग्निहोत्र और यज्ञ—ये चार कर्म मनुष्यको भवभयसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुड़ानेवाले हैं, परंतु यदि यही अभिमानके साथ या मानकी प्राप्तिके लिये किये जायँ तो उलटे भय देनेवाले हो जाते हैं।* इसलिये कहीं सम्मान मिले तो फूल नहीं जाना चाहिये और अपमान हो तो सन्ताप भी नहीं मानना चाहिये।

'मैंने दान दिया है, मैंने इतने यज्ञ किये हैं, मैंने इतना पढ़ा है, मैंने ऐसे-ऐसे व्रत किये हैं'—इस प्रकार जो अभिमानभरी डींगें मारता हुआ ये कर्म करता है, उसको यही कर्म शुभफल न देकर उलटा भय देनेवाले हो जाते हैं। इसलिये अभिमानका बिलकुल त्याग करना चाहिये—ये हैं महाभारतके निचोड़ आदर्श-उपदेश, जिन्हें मानकर चलनेसे ही हम वर्तमान समयमें अपना पथ सुधार सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि धनसे सुख मिलता है; क्योंकि उससे प्रायः सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति होती है। यह आंशिक सत्य भी है, परंतु यह सुख वस्तुतः धनका नहीं है, हमारी आत्म-भावनाका है। धनमें तो सुख है ही नहीं। सुख है आत्माकी शान्तिमें। जो अशान्त है—दिन-रात उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कामनाकी आगसे जलता है, उसको सुख कहाँ—'**अशान्तस्य कुतः सुखम्॥**' (गीता २।६६) यह नियम है कि जैसे आगमें ईंधन तथा घी डालते रहनेसे आग बुझती नहीं—प्रत्युत बढ़ती ही है, वैसे ही भोग-कामनाकी पूर्तिसे कामना घटती नहीं, बल्कि बढ़ती ही है। सौवाला हजारों-लाखोंकी चाह करता है, तो लाखवाला करोड़ों-अरबोंकी चाह करता है। एक नियम यह भी है कि एक अभावकी पूर्ति अनेक नये अभावोंकी सृष्टि करनेवाली होती है और जबतक अभावका अनुभव है, तबतक प्रतिकूलता है, प्रतिकूलता रहते चित्त सर्वथा अशान्त रहेगा, अशान्त चित्तमें सुख हो ही नहीं सकता, लोग भूलसे मानते हैं कि पैसेवाले बड़े सुखी हैं; जबकि यह बात यथार्थ नहीं है। उनके हृदयमें जैसी आग धधकती है, वैसी गरीबोंके हृदयमें शायद नहीं धधकती। इसका अनुमान भुक्तभोगी ही कर सकते हैं।

उस दिन एक सज्जनने बहुत ठीक कहा था कि पहले यद्यपि कुछ लोग ऐसे भी थे, जो भगवान् या धर्मका भय नहीं मानते थे और पाप करते थे, तथापि उनमें यह साहस न था कि वे अपनेको निर्दोष ही नहीं, जनताका और समाजका सेवक भी बतायें और उलटे पाप न करनेवालोंको डरायें-धमकायें तथा उन्हें पापी सिद्ध करें। आज तो हमारी यह दशा हो गयी है कि हम स्वयं धर्म-सेवा और देश-सेवातकके नामपर अनवरत पाप करते हैं तथा अपने पापी गिरोहके बलपर निष्पाप लोगोंको डराते-धमकाते हैं एवं उन्हें पापी सिद्ध करना चाहते हैं। जनसेवक बतलाकर डाकूका काम करना, भाई बनकर किसीका सतीत्वापहरण करना, धार्मिक बनकर लोगोंको ठगना, गुरु बनकर धन-धर्मको लूटना, रक्षक नियुक्त होकर भक्षक बन जाना और पहरेदार बनकर चोरी करना आज बुद्धिमानी और गौरवका कार्य बन गया है। सभी क्षेत्रोंमें लोग अपने-अपने चरित्रोंपर ध्यान देकर देखें तो उन्हें उपर्युक्त कथनमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं मालूम होगी। यह हमारे नैतिक पतनका एक बड़ा दुःखद स्वरूप है।

चारों ओर दलबन्दी है। हम मानो अपनेको ही छलते हुए कहते हैं कि 'राष्ट्रियता बढ़ रही है, पर वस्तुतः प्रान्तीयता, वर्गवाद और व्यक्तिवाद ही बढ़ता जा रहा है। दूसरोंको फासिस्ट बताना और स्वयं वैसा ही काम करना स्वभाव-सा हो गया है, इसका प्रतिकार कैसे हो?' यह विचारणीय है।

हमारी समझसे इसका एक ही उपाय है और वह उपाय है अध्यात्मप्रधान प्राचीन हिन्दू-संस्कृतिकी पुनः प्रतिष्ठा। जबतक मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भगवान् नहीं होंगे, जबतक पुनर्जन्म और कर्मफलमें सुदृढ़ विश्वास नहीं होगा, जबतक शास्त्रोंके अनुसार पवित्र जीवन बनाना हमारे जीवनकी अनिवार्य साधना न होगी और ऐसा बनकर जबतक किसी भी लोभ, भय या स्वार्थसे धर्मच्युत न होनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा न होगी, तबतक किसी भी आन्दोलनसे, प्रचारसे और कानूनसे भ्रष्टाचार, असदाचार और दुष्कर्म नहीं रुकेंगे। जबतक यह पापका प्रवाह न रुकेगा, इसका उद्गमस्थल न सूखेगा, तबतक दुःखका प्रवाह भी नहीं रुक सकेगा। अतः हम सबका कर्तव्य है कि अध्यात्मप्रधान संस्कृतिकी प्रतिष्ठामें एवं सदाचारमें लग जायँ, तभी हमारा, हमारे देश और धर्मका मंगलमय कल्याण होगा। यह ध्रुव सत्य है।

*चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि। मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः॥ (महाभारत, उद्योग० ३३।७३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवल्लीलाका आश्रयण ही श्रेयस्कर

(पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०)

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

(श्रीमद्भा० १०।१४।८)

श्रीब्रह्माजी कहते हैं कि श्यामसुन्दर! जो भक्त आपकी कृपाका क्षण-क्षण अनुभव करता हुआ, प्रारब्धसे प्राप्त सुख-दुःखादि भोगोंको भोगता हुआ, मन-वाणी और देहसे आपको नमस्कार करता हुआ आपकी भक्ति करता है, वह मुक्तिपदका उसी प्रकार अधिकारी हो जाता है, जैसे पिताकी सम्पत्तिका पुत्र।

इसीलिये महापुरुषोंने कहा कि भक्तिको जगानेवाले कर्म करते रहो। भगवन्नामका जप करो, कीर्तन करो, भगवान्‌की मूर्तिका पूजन करो, मन्दिर तथा तीर्थोंमें दर्शन करने जाओ, भगवान्‌के महोत्सव करो, उनकी लीलाओंका श्रवण, ध्यान, चिन्तन और अभिनय करो, सन्तों और भक्तोंकी सेवा करो।

परमात्मा लीलामय हैं। '**लीलामयोऽयं पुरुषः**' उस परम पुरुषके मनमें कभी विरजा तटमें लीला करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। विद्या और अविद्या माया शक्तियाँ उसकी क्रीड़ाकी संचालिका होती हैं। दोनों ही अपना-अपना जोर आजमाती हैं। एकका क्षेत्र होता है त्रिपाद्विभूति और दूसरीका एकपाद्विभूति। कुछ जीवात्माएँ अविद्याके क्षेत्रमें आ जाती हैं। उनमें 'अहं' और 'मम' का उदय हो जाता है और वे ही पुनः चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमण करती हुई संसार-कीचमें निमग्न हो जाती हैं। उनमेंसे कुछ सत्संगके प्रभावसे भगवत्पथमें आरूढ़ होती हैं तथा पुनः भगवत्प्राप्ति कर लेती हैं।

इसीलिये तो कहा गया है कि जहाँ सच्चे साधु होते हैं, वहाँ आत्मकल्याण एवं लोककल्याणके निमित्त भगवच्चरितोंका आस्वादन करते हुए भूख, प्यास, भय, मोह सभीको भुला देते हैं—

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र-
पीयूषशेषसरितः परितः श्रवन्ति।
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णै-
स्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः॥

जहाँ भगवान्‌के भक्त रहते हैं—ऐसे सन्त-समाजमें महात्माओंके मुखोंसे भगवान्‌की लीलारूपिणी अमृतमयी नदीकी धाराएँ चारों ओर बहा करती हैं। उन्हें जो एकचित्त होकर अपने कर्णकुहरसे पान करते हैं अथवा अभिनयके द्वारा दर्शन करते हैं, उन्हें भूख, प्यास, भय, मोह कभी भी छू नहीं सकते।

श्रीसूतजीने शौनकजीसे कहा—

अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम्।
उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः॥

जब अन्य पवित्रकीर्ति और परम यशस्वी महापुरुषोंका चरित्र सुनकर ही आनन्द प्राप्त होता है, तब श्रीवत्सधारी हरिकी ललितललाम लीलाओंकी बात ही क्या?

इसीलिये श्रीशुकाचार्यजी परीक्षित्‌जीसे कहते हैं—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२।४।४०)

परीक्षित्! अनेक प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध होकर जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार होना चाहते हैं, उनके लिये भगवान् पुरुषोत्तमकी लीला एवं कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है। अतः भगवल्लीला एवं भगवत्कथाका आश्रयण ही परम श्रेयस्कर है।

पंचरसाचार्य श्रद्धेय श्रीस्वामी रामहर्षणदासजी महाराजने लीला-प्रियताके सम्बन्धमें विनयवल्लरीमें वर्णन किया है—

राम चरित चित चायन मोरे।
शास्त्र वेद को अर्थ न जानौं, अहौं बुद्धि के बौरे॥
लीला ललित लखहुँ अरु गावहुँ, सुनहुँ सोइ बनि भोरे।
चारु चरित चित चिन्तन करि करि, सब साधन गति तोरे॥
वाणी बुद्धि मनहुँ तहँ लागै, लहि विश्राम अथोरे।
भुक्ति मुक्ति प्रभु प्रेम प्रदायक, राम मिलावनि सोरे॥
जीवन मुक्त ब्रह्म पर सुनहीं, ध्यान छोरि जेहिं कोरे।
'हर्षण' शरण गह्यो तेहिं केरी, कहहुँ सबहिं छल छोरे॥

श्रीहर्षणसतसईके लीलापरत्व-प्रकरणमें रामलीलाको पूर्ण चन्द्रकी तरह अमृतवर्षिणी, रसदायिनी, आनन्दकी खान और देखनेमें प्रिय लगनेवाली कहा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण चन्द्र रघुवर चरित, अमृतमय रस दानि।
प्रिय दर्शन प्रिय लोक कहुँ, हर्षण आनन्द खानि॥

इस रामलीलाको उसी प्रकार समझना चाहिये, जैसे भूमि होती है। भूमि जैसे बीजमयी होती है, उसी प्रकार सन्तगण इस लीलाको रसमयी कहते हैं। जैसे जलमें द्रवत्व-ही-द्रवत्व होता है, उसी प्रकार रामचरित रसिकोंके पीनेयोग्य रस-ही-रस है—

यथा वारि में द्रवहिं द्रव, हर्षण देखत लोग।
राम चरित तिमि रसहिं रस, रसिकन पीवन योग॥

(श्रीहर्षणसतसई १४)

रामलीला श्याम सुरभिके दुग्धके समान सुखदायिनी, मीठी और रोगनाशक है, जो संसाररूप दुःख और दोषोंका सर्वथा हरण कर लेती है—

सुखद रामलीला सरस, श्याम सुरभि को दूध।
पान करत हर्षण हरत, दोष दुःख भव रूध॥

इस सुखदायिनी श्रीरामलीलाका यदि प्रचार नहीं होता तो नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थका यथार्थ स्वरूप ही नष्ट हो चुका होता—

सुखद रामलीला ललित, जो नहिं होत प्रचार।
नीति प्रीति परमार्थ सह, स्वारथ होत खुआर॥

इस रामकथा अभिनयके रसिक अंजनीनन्दन श्रीहनुमान्‌जी हैं। वे जब लीलाभिनयके द्वारा चरित्रका आस्वादन करते हैं, तब उस लीलाका दर्शन करके उसकी रसमयतामें मुनियोंका मन भी मोहित हो जाता है—

रामकथा अभिनय रसिक, हनुमत अंजनि लाल।
हर्षण मोहत मुनिन मन, लीला रसदरसाल॥

माधुर्यमूर्ति श्रीरघुनन्दनकी ही भाँति उनकी लीला भी मधुर है, वह इस लीलारसमें अवगाहन करनेवाले जनोंकी गति-मतिको भी मधुर-ही-मधुर कर देती है। जब हृदय-पटलमें इस ललित लीलाका प्रकाश उदित होने लग जाय, तभी समझना चाहिये कि वास्तविक रामकथाका उदय हुआ है। श्रीस्वामीजी महाराज 'श्रीहर्षणसतसई' में कहते हैं कि—

हृदय पटल लीला ललित, होवै उदित प्रकाश।
हर्षण तबहीं जानिये, राम कृपामय दास॥

परम विज्ञानी, जीवन्मुक्त, ब्रह्मवेत्ता मुनिगण भी इस लीलाके रसमें डूबे रहते हैं तथा इस लीलाको ब्रह्मज्ञानका परम फल मानते हैं। श्रीप्रेमरामायण महाकाव्यमें कहा गया है—

वेदवर्णित ब्रह्म रसमय है, रसधर्मी है और आनन्द उसका धर्म है। श्रीसीतारामजी महाराज स्वयं रसरूप हैं, स्वयं रसरूप होकर रसके ही द्वारा रसका आस्वाद लेते हैं, अतः रसिक हैं। जिस प्रेमीके हृदयकमलको कुटीर बनाकर आप बसते हैं, वह भक्तहृदय भी आपकी लीलास्थली बन जाता है, अतः वहाँ भी रसधारा बहने लगती है। जिस प्रकार जल द्रवमय, अग्नि तेजोष्णमय और सूर्य प्रकाशमय है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्म लीलामय है, वह कभी लीलासे अतिरिक्त नहीं देखा जाता। लीलाशक्ति कभी उसका साथ नहीं छोड़ती। इसीलिये उसकी लीला बिना विरामके प्रवाहित होती रहती है। तीनों कालोंमें वह ललित लीला सच्चिदानन्दरूप अर्थात् प्रकृतिसे परे रहती है; क्योंकि सत्‌से असत्‌का होना सदा असम्भव और अशक्य है। अमृतसे विषका निर्माण नहीं होता। इस चिन्मय लीलाकी पृष्ठभूमि ब्रह्मका हृदय है, जो ब्रह्मसे किंचित् पृथक् और अन्य तत्त्व नहीं है। उस लीलाको अव्यक्त लीला कहते हैं। पुनः उसी लीलाका विकास परिकरोंके बीच पराधाम सान्तानिक प्रदेशमें होता है, जिसे वास्तविक लीलाके नामसे जाना जाता है। वही लीला लीलाशक्तिके सहारे लीलामयसे प्रेरित होकर लीलामय श्रीमन्महाराज दशरथनन्दनजूके प्रसन्नतार्थ धराधाम श्रीअवध और श्रीमिथिलामें होती है, जिसे विज्ञजन व्यावहारिक लीला कहकर पुकारते हैं। भक्तभावन भगवान् अपनी निर्हेतुकी कृपापरवश हो अपने भोले-भाले प्रेमोन्मत्त भक्तोंको सुख देनेके लिये उनके हृदय-प्रांगणको ही अपनी लीलास्थली बनाकर उक्त लीला करने लगते हैं। उस समय भक्तको नव-नव भावों एवं नित्य नवीन लीलाओंका दर्शन हृदयपटलमें होने लगता है, तब वह अपनेको प्रभुकृपासे वरण किया समझकर कृतकृत्य हो जाता है। उसके हृदयमें लीलासे उत्पन्न प्रेम-प्रवाह प्रवाहित होकर उसे रसमय, प्रेममय, आनन्दमय बना देता है।

इससे स्पष्ट है कि भगवान्, भगवान्‌की लीला, उनकी लीलाके पात्र एवं लीलाकी भूमि—सभी सुखमय, सरस और सच्चिदानन्दमय हैं। अतः भगवल्लीला एवं भगवत्कथाका आश्रयण ही श्रेयस्कर है।

लीला प्रिय रसिकेश की, लीला ललित विशाल।
हर्षण शुभ लीला प्रवर, मधुमय रसद रसाल॥
ब्रह्मज्ञान फल कहँहि ते, रघुवर लीला काहिं।
हर्षण बिन लीला रसिक, ब्रह्म ज्ञान विरथाहिं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रवण, मनन आदि 'पिपीलिका मार्ग' है और सत्संग 'विहंगम मार्ग' है। सत्संगसे तत्काल सिद्धि होती है।

दूसरेको सुख देनेसे अपनी सुखलोलुपता मिटती है। अपने सुखके लिये कुछ भी करना आसुरी वृत्ति है। यह सुखलोलुपता बड़ी भारी बाधा है। जबतक यह है, तबतक कल्याण नहीं होगा। सुखलोलुपताकी डोरी बँधी रहेगी तो रातभर नाव खेते रहो, भजन-ध्यान करते रहो, पर वहीं-के-वहीं रहोगे। सुखलोलुपतासे नुकसान किसी तरहका बाकी नहीं, लाभ कोई नहीं।

× × ×

जैसे दाहिका और प्रकाशिका—दोनों शक्तियाँ अग्निसे अलग नहीं रह सकतीं, ऐसे ही क्षर (अपरा) और अक्षर (परा)—दोनों शक्तियाँ परमात्मासे अलग नहीं रह सकतीं। शक्ति शक्तिमान्‌के बिना नहीं रह सकती, पर शक्तिके बिना शक्तिमान् रह सकता है। शक्ति स्वतन्त्र नहीं रह सकती। शक्तिमान्‌की स्वतन्त्र सत्ता है। शक्तियों (क्षर और अक्षर)-के बिना परमात्मा रह सकते हैं, इसलिये भगवान्‌ने अपनेको क्षर-अक्षर दोनोंसे अन्य बताया है—**'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः'** (गीता १५।१७)।

परमात्माके टुकड़े नहीं होते। प्रकृतिके अंशको पकड़नेसे जीव अंश हुआ है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५।७)। जैसे धनी भी आदमी है, गरीब भी आदमी है। धनको स्वीकार करनेसे वह धनी कहलाता है, धनको स्वीकार न करे तो वह आदमी तो है ही। ऐसे ही प्रकृतिके अंशको पकड़नेसे जीव है, न पकड़े तो साक्षात् ब्रह्म है।

चेला बनानेवाले बड़ा अपराध करते हैं कि चेलेकी पूर्ति (कल्याण) तो कर सकते नहीं और चेलेको अटका देते हैं—कहीं जाने देते नहीं।

× × ×

सबके अनुभवकी बात है कि संसारमें सन्तोष नहीं होता, तृप्ति नहीं होती। बड़े-से-बड़े धनी आदिको देख लो, कोई भी सन्तुष्ट नहीं है। संसारमें जो मिला है, वह नमूना है। उसमें सन्तोष नहीं हुआ तो त्रिलोकीकी वस्तुएँ मिलनेपर भी सन्तोष होगा नहीं। सब-के-सब व्यक्ति-पदार्थ मिलकर एक व्यक्तिको भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते। कारण कि सब वस्तुएँ शरीरतक पहुँचती हैं, आपतक नहीं पहुँचतीं। इसलिये इनसे ऊँचा उठना है। शान्ति प्रकृतिसे अतीत तत्त्वमें है

हम भोगोंका त्याग तो कर सकते हैं, पर परमात्माका त्याग कर सकते ही नहीं। भर्तृहरिजीने भोगोंका त्याग कर दिया और फिर भगवान्‌में ही लग गये, उनको नहीं छोड़ा।

× × ×

अनेक जगह सत्ता माननेसे मन एक जगह नहीं लग सकता। यदि मनमें अनेक सत्ताका भाव न होकर एक परमात्मसत्ता ही रह जाय तो फिर मन कहाँ जायगा? क्यों जायगा?

जैसे शरीर बदलता है, हम वही हैं, ऐसे ही संसार बदलता है, परमात्मा वही हैं। जो बदलता है, उसकी सत्ता विद्यमान नहीं है। बदलनेवालेसे ममता करनेवाला कभी सुखी नहीं हो सकता। परिवर्तन यह कहता है कि मेरेपर विश्वास मत करो। संसारमें परिवर्तन जरूरी है। परिवर्तन न हो तो संसार तस्वीर हो जायगा। जो हरदम नहीं रहता, वह आपका नहीं है। चाहे उसे कायम रख लो, चाहे अपना मत मानो।

× × ×

मुक्तिमें भेद है, पर प्रेममें कोई मतभेद नहीं है। दार्शनिक एकता नहीं होती, प्रत्युत प्रेमकी एकता होती है। संसारमें ममता होती है, भगवान्‌में आत्मीयता होती है। प्रेममें सब एक हो जाते हैं, कोई मतभेद नहीं रहता।

वास्तवमें मतभेद दोषी नहीं है, राग-द्वेष दोषी हैं।

ज्ञानमें आप हमारा निरादर कर सकते हैं, पर प्रेममें निरादर नहीं कर सकते। प्रेममें खटपट नहीं होती।

× × ×

संसारका आकर्षण भगवत्प्राप्तिमें बहुत बाधक है। भोग और संग्रह—ये दो खास बाधाएँ हैं। आरम्भसे ही प्रभु-कृपाका आश्रय लेकर साधन करो। परमात्माकी प्राप्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिश्रम, उद्योग करनेसे नहीं होती। परमात्मप्राप्तिमें क्रिया और पदार्थ हेतु नहीं हैं, प्रत्युत भाव, प्रेम और शरणागति हेतु हैं। परमात्माकी प्राप्ति किसी मूल्यसे नहीं होती, प्रत्युत समर्पणसे, विश्वाससे होती है। भगवच्चरणोंकी शरण लें और पुकार करें तो प्राप्ति हो जायगी, अन्य किसी साधनकी जरूरत नहीं। बच्चा केवल रोकर सबपर अधिकार कर लेता है। भीतरकी पुकार, लगन, उत्कण्ठा, आतुरता भगवान्‌को पकड़ लेती है। इसे पहले ही पैदा कर लो, अन्यथा प्राप्तिमें देरी लगेगी। पुकारसे भगवान् पिघल जाते हैं। आश्रय और लालसा—इन दो चीजोंकी जरूरत है। संयोगजन्य सुखकी आसक्ति खास बाधा है। इस रस्सीको खोले बिना नौका आगे बढ़ेगी नहीं।

भगवान् कल्पवृक्ष हैं। जो शरीरको चाहता है, उसे भगवान् नया-नया शरीर देते रहते हैं। परमात्माकी प्राप्ति चाहते हो तो भोगासक्तिको मिटाओ। न मिटा सको तो भगवान्‌को पुकारो।

× × ×

अपनी सामर्थ्य, समय, समझ और सामग्री पूरी लगा दो। पूरा बल लगानेपर भी काम न बने, तब भगवान् सहायता करेंगे। वस्तु अभावग्रस्तको दी जाती है, जिसके पास वस्तु है, उसे कौन देना चाहेगा? अपने बलसे कामादि दोष दूर न हों, तब भगवान्‌को पुकारो, उनके आगे रोओ। भगवान् निर्बलकी सहायता करते हैं—*'सुने री मैंने निरबलके बल राम।'* अपनी शक्ति लगाये बिना भगवान् कैसे दया करेंगे? आपका उद्देश्य काम-क्रोधादिको दूर करनेका होना चाहिये। काम-क्रोधादि दोष सुहायें नहीं। उनसे सुख लेते रहोगे तो वे दूर नहीं होंगे। आपसे दूर न हों, तब प्रार्थना करो और प्रार्थना करके चिन्ता छोड़ दो। फिर जब ये दोष आयें, तब भगवान्‌से कह दो कि 'यह देखो नाथ, काम आ गया!' शरणागतिकी कसौटी है—सब चिन्ताएँ मिट जायँ।

जो अपने लिये सब कर्म करता है, वह राक्षस होता है। उसकी भगवान् मदद कैसे करेंगे?

धन कमानेमें तो घाटा भी लग सकता है, पर भगवद्भजनमें घाटा लगता ही नहीं।

मन लगे चाहे न लगे, नामजपको मत छोड़ो। नाममें इतनी शक्ति है कि मन भी लगा देगा। कोई पूछे तो कह दो, आपको पूछना हो तो कह दो और बिना पूछे कुछ कहनेकी मनमें आये तो कह दो—इन तीनोंके सिवाय कुछ मत बोलो और नामजप करते रहो। यह आप करो तो मैं यह मान लूँगा कि आपने मेरा आदर कर दिया, मेरी पूजा कर दी, मुझे भेंट दे दी!

× × × ×

भगवान्‌ने कल्याणके लिये मनुष्यशरीर दिया है तो कल्याणके लिये योग्यता भी दी है। अतः यहाँ कल्याणके लिये योग्यता सम्पादन करनेकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत प्राप्त योग्यताका सदुपयोग करनेकी जरूरत है। नया सीखनेकी इतनी जरूरत नहीं है। जो मिला है, उसका सदुपयोग करना है।

महिमा मनुष्यशरीरकी नहीं, प्रत्युत विवेककी है। रामायणमें आया है—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥

(मानस, उत्तर० १२१।९-१०)

विवेकका सदुपयोग करनेसे ज्ञान, वैराग्य, भक्ति—तीनों प्राप्त होते हैं। विवेकका दुरुपयोग करनेसे नरक प्राप्त होते हैं।

जो आप अपने लिये नहीं चाहते, वह दूसरोंके प्रति मत करो। यह बुद्धि भगवान्‌ने सबको दी है। हम तो झूठ बोलें, पर दूसरा हमसे झूठ न बोले—यह विवेकका दुरुपयोग है।

× × × ×

साधकोंके लिये सबसे पहले विवेककी आवश्यकता है। शरीर और शरीरीको अलग-अलग जानना विवेक है। यह विवेक हमें है, पर हम इसका आदर नहीं करते। विवेक होता नहीं है, विवेक तो है। केवल उसकी तरफ लक्ष्य करना है, उसको महत्त्व देना है। गीताका आरम्भ भी शरीर-शरीरीके विवेकसे हुआ है। इसीको महत्त्व देना है, स्वीकार करना है, इसपर दृढ़ रहना है।

शरीरका सम्बन्ध अविवेकजन्य है। शरीर मैं नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है—ऐसा अनुभव करना है। इसका ठीक अनुभव होनेको तत्त्वज्ञान कहते हैं। शरीरके साथ भूलसे माने हुए सम्बन्धको मिटाना ही सत्संग है। विवेकमें अभ्यास नहीं होता, प्रत्युत विचार होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनोंके प्रति कर्तव्य

(श्रीरमेशचन्द्रजी बादल, एम०ए०, बी०एड०)

हमारे धर्मशास्त्रोंमें मनुस्मृतिका स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है और इसके रचयिता राजर्षि मनुके विचार सर्वमान्य हैं। माता-पिता, गुरुजनों एवं श्रेष्ठजनोंको सर्वदा प्रणाम, सम्मान और सेवा करनेके सम्बन्धमें मनुस्मृतिका यह श्लोक अनुकरणीय है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(२।१२१)

अर्थात् वृद्धजनों (माता-पिता, गुरुजनों एवं श्रेष्ठजनों)-को सर्वदा अभिवादन-प्रणाम तथा उनकी सेवा करनेवाले मनुष्यकी आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं।

मनुस्मृतिके एक अन्य श्लोकमें माता-पिता और आचार्यको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है—

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

(२।१४५)

अर्थात् दस उपाध्यायोंसे बढ़कर एक आचार्य होता है, सौ आचार्योंसे बढ़कर पिता होता है और पितासे हजार गुना बढ़कर माता गौरवमयी होती है।

उक्त दोनों श्लोकोंमें माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनोंकी महिमा स्पष्ट हो जाती है। ये तीनों हमारे प्रत्यक्ष देवता हैं, इसलिये इन विभूतियोंकी तन-मन-धनसे सेवा करना हमारा कर्तव्य है, इनको सदैव सन्तुष्ट और प्रसन्न रखना ही हमारा धर्म है।

मनुस्मृतिके अतिरिक्त हमारे अन्य धार्मिक ग्रन्थोंमें भी माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनोंको पूजनीय माना गया है। इन तीनोंको सदैव सुखी रखना ही हम सभीका परम कर्तव्य है—

पितृमातृसमं लोके नास्त्यन्यद् दैवतं परम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेत् पितरौ सदा॥
हितानामुपदेष्टा हि प्रत्यक्षं दैवतं पिता।
अन्या या देवता लोके न देहप्रभवो हिताः॥

(गरुडपुराण २।२१।२८-२९)

संसारमें माता-पिताके समान श्रेष्ठ अन्य कोई देवता नहीं है। अतः सदैव सभी प्रकारसे अपने माता-पिताकी पूजा करनी चाहिये। हितकारी उपदेश देनेवाला होनेसे पिता प्रत्यक्ष देवता हैं। संसारमें जो अन्य देवता हैं, वे शरीरधारी नहीं हैं। इन प्रत्यक्ष देवताओंकी सदैव पूजा करना अर्थात् सेवा करना और सुखी रखना ही हमारा सर्वोपरि धर्म है।

श्रीवाल्मीकीय रामायणमें भी माता-पिता और गुरुको प्रत्यक्ष देवता मानकर सेवा और सम्मान करनेका उपदेश दिया गया है। इस विषयके निम्न दो श्लोक द्रष्टव्य हैं—

अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते।
स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरुम्॥
यत्र त्रयं त्रयो लोकाः पवित्रं तत्समं भुवि।
नान्यदस्ति शुभापाङ्गे तेनेदमभिराध्यते॥

(२।३०।३३-३४)

भगवान् श्रीराम सीताजीसे कहते हैं कि हे सीते! माता-पिता और गुरु—ये प्रत्यक्ष देवता हैं, इनकी अवहेलना करके अप्रत्यक्ष देवताकी आराधना करना कैसे ठीक हो सकता है? जिनकी सेवासे अर्थ, धर्म और काम तीनोंकी प्राप्ति होती है, जिनकी आराधनासे तीनों लोकोंकी आराधना हो जाती है, उन माता-पिताके समान पवित्र इस संसारमें दूसरा कोई भी नहीं है; इसलिये लोग इन प्रत्यक्ष देवता (माता-पिता, गुरु)-की आराधना करते हैं।

महाभारतके शान्तिपर्वमें एक कथा है—जब राजर्षि भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरने आज्ञा पाकर पूछा—दादाजी! धर्मके मार्गका मुझे उपदेश दें। इसपर भीष्मपितामहने कहा—राजन्! समस्त धर्मोंसे उत्तम फल देनेवाली माता-पिता और गुरुकी भक्ति है। मैं सब प्रकारकी पूजासे इनकी सेवाको बड़ा मानता हूँ। इन तीनोंकी आज्ञाका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

विदुरनीति (७।३९)-के अनुसार—

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा।
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् बृहस्पतिके समान मनुष्य भी शास्त्रज्ञान अथवा वृद्धोंकी सेवा किये बिना धर्म और अर्थका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

पद्मपुराणमें कहा गया है—

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥

(सृष्टिखण्ड ४७। ११)

माता सर्वतीर्थमयी और पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है, इसलिये सभी प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताका पूजन करना चाहिये। जो माता-पिताकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है।

माता-पिता अपनी संतानके लिये जो क्लेश सहन करते हैं, उसके बदले पुत्र यदि सौ वर्ष माता-पिताकी सेवा करे, तब भी वह उनसे उऋण नहीं हो सकता—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिर्शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीराम अनुज लक्ष्मणको माता-पिता और गुरुकी आज्ञाके पालनका फल बताते हुए कहते हैं कि जो लोग माता-पिता, गुरु और स्वामीकी शिक्षाको स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेनेका लाभ पाया है, नहीं तो जगत्में जन्म व्यर्थ है—

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेहु लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जे पितु मातु बचन अनुरागी॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥
अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥
अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥

(रा०च०मा० २।७०, २।४१।७, २।४६।२, २।७१।१, २।१७४)

जो पुत्र अनुचित और उचितका विचार छोड़कर पिताके वचनोंका पालन करते हैं, वे (यहाँ) सुख और सुयशके पात्र होकर अन्तमें इन्द्रपुरी (स्वर्ग)-में निवास करते हैं। अथर्ववेदमें कहा गया है—

'अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।'

अर्थात् माता-पिताके आज्ञाकारी बनो।

जो पुत्र सदैव माता-पिताकी आज्ञाका पालन करते हैं, वे सदैव सुखी रहते हैं। वृद्धजनों (माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनों)-की सेवा करनेसे ही विनम्रता प्राप्त होती है—

'विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा।'

(चाणक्यसूत्र)

हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थोंमें माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनोंकी सेवा और सम्मान करनेके लिये आदेश दिया गया है, इनको प्रत्यक्ष देवता मानने और इनका आज्ञाकारी रहनेवाला ही सुखी जीवन व्यतीत करता है। जो व्यक्ति माता-पिता एवं गुरुका अनादर करता है, उनको दुःख पहुँचाता है अथवा उनकी अवहेलना करता है—वह अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगता है। धर्मशास्त्रोंमें माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनोंका निरादर करने, उनकी बातोंकी अवहेलना करने एवं उन्हें दुःख पहुँचानेवालोंकी तीव्र भर्त्सना की गयी है। इस सम्बन्धमें कहा गया है—

मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्यते।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः॥

(वा०रा० ७। १५। २१)

जो माता, पिता, ब्राह्मण और आचार्यका अपमान करता है, वह यमराजके वशमें पड़कर उस पापका फल भोगता है।

पद्मपुराणमें भी कहा गया है—'जो पुत्र अंगहीन, दीन, वृद्ध, दुःखी तथा रोगसे पीड़ित माता-पिताको त्याग देता है, वह कीड़ोंसे भरे हुए दारुण नरकमें पड़ता है। जो पुत्र कटु वचनोंद्वारा माता-पिताको दुःखी करता है, वह पापी बाघकी योनिमें जन्म लेकर घोर दुःख उठाता है।'

जब ज्येष्ठा (दरिद्रा) देवीने देवताओंसे कहा कि 'मेरे निवासयोग्य स्थानोंको बतलाइये', तब देवताओंने कहा—

विप्रसज्जनवृद्धानां यत्र पूजा न विद्यते।
तत्र स्थाने सदा तिष्ठ पापदारिद्र्यदायिनी॥

जहाँ ब्राह्मण, सज्जन तथा वृद्धोंकी पूजा न होती हो, हे पाप तथा दारिद्र्यको देनेवाली! तुम वहाँ निवास करो। अर्थात् जिस परिवारमें वृद्धजनों-श्रेष्ठजनोंका सम्मान नहीं किया जाता, वहाँ दरिद्रता रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज संस्कारहीनताके कारण माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनोंकी उपेक्षा ही नहीं, अपितु उत्पीड़नतक हो रहा है। संस्कारहीनताके कारण ही संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। वृद्ध माता-पिताको अब भार समझा जाने लगा है। एकल परिवारकी परिपाटी आरम्भ हो गयी है। पाश्चात्य संस्कृतिका अन्धानुकरण तेजीसे हो रहा है। वृद्धाश्रमोंकी बढ़ती हुई संख्या और आवश्यकता इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि हमारे यहाँ वृद्धजनोंको अनावश्यक समझा जाने लगा है। वृद्ध माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषा दुर्लभ हो गयी है, इतना ही नहीं घरमें उनके लिये स्थान भी कम हो गया है, दो जूनकी रोटी भी दुर्लभ हो जानेके कारण वृद्ध माता-पिता वृद्धाश्रमोंकी शरणमें जा रहे हैं। वे जीवनके अन्तिम पड़ावमें सेवा, सहानुभूति, चिकित्सा और प्रेमके दो मीठे वचनोंसे वंचित हैं। अपनोंकी उपेक्षा और निरादरकी पीड़ा अधिक कष्टकर होती है। वृद्धजनोंको जब अपने ही पुत्रोंकी उपेक्षा असहनीय हो जाती है, तब उनके लिये वृद्धाश्रमकी शरणका ही एकमात्र सहारा रह जाता है। वे जीवनके शेष दिन वृद्धाश्रमोंमें ही व्यतीत करनेके लिये बाध्य हैं। आजकी नयी पीढ़ी यह भूल रही है कि एक दिन उनको भी बूढ़ा होना है और तब वे क्या यही चाहेंगे कि उनको भी वृद्धाश्रमोंकी शरण लेनी पड़े!

धार्मिक ग्रन्थोंके अनुसार यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। पद्मपुराणके अनुसार जिस पुत्रपर माता-पिताका सदा कोप रहता है, उसको नरकमें पड़नेसे मैं (विष्णु), ब्रह्मा तथा महादेवजी भी नहीं बचा सकते।

महर्षि शंखने कहा है कि माता-पिता और गुरु—ये मनुष्योंके लिये सदा पूजनीय होते हैं। जो इन तीनोंकी सेवा नहीं करता और सम्मान नहीं देता, उसकी सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं—

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयाः सदा नृणाम्।
क्रियास्तस्याफलाः सर्वा यस्यैते नादृतास्त्रयः॥

(शङ्खस्मृति ३।३)

हमारी भारतीय संस्कृतिका अतीत गौरवपूर्ण रहा है, अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी संस्कृतिकी रक्षा करते हुए अपने माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनोंके प्रति सदैव सम्मान और सेवाका भाव बनाये रखें। हमारे देशमें तो मृत जनोंको पितृपक्षमें जलदान किया जाता है और इसके साथ ही उनकी आत्माकी शान्तिहेतु अनेक प्रकारकी श्राद्धादि धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं तो क्या जीवित माता-पिताकी सेवा नहीं कर सकते? अतएव पुत्रोंको चाहिये कि वृद्धजनों (माता-पिता, गुरु एवं श्रेष्ठजनों)-के प्रति निम्नलिखित कर्तव्योंपर ध्यान दें और तन-मन-धनसे उनकी सेवा करते रहें। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने कहा है—'सेवाके लिये उठनेवाले हाथ प्रार्थना करनेवाले होठोंसे अधिक पवित्र हैं।' परिजनों, माता-पिता, गुरुके त्याग, प्रेम एवं श्रमको भूलना नहीं चाहिये। बुजुर्गोंका स्थान कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। उनके प्रति सभी परिजनोंको सेवाभाव रखना आवश्यक है। उनके पास जीवनके अनुभवोंका खजाना (कोष) होता है, उसका लाभ हमें तभी मिल सकता है जब हम उनकी सेवा करें, उनको अपने पास रखें। उनकी चिकित्सापर पूरा ध्यान रखें। उनको अकेलेपनका अहसास न होने दें। वे सदैव प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहें। उनके भोजनपर विशेष ध्यान दें। भोजन सुपाच्य हो, फल, दूध आदिकी व्यवस्था रहे। बातचीतमें हमेशा विनम्रता रहे। उनके पास बैठकर सुख-दुःखकी चर्चा करें और आवश्यकतानुसार परामर्श भी लें। कभी-कभी उनको सत्संग, प्रवचन, सुनानेके लिये भी ले जायँ। कभी-कभी धार्मिक स्थानों और तीर्थोंकी यात्रा भी करायें। समय-समयपर उनका स्वास्थ्य-परीक्षण भी कराते रहें। उनकी रुचिका ध्यान रखें। धार्मिक पर्वों अथवा विशेष आयोजनोंपर उनसे परामर्श लेना न भूलें। उनको सदैव महत्त्व प्रदान करें। इस बातका ध्यान रखें कि वे कभी भी अपनी उपेक्षा न अनुभव कर सकें, समयानुसार उनको उपहार भी भेंट करें आदि। इस बातको हमेशा याद रखना चाहिये कि यदि आप परिवारमें सुख-समृद्धि और खुशहाली चाहते हों तो बुजुर्ग माता-पिताकी सेवा करें और उनको सदैव प्रसन्न रखें।

तैत्तिरीयोपनिषद्में कहा गया है—**'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।'** माता-पिता और आचार्यको देव मानो। ये तीनों प्रत्यक्ष ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌द्वारा प्रेमी भक्तोंको प्रेमदान

भावकी परिपक्व अवस्थाका नाम प्रेम है। चित्तके सम्पूर्ण रूपसे निर्मल और अपने आराध्य श्रीभगवान्‌में अतिशय ममता होनेपर ही प्रेमका उदय होता है। किसी भी विघ्नके द्वारा रंचमात्र भी न घटना या न बदलना प्रेमका चिह्न है। प्रेम दो प्रकारका होता है—महिमाज्ञानयुक्त प्रेम और केवल प्रेम। विधिमार्गसे चलनेवाले भक्तका प्रेम महिमाज्ञानयुक्त है और रागमार्गपर चलनेवाले भक्तका प्रेम केवल प्रेम अर्थात् शुद्ध माधुर्यमय है। ममताकी उत्तरोत्तर जितनी ही वृद्धि होती है, प्रेमकी अवस्था भी उत्तरोत्तर वैसे ही बदलती जाती है।

प्रेमकी स्थिति और ब्राह्मीस्थितिमें कोई अन्तर नहीं, तथापि साधनमें अन्तर होनेके कारण विभिन्न अधिकारियोंके लिये दोनों अलग-अलग समझे जाते हैं। प्रेमी भी सुध-बुध भूलता है और ज्ञानी भी। प्रेमादि गुण स्वयं भगवान्‌का आश्रय लेकर भक्तोंको—प्रेमियोंको सुख देते हैं—'**निर्गुणं मां गुणगणा भजन्ते निरपेक्षकम्।**' प्रेमियोंके लिये भगवान् उनपर कृपा करके उनके गुणोंको स्वीकार कर लेते हैं, प्रयोजन यही है कि प्रेमीगण अनन्ताचिन्त्य, दिव्य गुणगण-विशिष्ट, सौन्दर्य-माधुर्य-रसार्णव भगवान्‌की प्रेम सामग्रीसे पूजा करके अचिन्त्य गुणोंको प्राप्त करें। प्रेमका स्वरूप भक्तोंमें कैसा होना चाहिये—इसके लिये प्रेमार्णवमें निमज्जन कर चुके देवर्षि नारदजी अपने भक्तिसूत्रमें कहते हैं—'**यथा व्रजगोपिकानाम्**' अर्थात् जिस प्रकार व्रजकी गोपिकाओंमें प्रेम है, ठीक उसी प्रकार एक भक्तका भगवान्‌के प्रति प्रेम होना चाहिये। प्रेमकी सबसे पहली और एकमात्र मुख्य शर्त है—'स्वसुखवांछाकी कल्पनाका भी अभाव।' एक बड़ी ही सुन्दर निकुंजलीला है इस बातको समझनेके लिये। एक सखीने एक दिन ऐसा नख-शिख शृंगार किया कि जो प्राणप्रियतम श्यामसुन्दरको परमसुख देनेवाला था। उसने दर्पणमें देखा और वह चली श्यामसुन्दरको दिखाकर उन्हें सुखी करनेकी मधुर लालसासे। प्रियतम श्यामसुन्दर निभृत निकुंजमें कोमल कुसुम और किसलयकी सुरभित शय्यापर शयन कर रहे हैं। अलसायी आँखोंमें नींद छायी है, बीच-बीचमें पलक खुलती है, पर तुरंत बन्द हो जाती है। प्रेममयी गोपी आयी है अपनी शृंगार-सुषमासे श्यामसुन्दरको सुखी करनेके लिये। उसके मनमें स्वसुखकी तनिक भी वांछा नहीं है, पर श्यामसुन्दर सो रहे हैं। वह चाहती है कि यदि सलोने श्याम मुझे एक बार देख लेते तो उनको बड़ा सुख होता। उसके हाथमें कमल था, उसके परागको वह उड़ाने लगी। सोचा कि कोई एक भी परागकण प्रियतम, प्रेमरसाब्धिसे परिपूर्ण, मनोहर श्यामके नेत्रोंमें पड़ जायगा तो कुछ क्षण नेत्र खुले रह जायेंगे। इतनेमें वे मेरे शृंगारको देख लेंगे, उन्हें परमसुख होगा। इसी बीच नित्य निकुंजेश्वरी श्रीराधाजीका पदार्पण वहाँ होता है। उन्होंने प्यारी सखीसे पूछा—'हे सखी! यहाँ क्या कर रही हो?' सखीने सारा वृत्तान्त कह डाला। श्रीराधारानी तो स्वभावतः स्वयं ही श्यामसुन्दरका सुख चाहती हैं, पर यहाँ सखीकी यह चेष्टा उन्हें ठीक नहीं लगी, उन्होंने कहा—'सखी! तुम्हारा मनोभाव बड़ा ही मधुर है, पर श्यामसुन्दरको जब तुम सुखी देखोगी, तब तुम्हें अपार सुख होगा न? किंतु बिहारीजीके इस सुखसे तुमको तभी सुख मिलेगा जब उनकी सुखनिद्रामें विघ्न उपस्थित होगा। इस आत्मसुखके लिये उनकी सुखनिद्रामें बाधा करना कदापि उचित नहीं है।' सखीने केवल श्रीकृष्णके सुखके लिये ही शृंगार किया था, परंतु इसमें भी स्वसुखकी छिपी वासना थी—इस बातको वह नहीं समझ पायी थी। प्रेमतत्त्वका सूक्ष्मदर्शन करनेवाली प्रेमस्वरूपा श्रीराधिकाजीने इसको समझा और सखीको रोक दिया। सखी प्रेमतत्त्वका सूक्ष्म परिचय पाकर प्रसन्न हो गयी।

गोपियाँ चाहती हैं कि श्रीश्यामसुन्दरके चरणकमल हमारे हृदयको स्पर्श करें, उन्हें इसमें अपार सुख भी मिलता है और वे यह भी जानती हैं कि इसमें प्रियतम श्यामसुन्दरको भी महान् सुख होता है। तथापि वे जितनी विरहव्यथासे व्यथित हैं, उससे कहीं अधिक व्यथित इस विचारसे हो जाती हैं कि हमारे वक्षोजसे प्रियतमके कोमल चरणतलमें कहीं आघात न लग जाय! वे रासपंचाध्यायीके गोपीगीतमें गाती हैं—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३१। १९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् हे रासेश्वर! तुम्हारे चरण कमलसे भी कोमल हैं, उन्हें हम अपने कठोर उरोजोंपर भी बहुत डरते-डरते धीरेसे रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाय। उन्हीं कोमल चरणोंसे तुम रात्रिके समय घोर अरण्यमें छिपे-छिपे घूम रहे हो, यहाँके नुकीले कंकड़-पत्थरों आदिके आघातसे क्या उन चरणोंमें पीड़ा नहीं होती? हमें तो इस विचारमात्रसे ही चक्कर आ रहा है—हमारी चेतना लुप्त हुई जा रही है, हे प्राणधन! हमारा जीवन तो तुम्हारे लिये ही है। हम तुम्हारी ही हैं।

अतः इस प्रेमराज्यमें किसी भी प्रकारसे निजसुखकी कोई भी वांछा नहीं होती, इसीसे इसमें 'सर्वत्याग' है। त्यागकी 'पराकाष्ठा' है। 'प्रेम' शब्द बड़ा मधुर है और प्रेमका यथार्थ स्वरूप भी समस्त मधुरोंमें परम मधुरतम है। यह प्रेम न तो साधन है, न अस्वाभाविक चेष्टा है, न इसमें कोई परिश्रम है। प्रेम भगवान्‌का स्वरूप है। प्रेम न हो तो रूखे-सूखे भगवान् भाव जगत्‌की वस्तु रहें ही नहीं। आनन्दस्वरूप यदि आनन्दके साथ इस प्रकार आनन्द रसका आस्वादन न करें, उनकी आनन्दमयी आह्लादिनी शक्ति उन्हें आनन्दित करनेमें प्रवृत्त न हो तो केवल स्वरूपभूत आनन्द बड़ा रूखा पड़ जाता है। उसमें रस नहीं रहता। इसलिये वे स्वयं ही अपने ही आनन्दका अनुभव करनेके लिये अपनी ही स्वरूपभूता आनन्दरूपा शक्तिको प्रकट करके उसके साथ आनन्दमयी-रसमयी लीला करते हैं। यह आनन्द बनता नहीं। पहले नहीं था, अब बना ऐसी बात नहीं है। प्रेम नित्य, आनन्द नित्य—दोनों ही भगवत्स्वरूप। आनन्दकी भित्ति प्रेम और प्रेमका विलक्षण रूप आनन्द।

इस प्रेमका कोई निर्माण नहीं करता। जहाँ सर्वत्याग होता है, वहीं इसका प्राकट्य-उदय हो जाता है। जहाँ त्याग, वहाँ प्रेम और जहाँ प्रेम, वहीं आनन्द। कहीं भी द्वेषसे, वैरसे आनन्दका उदय हुआ हो तो यह **'असम्भवं हेममृगस्य जन्म'**-जैसी बात है। भगवान् प्रेमानन्दस्वरूप हैं। अतएव भगवान्‌की यह प्रेमलीला अनादिकालसे अनन्तकालतक चलती ही रहती है। न इसमें कभी विराम होता है, न कभी कमी ही आती है। इसका स्वभाव ही वर्धनशील है, इस प्रकार प्रेमास्पदके सुखका जीवन जिनका बन जाता है, उनको प्रेमास्पद प्रभुके मनकी बात खोजनी पड़ती ही नहीं, वह उसके सामने स्वयं प्रकट रहती है। प्रेमास्पदका मन उस प्रेमीके मनमें आ विराजता है। इसीलिये भगवान्‌ने अर्जुनसे श्रीगोपसुन्दरियोंके सम्बन्धमें कहा है—

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

हे अर्जुन! मेरी महिमा, मेरी सेवाका स्वरूप, मेरी श्रद्धाका स्वरूप तथा मेरे मनकी बात तत्त्वसे केवल गोपिकाएँ ही जानती हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। इसीलिये गोपीको यह पता नहीं लगाना पड़ता कि भगवान् किस बातसे प्रसन्न होंगे। उसके अन्दर भगवान्‌का मन ही काम करता है। भगवान्‌ने स्वयं श्रीउद्धवजीसे कहा है—

'ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।'

(श्रीमद्भा० १०। ४६। ४)

वे मेरे मनवाली हैं, मेरे प्राणवाली हैं, मेरे लिये अपने दैहिक वस्तुओं तथा कार्योंका सर्वथा परित्याग कर चुकी हैं। अतएव इस एकान्त विशुद्ध प्रेमकी निर्मल मूर्ति है—गोपी और उस प्रेमका पुंजीभूतरूप स्वयं मैं ही हूँ—

'पुञ्जीभूतं प्रेमगोपाङ्गनानाम्।'

[प्रेषक—श्रीपंकजकुमारजी झा]

'प्रभु तज कुछ भी लायें न मन में'

(श्रीमनोहरलालजी गोस्वामी, एम०ए०, एम०एड०, साहित्यरत्न)

प्रभु तज कुछ भी लायें न मन में।
जब-जब जहाँ-जहाँ भागे मन, खींच लगायें हरि-चिन्तन में॥
उनके नाम-रूप-लीला औ, धाम बसा लें उर-कण-कण में।
तन-धन और स्वजन इन तीनों, में अपना न कोई भुवन में॥
विषयों में न शान्ति भ्रान्ति भर, बँधें न उनके आकर्षण में।
प्रभु अपने जग स्वप्न भाव यह, भरें 'मनोहर' सुख जीवन में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दानं श्रेष्ठतमं मतम्'

(श्रीगदाधरजी भट्ट)

दा धातु और ल्युट् प्रत्ययसे निष्पन्न 'दान' शब्द अमोघ दातृत्वशक्तिका द्योतक है। निघंटुकार यास्कमुनि कहते हैं—**'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा'** (निरुक्त ७।४।१५)। दानदाता होनेके कारण ही देवताओंको देव कहा जाता है, वे हमें हमारी वांछित कामनाओंका दान करते हैं। हमें साहित्य, धर्म, संस्कृति एवं दर्शनके रूपमें अवदान देनेके कारण ही संस्कृत देववाणीके रूपमें प्रसिद्ध है। दान, भारतीय संस्कृतिका वैशिष्ट्य है। त्यागको दानका अवान्तररूप भी कहा जा सकता है। वेद-उपनिषद् पुकार-पुकारकर कहते हैं—**'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** (यजुर्वेद) अर्थात् त्यागपूर्वक उपभोग करें। त्याग हमारा सांस्कृतिक गुण है। हम संग्रहसे बचें एवं विसर्गको प्रोत्साहन दें। तभी तो वेद आदेश देते हैं—**'शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर'** (अथर्व० ३।२४।५) अर्थात् सौ हाथोंसे अर्जन करो, सहस्र हाथोंसे वितरण करो। दानकी महत्ता अपरिमित है। दान लोक-परलोकमें विजयश्री प्रदान करता है। दानसे देवता भी स्वाधीन हो जाते हैं। प्रजाका पालन, शत्रुका भेदन एवं सार्वजनिक कल्याणके मूलमें दान ही है। दानपरतासे भूलोक ही वशीभूत नहीं होता, देवलोक भी वशमें किया जा सकता है। पुराणोंमें दानके सम्बन्धमें उल्लेख है—

न केवलं दानपरा जयन्ति भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः॥

(मत्स्यपु० २२४।८)

वेद-उपनिषदोंमें दाननिरूपण—वेद-उपनिषदोंमें दानकी प्रशस्ति भरी पड़ी है। ऋग्वेदके अनुसार दानी सत्पुरुषकी सम्पत्ति क्षीण न होकर उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त करती है। **'उतो रयिः पृणतो नोप दस्यति'** (ऋक्० १०।११७।१)। दानशील भद्रपुरुष अमृतका उपभोगकर अमरता प्राप्त करते हैं—**'दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते'** (ऋक्० १।१२५।६)। दान न करनेवाला स्वार्थपरायण उदरम्भर व्यक्ति पापका ही भोग करता है—**'केवलाघो भवति केवलादी'** (ऋक्० १०।११७।६)। ऋग्वेदमें दानसम्बन्धी अनेक मन्त्र हैं। यहाँका दानस्तुतिसूक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सूक्त वैदिक संस्कृतिकी महनीयताका द्योतक है। दानकी पात्रताके सम्बन्धमें ऋग्वेदका एक मन्त्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसमें बताया गया है कि जो दिव्य गुणोंसे समन्वित, अनासक्त, मितभाषी, मितव्ययी, मिताहारी, मितसेवी, यज्ञकर्ता एवं क्षेत्रसाधक हैं, राष्ट्रहितमें विद्या, धर्म, स्वास्थ्य, सेवाके क्षेत्रमें जो लोकसाधनारत हैं, उनको अर्पित दान (धन) श्रेष्ठ है।

तैत्तिरीय उपनिषद् (१।११।२)-में श्रद्धापूर्वक दान देनेका आग्रह किया गया है। दानमें अपनी वित्तीय सामर्थ्यके साथ लोकभय एवं लोकलज्जाका भी ध्यान रखना चाहिये—**श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्।**

औपनिषदीय एक प्रसिद्ध बोधकथामें प्रजापतिने मनुष्योंके लिये दानकी अपरिहार्यता स्वीकार की है; क्योंकि मनुष्यकी संग्रह करनेकी मुख्य प्रवृत्ति है। दानद्वारा मनुष्यको त्यागी, दयालु, परोपकारी एवं सेवाभावी बनना चाहिये। यह लोकहितमें हमारा कर्तव्य है।

सुभाषितोंमें दानकी महिमा—सुभाषित रससिद्ध कवियोंकी वे उक्तियाँ हैं, जो देश एवं कालकी सीमाओंका उल्लंघनकर सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक हैं। सुभाषितोंमें दानकी महिमाका बखान है। धनकी सार्थकता एवं उपभोग दानमें है। मरणके पश्चात् संचित धन पराया हो जायगा। अनेक गुणोंमें दान ही श्लाघ्य है। दानसे पशु, पाषाण एवं पादप भी पूज्य होते हैं। सम्पत्तिके दानसे ही गौरव प्राप्त होता है, उसके संचयसे नहीं। जैसे जलभरे बादलोंको उच्च गौरव (आकाशमें उच्च स्थिति) प्राप्त है, किंतु समुद्र जलधि होते हुए भी निम्न स्थितिको प्राप्त करता है। दान ऐसा होना चाहिये, जहाँ प्रतिदानकी भावना न हो। केवल उपकारके लिये दान करना चाहिये। देश, काल एवं पात्रको ध्यानमें रखकर किया गया दान सात्त्विक होता है।

जैसे संचित धनकी रक्षा दानमें ही है। वैसे ही पूर्ण सरोवर अधिक जलके बाहर निकलनेमें ही सुरक्षित है। धनका संग्रह न कर उसका दान एवं उपभोग करना चाहिये। मधुमक्खियाँ मधुका संचय करती हैं, किंतु संचित मधुका अन्य ही उपभोग करते हैं।

दानोंमें श्रेष्ठ अन्नदान है। सहस्र अश्वोंका दान, लक्ष गौओंका दान, रजत-स्वर्णपात्रोंका दान, यहाँतक कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सागरपर्यन्त पृथ्वीका दान, कोटि कन्याओंका दान, विमल वधुओंका दान (विवाह)—समस्त दानोंकी तुलनामें अन्नदान श्रेष्ठ है—

तुरगशतसहस्रं गोगजानां च लक्षं
कनकरजतपात्रं मेदिनीं सागरान्ताम्।
विमलकुलवधूनां कोटिकन्याश्च दद्या-
न्नहि नहि सममेतैरन्नदानं प्रधानम्॥

(सु०र० भाण्डागार)

दानका लोककल्याणमें विनियोग होनेसे मैत्री, स्नेह, अपनत्व, बन्धुत्व-जैसे सात्त्विक गुणोंका उदय होता है एवं समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं—

दानेन भूतानि वशीभवन्ति
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-
र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

(सु०र० भाण्डागार)

हे कौन्तेय! दरिद्र ही दानके पात्र हैं; जो धनिक हैं, उनको धनका दान न करें। रोगीको औषध पथ्य है, किंतु निरोगीको औषधसे क्या लाभ है?

दरिद्रान्भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः॥

(महाभारत)

अन्नदान—दानोंमें सर्वश्रेष्ठ अन्नदान है। महाभारतमें अन्नदानकी महत्ता प्रतिपादित है। संसारमें अन्नसे ही प्राणोंकी रक्षा होनेसे अन्नको **प्राणदः** कहा गया है। अतः लोककल्याणके लिये अन्नदान आवश्यक है—

अन्नदः प्राणदो लोके प्राणदः सर्वदा भवेत्।
तस्मादन्नविशेषेण दातव्यं भूतिमिच्छता॥

(महाभारत)

ब्रह्मादि सभी देवता अन्नकी प्रशंसा करते हैं। अतः अन्नके समान दान न कभी हुआ और न होगा—

अन्नमेव प्रशंसन्ति देवा ब्रह्मपुरस्सराः।
अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति॥

(महाभारत)

हे पाण्डव! धर्म, अर्थ एवं काम—पुरुषार्थोंका निर्वाह अन्नसे ही होता है। अतः इस लोक एवं परलोकमें अन्नसे बढ़कर कोई दान नहीं है—

यस्मादन्नात् प्रवर्तन्ते धर्मार्थौ काम एव च।
तस्मादन्नात्परं दानं नामुत्रेह च पाण्डव॥

(महाभारत)

दानवीरोंके विविध आख्यान—मानवसंस्कृतिका इतिहास दान एवं त्यागकी गौरव-गाथाओंसे भरापूरा है। हमारे आर्ष ग्रन्थोंमें दानवीरोंके अनेक आख्यान हैं, जो उनकी दानशीलताको महिमामण्डित करते हैं। महर्षि दधीचिका अस्थिदान लोकविश्रुत है। देवासुरसंग्राममें देवताओंको विजयी बनानेमें महर्षिने प्राणोत्सर्ग किया। वज्रका निर्माण उनकी अस्थियोंसे हुआ।

महर्षि वसिष्ठजीसे बदलेकी भावना लेकर आये विश्वामित्र कहते हैं—एकान्तमें मेरे-जैसे अकारण शत्रुकी अपनी पत्नी अरुन्धतीसे प्रशंसा करनेवाले क्षमामूर्ति वसिष्ठ धन्य हैं। विश्वामित्रने शस्त्र फेंक दिये तथा महर्षि वसिष्ठके चरणोंमें गिर गये। धन्य हैं क्षमादानी महर्षि वसिष्ठ!

महाभारतका परिदृश्य देखें। रणक्षेत्रमें दानवीरताका सूर्य अस्ताचलगामी है। अर्जुनके आग्रहपर वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर भगवान् श्रीकृष्ण दानवीर कर्णकी परीक्षा ले रहे हैं। कर्णने कहा—प्रभो! मैं क्षत-विक्षत हूँ, मेरे दाँतोंमें स्वर्ण है, तोड़कर दान ग्रहण करें, धन्य है स्वर्णदानी कर्ण। यह दानवीरता अद्वितीय है।

पिता उद्दालक ऋषिद्वारा सत्यनिष्ठ नचिकेताका यमके लिये आत्मदान, भूखे-प्यासे याचकके लिये राजा रन्तिदेवका आत्मसमर्पण, नन्दिनी (धेनु)-की रक्षामें महाराज दिलीपका आत्मार्पण, कपोतकी रक्षाके लिये राजा शिबिका स्वयंका अर्पण, भगवान् वामनके लिये दैत्यराज बलिका अनूठा भूदान—ये मानवीय सेवाधर्ममें बहु-आयामी दानके अनूठे आदर्श हैं।

दानमें ऐसी वृत्ति है, जो सात्त्विक भाव, संवेदना, आत्मीयता, ममत्व, सहयोग, कर्तव्य, उपकार और उत्सर्गको जन्म देती है, लोककल्याणके लिये व्यक्तिको समष्टिमें विलीन करती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें सार्थक दान वह है, जो मानवसमाजमें सत्य, शिव एवं सुन्दरका प्रस्थापक हो, जीवनतत्त्व एवं सदाचरणमें सहायक हो, व्यक्ति एवं समाजके उत्थानमें लाभदायक हो। दान अपनी प्रशस्ति एवं माहात्म्यके अनुरूप सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगतिमें उत्पादक, उपयोगी एवं उद्देश्यपूर्ण बन सके, तभी दान श्रेष्ठतम है—**'दानं श्रेष्ठतमं मतम्।'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌का अपने भक्तोंको अभयदान

(श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्त)

मानवजीवनकी सार्थकता एवं श्रेष्ठता प्रभुके श्रीचरणोंकी शरण और उनसे प्राप्त अभयदानमें है। त्रेतायुगमें श्रीविभीषणजीको मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामकी शरणागति एवं उनका अभयदान प्राप्त हुआ। प्रसंग है कि लंकेश्वर रावणने जगज्जननी सीताका हरण किया। उसके छोटे भाई विभीषणजीने उसे बार-बार समझाया कि उनका सीताहरण उचित नहीं है, उन्हें श्रीरामके हाथोंमें मिथिलेशकुमारी सीताको सौंप देना चाहिये। उन्होंने यह भी सचेत किया कि रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, महापार्श्व, महोदर, प्रहस्त और समस्त राक्षससेना समरांगणमें तेजस्वी दशरथनन्दन श्रीरामका वेग सहन करनेमें सक्षम नहीं है। इसपर रावणके ज्येष्ठ पुत्र मेघनादने क्रोधावेशमें विभीषणजीकी निन्दा की। विभीषण प्रभु श्रीरामको पूर्णब्रह्म परमेश्वरके रूपमें जान चुके थे। उन्हें दम्भी मेघनादकी निन्दापूर्ण बातें सहन नहीं हुईं और उसे फटकारते हुए वे कहने लगे—मेघनाद! अभी तुम बालक हो। प्रभु श्रीरामद्वारा राक्षसराजके विनाशकी बातें सुनकर भी मोहवश तुम उन्हींकी हाँ-में-हाँ मिला रहे हो। तुम बालकोंकी-सी बेसिर-पैरकी बातें करते हो। पुनः विभीषणजीने रावणको यही सम्मति दी—राजन्! हमलोग धन, रत्न, सुन्दर आभूषण, दिव्य वस्त्र, विचित्र मणि और देवी सीताको श्रीरामकी सेवामें समर्पित करके ही इस नगरमें शोकरहित हो निवास कर सकते हैं। (वा०रा० युद्धकाण्ड १५।१४)

श्रीविभीषणजीकी न्याययुक्त हितकी बातें सुनकर भी कालवश रावणने कठोर वाणीमें कहा—कुलकलंक निशाचर, तुझे धिक्कार है। यदि तेरे सिवा दूसरा कोई ऐसी बातें कहता तो इसी मुहूर्तमें उसे अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता।

(वा०रा० युद्धकाण्ड १६।१६)

रावणके कठोर वचन सुनकर विभीषणजीने अपनी गदा उठायी और वे अपने चारों मन्त्रियोंके साथ प्रभु श्रीरामकी शरणमें जानेके लिये आकाशमें उड़ गये। पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने वर्णन किया है कि रावणने विभीषणपर चरणप्रहार किया था—*अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।*

(रा०च०मा० ५।४१।६)

विभीषण अन्तरिक्षमें खड़े होकर कहने लगे—राक्षसराज, मैंने जो कुछ भी कहा, वह यदि तुम्हें अच्छा नहीं लगा तो उसके लिये क्षमा करें; क्योंकि तुम मेरे बड़े भाई हो। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं यहाँसे चला जाऊँगा। तुम मेरे बिना सुखी हो जाओ।

तत्पश्चात् श्रीविभीषणजीने अपने चारों मन्त्रियोंके साथ समुद्रपार प्रभु श्रीरामके पास पहुँचकर अन्तरिक्षमें स्थित होकर सुग्रीव तथा सेनाके वानरोंको देखकर घोषणा की—सीताके हरण करनेवाले रावणका मैं छोटा भाई विभीषण हूँ। आपलोग जो समस्त लोकोंको शरण देनेवाले हैं, उन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर शीघ्र मेरे आगमनकी सूचना दें और उनसे कहें—शरणार्थी विभीषण आपकी सेवामें उपस्थित हुआ है—

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्॥

(वा०रा० युद्धकाण्ड १७।१७)

तत्काल सुग्रीव प्रभु श्रीरामके पास गये और उन्होंने निवेदन किया कि रावणका भाई चार राक्षसोंके साथ आपकी शरणमें आया है। वह शत्रुका भाई है, विश्वसनीय नहीं है और कभी भी अवसर देखकर हमपर आक्रमण कर सकता है। उसे मन्त्रियोंसहित मार डालना चाहिये। लौकिक दृष्टिसे ठीक कहते हुए भी प्रभु श्रीराम सुग्रीवके विचारसे सहमत नहीं हुए और उन्होंने सभी वानरयूथपतियोंसे सम्मति ली। युवराज अंगद, ऋक्षराज जाम्बवान्, मैन्द आदि सभीने विभीषणको शरण देनेका विरोध किया। श्रीहनुमान्‌जी उसे शरण देनेके पक्षमें थे कि रावणके नष्ट होनेपर वह स्वयं लंकाका राजा बननेकी कामना लिये हुए है। इन सभीकी सम्मति सुनकर प्रभु श्रीरामने अपनी इच्छा सुनायी—जो मित्रभावसे मेरे पास आ गया हो, उसे मैं त्याग नहीं सकता। हो सकता है कि उसमें कोई दोष हो, लेकिन दोषीको आश्रय देना भी सत्पुरुषोंका ही काम है—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषा यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥

(वा०रा० युद्धकाण्ड १८।३)

विभीषणको शरण देनेकी बात सुनकर सुग्रीवने पुनः अपनी असहमति प्रकट की कि उसे कैदकर उसका वध कर देना ही उचित है। शरणागतवत्सल प्रभु श्रीराम कहने लगे—वानरराज, विभीषण दुष्ट हो या साधु। क्या यह निशाचर किसी तरह भी मेरा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रूपमें भी अहित कर सकता है? वानरयूथपते, यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीपर जितने भी पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षस हैं, उन सबकी एक अँगुलीके अग्रभागसे मार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता हूँ। (वा०रा० युद्धकाण्ड १८। २२-२३)

प्रभु श्रीरामने सुग्रीवको व्याध और कबूतर-कबूतरीकी रक्षाका एक प्राचीन उदाहरण तथा महर्षि कण्डुके कहे हुए शरणागतकी रक्षाके उत्तम वचन सुनाये और कहा कि वे विभीषणकी ओर न देखें कि वह कैसा है, मेरी ओर देखें कि मेरे क्या विचार हैं—जो एक बार भी शरणमें आकर मैं तुम्हारा हूँ, ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा सदाके लिये व्रत है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० युद्धकाण्ड १८। ३३)

अत: कपिश्रेष्ठ सुग्रीव, वह विभीषण हो या स्वयं रावण आ गया हो, तुम उसे ले आओ, मैंने उसे अभयदान दे दिया है—प्रभु श्रीरामने कहा।

प्रभुके वचन सुनकर सुग्रीवने सौहार्दसे भरकर उनसे कहा कि आप महान् शक्तिशाली और सन्मार्गपर स्थित हैं। आपने धर्मकी बात कही है। इसके बाद प्रभु श्रीराम विभीषणसे मिले। प्रभुके अभयदान देनेपर विभीषणजी उनके श्रीचरणोंमें गिर पड़े और उनसे धर्मानुकूल, युक्तियुक्त, समायोजित एवं हर्षवर्धक बात बोले—भगवन्! मैं रावणका छोटा भाई हूँ। रावणने मेरा अपमान किया है। आप समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, इसलिये मैंने आपकी शरण ली है। अपने सभी मित्र, धन और लंकापुरीको मैं छोड़ आया हूँ। अब मेरा राज्य, जीवन और सुख सब आपके ही अधीन है।

प्रभु श्रीरामने मधुर वाणीद्वारा उन्हें सान्त्वना दी।

शाश्वत सत्य है—शरणागति अभयदान है। ईश्वरकी शरणागति सर्वथा सबसे सबको अभय करनेवाली है। बस एक बार कह दो कि प्रभो, तुम मेरे और मैं तुम्हारा हूँ। मुझे तुम्हारा ही विश्वास है, तुम्हारा ही भरोसा है, तुम्हीं सब कुछ हो। इसीका नाम शरणागति है, यही प्रभुका अभयदान है।

'जगत के सब वैभव बेकाम'

(श्रीमृदुलमोहनजी अवधिया)

जगत के सब वैभव बेकाम।
स्वर्ग-नर्क का अर्थ व्यर्थ है, दुर्लभ हैं श्रीराम॥
बिना भजन काहे का जीवन, फोकट सारे काम।
भूख-प्यास की करत गुलामी, व्यर्थ नगर अरु ग्राम॥
एक दशा सुन्दर-कुरूप तन, काले गोरे चाम।
स्वार्थ-निरत घर-बाहर देखे, जग के लोग तमाम॥
भजन न भाता बक-झक भाती, शांति न आठों याम।
गाँठ न कौड़ी, हरि की पौड़ी, निर्धन के धन राम॥
तृषावन्त मृग भरत कुलाँचे, पाने जल-विश्राम।
'मृदुल' जीव की याही गति है, ग्राम, नगर हर ठाम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[वर्ष ८४ सं० १२ पृ०-सं० १०१० से आगे]

स्मृतियोंमें लिखा है कि सात समुद्र और सप्तद्वीपवाली जो पृथ्वी है, उसपर जितने तीर्थ हैं—उन तीर्थोंका माहात्म्य गायके शृंगके अग्रभागसे स्पृष्ट जो जल है, उसके माहात्म्यका सोलहवाँ अंश भी नहीं है। गायके शृंगका कुशोदकसे प्रक्षालन करके जल इकट्ठा करना शृंगोदक कहलाता है। स्मृतियोंमें लिखा है कि गाय स्पर्शसे सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देती है—**'स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापम्।'** जो गायको स्नेहपूर्वक स्पर्श करते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और जो गायोंकी श्रद्धापूर्वक सेवा करते हैं, वे लक्ष्मीवान् हो जाते हैं। धनाढ्य हो जाते हैं, श्रीमान् हो जाते हैं।

एक बात है, जो बड़े विनोदकी है, पर है अनुभवकी। हमने तो साधुओंमें यह देखा कि जिसने गायका गोबर उठाया, वह महन्त बन गया। कई उदाहरण हमने ऐसे देखे हैं। अब महन्तोंका नाम लेंगे तो उनको बुरा लगेगा कि देखो, महाराज मंचसे हमको गोबर उठानेवाला कह रहे हैं, यद्यपि इसको सुनकर उनको अपने-आपमें गौरवका अनुभव करना चाहिये। हमारे सामनेके १०-२० उदाहरण ऐसे हैं, जो गौका गोबर उठाते थे, अब बड़े-बड़े स्थानोंके महन्त बन गये हैं। यद्यपि महन्त बनना कोई बड़ी उपलब्धि नहीं है तथापि गोसेवाकी महिमाकी दृष्टिसे यहाँ यह एक सामान्य दृष्टान्त प्रस्तुत है—

श्रीअयोध्याजीमें बड़ी छावनी एक स्थान है, यहाँ एक महन्त ऐसे हुए श्रीकौशलकिशोरदासजी महाराज, जो बहुत प्रतापी सन्त थे। उनके जमानेमें ढाई हजार गायें थीं, बहुत लम्बी-चौड़ी खेती थी। उनके समयमें गोसेवा, सन्तसेवा बड़ी अद्भुत हुई।

उनके जो गुरुदेव थे, वे शिष्यको महन्त बनाना चाह रहे थे। जिनको महन्त बनाना था, उस दिन वे उबटन लगाकर बढ़ियासे स्नान कर रहे थे। बढ़ियासे स्नान करके तिलक लगाकर अँचला पहनकर आनेकी तैयारीमें ही लगे थे। जब समय अधिक हो गया तो गुरुजीने कहा, भाई! क्या बात है, देर हो रही है, मुहूर्त निकला जा रहा है, पूजन भी होना है। सब लोग आ गये। महन्त जिसको बनाना है, वह कहाँ है? बुलाओ उसको, किसीने कहा—वे तो तैयार हो रहे हैं। अरे! राम-राम-राम! अभी तो महन्त बना नहीं, अभीसे सजावटमें लग गया तो फिर महन्त बननेपर तो अपनी ही सजावट करेगा; गोसेवा, ठाकुरसेवा और सन्तसेवा तो करेगा नहीं, तो बोले कि ठीक है उसको सजावट करने दो, उसको बुलाने मत जाना और खुद उठे वहाँसे और उठकर घूमने लगे तो उन्होंने देखा कि बाजे बज रहे थे, महन्त बननेके लिये बड़ा भारी उत्सवका माहौल था, पर एक बालक, जिसकी आयु १०-१२ वर्षकी रही होगी, गोशालामें गोबर उठा रहा था, उसे उत्सवसे कोई मतलब ही नहीं था, वह गोसेवामें लगा था। हाथ गोबरसे सने हुए थे। उसे देखकर गुरुजी बड़े खुश हो गये और बोले—'गोसेवा करता है, गोबर उठाता है, महन्त बननेलायक तो यही है।' विप्र बालक था ही, तुरन्त उसका हाथ पकड़ा, बोले—चल-चल। बोला—कहाँ गुरुजी? कहा—चल तुझे गद्दीपर बिठाना है। वह बोला—गुरुजी! हम तो बालक हैं। बोले—बालक नहीं, तुम गोसेवक हो। तुमको गद्दीपर बिठायेंगे, चलो, उसने कहा—हाथ-पैर धो आयें। तो बोले—नहीं, हाथ-पैर धो लोगे तो पवित्रता नष्ट हो जायगी। अभी तुम्हारे पैरमें गोबर लगा है, हाथमें गोबर लगा है। इस समय महन्त बनोगे तो खूब गोसेवा करोगे, फिर मुहूर्त निकल जायगा, गोबरसे सने हुए हाथोंसे ही तुरन्त ले जाकर स्वस्तिवाचन करके उसे महन्त बना दिया। ये बालक ही कौशलकिशोरदासजीके रूपमें विख्यात हुए। तो जिनके हाथ गोबरसे सने हुए थे, वे कौशलकिशोरजी जब गद्दीपर बैठे तो इतनी गोसेवा और सन्तसेवाका विस्तार हुआ कि सर्वत्र आनन्द छा गया। वे महान् उदार, दानी और परोपकारी थे, गोसेवाके प्रभावसे अपार समृद्धि और सम्पत्ति उनके पास थी तो गाय अपनी सेवा करनेवालेकी दरिद्रताको दूर कर देती है। इसलिये यह निवेदन है कि जिसे महान् बननेकी इच्छा हो, धनाढ्य बननेकी इच्छा हो, सच्चे अर्थमें श्रीमान् बननेकी इच्छा हो तो उसको गौका गोबर उठाना चाहिये।

श्रद्धापूर्वक सेवा करनेवालेको गाय अपरिमित सम्पत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदान करती है और गायकी यदि कृपाभरी दृष्टि जीवको प्राप्त हो जाय तो वह निश्चित ही उत्तम गतिको प्राप्त होता है। स्मृतियोंमें लिखा है—गायकी समता करनेवाला धन इस ब्रह्माण्डमें दूसरा कोई नहीं है। गोधन सर्वश्रेष्ठ धन है, इससे बढ़कर धन कोई नहीं है। सम्पूर्ण देवता इसमें निवास करते हैं। आप विचार कीजिये, जिसके गोबरमें लक्ष्मी हो, जिसके मूत्रमें साक्षात् भगवती गंगा हो, उसकी महिमाका क्या कहना! उसकी तो अनन्त अपरिमित महिमा है। गाय सर्वदेवमयी है और सर्ववेदमयी है—यह वराहपुराणमें लिखा है। इसलिये विद्याकी प्राप्ति भी गायकी सेवासे और देवताओंकी कृपा भी गायकी सेवासे प्राप्त हो जायगी। भगवान् वाराह कह रहे हैं—हे पृथ्वीदेवि! अमृतको धारण करनेवाली यह गाय तीनों लोकोंका मंगल करती हुई विचरण कर रही है। तीर्थोंमें भी यह महान् तीर्थ है, इससे बड़ा कोई दूसरा तीर्थ नहीं है। पवित्रोंमें भी यह पवित्र है, पुष्टियोंमें भी यह श्रेष्ठ पुष्टि है।

गाय दहीसे देवताओंको प्रसन्न करती है, शंकरजीको दूधसे प्रसन्न करती है। इसलिये शंकरजीका दुग्धाभिषेक रोज हो तो बहुत सुन्दर है। गोशालाओंमें शंकरजीका नित्य गायके दूधसे अभिषेक होना चाहिये। व्रजमें तो शंकरजी स्थापित हैं और गिरिराज महाराज स्थापित हैं, उनका नित्य गोदुग्धसे अभिषेक होता है।

अयोध्यामें हनुमानगढ़ीकी गोशालामें नियम है—वहाँ हनुमान्‌जीका तीन समय स्नान होता है, पाँच-पाँच किलो दूधसे—पाँच किलो सबेरे, पाँच किलो सन्ध्याको और पाँच किलो गोदुग्धसे दोपहरको—पन्द्रह किलो गोदुग्धसे स्नान होता है। केवल हनुमान्‌जीकी सेवाके लिये उस दूधका उपयोग होता है। बछड़ा-बछिया पीते हैं, ग्वाले पीते हैं और किसीको नहीं मिलता।

शंकरजीको दूध चढ़ाना चाहिये। आज भी गाँवोंमें ऐसा है कि गैया जब बछड़ा-बछिया देती है तो दसवें-ग्यारहवें दिन लोग गौका कच्चा दूध शंकरजीको चढ़ाने जाते हैं। गाय अपने घीसे अग्निको तृप्त करती है, खीरसे ब्रह्माजीको प्रसन्न करती है और माखनसे श्रीकृष्णभगवान्‌को प्रसन्न करती है। पंचगव्यका पान करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं—ऐसा वराहपुराणमें लिखा हुआ है।

ब्राह्मणका कर्तव्य है कि जो गाय दानमें आ गयी है, उसको मूल्यसे किसीको बेचे नहीं। दानमें मिली हुई गायका दान किया जा सकता है, लेकिन मूल्य लेकर कोई बेचता है तो उसे नरकमें जाना पड़ेगा। हमारे महाराजजी कहते थे कि गाय अमूल्य है, उसके माहात्म्यको नहीं कहा जा सकता है।

एक बार महाराजजीसे ऐसे ही चर्चा हुई तो उनसे पूछा गया कि महाराजजी! मान लो गायकी सेवाकी सामर्थ्य नहीं है और कर्ज हो जाय तो? बोले—भाई! गाय भूखी थोड़े ही रहेगी, कर्ज करके भी गायको खिलाना ही चाहिये। तो महाराज! कर्ज करके मरना पड़ेगा तो फिर लौटकर आना पड़ेगा। तो बोले—अरे! ऐसे कौन-से पवित्र कर्म कर रहे हैं कि लौटकर दुबारा न आना पड़े। दुनियाका खाकर दुनियाका कर्ज चुकाने आना पड़े, इससे तो अच्छा है गायका कर्ज चुकाने आयेंगे तो कम-से-कम गोसेवा तो करेंगे। इसलिये गाय भूखी न रहे, अपनी शक्ति-सामर्थ्यसे भी अधिक गायकी सेवा करनी चाहिये।

कल्याणकारी जितने साधन हैं, उनमें 'श्रवण'-भक्ति अत्यन्त अपेक्षित है। श्रवणके बिना साधन दोषपूर्ण हो जायगा। जैसे एक उद्धरण दें कि भगवत्प्राप्तिका एक श्रेष्ठ साधन है, बहुत श्रेष्ठ साधन है—गोसेवा। कोई दूसरे साधनकी जरूरत नहीं। गोसेवा करें और जीवनका कल्याण हो जायगा, भगवत्प्राप्ति हो जायगी। ऐसा हमारे शास्त्रोंमें प्रतिज्ञापूर्वक कहा गया है, किंतु गोसेवा करनेवाला भी यदि भगवच्चरित्र नहीं सुनता है, सत्संग नहीं करता है तो गायके प्रति भगवद्बुद्धिका उदय नहीं हो पायेगा और जबतक गायमें भगवद्बुद्धिका उदय नहीं होगा। तबतक गायके प्रति पशुबुद्धि बनी रहेगी। तबतक गोसेवा करनेमें भी अपराध बनते रहेंगे। श्रवणसे यह बात समझमें आ जायगी कि गाय पशु नहीं है, आकार भले ही पशुका हो, किंतु यह साक्षात् भगवत्स्वरूप है और भगवद्-रूप मान करके जब हम उसकी सेवा करेंगे तो हमारी सेवामें दोष नहीं रहेगा, त्रुटि नहीं रहेगी, फिर साधन रुचिपूर्वक बनने लग जायगा।

कितने दुःखकी बात है विश्वगुरु, सारे विश्वको प्रकाशकी किरण देनेवाला भारत, जिसके सम्बन्धमें श्रीजयशंकरप्रसादजीने कहा है—***'जगे हम लगे जगाने विश्व लोक में फिर फैला आलोक'*** सबसे पहले हम जगे, फिर हमने विश्वको जगाया। आज वही देश, धर्मप्राण देश, मांस-विक्रेताओंमें पहले नम्बरपर है। गोमांस बेचनेवालोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत प्रथम स्थानपर है।

हमारे धर्मग्रन्थोंमें कहा गया है—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

अर्थात् गाय रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, अदितिपुत्रोंकी बहन और घृतरूप अमृतका खजाना है। अतः प्रत्येक विचारशील पुरुषको मैंने यही समझाकर कहा है कि निरपराध एवं अवध्य गौका वध न करो।

ये बातें जब याद आती हैं तो लगता है हमको जीवित रहनेका अधिकार नहीं है। जो भारतवर्षकी पवित्र धरती गायके गोबर और गोमूत्रसे सिंचित हुआ करती थी, आज निरीह, निरपराध, विश्वहितकारिणी, विश्वमंगलकारिणी गायके रक्तसे रंजित हो रही है। ५० से ६० हजारतक गोवंश सूर्योदय होते-होते कट जाता है और ये शासक गोमांस विक्रय करके भारतकी गरीबी दूर करना चाहते हैं, भारतको समृद्ध बनाना चाहते हैं! यजुर्वेदमें गायको 'अघ्न्या' अर्थात् सर्वथा अवध्य कहा गया है।

हमारे पूज्य गुरुदेव श्रीभक्तमालीजी महाराज कहा करते थे कि जब हम वाराणसीमें संस्कृत महाविद्यालयमें पढ़ते थे, उस समय स्वतन्त्रता-आन्दोलन अपने जोरोंपर था, तो महात्मा गाँधीजीने काशीकी सभाओंमें कहा— 'जिस दिन देश स्वतन्त्र होगा, कलमकी पहली नोकसे गोवधपर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जायगा' किंतु आज स्वतन्त्रताके बाद ६० वर्षसे भी अधिक समय व्यतीत हो गया है, गोवध बन्द होनेकी तो कौन कहे, वह और अधिक चरमसीमापर पहुँचता जा रहा है। [क्रमशः]

अनुदानिनी धरती माँ

(श्रीराकेशजी शर्मा)

पंचतत्त्वोंमें पृथ्वीकी प्रतिष्ठा सर्वप्रथम है। प्राणियोंके अत्यधिक समीप होनेके कारण हम पृथ्वीकी गतिविधियोंद्वारा किये गये अनुदानोंसे अत्यधिक प्रभावित होते हैं। स्थूल होकर भी सम्पूर्ण सूक्ष्मता और शक्ति पृथ्वीमें विद्यमान है। इनके द्वारा मनुष्य ही नहीं वरन् यहाँके सभी प्राणी उपकृत रहते हैं।

धरतीके कण अज्ञात रूपसे हमारे शरीरके अनेक रोगोंका निवारण करते हैं। धूलिकण प्राकृतिक रूपमें वायुमें फैले रहते हैं। इन कणोंमें कई कण विद्युत्-आवेशसे युक्त होते हैं। धन आवेशवाले कण वायुमण्डलके बुरे तत्त्व दुर्गन्ध आदिको निष्क्रिय बनाते रहते हैं और ऋण आवेशवाले कण हमें रक्तचाप और गलेकी बीमारियोंसे बचाते हैं। श्वास नलीके रोमोंद्वारा यही आवेश शरीरमें नाड़ीकी गति, ताप एवं कार्यक्षमताको स्थिर रखता है। पशुओंमें यही आवेश दूध देनेकी क्षमता बढ़ाता है। पौधोंके विकासमें ये आवेशित धूलिकण ही सहायक हैं।

प्रातःकाल ओससे गीली शुद्ध भूमिमें नंगे पाँव टहलनेसे एक प्रकारकी विद्युत्-शक्तिका संचार होता है, जो शरीरको तरोताजा रखती है। पहलवान लोग मिट्टीमें लोटते हैं, जिससे शारीरिक विषका शोषण होता है। पेट और सिरकी पीड़ामें मिट्टी थोपनेसे बड़ा आराम मिलता है। यह सब धूलिकणोंमें व्याप्त विद्युत्-शक्तिका प्रभाव है, जिसका ज्ञान आर्ष ग्रन्थकारोंने हमें प्रदान किया है। प्राकृतिक चिकित्सामें तो शरीरकी आरोग्यताके लिये पृथ्वीतत्त्व (मिट्टी आदि)-का ही विशेष अवदान रहता है।

पृथ्वी अन्य देवोंकी तरह आयतनवाली है, सूर्य उसकी आत्मा है। यह धरती लोह आदि धातुओंसे परिपूर्ण है। ऋग्वेदमें पृथ्वीको लोहयुक्त कहा गया है। लोहतत्त्वकी अधिकताके कारण आकाशगत मरुतोंकी विद्युत्-शक्तिके संयोगसे पृथ्वी चुम्बकत्व धारण करती है। पृथ्वीमण्डलके चारों ओर घनतोय (जलवाष्प), उससे ऊपरकी परत घनतेज, उससे ऊपर तिर्यक् और ऊर्ध्व घनवात तथा उसके ऊपर अन्तरिक्ष है। पृथ्वीके गर्भमें अग्निदाह है। पृथ्वीके आग्नेय परमाणुओंको ग्रहण करके ही वृक्ष और वनस्पतियाँ उगती और पनपती हैं।

पृथ्वीको देवता और पंचतत्त्वोंके रूपमें पूजा-प्रतिष्ठा देनेमें भारतीयोंने केवल श्रद्धाको ही नहीं, बल्कि विज्ञानको भी उसमें सँजोया है। पृथ्वी एक देवी है, इसकी सजीवताके कारण ही इसे धरती माँ कहते हैं। धरती उछलती-कूदती, नाचती, थिरकती अपनी मोद-विनोदभरी जीवनयात्रापर अनवरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतिसे चलती जा रही है। हम साधारण रूपसे यही समझते हैं कि पृथ्वी अपनी धुरीपर घूमती हुई सूर्यका चक्कर काटती है, पर उसकी चालमें नृत्य-जैसी गति भी तो सम्मिलित है। धरतीको हम धूल-मिट्टीकी बनी ऊबड़-खाबड़मात्र देखते हैं, जो अति निकटकी अवज्ञा है। वस्तुतः वह बहुत ही सुन्दर और सुसज्जित है। अन्तरिक्षमें गये एवं चन्द्रमातक पहुँचे वैज्ञानिकोंने धरतीको रंग-बिरंगे रत्नोंमें जगमगाती हुई प्रकाशवान् थाली-जैसा देखा—वनस्पति हरी, समुद्र नीला, रेत भूरी, पर्वतों और ध्रुवोंकी बर्फ सफेद स्पष्ट दीखती बतायी। उन्हें लगा जैसे विशाल प्रकाशपिण्ड अपना साम्राज्य स्थापित किये हुए है।

बाहरसे शान्त-निश्चेष्ट पड़ी, दीखनेवाली धरतीके भीतर निरन्तर उद्वेगभरी हलचलें होती रहती हैं। यदा-कदा ये हलचलें विस्फोटरूपसे बाहर आती हैं और भूकम्प, ज्वालामुखी तथा असाधारण भली-बुरी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती हैं। धरती उदारतापूर्वक अपनी आन्तरिक स्थितिका थोड़ा-थोड़ा परिचय हमें अनायास ही देती रहती है, सिखाती रहती है, अविज्ञात सम्पदाओंके बारेमें इशारा करती रहती है। उसके इन संकेतोंको समझकर बहुत कुछ लाभ मनुष्य प्राप्त कर सकते हैं, करते रहे हैं।

धरतीको कितनी कुशलतासे ईश्वरने रचा, कितना सँजोया, जिसे देखकर हमारी बुद्धि चकित हो जाती है। थोड़े गहन निरीक्षणसे ज्ञात होता है कि धरतीमें चेतनमें पाये जानेवाले समस्त गुण विद्यमान हैं। ब्रह्माण्डके पिण्ड-रहस्य कितने असीम हैं और मानव-बुद्धि कितनी ससीम है—इसका कुछ आभास तब मिलता है, जब हम धरतीके अद्‌भुत रहस्योंके सम्बन्धमें विचार करते—जानकारी करते हैं। मिट्टीको ही लें, वह अपने चारों ओर बिखरी पड़ी है, मुफ्तमें उसे जहाँ-तहाँसे उठाया जा सकता है जो निर्जीव दीखती है, पर वैज्ञानिक कसौटीपर जब देखा जाता है तो पता लगता है कि उसका प्रत्येक कण बहुमूल्य रासायनिक पदार्थोंसे बना है। बीजकी जो सत्ता है सो तो है ही, वस्तुतः पौधे और वृक्ष जमीनकी रासायनिक स्थितिके कारण ही उपजते-बढ़ते हैं। प्राणियोंका आहार मुख्यतः वनस्पति ही है। इसीके सहारे प्राणी जीवनचर्या चलाते हैं, भूमिकी रासायनिक शक्ति प्राणियोंको शरीर धारण करनेयोग्य बनाती है। पृथ्वीकी छायी हुई हरीतिमा ही उसकी शोभा है। प्राणवायु और वर्षा-जैसे उपहार इन वृक्षों-वनस्पतियोंसे ही प्राप्त होते हैं। ईंधन, छाया, फल-फूल, अन्न आदि अनेक लाभ धरतीकी धूल-मिट्टीका ही चमत्कार है, जो स्थूल दृष्टिसे केवल निरर्थक एवं महत्त्वहीन दीखती है। इसकी विशेषताओंके आधारपर भिन्न-भिन्न वनस्पतियाँ, धान्य एवं वृक्ष उत्पन्न होते हैं। ये सब धरतीके ही अनुदान हैं। यदि वह उर्वर है तो कुछ न बोनेपर भी उसमें घास उगेगी, पक्षियोंद्वारा लाये गये बीजोंसे अनेक पौधे-वृक्ष उसको हरा-भरा बना देते हैं। यह भूमिका एकाकी प्रयास है, जो हमें धरतीके अनुदानरूपमें प्राप्त है।

धरतीमें बहुमूल्य रासायनिक खनिज भरे हैं, कितने उपयोगी जीवाणुओंका उसमें निवास है। इन्हीं सबसे वनस्पतियाँ बनती हैं, जो हमें पशुओंके शरीरसे दूध आदिके रूपमें प्राप्त होती हैं। वह आहार ही शरीर और मनरूपमें चलता-फिरता, हँसता-बोलता और सोचता-समझता दीखता है। प्रकारान्तरसे ये सब धरतीके अनुदान ही हैं।

धरतीकी गहराईमें प्रवेश करें तो बहुमूल्य खनिज सम्पदाएँ उपलब्ध होती हैं—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, पन्ना, हीरा, रत्न, कोयला, पेट्रोल आदि उपयोगी साधन धरतीको खोदकर निकाले जाते हैं। इसमें दबा हुआ जल ही कुँओं, सरोवरोंमें भरा पड़ा है, जो जीवोंका जीवन है। बादल तो थोड़े दिन ही बरसते हैं, हम सबका काम तो भूमिगत जल जो कुँओं, तालाबों, नदियों आदिके रूपमें प्राप्त होता है, उसीसे चलता है। थलका जीवन-सौन्दर्य और वैभव धरतीसे प्राप्त जलका ही अनुदान है। इसके समुद्रोंका जल ही वाष्प बनकर बादलोंके रूपमें जहाँ-तहाँ बरसकर वृक्ष, वनस्पति, अन्न, फल आदि उत्पन्न करता है, जीव उसीपर जीवित हैं। थलपर पायी जानेवाली उपर्युक्त सम्पदाओंसे भी कहीं अधिक सम्पदा सागरोंके तलोंमें दबी पड़ी है। थल और जल—दोनोंके वैभव इस धरतीके अनुदान हैं। धरतीमाताके इन उपकारों और अनुदानोंपर जब हम विचार करते हैं तो उनके प्रति हमारी सहज श्रद्धा फूट पड़ती है और उनके चरणोंमें हम सबका मस्तक झुक जाता है। धरतीके इन अनुदानोंके हम सब आभारी हैं। यह सदा देती रहती है, लेती कुछ भी नहीं। यह माताकी तरह हमारा भरण-पोषण करती रहती है, भूमि हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं—**'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।'** ऐसी सतत अनुदानिनी माँको नमस्कार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामनाके त्यागसे भगवान्‌के दर्शन

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

नाम, कारण, बाधा—इच्छा, चाह, चाही, काम, मनकी बात, आरजू आदि कामनाके ही विभिन्न नाम हैं। यदि आपके व्यक्तिगत जीवनमें अशान्ति, दुःख, चिन्ता, भय, मानसिक तनाव, खिन्नता, घबराहट, डिप्रेशन है, यदि आपको बार-बार क्रोध आता है, यदि आपके परिवारमें कलह एवं लड़ाई-झगड़ा और पारिवारिक सम्बन्धोंमें कटुता है, मधुरता और प्रेम नहीं है तो इन सबका मूल कारण है—आपकी अपनी भूल। उस भूलका नाम है—कामना। भवबन्धन और जन्म-मरण की जड़ है—कामना। यदि आपमें भगवान्‌की अखण्ड स्मृति जाग्रत् नहीं हुई है, आपको भगवान्‌के दर्शन नहीं हुए हैं, तो इसमें मूल बाधा है—कामना।

प्रमाण—केवल कामनाके त्यागसे जीवनमें निश्चिन्तता, निर्भयता, प्रसन्नता, शान्ति आ जाती है, मुक्ति तथा भक्ति मिल जाती है, भगवान्‌के दर्शन हो जाते हैं। सन्तोंका अनुभव एवं ग्रन्थ-वाणी इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं—

चाह गयी चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह।
जिसको कछु न चाहिये, वह शाहनपति शाह॥

× × × ×

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता २।६२, ३।३७)

आशय—क्या है कामना और क्या नहीं है कामना, इसको भलीभाँति इस प्रकार समझिये—निश्चय करना, लक्ष्य बनाना कामना नहीं है, लेकिन मेरा निश्चय और लक्ष्य पूरा हो ही—ऐसा सोचना कामना है। कार्यक्रम एवं योजनाएँ बनाना, परामर्श देना, समझाना, राय देना, मार्गदर्शन करना कामना नहीं है, लेकिन कार्यक्रम तथा योजनाएँ पूरी हों ही; परामर्श, मार्गदर्शन तथा राय माने ही जायँ—ऐसा सोचना कामना है। पूरी सावधानीसे अपना कार्य, कर्तव्य करना, कामना नहीं है; लेकिन कार्यमें सफलता मिले ही—ऐसा सोचना कामना है। भूख, प्यास, नींद आदि शारीरिक जरूरतें महसूस होना कामना नहीं है; लेकिन मेरी जरूरतें पूरी हों ही—ऐसा सोचना कामना है। मैं अपनी तरफसे भरपूर मेहनत करूँगा, मुझे विश्वास है कि मुझे सफलता मिलेगी—ऐसा सोचना कामना नहीं है; लेकिन मुझे सफलता मिलेगी ही—ऐसा सोचना कामना है। भगवान्‌से संसारकी चीजें, सुख-सामग्री, सुख-सुविधाएँ माँगना इनकी प्राप्तिके लिये मेहनत करना कामना नहीं है, लेकिन भगवान् ये चीजें मुझे दें ही, ये चीजें मुझे मिलें ही—ऐसा सोचना कामना है। भगवान्‌से उनके दर्शन, भक्ति, विश्वास, प्रेम, परम शान्ति, जीवन्मुक्ति माँगना, चाहना, इनके लिये प्रयास करना कामना नहीं है। ये सब चीजें मुझे मिलनी ही चाहिये—ऐसा सोचना भी कामना नहीं है। कामना आपका सम्बन्ध नाशवान् संसारसे जोड़ती है, भगवान्‌के साथ आपके नित्य सम्बन्धकी विस्मृति करवा देती है। हितभावना, सद्भावना रखना कामना नहीं है। सद्भावनामें दूसरोंका हित निहित होता है, जबकि कामनामें अपना सुख। सद्भावना पूरी न होनेपर करुणा आती है, करुणाजनित प्रार्थना निकलती है और पूरी हो जानेपर प्रसन्नता होती है। कामना पूरी न होनेपर दुःख और पूरी हो जानेपर क्षणिक सुख होता है। सद्भावना सबके प्रति रहनी चाहिये, कामना किसीसे नहीं। सद्भावना उच्च कोटिकी साधना है, कामना बहुत बड़ी भूल है। शरीर स्वस्थ रहे, परिवारजन प्रसन्न रहें, सब आनन्दसे रहें—ऐसी सद्भावना रख सकते हैं। सावधान! कभी-कभी कामना सद्भावनाका रूप बना लेती है। आप सोचते हैं—यह मेरी सद्भावना है, जबकि होती है वह कामना, भलीभाँति जाँच कर लें। यदि आपके जीवनमें दुःख, चिन्ता, अशान्ति, तनाव है, तो निश्चित रूपसे कामना है।

एक महान् सन्तसे किसी साधकने पूछा—महाराजजी! यहाँसे आप कहाँ जायँगे। सन्तने उत्तर दिया—भैया! फुटबालको क्या पता कि खिलाड़ी किधर ठोकर मारेगा। मैं तो राधा-कृष्णकी फुटबाल हूँ। राधा मुझे ठोकर मारती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, तो मैं कृष्णकी तरफ भागता हूँ और कृष्ण मुझे ठोकर मारते हैं तो मैं राधाकी तरफ भागता हूँ। कभी-कभी मुझे ऐसी ठोकर लगती है कि मैं न राधाकी तरफ जाता हूँ न कृष्णकी तरफ। मैं किसी अन्य दिशाकी तरफ चला जाता हूँ तो दोनों खिलाड़ी मेरे पीछे-पीछे भागते हैं, तो भैया! यह तो पता नहीं कि कहाँ जायँगे, पर हाँ, टिकट अमुक जगह जानेका बना रखा है, तैयारी पूरी कर ली है। स्टेशन पहुँच गये, गाड़ी आ गयी तो बैठ जायँगे।

कामनामें आग्रह रहता है, 'ही' लगा रहता है, ऐसा होना ही चाहिये, ऐसा करना ही चाहिये आदि। इस 'ही' को हटा दीजिये और अपना कार्य कीजिये।

कामना किनसे—प्राय: कामना रहती है, अपने शरीर, निकट परिवारजनों, सम्वन्धियों, मित्रों, भगवान्, सम्पत्ति, व्यवस्थासे। कामनाका स्वरूप है—मेरा शरीर बना ही रहे, स्वस्थ ही रहे, कभी बीमार हो ही नहीं। परिवारजन, मित्र, सम्बन्धी मेरी इच्छाके अनुसार ही चलें, करें, रहें; मेरा सम्मान ही करें, कभी अपमान न करें। सम्पत्ति बनी तथा बढ़ती रहे। व्यवसायमें लाभ ही हो, कभी घाटा न लगे। भगवान् सदैव अनुकूलता बनाये रखें, प्रतिकूलता कभी नहीं भेजें।

प्राय: कामनाको छोड़नेके कुछ उपाय इस प्रकार हैं—

(१) दे नहीं सकता—आपके निकट परिवारजन, मित्र, सम्बन्धी, समाज तथा संसारके व्यक्ति न आपको कुछ दे सकते हैं, न आपके शरीरको। कोई भी व्यक्ति आपको भगवान्‌से नहीं मिला सकता। सन्तजन भगवान्‌के दर्शन तथा उनकी प्राप्तिका रास्ता बताते हैं। उस रास्तेपर आपको ही चलना पड़ेगा। भगवत्प्राप्तिकी तीन शक्तियाँ—बल, विवेक, विश्वास और इनके सदुपयोगकी स्वाधीनता भगवान्‌ने सबको दी है। सदुपयोगमात्रसे भगवान् मिल जाते हैं। इनका सदुपयोग है—क्रमशः सेवा, कामनाका त्याग और शरणागति। आपके शरीरको जो सुख-सामग्री (खाने-पीनेकी वस्तुएँ) और सुख-सुविधाएँ मिलती हैं, वे आपके कर्म, भाग्य, प्रारब्धसे मिलती हैं। परिवारजन, मित्र आदि उनको देनेमें केवल माध्यम बनते हैं, दिखायी देते हैं। श्रीरामचरितमानसमें आया है—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

(रा०च०मा० २।९२।४)

इसका अर्थ है—हे भाई! कोई किसीको सुख-दु:खका देनेवाला नहीं है। सब अपने ही किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं।

(२) भगवान्‌को चढ़ा दो—अपनी सब कामनाओंको भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ा दो। कैसे? भगवान्‌से अपनी सभी कामनाओंको स्पष्ट रूपसे बता दो और यह निवेदन कर दो कि मेरी बुद्धि तथा विवेकके अनुसार इन कामनाओंको पूरा करना अत्यन्त आवश्यक है, आप इनको जरूर पूरा कर देना। यह निवेदन आप अनेक बार कर सकते हैं। इसके बाद भगवान्‌से यह निवेदन करना है—हे प्रभो! आप मेरेसे ज्यादा बुद्धिमान् तथा जानकार हैं, आप भविष्यको भी भलीभाँति जानते हैं। यदि आपकी बुद्धि तथा जानकारीके अनुसार इन कामनाओंकी पूर्तिमें मेरा लाभ तथा हित हो, तब तो आप इनको तत्काल पूरा कर दीजिये। यदि इनकी पूर्तिमें मेरा अहित हो तो आप इनको पूरा मत करना। अब आपके दोनों हाथोंमें लड्डू हैं। कामना पूरी हो गयी तो मौज है ही और नहीं हुई तो भी आप इस आधारपर प्रसन्न रहेंगे कि भगवान्‌ने मुझे उस नुकसानसे बचा दिया, जिसकी मुझे जानकारी नहीं है।

(३) प्रार्थना कीजिये—पूजाके कमरे या एकान्तमें बैठें। हल्की आवाजमें निम्नलिखित प्रार्थनाको बार-बार बोलें, अपने कानोंसे सुनें और अपने भगवान्‌को सुनायें—

मेरी चाही करन की, जो है तुम्हरी चाह।
तो अपनी चाही करो, यह है मेरी चाह॥
तुम्हरी चाही में प्रभु, है मेरा कल्याण।
मेरी चाही मत करो, मैं मूरख अनजान॥
चाह तुम्हारी ही हो प्यारे! नित्य-निरन्तर मेरी चाह।
चाह न रहे अलग कुछ मेरी, नहीं किसीकी हो परवाह॥
चलता रहूँ निरन्तर, प्यारे केवल एक तुम्हारी राह।
बिगड़े-बने जगत्‌का कुछ भी, कहूँ निरन्तर 'प्यारे! वाह'॥

(भाईजी)

इसका अर्थ है—हे भगवान्! मेरी इच्छाको पूर्ण करनेकी यदि आपकी इच्छा है तो आप अपनी इच्छाको पूर्ण कर लीजिये, बस यही मेरी इच्छा है। आपकी इच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण हो, इसीमें मेरा कल्याण है। मैं तो मूर्ख एवं अनजान हूँ, इसलिये आप मेरी इच्छाको पूर्ण मत करना।

हे भगवान्! आपकी इच्छा ही निरन्तर मेरी इच्छा हो। आपसे अलग मेरी कोई इच्छा न रहे और न मुझे यह परवाह रहे कि कोई क्या सोचेगा, क्या हो रहा है। मैं निरन्तर आपकी इच्छाके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करता रहूँ। बाहरी स्तरपर मेरा संसार (जिनमें मेरी ममता है, जैसे—शरीर, स्वजन, सामान-सम्पत्ति आदि) बिगड़े अथवा बने, मैं उसमें आपकी झाँकीके दर्शन करके यही कहूँ—वाह-वाह प्रभु! आप बहुत अच्छा कर रहे हैं।

हे नाथ! मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मेरे मनमें कभी कोई इच्छा पैदा ही न हो।

(४) न लाभ, न नुकसान—कामनापूर्तिका अर्थ है—शरीर स्वस्थ रहना, इच्छित वस्तुओं, व्यक्तियों तथा परिस्थितियोंका मिलना। कामना पूरी न होनेका अर्थ है—शरीर बीमार हो जाना, इच्छित वस्तुओं, व्यक्तियों, परिस्थितियोंका न रहना, कम हो जाना। कामना पूरी होनेसे आपको भगवान् नहीं मिलेंगे, आपकी चिन्ता नहीं मिटेगी, आपको स्थायी प्रसन्नता नहीं मिलेगी। आपके शरीरको मिलनेवाली सुख-सामग्री और सुख-सुविधाओंमें कणमात्रकी भी वृद्धि नहीं होगी। शरीरको उतना ही मिलेगा, जितना आपके प्रारब्धमें है। इस दृष्टिसे कामनापूर्तिसे कोई लाभ नहीं होगा। कामना पूरी न होनेपर भी आपके शरीरको मिलनेवाली सामग्री तथा सुविधाएँ आपके प्रारब्धानुसार यथावत् मिलेंगी, उनमें कणमात्रकी भी कमी नहीं होगी। भगवान्की प्राप्तिमें भी कोई बाधा नहीं आयेगी, क्योंकि उसके लिये भगवान्ने आपको अलगसे तीन शक्तियाँ—बल, विवेक, विश्वास और इनके सदुपयोगकी स्वाधीनता दी है, जो अन्तिम श्वासतक आपके पास यथावत् रहेंगी। इस दृष्टिसे कामना-अपूर्तिसे कोई नुकसान नहीं होगा।

(५) पूरी करना वशमें नहीं—कामना करना आपके वशकी बात है, लेकिन उसको पूरी करना आपके वशकी बात नहीं है। कामना पूरी न होनेपर आप दु:ख, चिन्ता, अशान्तिमें फँस जाते हैं। आप दु:ख नहीं चाहते हैं, दु:ख होता है, कामना पूरी न होनेसे।

(६) पैदा होनेसे हलचल—कामना पैदा होते ही आप अशान्त हो जाते हैं। आप सोचते हैं—कामना पूरी नहीं हुई तो सब कुछ गड़बड़ हो जायगा। आपमें काल्पनिक भय पैदा हो जाता है। आप सोचते हैं—कामना पूरी हो गयी तो फिर मौज-ही-मौज। फिर ऐसा करेंगे, ऐसा करेंगे। आप व्यर्थमें कल्पनाओंमें भटकने लगते हैं। आप अपनी साधनामें बैठे हैं। कामना पैदा हुई, आप जड़ संसारके चिन्तनमें फँस गये।

कामनाका त्याग करते ही नाशवान् संसारसे सम्बन्ध टूट जाता है, स्वतः स्वरूपमें स्थिति हो जाती है।

'कीजै नन्द नन्दन सों प्रीती'

(डॉ० श्रीआद्याप्रसादसिंहजी 'प्रदीप')

कीजै नन्द नन्दन सों प्रीती।
ऐसो दया धाम पद निरखौ लखौ प्रीति की रीती।
मानव मन अस अधम ताहि कै मेटै सोइ अनीती।
महिमावान ध्यान अस आवत ऐसो लखै सयानो।
दीन हीन कीरति छकि छीनो लखै न नेक बहानो।
अविगत को गति सोई चितवै जाको छरत छरानो।
मन-वच-कर्म योग सो ध्यावै पावै मरम सयानो।
मन मोदक पाके अस रीझै भूलि चले गति मति को।
ऐसो प्रीति रीति को न सुमिरै राखै भाव सुगति को।
अन्तर मन हुलसै अरु बिचरै त्यागि कुभाउ अनीती।
कीजै नन्द नन्दन सों प्रीती॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिल-गुड़-सेवनका आयुर्वेदिक महत्त्व

(वैद्य श्रीश्रीवल्लभजी शास्त्री)

तिलका महत्त्व धार्मिक दृष्टिसे तो है ही, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी इसका विशेष महत्त्व है। धार्मिक, मांगलिक कार्योंमें पूजा-अर्चा, हवन आदिमें तिलकी उपस्थिति रहती है। माघ कृष्ण एकादशीको तो 'षट्तिला एकादशी' ही कहा जाता है; क्योंकि इस दिन तिलको जलमें डालकर स्नान करने, तिलका उबटन लगाने, तिलसे हवन करने, तिलमिश्रित जलका पान करने, तिलका भोजन करने और तिलका दान—इस प्रकार तिलका छः प्रकारसे उपयोग करनेका विधान है—

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी।
तिलभुक् तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशनाः॥

आयुर्वेदके अनुसार तिल-गुड़ शरद् ऋतुके अनुकूल, स्वास्थ्यवर्धक और शरीरके लिये उपयोगी है। इसीलिये हमारे स्वस्थ जीवनके लिये तिलसे निर्मित लड्डू, तिलकुट्टी, तिलकी गजक, रेवड़ी, तिलपापड़ी आदिके सेवनका विधान किया गया है।

तिल वर्षाऋतुकी खरीफकी फसल है। तिलकी बुआईके बाद लगभग ५० दिनोंमें तिलके पुष्प आने लगते हैं। तीन महीनोंमें तिलकी फसल तैयार हो जाती है। तिलका पौधा ३-४ फुट ऊँचा होता है। तिलका दाना छोटा एवं चिपटा होता है। तिल काला, सफेद, लाल तिलके नामसे प्रचलित है। काला तिल पौष्टिक एवं सर्वोत्तम गुणवाला है। आयुर्वेदमें वर्णित छः रसोंमेंसे चार रस तिलमें होते हैं। तिलमें कड़वा, तिक्त, मधुर एवं कसैला रस पाया जाता है।

शुद्ध तिलतेल जैतून तेलका प्रतिनिधि है। अतः अनेक आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माणकार्यमें जैतूनतेलके स्थानपर तिलके तेलका प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग पेशीगत इंजेक्शनद्वारा दी जानेवाली अनेक औषधियोंके लिये विलयन (सोल्युशन) बनानेके लिये किया जाता है।

तिलका रासायनिक संगठन

तिलोंमें स्थिर तेल ५०-६० प्रतिशत और पिच्छिल द्रव्य ५० प्रतिशत होता है, तिल तेलमें कार्बोहाइड्रेट, लोहा, कैल्शियम तथा फासफोरस पाया जाता है। मनुष्यके शरीरमें जितने कैल्शियमकी आवश्यकता है, उतना कैल्शियम तिलसेवनसे प्राप्त हो जाता है। तिलमें विटामिन 'बी' और 'सी'की अधिकता पायी जाती है। तिल पाचक, पौष्टिक, क्षुधावर्धक एवं स्वास्थ्यरक्षक है।

तिलका गुण तथा प्रयोग

तिल गुरु, स्निग्ध, मधुर, कषाय, तिक्त तथा वातनाशक है। दाँतोंके लिये हितकारक है। वाजीकरण, पौष्टिक, आर्त्तवजनक, स्तन्यजनक, बल्य, वृष्य एवं त्वचाके लिये हितकारी है। मस्तिष्क-दौर्बल्य एवं शीतका नाशक तथा मूत्रल है। कृमिघ्न गुणकी विशेषता होनेसे प्राचीन कालमें मृत शरीरकी सुरक्षाके लिये तिलके तेलमें मृत शरीरको रखा जाता था। तिलके तेलमें कृमिघ्न गुण होनेसे अचारको सुरक्षित रखनेके लिये भी इसे उपयोगमें लिया जाता है।

सबेरे दो मुट्ठी तिल चबाकर खानेसे बल तथा शारीरिक पोषण मिलता है। चबाकर तिल खानेसे दाँत मजबूत बनते हैं। वृद्धावस्थातक दाँत न हिलते हैं, न दुखते हैं और न गिरते हैं। तिलकी ऊपरी परतपर आक्जेलिक एसिडकी मात्रा होनेसे तिलको धोकर, सुखाकर खाना चाहिये। छोटे बच्चे बिस्तरपर पेशाब कर देते हैं, इसके लिये सबसे अच्छी दवा है—काला तिल चबाना। बच्चोंको तिल खिलानेसे यह शिकायत दूर हो जाती है; क्योंकि तिल मूत्रकी अधिकता तथा मूत्रको नियन्त्रित रखता है। गाँवोंमें बच्चोंको तिलपापड़ी, तिलके लड्डू खानेके लिये देते हैं। तिलसेवन करानेसे बच्चोंका स्वास्थ्य ठीक रहता है।

वृद्धावस्थामें बहुमूत्र अधिकतर रहता है, तिल एवं अजवायन खानेसे मूत्रपर नियन्त्रण होनेसे बहुमूत्रकी शिकायत दूर हो जाती है।

तिलका तेल अपने विशिष्ट गुण—पतलेपन एवं स्निग्धताके कारण शरीरके बारीक स्रोतोंमें फैल जाता है। अन्य द्रव्योंकी अपेक्षा तिल जल्दी पच जाता है, शरीरको निरोग रखता है।

आप आश्चर्य करेंगे कि तिलकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मनुष्यको पतले दस्त लग रहे हों तो तिलसेवनसे मल गाढ़ा हो जाता है, साथ ही मनुष्यको कब्ज रहती हो तो तिलके सेवनसे, तिलकी स्निग्धतासे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलको बाहर निकलनेमें भी मदद मिलती है। इस प्रकार तिल दस्त रोकने तथा कब्जको मिटानेका भी काम करता है—यह तिलका परस्पर विरोधी गुण है।

तिलका इस प्रकारका अद्भुत गुण एवं वैशिष्ट्य अन्य किसी भी द्रव्यमें नहीं मिलेगा। जो व्यक्ति दुर्बल—कमजोर है, वह प्रतिदिन एक मुट्ठी तिलको सुबह-शाम सेवन करे तो पुष्ट और बलवान् हो जाता है। उसका शरीर कान्तिमान् एवं तेजस्वी हो जाता है। इससे शरीरकी सभी इन्द्रियोंको शक्ति मिलती है। दाँत हिलते हों तो मजबूत हो जाते हैं। जिसके सिरके बाल अकारण सफेद हो गये हों, वे काले हो जाते हैं। सिरके बालोंका टूटना रुक जाता है।

जो व्यक्ति शरीरसे स्थूल—मोटा हो तो दोनों समय निरन्तर तिलका सेवन करनेसे उसके शरीरका बढ़ा हुआ मेद कम होकर मोटापन दूर हो जाता है।

जल जानेपर तिलतेलमें चूनेके पानीका सम भाग लेकर उसमें थोड़ा कपूर डालकर मलहमकी तरह घोटकर रखे, उसमें कपड़ेके टुकड़ेको भिगोकर जले स्थानमें रखनेपर तुरंत ठण्डक मिलती है।

पथरी होनेपर तिलके पंचांगको जलाकर पानीमें डाले, फिर छानकर उस पानीको बर्तनमें लेकर आगपर रखकर औटाये, शुष्क होनेपर वह तिलक्षार बन जाता है। उसे ५ ग्रामकी मात्रामें जलके साथ दिनमें दो-तीन बार देनेसे कुछ ही दिनोंमें पथरी टुकड़े होकर मूत्रमार्गसे बाहर आ जाती है।

महिलाओंको यदि ऋतुस्रावके समय अधिक पीड़ा हो रही हो तो तिल, अजवायन, सोवाको कूटकर गुड़के साथ एक-एक चम्मच दिनमें तीन बार सेवन करानेसे मासिक धर्म साफ आकर दर्द कम हो जाता है। नष्टार्तव, कष्टार्तव आदि विकार दूर हो जाते हैं।

तिलके तेलमें कपूर मिलाकर मालिश करनेसे कुछ ही दिनोंमें त्वचा चमकने लगती है। त्वचाकी सुन्दरता बढ़ती है, त्वचामें निखार आता है।

अर्शमें दर्द हो रहा हो तो तिल कूटकर कुछ गरम करके बाँध दे, बाँधनेसे अर्शकी वेदना दूर हो जाती है। साथमें तिल्लीके तेलका एनिमा देनेसे गुदाके अन्दर स्निग्धता आनेसे अर्शकी वेदना दूर हो जाती है।

खलीके गुण

तिलमेंसे तेल निकलनेके बाद जो खली प्राप्त होती है; वह मधुर, रुचिकर और वातनाशक होती है। इसे मुहासोंमें गुलाबजल मिलाकर लगाते हैं। इस खलीमें ३० प्रतिशत अल्बुमिनाइड्स नामक पौष्टिक तत्त्व होता है। इसे गाय, भैंस और अन्य दूध देनेवाले जानवरोंको चारेके साथ मिलाकर देनेसे उनके दूधकी मात्रा बढ़ जाती है। आजकल दूध बढ़ानेके लिये इंजेक्शन देते हैं। वह पशुओंके लिये घातक है। पशु तुरंत रोगी हो जाते हैं। दूध बढ़ानेके लिये तिलकी खली दी जाय तो पशुओंके लिये यह पौष्टिक आहार है। निर्बल पशुओंको खली देनी चाहिये।

आयुर्वेदज्ञ ऋषि-मुनियोंने तिलको स्वादिष्ट और रुचिकारक बनानेके लिये तिलके समान गुणकारी शरद्-ऋतुके अनुकूल गुड़को ही उपयुक्त समझा। तिलके साथ गुड़ मिलाकर खानेसे उसके लाभकारी, पौष्टिक एवं शक्तिवर्धक गुण बढ़ जाते हैं; क्योंकि गुड़में सभी प्रकारके खनिज पदार्थ रहते हैं। गुड़में कैल्शियम, फासफोरस और लोहतत्त्व होता है। गुड़ जीवनीय शक्ति बढ़ाता है।

गुड़ पुष्टिकारक, बल एवं रक्तवर्धक है। गुड़ शरीरको पोषण देता है। परिश्रम करनेके बाद गुड़ खानेसे शरीरकी थकावट दूर होकर शक्ति मिलती है। गुड़ खानेसे हृदय मजबूत बनता है, हार्ट फेल्यूअरसे होनेवाली मौतोंसे बचाव होता है तथा कोलेस्ट्रोल घटता है। गुड़ शक्तिमान् आहार है। तिल तथा गुड़ मिलाकर खानेसे शरीरमें ऊष्मा बढ़नेसे भयंकर सर्दीका अनुभव नहीं होता है। हमारे धार्मिक, मांगलिक सभी उत्सवोंके अवसरपर गुड़के महत्त्वको समझकर गुड़ खाना शुभ माना जाता है।

मकर-संक्रान्तिके पुण्य पर्वपर अद्भुत गुणवाले दोनों पदार्थोंके सम्मिश्रणको स्वस्थ जीवनके लिये उपयोगी समझकर तिल एवं गुड़से निर्मित तिलके लड्डू, तिलपापड़ी, रेवड़ी, गजक खानेका नियम बनाया गया है। इसलिये भारतमें मकर-संक्रान्तिके पुण्यपर्वपर मुख्य आहार तिल और गुड़को महत्त्व दिया गया है। तिलके लड्डुओंको बहू-बेटियोंको भेजने, मन्दिरोंमें चढ़ाने तथा गरीबोंको दान देनेकी भी परम्परा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घायुका पर्याय है—हास्य

(श्रीसीतारामजी गुप्त)

बेकनने कहा है कि व्यक्तिका हँसमुख स्वभाव दीर्घायुका एक सर्वोत्तम साधन है। आधुनिक वैज्ञानिक शोधोंसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि हँसीसे न केवल रोगमुक्ति तथा अच्छे स्वास्थ्यकी प्राप्ति सम्भव है, अपितु अधिक हँसनेवाले व्यक्ति अपेक्षाकृत दीर्घायु भी होते हैं। अभी हालहीमें वैज्ञानिकोंने कुछ खिलाड़ियोंकी उनकी हँसीके आधारपर रैंकिंग की। कुछ खिलाड़ी ऐसे थे, जो खूब हँसते थे और जी खोलकर हँसते थे, जबकि कुछ खिलाड़ी ऐसे थे, जो कभी-कभार हँसते थे, लेकिन कुछ खिलाड़ी ऐसे भी थे, जो बिलकुल नहीं हँसते थे। उनकी जीवनावधिका अध्ययन करनेपर चौंका देनेवाले तथ्य सामने आये। जो खिलाड़ी बिलकुल नहीं हँसते थे, उनकी औसत आयु ७२.९ वर्ष रही, जबकि जो खिलाड़ी खूब हँसते थे, उनकी औसत आयु ७९.९ वर्ष पायी गयी। कम हँसनेवाले खिलाड़ियोंकी औसत आयु—इन दोनोंके बीचकी अर्थात् ७५ वर्षके लगभग रही। इससे सिद्ध होता है कि हम जितना ज्यादा हँसेंगे, उतनी ही लम्बी उम्र पा सकेंगे और वह भी अच्छे स्वास्थ्यके साथ।

हँसना एक सम्पूर्ण व्यायाम है, जिससे शरीरकी सभी नाड़ियाँ खुलती हैं तथा शरीरकी थकावट दूर होकर ताजगी उत्पन्न होती है। खुलकर हँसनेसे फेफड़ों, गले और मुँहकी अच्छी कसरत हो जाती है। पेट और छातीके स्नायु मजबूत होते हैं। डायफ्राम मजबूत होता है तथा इससे मुँह, गले तथा फेफड़ोंसम्बन्धी व्याधियोंके उपचारमें मदद मिलती है। हँसनेसे रक्त-संचारकी गति तीव्र होती है, जिससे खूनमें ऑक्सीजनकी मात्रा बढ़ जाती है। इस पूरी प्रक्रियासे चेहरेपर रौनक आ जाती है। जो जितना अधिक हँसता-हँसाता है, उसका चेहरा उतना ही अधिक दमकता है। शरीरमें जितनी अधिक मात्रामें ऑक्सीजनका अवशोषण होता है, उतनी ही अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है और जितनी अधिक ऊर्जा उत्पन्न होगी, हम उतने ही अधिक स्वस्थ तथा रोगमुक्त होंगे। इस प्रकार हास्य जीवनका उपचारक एवं पोषक तत्त्व है और इसे जीवनका रस कहा जा सकता है। एक रिसर्चके अनुसार हँसने और खुश रहनेसे टी० लिंफोसाइट्स अधिक क्रियाशील हो जाते हैं, जिनसे उन प्राकृतिक सेलोंके निर्माणमें वृद्धि होती है, जिन्हें किलर सेल कहते हैं। ये किलर सेल कैंसर पैदा करनेवाले भयानक सेलोंको विनष्ट करनेमें सक्षम होते हैं। इस प्रकार हँसने-हँसानेसे भयानक रोगोंसे छुटकारा पानेमें भी सहायता मिलती है।

हास्यद्वारा हमारे शरीरकी जैव-रासायनिक संरचनामें परिवर्तन आता है। हँसनेसे तनाव उत्पन्न करनेवाले हार्मोन कार्टिसोल तथा एपिनप्राइनके स्तरमें कमी आती है, जिससे शरीर तनावमुक्त हो जाता है और तनाव-मुक्तिका अर्थ है—उत्तम स्वास्थ्य। इसके अतिरिक्त हँसनेसे शरीरमें एण्डोर्फिन नामक हार्मोनकी मात्रामें वृद्धि होती है, जो शरीरके लिये स्वाभाविक रूपसे दर्द-निवारक और रोग-अवरोधकका काम करता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि हँसनेसे शरीरके लिये उपयोगी हार्मोसका उत्सर्जन प्रारम्भ हो जाता है, जो हमारे अच्छे स्वास्थ्यके लिये जरूरी है, इस प्रकार हँसना रोगमुक्ति, अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घायुका प्रतीक और पर्याय है।

जो लोग जितने गम्भीर बने रहते हैं, उतने ही ज्यादा उम्रके दिखते हैं और उसीके अनुसार उनका उत्साह भी मन्द पड़ता जाता है। हास्य ही एकमात्र औषधि है, जो बाह्यरूपसे आपके चेहरेकी झुर्रियोंको रोकनेमें तथा आन्तरिकरूपसे आपको उत्साहपूर्ण बनाये रखनेमें सक्षम है। हास्य व्यायामके साथ-साथ बुढ़ापेके लिये एक उत्तम टॉनिक है, अतः हँसते रहिये और बुढ़ापेको सदाके लिये अलविदा कह दीजिये। इस प्रकार हँसीका सम्बन्ध न केवल आरोग्य और दीर्घायुसे है, अपितु बुढ़ापा रोकनेमें भी हास्यकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिश्नोई सम्प्रदायके साहित्यमें दानकी महिमा

(श्रीविनोदजम्भदासजी कड़वासरा)

शास्त्रोंमें दानके विविध स्वरूप तथा दाता और याचककी कसौटियोंका विस्तृत विवेचन हुआ है। मध्यकालमें विदेशी आक्रान्ताओंके भीषण अत्याचारोंसे त्रस्त भारतभूमिके निवासियोंमें घोर नैराश्य और अवसाद फैल गया, शास्त्रोंकी मर्यादाओंका लोप होना शुरू हो गया, जिसके फलस्वरूप अज्ञानता और अन्धविश्वासका अँधेरा चारों ओर छाने लगा। जनसामान्यके लिये शास्त्रोंकी प्राप्ति कठिन हो गयी तथा उनका आशय समझना और भी मुश्किल हो गया। १५वीं सदीमें भक्ति-आन्दोलनकी अग्रगण्य महान् विभूतियोंने अपने उपदेशोंमें लौकिक भाषामें शास्त्रोंका मर्म लोगोंको समझाया। उत्तर भारतमें ऐसे भक्ति-सम्प्रदायकी विशिष्ट स्थापना करनेका श्रेय श्रीजाम्भोजीको जाता है। श्रीजाम्भोजीने संवत् १५४२वि०में मारवाड़में 'समराथल' नामक स्थानपर बिश्नोई सम्प्रदायका प्रवर्तन करके धर्म-संस्थापनका कार्य शुरू किया।

'सबदवाणी' के रूपमें संग्रहीत जाम्भोजीके उपदेशों और उनके समकालीन एवं परवर्ती बिश्नोई सन्त-कवियोंकी रचनाओंमें दानकी महिमाका व्यापक प्रकटीकरण हुआ है। जाम्भोजीने स्वयं सम्प्रदाय-प्रवर्तनसे ठीक पहले जब बागड़ देशमें भयंकर अकाल पड़ा और लोग अन्नके एक-एक दानेके लिये त्राहि-त्राहि करने लगे तो अपने योगबलसे अन्नके भण्डार खोल दिये, जिसे जितना चाहिये मुक्त हस्तसे अन्न प्रदान किया गया। वर्षाके उपरान्त नयी फसल आनेतक यह क्रम अनवरत चलता रहा। सम्प्रदाय-प्रवर्तनके बादमें एक बार ऐसे अवसरके उपस्थित होनेपर जाम्भोजीने मनुष्यों और मवेशियोंकी प्राणरक्षा भी की थी।

अपनी नेक कमाईके दसवें हिस्से (दशमांश)-के दानको सम्प्रदायमें अनिवार्य माना गया है। जाम्भोजीने कहा है कि तुम अपनी प्रिय वस्तु (धनादि)-का दान क्यों नहीं करते, तुम कृपणता क्यों करते हो? दान नहीं करनेपर तुम्हें हानि उठानी पड़ेगी और दान करनेपर तुम्हारे लिये लोक और परलोक—दोनों जगह आनन्द हो जायगा—

वस्तु पियारी खरचो क्यूं नाहीं किहिं गुण राखो टाली।
खरचे लाहो राखे टोटो बिवरस जोय निहाली॥

(सबद ८६)

एक सबदमें तो जाम्भोजीने लोभवश दशमांशको दान न करके घरमें रखनेवालेको पापी और नरकगामी बताया है—

गुरू गहणा जो लेवै नाहीं दशबंध घर बो साचसैं।
आप थापी महापापी दग्धी परलै जायसैं॥

(सबद ९०)

दशमांश, जिसे सम्प्रदायमें दसबन्धके नामसे कहा है, सम्प्रदायके अन्य सन्त, कवियोंने जाम्भोजीकी आज्ञा मानकर इसे अपनी रचनाओंमें दोहराया है और लोगोंको दान करनेके लिये प्रेरित किया है। विभिन्न कवियोंकी कुछ रचनाओंकी निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

१. *'जीव जगाति दया करि दीजै उदग्यौ दसबन्ध टाली।'* (परमानन्दजी)

२. *'साइयां बाहरि काढि, दसबंध तो करणां।'* (सिवदासजी)

३. *'दसबंध देवतणौ कायं राखो, दरगै लेखो लीजै।'* (अज्ञात)

४. *'दसबंध खरच्यौ गुर को कवल संभालो, निरमल हुवै त पात सही।'* (अज्ञात)

५. *'देवजीको दसबंध खरच्यो नाहीं, राखो विसंन विसोवो।'* (रेड़ोजी)

६. *'दसबंध जीव जगाति चुकावौ, हिरदै हरि सिंवरीजै।'* (केसौजी)

निष्काम भावसे और सुपात्रको दिया हुआ दान ही जाम्भोजीको मान्य है। दानके प्रतिफलमें किसी प्रकारकी चाहना रखना उन्हें अभीष्ट नहीं है। उनके अनुसार कुपात्रको दिया हुआ दान उसी प्रकार व्यर्थ चला जाता है, जैसे रातके समय कोई चोर धनको चुराकर भाग जाय। कुपात्रको दिया हुआ दान बंजर भूमिमें बोये हुए बीजके समान निष्फल चला जाता है, सुपात्रको दिया हुआ दान उत्तम खेतमें डाले गये बीजके समान अमृतफल देनेवाला होता है। सुपात्रके मिलनेपर दान देनेसे चूकना नहीं चाहिये, दान अपने सामर्थ्यके अनुसार ही देना चाहिये। थोड़ी वस्तुमेंसे थोड़ी दे देनी चाहिये, पर बिलकुल मना नहीं करना चाहिये। जो भी वस्तु निष्काम भावसे भगवदर्पण कर दी जाती है, वह अनन्त गुणा होकर वापस मिलती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुपात्र कूं दान जु दियो जाणे रैन अंधेरी चोर जु लियो।
चोर जु लेकर आकर चढियो कह जिवड़ा तैं कैनें दियो॥
दान सुपाते बीज सुखेते अमृत फूल फलीजै।
थोड़े माहिं थोड़े रो दीजै होते नाह न कीजै॥
जो जो नांय विसन की दीजै अनंत गुणा लिख लीजै।

(सबद ५६)

महाभारतकालमें हुए महान् दानी कर्णकी जाम्भोजीने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने कहा—'कर्णके समान कोई दानी नहीं हुआ, जिसने अपनी भुजाओंमें भर-भरकर स्वर्णका दान किया। राजा कर्णके बिना प्रतिदिन 'सवामण' सोनेके दानका क्रम कौन चला सकता है, ऐसा दानी राजा और कौन हो सकता है! ऐसे दानवीरने अपनी मृत्युके उपस्थित होनेपर भी अपने दान-धर्मको निभाया और श्रीकृष्णके माँगनेपर युद्धभूमिमें अपने हीरेका दाँत तोड़कर दे दिया'—

सवामण सोनो करणे पाखो किणपर वाह चलाइये।
करण पखो किण कंचन दीन्हों राजा कवन कहाइये।
रिण ऋध्ये स्वामी करण पाखो कुण हीरा डसन पुलाइये॥

(सबद ३०)

एक अद्वितीय दानीके रूपमें कर्णकी जाम्भोजीने प्रशंसा अवश्य की है, पर कर्ण एक सामर्थ्यवान् राजा था, जाम्भोजीने उन लोगोंको भी निराश नहीं किया; जो उदार और विशाल हृदयके धनी तो अवश्य हैं, पर उनके पास दूसरोंको देनेके लिये कुछ नहीं है, इसके लिये जाम्भोजीने इसी सबदमें आगे विदुरका प्रसंग उठाया है। विदुरका निष्काम-भाव जाम्भोजीको अति प्रिय है। कर्णके दानका फल तो स्वर्गलोककी प्राप्ति और वहाँ अपने पुण्य-भोगके बाद वापस जन्म-मरणके चक्करमें आना पड़ता है, पर विदुरजी जो दान देते हैं, उसमें आवागमन नहीं होता, वह परमपदकी प्राप्ति करा देता है। दानकी महत्ता संख्यामें नहीं है, यहाँ जाम्भोजीका संकेत भौतिक वस्तुओंसे अधिक स्वयंको ही दान (भगवदर्पण) करनेके महत्त्वकी तरफ है। धनादिका दान करनेवालेके मनमें कहीं सूक्ष्म अहंकारको जगह मिलनेकी सम्भावना रह जाती है, पर निष्काम भक्त इससे सर्वथा मुक्त होता है। ऐसे उदाहरणके लिये विदुरसे उपयुक्त पात्र और कौन हो सकते हैं—

किहिं गुणै बिदरो पार पहूंतो करणै फेर बसाइये।
मनमुख दान ज्यूं दीन्हो करणै आवागमण जु आइये।
गुरु मुख दान जु दीन्हों बिदरे सुर की सभा समाइये॥

(सबद ३०)

जाम्भोजीने कहा—'दान देते समय सुपात्रको प्राप्त करनेका जितना महत्त्व है, उतना ही महत्त्व दाताके भावोंकी पवित्रता और उसकी कमाईकी शुद्धताका भी है। तीर्थोंमें जाकर करोड़ों गायोंके दान करने, पाँच लाख घोड़ोंके दान करने, अन्न-धन एवं उत्तम वस्त्रोंका दान करने, हाथियोंका दान करने और अपने सामर्थ्यसे अधिक दान करनेपर भी आपके मन, वचन और कर्म पवित्र नहीं हैं, आप वाद-विवाद, अहंकार और विषय-वासनाओंमें लिप्त हैं तो आपका यह इतना भारी दान भी कल्याण नहीं कर सकता। जीवका कल्याण तो भगवत्कृपासे ही सम्भव है'—

कोट गऊ जे तीरथ दानों पंच लाख तुरंगम दानों।
कण कंचन पाट पटम्बर दानों गज गेवर हस्ती अति बल दानों॥
जां जां बाद अति अहंकारी लबद सवादी।
कृष्ण चरित बिन नाहिं उतरिबा पारूं॥

(सबद ३२)

जाम्भोजीके समयमें सम्प्रदायमें भी एक ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ, जब उनके सैंसा नामक गृहस्थ शिष्यने स्वयंके मुखसे अपनेको बड़ा दानी बताया तो उसके अहंकार-भंजनके लिये जाम्भोजी गुप्त वेषमें उसके घर भिक्षा लेनेके लिये गये। सैंसा और उसके घरवालोंने जाम्भोजीको पहचाना नहीं और तिरस्कारपूर्वक बासी खिचड़ीका बर्तन उनके भिक्षापात्रपर जोरसे पटका, जिससे वह भिक्षापात्र खण्डित हो गया। वस्त्र माँगनेपर फटा-पुराना वस्त्र दिया। दूसरे दिन 'समराथल' पर सबके सामने जब वे वस्तुएँ दिखायी गयीं तो सैंसा बहुत लज्जित हुआ और क्षमा-याचना करता हुआ कहने लगा—प्रभु! मैंने आपको पहचाना नहीं था। जाम्भोजीने यहाँ एक बहुत मार्मिक बात कही कि 'भूखे पेटको अन्न और तनको ढकनेके लिये वस्त्र देते समय पहचान करनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है।' सन्त हरजी वणियालने इस घटनाका अपनी रचनामें बहुत ही रोचक वर्णन किया है, जो सम्प्रदायमें जागरण आदिके अवसरपर विशेषकर गायी जाती है।

बिश्नोई सम्प्रदायके 'जाम्भाणी-साहित्य' के प्रतिष्ठित रचनाकार सन्त श्रीकैसोजीने अपनी एक 'साखी' में विभिन्न युगोंमें हुए बड़े-बड़े दानियोंका सहर्ष वर्णन किया है। पूर्व कालमें हुए दानियोंके अद्भुत कार्योंका स्मरण करके पाठकोंको दान-धर्मका प्रबोध करानेवाली यह उत्तम रचना है। जोशीले अन्दाजमें गायन करनेपर यह श्रोताओंपर स्थायी प्रभाव छोड़ती है। 'साखी' का कुछ अंश इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जग मे तो दातार बड़ी विध सूं सुणो विचार।
बलिराजा चकवै हुयो दान तणै उपकार॥
मान्धाता महि ऊपरे अमर हुवो मण्डलीक।
हाथ द्वादश लूगड़ो दीन्हों हरि के हेत।
दुर्योधन दीठो दुनी जनम्यो छत्र समेत॥
एक अधोड़ी दान दीवी कर पुरोहित सूं प्रीत।
संसार सुण साको कियो हुयो विक्रमा जीत॥
भूपति पोख्यो बाघ नै विध सूं विप्र विचार।
दान दियो राजा मोरध्वज आधा अंग उतार॥
सींचाण सींवर सन्तोषियो तन काप्यो करधार।
अस्थि त्वचा दोनो दियो देव कह्यो दातार॥
पोहमी प्रकट बादशाह तास समौं सैंतूल।
हेतम हेत कर सौंपिया कीयो कौल कबूल॥
रावण शिव नै सौंपिया दश मस्तक दश बार।
नवग्रह रावण बांधिया दान तणै उपकार॥
पहिले परमल सींचियो ऊपर सीधो सींच।
साख रही संसार में दीयो दान दधीच॥

अर्थात् 'संसारमें दातार (दानी) ही बड़ा माना गया है। दानके बलपर ही बलि चक्रवर्ती राजा हुए। मान्धाताका धरतीपर अमर यश दान-धर्मके कारण ही हुआ। पूर्व जन्ममें दुर्योधनने किसी अत्यन्त गरीबको बारह हाथ कपड़ा दान किया था, जिसके कारण उसका जन्म अगली बार राजाके घर हुआ। पिछले जन्ममें किये दानका ही फल था कि अगले जन्ममें विक्रमादित्य आश्चर्यजनक कार्य करनेवाले राजा हुए। ब्राह्मणके माँगनेपर राजा मोरध्वजने अपना आधा अंग काटकर बाघको खानेके लिये प्रस्तुत कर दिया। राजा शिबिने एक पक्षीके लिये हाथमें कटार पकड़कर अपनी अस्थि और त्वचा काटकर दान कर दिया, जिसपर देवताओंने उनकी प्रशंसा की। इस धरतीपर अनेक ऐसे राजा हुए हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिज्ञाको निभानेके लिये अपना सर्वस्व दान कर दिया। रावणने दस बार अपना मस्तक काटकर शिवको भेंट किया, जिसके फलस्वरूप नवग्रह उसके अधीन हो गये। ऋषि दधीचिने देवताओंका हित करनेके लिये अपने शरीरपर आटे, छाछ और नमकका लेप करके चमड़ी गायोंको चटवा दी और हड्डियाँ देवताओंको दान कर दी।'

जाम्भोजीने अपने समयमें विभिन्न स्थानोंपर घूम-घूमकर दसबन्ध दान करनेका उपदेश दिया। जीवमात्रके प्रति दयाभाव रखनेवाले बिश्नोई सम्प्रदायमें सैकड़ों बार ऐसे अवसर उपस्थित हुए हैं, जब इन लोगोंने वृक्षों और वन्य जीवोंकी रक्षा करते हुए सहर्ष अपने प्राण देकर चराचर प्रकृतिको अभयदान दिया है।

चाँदीके वरकके नामपर मिठाइयोंमें गोमांस और जहर

बाजारमें मिठाइयोंपर नजर आनेवाला चाँदीका वरक आपकी सेहत और आपके बच्चोंकी दिमागी सेहतके लिये बेहद खतरनाक है। चाँदीके वरकमें लिपटी मिठाई कैंसर-जैसी बीमारीका घर तो है ही, लोगोंकी धार्मिक भावनाओं और आस्थाओंके साथ खिलवाड़ भी है। इण्डियन टॉक्सिकोलॉजी रिसर्च सेण्टर और पी०जी०आईके कैंसर विभागद्वारा जून २०१० में किये गये गहन अध्ययनके मुताबिक कोलकाताके बाजारमें ज्यादातर मिठाइयोंपर चढ़ाये गये वरकमें लेड (सीसा), क्रोमियम और घटिया किस्मका एल्यूमिनियम पाया गया। सीसेका असर दिमागपर पड़ता है, इससे बच्चोंकी याददाश्त कमजोर होती है और उनका आई०क्यू० लेवल कम हो जाता है। इसी तरह कैडमियम फेफड़ोंमें कैंसरका कारण होता है।

कैसे बनता है वरक—चाँदीका वरक बनानेकी प्रक्रिया ऐसी है कि जानकारीके बाद वरक लगी मिठाइयोंका सेवन करनेवाला कोई भी व्यक्ति भीतरसे हिल जायगा। चाँदीके पतले-पतले टुकड़ोंको गायों और बैलोंकी आँतमें लपेटकर एकके ऊपर एक (परत-दर-परत) रखा जाता है कि एक खोल बन जाय। फिर इस खोलको लकड़ीके हथौड़ोंसे तबतक पीटा जाता है, जबतक चाँदीके पतले टुकड़े फैलकर महीन वरकमें न बदल जायँ। गोवंशके पशुओंकी आँतकी सबसे बड़ी खूबी होती है कि यह काफी मुलायम और मजबूत होती है, जिसकी वजहसे जल्दी नहीं फटती है। इसीलिये इसका उपयोग किया जाता है।

वरक बनानेका औजार—पशुकी आँतकी पतली-पतली परतोंको वरक बनानेके औजारके रूपमें इस्तेमाल किया जाता है। ये झिल्लियाँ इतनी मजबूत होती हैं कि कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दफा कूटनेके बाद भी फटती नहीं हैं। इन्हीं झिल्लियोंके बीचमें चाँदीका टुकड़ा रखनेके बाद कूटकर उसका आकार बढ़ाया जाता है। जानकारोंके मुताबिक १० ग्राम चाँदीमें १६० वरक बनाये जाते हैं। गायों और बैलोंको कसाईखानेमें मारनेके बाद खूनसे लथपथ उनकी आँतको बाहर खींच लिया जाता है। उसे साफकर उपयोगमें लाया जाता है। गाय या बैलकी आँतकी औसत लम्बाई ५४० इंच और उसका व्यास ३ इंच होता है, जिसे काटकर ५४० इंच लम्बा और लगभग ९.५ इंच चौड़ा टुकड़ा तैयार किया जाता है। जिसे टुकड़ोंमें काटकर ९ इंच लम्बे और ९.५ इंच चौड़े ६० टुकड़े तैयार किये जाते हैं। इसी तरह १७१ टुकड़ोंकी एक डायरी बनती है और उनके बीच ३ इंच चौड़े और ५ इंच लम्बे चाँदीके टुकड़े रखकर पीटा जाता है। १७१ पन्नोंकी एक डायरी बनानेके लिये ३ गायोंकी अँतड़ियोंका उपयोग किया जाता है। एक डायरीसे ४८००० वरक बनते हैं। यानी एक गायको मारकर उसकी अँतड़ीसे १६००० वरक बनाये जाते हैं। इन अँतड़ियोंको जिस जिल्दके भीतर सिलते हैं, उन्हें गाय या बछड़ेके चमड़ोंसे बनाया जाता है। एक डायरीमें औसतन २३२ वर्ग इंच चमड़ा लगता है और एक गायमें २६०० वर्ग इंच चमड़ा निकलता है। यानी उससे लगभग १० डायरियोंकी जिल्दें बन सकती हैं।

पशुओंकी खाल और आँतसे बनी परतें कोलकातासे मँगवायी जाती हैं और इन्हें चारों ओरसे समान आकारमें काटकर औजार बनाया जाता है। कुछ रसायनोंके घोलमें पूरी रात रखनेके बाद इनपर चमड़ेका कवर चढ़ाया जाता है। यह नोटबुक औजार ४ से ६ हजार रुपयेतक उपलब्ध हैं। इसे ६ से ८ महीनेतक काममें लिया जा सकता है। वरकको अगर माइक्रोस्कोपसे देखा जाय तो उसमें खून और मल दिखायी पड़ सकता है।

कैंसर-विशेषज्ञोंके अनुसार धातु चाहे किसी भी रूपमें हो, ज्यादातर कैंसर ही पैदा करती है। इससे सबसे ज्यादा नुकसान लीवर, किडनी और गलेको होता है। इससे पाचन-प्रक्रियापर प्रतिकूल असर तो पड़ता ही है, नर्वस सिस्टम भी प्रभावित हो सकता है।

एक अनुमानके मुताबिक देशमें सालाना लगभग २७५ टन चाँदीके वरककी खपत होती है, जिसे बनानेके लिये ५१६,००० गायों और १७२०० बछड़ोंका वध होता है। इसे बनानेका काम मुख्य रूपसे कानपुर, जयपुर, अहमदाबाद, सूरत, इन्दौर, रतलाम, पटना, भागलपुर, वाराणसी, गया और मुम्बईमें होता है।

कानून तो बना ही है—हालाँकि चाँदीके इस वरकको लेकर कानून भी बना हुआ है। फूड रेगुलेटरी अथॉरिटीके मुताबिक चाँदीके वरकमें ९९.९ फीसदी चाँदी होनी चाहिये। संस्थाने यह जाननेके लिये रिसर्च किया कि चाँदीके वरकमें ९९.९ फीसदी चाँदीके साथ ०.१ फीसदी कौन-सी धातु मिलायी जाती है। वैज्ञानिकोंने इसके लिये कुल १७८ नमूने लिये। जाँच करनेपर पता चला कि ज्यादातर नमूनोंमें चाँदी ही नहीं थी। मिठाइयोंमें इस्तेमाल होनेवाले जहरीले वरकके खुलासेसे वैज्ञानिक दंग हैं। ज्यादे-से-ज्यादे मुनाफेके लालचमें जहर बेचा जा रहा है और सरकार आँख मूँदे है।

चाँदीके वरकको बनानेमें अगर गाय-बैलकी आँतोंका उपयोग हो रहा है तो यह शाकाहारियों और धार्मिक भावनाओंके लोगोंके लिये घोरतम पापके समान है। खाद्य वस्तुओंपर इसका प्रयोग वर्जित होना चाहिये। [सन्मार्ग (कोलकाता) समाचार-पत्रसे उद्धृत] **[प्रेषक—श्रीगौरांगजी अग्रवाल]**

मनमें सद्भावनाओंको भरे रखो, सबका भला चाहो, सबका कल्याण चाहो, सबमें परमात्माकी भक्ति फैलने, सबमें सात्त्विक भाव बढ़ने और सबमें प्रेम-विस्तार होनेकी भावना करो। विश्वास करो—तुम्हारे दृढ़ भावसे तुम्हारी प्रबल शुद्ध इच्छाशक्तिसे तुम्हारी भावनाएँ, तुम्हारे संकल्प सत्य हो सकते हैं; तुम अपनी सद्भावनासे अनेक दुःखियों, रोगियों, अज्ञानियों और पापियोंको दुःखमुक्त, रोगमुक्त, अज्ञानमुक्त और पापमुक्तकर उन्हें सुखी बना सकते हो। विश्वास करो—तुम अपनी सद्भावनाओंसे, सद्विचारोंसे, सात्त्विक संकल्पोंसे अपने आस-पास ही नहीं—सारे भूमण्डलपर सद्भावना, सद्विचार और सात्त्विक संकल्पोंका विस्तार कर सकते हो। स्वयं परम सुखी हो सकते हो और जगत्के लोगोंको सुखी बना सकते हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान-सम्बन्धी भाव-बोधके कुछ प्रेरक-प्रसंग

(स्वामी डॉ० श्रीविश्वामित्रजी महाराज)

दीनको, दु:खीको, अपाहिजको, निस्सहायको, अनाथको, भूखे-प्यासेको अर्थात् आवश्यकतावालेको अन्न-जल देना, वस्त्र देना, आश्रय देना और स्थान देना दान-धर्म कहा गया है। किसी अभावग्रस्तके अभावको और जरूरतमन्दकी जरूरतको द्रव्य एवं अन्य प्रकारकी सहायतासे पूरा कर देना दान माना जाता है। दान देनेवालेको दानी या दाता कहा जाता है और लेनेवालेको जरूरतमन्द। यह आवश्यक नहीं कि जरूरतमन्द भिखारी ही हों—भिक्षा-दान माँगनेवाले हों, सच्चे दानी उन विशिष्ट पात्रोंको खोजते हैं, जो माँगते नहीं, परंतु हैं जरूरतमन्द। ऐसोंको देना मानुषी कर्तव्य—मानव-धर्म है, जिसके पालन करनेमें छोटे-बड़ेका कोई भेद-भाव नहीं होता।

भारतीय सनातन संस्कृति सदासे ही त्याग-प्रधान रही है। दानके मूलमें त्यागकी ही भावना है। दानी होनेके लिये हृदय संवेदनशील हो, दयालु हो, उदार हो और त्याग-प्रधान हो। अन्न, वस्त्र, धन अर्थात् वस्तुओंके दानको ही दान नहीं समझना, उत्तम परामर्श, पथ-प्रदर्शन भी दान है। भूदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान, ज्ञानदान, विचारदान आदि दानके विभिन्न प्रकार हैं। तीर्थस्थानोंपर, शुभ पर्वोंपर, सूर्य-चन्द्र-ग्रहणके समय, संक्रान्ति, पूर्णिमा, अमावास्यापर एवं सत्संग-स्थलोंपर दान देना अनन्त गुना पुण्य-फल देता है। आवश्यकता होनेपर किसी भी समय, किसीको भी दान देना धर्म है। कलियुगमें तो एकमात्र दानको ही परम कल्याणकारी साधन बताया गया है। ऐसा धर्मराज युधिष्ठिरको भीष्मपितामह पूछनेपर बताते हैं। प्रश्न था—'जिसकी मृत्यु निकट हो, उसका परम हितैषी मित्र कौन है? क्या यश? क्या धन-दौलत, विद्या या कुटुम्बी'? उत्तर मिला—'नहीं राजन्! ऐसे व्यक्तिके लिये दान ही परम हितैषी मित्र है। कलियुगमें दानसे भविष्य उज्ज्वल एवं उजागर होगा।' प्रजापतिने 'द' अक्षरके अन्तर्गत सकल मानव-जातिको दान देनेका अर्थात् 'दिया करो' का ही उपदेश दिया था। (बृह० उप० ५।२।२)

एकबार महारानी सत्यभामाने देवर्षि नारदजीसे कहा—'कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे प्रत्येक जन्ममें मुझे श्रीकृष्ण ही पति मिलें।' नारदजीने कहा—'आप जिस वस्तुका इस जन्ममें दान करेंगी, वही अगले जन्ममें मिलेगी। अत: श्रीकृष्णका दान करें।' सत्यभामाने श्रीकृष्णको नारदजीको दानमें दे दिया। नारदजीने कहा—'देवी! दान दी हुई वस्तु मेरी, श्रीकृष्ण अब मेरे हैं।' यह जानकर राजमहलमें कोलाहल होने लगा। देवर्षिने कहा—'वापस लेना चाहती हैं तो इनके तौलका सोना मुझे दे दें।' सभी रानियोंके सब आभूषण श्रीकृष्णको तौल न सके, श्रीकृष्णका पलड़ा भारी। तभी पटरानी रुक्मिणीने विनयपूर्वक कहा—'प्रभु सोनेसे नहीं, प्रेमसे तौले जाते हैं।' एक तुलसीका पत्ता लिया, उसपर 'राम' लिखा और उसे दूसरे पलड़ेपर रख दिया। यह पलड़ा भारी और श्रीकृष्णका पलड़ा हलका होकर ऊपर उठ गया। परमात्माका नियम सर्वविदित है, सामान्यत: जो द्रव्य, वस्तु, पदार्थ दानमें दी जाती है, वही दाताको १०-२० गुना होकर मिलती है।

एक वृद्धा पेड़के नीचे तपस्या करती रहती, पासमें ही झोपड़ी थी। कोई सगा-सम्बन्धी नहीं, सदा नाम-खुमारी चढ़ी रहती, प्रियतमके ध्यानमें सदा मस्त रहती। न माँगती, न माँगनेकी इच्छा ही रखती और न ही न देनेवालोंपर गिला-शिकवा ही करती—पूर्ण सन्तोष। एक दिन एक महात्मा पधारे, कहा—'देवी! भूख लगी है।' वृद्धा रोज अपने लिये दो रोटियाँ बनाती। एक दे दी। खा ली। पूछा—'और चाहिये?' 'हाँ।' दूसरी भी दे दी। महात्मा तृप्त, वृद्धा भी तृप्त, परंतु भूखी। महलकी छतपर खड़ी रानी यह दृश्य देख रही थी। तत्काल सेविकासे कहा—'वृद्धा भूखी है, उसे बीस पूड़ियाँ दे आओ।' तात्पर्य है कि परमात्मा अपने नियमके बहुत पक्के हैं कि प्रभुको या प्रभुके नामपर दी गयी वस्तु दस-बीस गुना अधिक होकर लौटती है और किसी-किसीको तो असंख्य गुणा होकर मिलती है।

श्रीरामचरितमानसमें उत्कृष्ट दानके प्रसंगसे बहुमूल्य संकेत मिलते हैं। महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथके पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराम और लक्ष्मणजीको माँगने गये—

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

(रा०च०मा० १।२०७।१०)

याचक एक मुनि, तपस्वी, ज्ञानी एवं मननशील हैं। अतः किसी सांसारिक वस्तुका दान नहीं माँगा, केवल प्रभुको पानेकी उत्कण्ठा—वह भी यज्ञ-विनाश करनेवाले राक्षसोंके हननहेतु, यज्ञ-पूर्ति तथा जन-कल्याणहेतु। ममताके कारण—पुत्र-स्नेहके कारण राजा दशरथ मुनिसे अरज करते हैं—

मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥

(रा०च०मा० १।२०८।३, ५, ८)

महर्षि वसिष्ठ राजाको समझाते हैं—

'इन उच्चकोटिके महात्माको पुत्रोंका दान देकर लाभ-ही-लाभ होगा।' लाभपर तो कृपण भी दान देनेको तैयार हो जाता है। दो पुत्र दिये, लौटे चार पुत्र एवं चार बहुएँ। गुरु-सान्निध्यका यही फल कि व्यक्ति ममता एवं आसक्तिसे मुक्त होनेकी दिशामें अग्रसर होता है तथा उसमें दान-वृत्ति जाग्रत् होती है। 'दान' देनेमें एक क्रम है—सबसे पहले वस्तुका दान, तदुपरान्त वस्तुसे ममताका दान और तत्पश्चात् 'मैं' दान देनेवाला—इस अहंताका दान। तब दान होता है कल्याणकारी। देखें, प्रभु रामका दान कैसा? विभीषण आये और बोले—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

(रा०च०मा० ५।४५)

विभीषणके दीन वचन सुननेपर लक्ष्मणजीसहित गले मिले और अपने पास बैठाकर श्रीरामजी ये वचन बोले—

कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥

(रा०च०मा० ५।४६।४)

विभीषण 'लंकेश' सुन सकुचाये और कहा—

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥

(रा०च०मा० ५।४९।६)

'महाराज! स्वीकारता हूँ, पहले इच्छा थी, अब प्रभुके चरणोंकी प्रीति-रूपी नदीमें बह गयी, अब बिल्कुल नहीं।' तब प्रभुने कहा—

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥

(रा०च०मा० ५।४९।९)

'मित्र! क्या मैं इसलिये दे रहा हूँ कि लंकाके राज्यकी तुम्हें इच्छा है? नहीं ऐसा नहीं। सखे! यदि इच्छा होती तो राज्य छोड़ क्यों आते?' 'फिर क्यों दे रहे हैं प्रभु?' 'मित्र! तुम, भले ही इच्छाओंसे ऊपर उठ गये हो, पर मैं नहीं उठा हूँ। धनसे भी बड़ी इच्छा है यश-कीर्तिकी। मेरे विषयमें प्रचार है, जब कोई श्रीरामके पास जाता है, तो राम जरूर देते हैं। ऐसेमें यदि राज्य स्वीकार न करोगे, तो मेरा यश नष्ट होगा। अतएव मेरे यशकी रक्षाके लिये कृपापूर्वक स्वीकार कर लो।' यह कहकर प्रभु श्रीरामने लक्ष्मणको समुद्रजलसे विभीषणका राजतिलक करनेका आदेश दिया और लक्ष्मणने उनका राज्याभिषेक कर दिया। इस दानपर मुग्ध होकर देवतागण पुष्पोंकी वर्षा करते हैं। प्रभुको संकोच है कि मैंने कुछ भी तो नहीं दिया। वस्तुतः 'अहं' से मुक्त दान ही श्रेष्ठतम दान है। यहाँ इसी भाव-बोधके कुछ अन्य प्रसंग प्रस्तुत हैं—

(१)

दक्षिण भारतके एक प्रसिद्ध आश्रमकी सच्ची घटना है—एक निर्धन तथा निर्बल ग्रामीण जो मजदूरी-मेहनत तो करता, पर अपने बड़े परिवारको भर-पेट रोटी देनेमें असमर्थ था। आज इस आश्रममें सन्त महाराजके पास गया, अपनी व्यथा सुनायी—'हम प्रायः भूखे सोते हैं, कोई नियमित काम-धन्धा नहीं, परिवारमें अन्य कोई सदस्य कमानेयोग्य नहीं, मजदूरी करता हूँ, जब काम मिल जाता है, थोड़ा-बहुत खा-पी लेते हैं, अन्यथा जल पीकर ही निर्वाह करते हैं।' सन्तका दयालु हृदय द्रवित हो उठा, तुरन्त कहा—'पैसेसे तो जरूरत अस्थायी रूपसे ही पूरी होगी, उससे क्या बनेगा? अतः एक दुधार गाय ले जाओ, अच्छा दूध देती है, दूध बेचकर पेट पालो।' व्यक्तिने कहा—'स्वामीजी! जहाँ रहता हूँ, वह घर अपना नहीं, किसीका है, वहाँ गाय बाँधनेका स्थान नहीं।' 'भाई! चिन्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न करो, गाय बाँधनेके लिये स्थान बनवा दिया जायगा।' 'परंतु महाराज! मेरे पास तो घास-चारा खरीदनेके लिये फूटी कौड़ी भी नहीं।' सन्तने कहा—'आश्रममें घास बहुत है, हरी भी और सूखी भी, एक-एक गट्ठर रोज ले जाया करो।' एक सप्ताहमें आश्रमने स्थान तैयार करवा दिया, घास भी रोज ले जाता, कुछ दिन बाद व्यक्ति पुन: सन्तके पास आया और कहा—'गाय दूध ठीक दे रही है, परंतु बेचनेकी समस्या, कभी खरीदनेवाला नहीं मिलता या कभी कीमत सही नहीं मिलती, हम ढेर सारे दूधका क्या करें?' सन्तने सहर्ष कहा—'आप कलसे दूध आश्रमको बेचा करें, उचित मूल्य मिलेगा।' कैसा अनूठा दान! अपनी ही गाय, अपनी ही घाससे दूध, पर खरीदकर, मूल्य चुकाकर आश्रम प्रयोग करता है। धन्य हैं ऐसे बुद्धिमान् महादानी!

(२)

एक कर्मचारीके घर बालकने जन्म लिया। पैदा होते ही माँ मर गयी, पिता दु:खी, कौन पालेगा? उन्हीं दिनों एक अहीरकी पत्नीको भी पुत्र-प्राप्ति हुई, पता चला तो पतिसे कहा—'रमेश साहबके बालकको भी ले आओ, दोनोंको पालूँगी।' दोनोंको साथ-साथ दूध पिलाया, जब बड़ा हुआ—पढ़नेयोग्य तो पिताको लौटा दिया। पढ़कर एक अस्पतालमें कम्पाउण्डर नियुक्त हो गया। अहीरकी पत्नी बीमार हो गयी, अस्पतालमें दाखिल करवायी गयी, वहाँ खूनकी आवश्यकता पड़ी। कम्पाउण्डरका खून मैच कर गया। ठीक होकर घर आ गयी। कम्पाउण्डर मिलने आया, बोला—'आप मेरी पालनेवाली माँ हैं, ये दो हजार रुपये रख लें, मेहनत एवं ईमानदारीकी कमाई है। यह खून आपका ही है, आपके ही दुग्ध-दानसे बना हुआ है।' दानकी महिमा—इस दानी माँकी कथासे वर्णन की जाती है।

(३)

एक वीर सेठकी करनी याद आती है—एक सन्तसे विनयपूर्वक उपदेश देनेकी प्रार्थना की। 'लाला! मायाका नाश तो एक दिन होगा ही, काया भी अमर नहीं, केवल सत्कर्म अमर हैं। पूँजी परमेश्वरकी दी हुई है, इसे परमार्थमें खर्च करो और सत्कर्मोंकी सच्ची पूँजी एकत्रित करो, अवसर चूकोगे तो पछताओगे।' सेठ अति प्रभावित, कहा—'बाबा! सारी सम्पत्ति भूखसे तड़फड़ाते, मरते लोगोंको जीवित रखनेमें लगा दूँगा।' औरंगजेबके शासन-कालकी घटना है, गुजरात तथा महाराष्ट्रमें भीषण अकाल। भयानक दुष्कालमें जनता अन्नके एक-एक दानेको तरस रही थी। जगह-जगहपर मुर्दे-ही-मुर्दे दिख रहे थे। सेठ धनविहीन हो गये, तिजोरियाँ रिक्त हो गयीं, पर जीवनदान देनेका सन्तोष-सुख एवं आनन्द अपार है लालाके हृदयमें। एक दिन प्रात: प्रभुके ध्यानमें मग्न बैठे थे, एक बंजारेने द्वार खटखटाया, सिरपर गठरी, श्रद्धापूर्वक सेठको मस्तक नवाया, सिर झुकाया, कहा—'मेरा नाम रघुवर है, इस समय आपके ध्यानमें बाधा पड़ी है, कृपया क्षमा करें।' 'भाई बंजारे! इस घरको अपना ही समझो, कहो क्या आज्ञा है?' 'मुझे दूर जाना है, गठरियाँ रख लो, लौटते समय ले लूँगा।' चल दिया बंजारा और लाला गठरियाँ गिनकर, सँभालकर रख रहे थे तो एक पत्र चिपका हुआ मिला, लिखा था—'सेठजी! मायाका मोह छोड़कर आपने जनसेवामें सारी पूँजी लगा दी, मौतके मुखसे लोगोंको निकाला, मैं अति प्रसन्न हूँ। तुम मुझे पहचान नहीं सके; मैं वही हूँ, जिसका तुम अभी ध्यान कर रहे थे। अपार धन-सम्पत्तिसे भरी गठरियाँ सब तुम्हारी हैं, स्वीकार करना। दानमें दी हुई वस्तुएँ एवं सामग्री ही तुम्हें वापस दी गयी है।' सेठके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु, बंजारेका पीछा किया, परंतु 'राम' कहाँ हाथ लगते हैं, वे तो अपना काम करके चले गये। जो बाँटना चाहो, देना चाहो, उसे पहले अर्जित एवं संचित करनेकी जरूरत है।

रावणकी मृत्युपर विभीषण रोये और कहने लगे—'मेरे भाईने सम्पत्ति तो प्रचुर एकत्रित की, परंतु प्यारकी पूँजी नहीं। आज हे राम-प्रभु! मैं ऐसी सम्पत्तिका अधिकारी बन बैठा, लगता है भारी अपराध कर रहा हूँ, सिरपर भारी बोझ है।' राघवेन्द्रसरकार समझाते हैं—'विभीषण! सम्पत्ति बोझ तब; जब इसे सत्कार्योंमें—जन-कल्याणके लिये न लगाया जाय। हमारा देश संग्रहके कारण नहीं, त्यागके कारण पूजा जाता है। भारतीय संस्कृतिके अनुसार जितना जिसने बाँटा, उतना उसका सम्मान, उतना वह महान्।' इसीलिये वेदका उपदेश है—सैकड़ों हाथोंसे उपार्जन करो और हजार हाथोंसे उसे बाँट दो। (अथर्व० ३। २४। ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

क्या नाम दूँ इस दानका?

ठीकसे तो याद नहीं है, सन् १९७८ या ७९ के जाड़े शुरू हो चुके थे, शायद नवम्बरके आखिरी सप्ताहकी बात होगी। मेरी दूकानके कार्यालयके बाहर एक फकीर बैठा था और भीखके लिये गुहार लगा रहा था। ४ या ५ बजे शामका समय रहा होगा। मैं कार्यालयके बाहर खड़ा था। अचानक मैंने देखा कि एक स्त्री, जिसकी आयु कोई २५-२६ वर्षकी रही होगी, दूकानके सामनेसे गुजरी। उसके कपड़े फटे तथा काफी मैले थे। उसके साथ तीन बच्चे थे। एक बच्चा करीब ४-६ माहका रहा होगा, जिसे उसने गोदमें ले रखा था। दूसरे बच्चेकी उम्र ३-४ वर्ष रही होगी, उसकी उसने अँगुली पकड़ रखी थी और तीसरा बच्चा कोई ५-६ वर्षका रहा होगा, उसने माँकी धोती पकड़ रखी थी। तीनों बच्चोंके शरीरपर सिर्फ एक-एक मैली कमीज थी। नीचे कुछ नहीं था। पैरोंमें चप्पल-जूते भी नहीं थे। देखनेसे ही पता लगता था कि बेहद गरीब हैं। वह स्त्री भी नंगे पैर थी। बहरहाल वह उस फकीरके पाससे गुजरती हुई करीब १०-१२ कदम आगे बढ़ गयी। अचानक वह ठिठकी, वापस मुड़ी। जो बच्चा अँगुली पकड़कर चल रहा था, उससे उसने हाथ छुड़ाया। फिर अपनी मैली-फटी धोतीके किनारेपर बँधी गाँठको खोला। उस छोटी-सी गाँठमें शायद तीन या चार ही १० पैसेके सिक्के रहे होंगे। उसने उसमेंसे एक सिक्का निकालकर उस फकीरको दे दिया। फिर गाँठ बाँधी। बच्चोंको व्यवस्थितकर वह पुनः चल पड़ी। मैं अवाक्-सा खड़ा उस स्त्रीके इस महादानको देखता रहा। उसका यह दान भारतकी उस महान् परम्पराका प्रतीक था, जिसके लिये राजा हरिश्चन्द्रने अपना राज्य छोड़कर श्मशानकी चौकीदारी करना स्वीकार किया या राजा शिबिने अपने शरीरका मांस काटकर दे दिया। यदि हम अपने शास्त्रोंमें वर्णित दानके उदाहरणोंको भी देखें तो यह दान विशिष्ट कोटिका दान होगा, इस महान् दानी स्त्रीको शत-शत प्रणाम।

(२)

संकल्पदान

सम्भवतः सन् १९६७ या ६८ ई०की घटना है। दशहरेकी बात है, स्थान-स्थानपर रामलीलाके कार्यक्रम हो रहे थे। हमारे शहर मेरठकी एक नयी बनी कॉलोनीके निवासियोंने भी अपनी कॉलोनीमें १०-१२ दिनकी रामलीलाका आयोजन किया था। रामलीलाके आयोजकोंने पिताजीको रामलीलाके उद्घाटनके लिये निमन्त्रण दिया, जिसे पिताजीने स्वीकार कर लिया। निश्चित दिन (जो मुझे नहीं मालूम था)-को पिताजी कार्यालयसे देरसे आये। ड्राइवर किसी कार्यवश पिताजीको घर छोड़कर फौरन चला गया। रामलीलाके कार्यक्रममें जानेके लिये पिताजीने मुझे बुलाया। मैं कारमें पिताजीको आयोजनस्थलपर ले गया। पहुँचनेमें देर हो गयी थी। अतः आयोजकोंने उद्घाटन एक अन्य सज्जनसे करा लिया। हमारे पहुँचनेपर आयोजकोंने पिताजीका परिचय देते हुए उन्हें भगवान् श्रीरामको तिलक करनेके लिये आमन्त्रित करनेकी घोषणा की। पिताजीने मंचपर जाकर भगवान्को तिलक किया और ५१ रुपये भेंट किये। वापस आनेपर मुझसे धीरेसे पूछा—क्या तुम्हारी जेबमें ५१ रु० हैं? मेरे 'हाँ' कहनेपर पिताजीने आयोजक—उद्घोषकजीको बुलाकर उन्हें मेरे लिये कहा कि मैं (यानी उनका पुत्र) भी तिलक करूँगा। उद्घोषकजीने प्रसन्नतापूर्वक मेरे द्वारा तिलककी घोषणा की और मैं भी जाकर ५१ रु० का तिलक कर आया। रामलीलाका मंचन शुरू हो गया। आधा घंटा बैठनेके पश्चात् आयोजकोंको नमस्कारकर हम घरकी ओर चल दिये। मैंने कारमें बैठनेके बाद पिताजीसे पूछा कि आपने स्वयं ही १०१ रुपयेका तिलक क्यों नहीं किया, वह अच्छा लगता, बजाय इस बातके कि ५१-५१ रु० के दो तिलक किये गये। पिताजीने जो उत्तर दिया, वह मेरे लिये जिन्दगीभरके लिये एक सीख, नसीहत तथा हितोपदेश है। पिताजी बोले—जब हम घरसे चले थे, तब मैंने १०१ रु० देनेकी सोची थी। आयोजनस्थलपर पहुँचनेपर यह पता चला कि उद्घाटन हो चुका है, सो अच्छा नहीं लगा और सोचा जब आये हैं तो ५१ रु० का तिलक करके वापस चले जायँगे। परंतु जब मैं भगवान्का तिलक करके वापस आ रहा था, तब मुझे ग्लानि तथा क्षोभ हुआ। १०१ रु० का दान सोचना ही संकल्प-जैसा है। अब वह पैसा हमारा न होकर दानका पैसा है तो उसको कम करना, अपने पास रखना घोर पाप है। अतः मैंने वापस आकर तुमसे पूछा और कहा कि जाकर ५१ रु० का तिलक करो। यद्यपि दो बार तिलक करनेसे मेरा मानसिक संकल्प तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण हो गया तथापि मुझे ऐसा लगता है कि अभी भी इस गलतीका प्रायश्चित्त करना बाकी है, जिसे मैं एक दिनका उपवास करके तथा पूजामें बैठकर पूरा करनेकी कोशिश करूँगा।—जितेन्द्रकुमार अग्रवाल

(३)

आदर्श त्यागवृत्ति

बात पुरानी है, राजस्थानके नागौर जिलेमें भैरुंदाके पास नीम्बौल नामका एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ मोतीरामजी शास्त्री नामके एक ब्राह्मण रहते थे, उनकी दिनचर्या सादा जीवन उच्च विचारकी एक प्रतीक थी। घरकी स्थिति सामान्य थी, अतः वे प्रतिदिन एक लोटा लेकर अपने गाँवमें गृहस्थोंके घरोंमें अनाज माँगने जाया करते थे। जब वह पात्र अन्नसे भर जाता तो वे वापस अपने घर लौट आते थे। लोटेमें बाजरा, ज्वार, जौ, गेहूँ, मोठ आदि जो कुछ होता, उसे अपने घरके एक पीपेमें डाल देते थे। प्रतिदिन प्रातः वे घरमें लगी छोटी चक्कीमें स्वयं अनाज पीसते और उसी आटेसे उनकी पत्नी रोटियाँ बनाती। प्रतिदिन लगभग पाँच रोटियाँ बनतीं, एक गायको खिलाकर दो-दो रोटियाँ स्वयं वे पति-पत्नी खाते और प्रसन्न रहते। उन्हें पूजा-पाठ, भजन-कीर्तनका बहुत शौक था।

इससे प्रभावित होकर मैंने अपने गाँव मझेवलामें इनसे श्रीमद्भागवतका पाठ करवाया। अन्तिम दिन भागवतपर चढ़ावेमें सामान्य दान-दक्षिणा जो आयी, उनमेंसे मात्र तीन रुपये लेकर बाकी राशि भागवतके अन्दर रखकर बिना हमें सूचित किये आप अपने गाँवकी ओर लौट गये। यह समाचार सुनकर हमें आश्चर्य हुआ। मैं दौड़कर करीब एक किलोमीटर दूर पहाड़ियोंके बीच पैदल रास्तेसे जानेवाले पण्डितजीके पास पहुँचकर उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया तथा उनसे भागवतपर चढ़ावेमें आये रुपये ले जानेकी प्रार्थना करने लगा। उन्होंने कहा कि भागवत मैं अपने घरसे नहीं लाया था। इसलिये तीन रुपये जो ज्यादा हैं, उन्हें मैं लेकर आ गया, शेष राशि जिनकी भागवतपुस्तक है, उन्हें या गाँवके किन्हीं गरीबोंको दे दें। मैंने कहा—हमने सुना है कि आप प्रतिदिन भिक्षाका अन्न लाकर उससे जीवन-यापन करते हैं, आप १४ दिनोंसे हमारे गाँवमें रहकर भागवतकथा कह रहे हैं। घरमें माताजी कैसे जीवन-यापन करती होंगी? उन्होंने बड़े गर्वसे कहा कि मैं गरीब नहीं हूँ, भगवान्‌की कृपासे मेरे पास सब कुछ है। जो है, उसीमें हम दोनों पूर्ण सन्तुष्ट हैं।

बड़ी मुश्किलसे मैं उन्हें वापस लौटा सका और गाँवमें लाकर मैंने उन्हें भोजन कराकर दक्षिणा दी, उन्होंने दो रुपये प्रतिदिनके हिसाबसे १४ दिनके मात्र २८ रुपये ही स्वीकार किये। आजके जमानेमें ऐसी भक्ति-भावनावाला अपरिग्रही ब्राह्मण मैंने पहली बार देखा। मैं उनकी त्यागवृत्तिके विषयमें बहुत दिनोंतक सोचता रहा।—लादूसिंह राजपुरोहित

(४)

पराया सुख अपना सुख

बात उन दिनोंकी है, जब मैं ७वीं कक्षाकी छात्रा थी। माँको संग्रहणी रोग हो गया था, इस रोगसे मुक्तिके लिये वैद्यराजने उनको मट्ठा (छाछ)-का सेवन करनेके लिये कहा। माँने उनके परामर्शानुसार छाछका सेवन शुरू कर दिया। इस प्रकारका इलाज कल्प कहलाता था और इसकी निश्चित अवधि होती थी तीन या चार माह, इससे अधिक नहीं।

इस कल्पकी अवधिमें दीपावली पर्व आया। माँने प्रतिवर्षकी भाँति अनेकानेक पकवान बनाये और अन्नकूट-भोगके लिये पूर्वमें बनाये पकवानोंके अलावा कई प्रकारके व्यंजन भी बनाये। शामको भगवान्‌के भजन गाये, भोग लगाया तथा ५० के लगभग दर्शनार्थी भगवान्‌का दर्शनकर और प्रसाद ग्रहणकर लौट गये। फिर माँने छाछका भोग लगाया और केवल छाछका ही सेवन किया।

मैंने बालसुलभ जिज्ञासावश माँसे पूछा—'तुम इन पकवानोंको नहीं खाओगी?' उन्होंने 'नहीं' में उत्तर दिया। मैंने फिर पूछा—तुम्हारा इन सबको खानेका मन नहीं हो रहा? उन्होंने कहा—'मुझे तुम सबको खाते देखकर ही तृप्ति हो जा रही है और मेरे मुँहमें पूरा स्वाद आ रहा है', पर मेरे बालमनने न तो इसे स्वीकार ही किया और न इस बातको वह समझ ही पाया।

दुर्भाग्यसे वर्ष १९९२ में मैं कैंसर रोगसे पीड़ित हुई। लगभग दो माहसे कुछ भी खानेको नहीं मिल रहा था। एक दिन मेरा समोसा खानेका मन हुआ, लेकिन डॉक्टरोंने तली वस्तुएँ खानेसे मना कर रखी थीं, पर मन समोसा खानेके लिये अत्यधिक लालायित हो रहा था। अचानक माँकी बात याद आ गयी और मैंने तुरंत दो गरम समोसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मँगाकर समीप रहनेवाली बालिकाको खिलाये। उसके चेहरेकी भाव-भंगिमाको देखकर मैं मन-ही-मन आनन्दित हो रही थी और जब उस बालिकाने मुझसे कहा—'आंटी! समोसे खाकर आनन्द आ गया' तो यह वाक्य सुन मुझे उसी तरहकी अनुभूति हुई, जैसे मैंने ही वे समोसे खाये हों।

मुझे वह प्रसंग भी याद आ गया, जब ब्रह्माजीने असुरोंको भोजनका निमन्त्रण दिया, साथ ही एक शर्त भी लगायी कि आप बिना हाथ मोड़े भोजन ग्रहण करेंगे। स्वार्थवश असुरोंने अपना पेट ही भरकर खानेका निश्चय किया, पर इस शर्तके अनुसार वे भूखे ही रहे तथा भोजन भी इधर-उधर बिखर गया।

अगले दिन ब्रह्माजीने देवताओंको भोजनका निमन्त्रण दिया और बिना हाथ मोड़े भोजनकी शर्त बता दी। देवताओंने अपने सम्मुख बैठे देवताको भोजन खिलाना शुरू कर दिया। इस प्रकार सभी देवोंने भरपेट भोजन ग्रहण किया और सभी पकवानोंका भरपूर स्वाद लिया।

यह प्रसंग इस त्यागकी ओर संकेत करता है कि यदि आप सन्तुष्ट होना चाहते हैं, प्रसन्न रहना चाहते हैं तो सर्वप्रथम आप दूसरोंको सन्तुष्ट करें, उन्हें प्रसन्न करें। यही दैवीय गुण भारतीय संस्कृतिका मूल आधार है।

—**श्रीमती कृष्णा माहेश्वरी**

मनन करने योग्य

सत्संगने दानी बना दिया

(१)

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम्।
अमन्दानन्दसन्दोहबन्धुरं सिन्धुराननम्॥

जो प्रणाम करनेवाले भक्तजनोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, जो चन्द्रभूषण महादेवके पुत्र हैं और जो अपार आनन्दके समूहसे भरे हैं, उन हाथी-जैसे मुखवाले गणपतिको मैं प्रणाम करता हूँ।

उपर्युक्त श्रीगणेश-वन्दना करते हुए साहु मदनजी मोटरसे उतरकर स्टेशनके अन्दर आये। उन्हें पुष्पमालाएँ पहनानेवालोंकी भीड़ उमड़ आयी। इतनेमें ही अन्धा भिक्षुक सुरपाल उनसे टकरा गया। बड़े क्रोधित हुए वे।

वृद्ध, अन्धे, कृशकाय सुरपाल याचकको एक लड़का उसकी लकड़ी पकड़े हुए डिब्बोंमें बैठे यात्रियोंसे भिक्षा माँगनेको ले जा रहा था। सुरपाल हाथ पसारे कहता था—***'जो दें उनका भी भला, न दें उनका भी भला।'*** अचानक वह साहुसे टकराकर हाथ जोड़ विनीत भावसे कहने लगा—'भला हो, सेठ साहब आपका। मैं दीन, अन्धा भिक्षुक हूँ। मुझसे बड़ा अपराध हुआ, क्षमा कर दें।' यह कहते हुए उसने अपना कटोरा साहुकी ओर बढ़ा दिया। उसमें यात्रियोंके दिये कुछ पैसे थे। साहु पैसे और अन्धेको देखकर गुर्राये। साथियोंसे वार्तालाप चालू था, इसलिये अन्धेसे कोई अपशब्द कहते लजा गये और उसे कुछ न देकर प्रथम श्रेणीके रिजर्व डिब्बेमें जा बैठे। गाड़ी चल दी।

चिन्तन चला उनका—अभी मैं सन्त अनन्तदासजीके उपदेशामृतका पान करके आया हूँ। उन्होंने कहा था—'सब जीवोंपर दया करो। वृक्ष-लता, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मानव—सबपर दया करो। किसीके भी मनको क्लेश मत पहुँचाओ। भगवत्स्मरण करनेमें २४ घंटोंमें एक श्वास-प्रश्वास भी वृथा न जाय।' मैं अन्धे भिक्षुककी अभी-अभी उपेक्षा करके इतनी जल्दी उपदेशामृतको भूल गया! भगवान्‌की दयासे घरमें धर्मकी कमाईका बहुत-सा धन है, व्यापार-धन्धेमें निरन्तर लाभ होता जा रहा है। उसमेंसे आज यदि मैं कुछ पैसे उस अन्धेको दे देता तो मेरे धनमें क्या कमी हो जाती, पर वह तो कुटुम्बका पालन कर पाता। कहा है—

गज मुख तैं कणिका गिर्‌यो, घट्यो न ताको आहार।
ताहि पिपीलिका लै चली, पालन निज परिवार॥

नावमें पानी भर जाने और घरमें धन बढ़ जानेपर यदि उसे दोनों हाथोंसे उलीचनेकी बुद्धिमानीका काम नहीं किया तो प्राय: देखा जाता है कि कृपण पुरुषोंको धनसे कभी सुख नहीं मिलता। इस लोकमें तो वे आठों पहर धन कमाने और उसकी रक्षाकी चिन्तामें जलते रहते हैं और मृत्यु हो जानेपर धर्मके अभाव और पापसंचयके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण नरकमें जाते हैं।* मैंने बड़ा अनर्थ कर डाला आज। उस बेचारे अन्धे कृशकाय याचकको कुछ देना तो दूर रहा, उसके जरा-से धक्केसे मैं इतना क्रोधित हो गया कि वह वैरी क्रोध अभीतक मेरे तन-मनसे नहीं जा रहा है। मेरी कृपणता प्रकट हो गयी। अभी वह अगले स्टेशनपर मिल जाय, तो उसे कुछ धन देकर प्रसन्न कर दूँ। बड़े लोग तो वे ही होते हैं, जो गरीबका हित करते हैं। कहा है—

जे गरीब पै हित करैं, ते 'रहीम' बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरौ, कृष्ण मिताई जोग॥

साहुजीका सद्विवेक जाग उठा था। पश्चात्ताप-पूरित उनके उपर्युक्त सात्त्विक चिन्तनको रेलकी गतिका घर्राटा सहयोग दे रहा था, मानो गीतको वाद्ययन्त्र सहायता दे रहे हों।

(२)

गाजीपुर पहुँचकर साहु मदनजीने अपने प्रतिष्ठानका कार्य देखा। दान-पुण्यका खाता देखकर आदेश दिया कि 'इस मदमें अधिक निधि प्रतिवर्ष व्यय किया करो। याचकोंको आटा, दाल, नमक-मिर्च-मसाला देते रहनेका प्रबन्ध रहे।' तदनुसार ही होने लगा।

वापस लौटते समय वे गाड़ीमें ही नित्य कर्मसे निवृत्त हो दर्पणमें अपने मुखको देखते हुए कंघेसे बालोंको सँवारने लगे। इतनेमें ही स्टेशन आ गया और वहाँ उनके कानोंमें दैवात् यह ध्वनि सुनायी पड़ी—

तेरे राम नाम नहिं तनमें, मुखड़ा क्या देखे दरपनमें।

उन्होंने खिड़कीद्वारा झाँककर अन्धे सुरपालकी याद करते हुए देखा तो वह नहीं, एक हृष्ट-पुष्ट याचक खँजरीपर यह गीत गाकर यात्रियोंसे पैसे माँग रहा था। निराश हुए वे।

साहुजी वापस आये ललितपुर स्टेशनपर। गाड़ीसे उतरते समय दैवयोगसे वही सुरपाल भिखारी फिर उनका धक्का लगनेसे गिर पड़ा। फिर भी उसने साहुजीसे क्षमा-याचना करते हुए उनकी हित-कामना प्रकट की। साहु मदनजी अब वे नहीं रह गये थे, जो धन-मान और क्रोधके वशमें उस दिन थे; क्योंकि पाँच दिनके प्रवासमें पश्चात्तापका निरन्तर चिन्तन चलते रहनेसे उनका मन निर्मल हो गया था। उनके मनमें उसके प्रति आदरका भाव जाग उठा था, क्योंकि वे सोचते थे कि इसीके कारण मेरी आँखें खुलीं और पश्चात्तापकी आगने मुझे पवित्र बनाया। अतः वे अन्धेको उठाकर उसे अंकमें भरते हुए बोले—'आप तो सन्तके समान हैं। मेरी ही भारी भूल हुई, जो मैंने धक्केसे आपको गिरा दिया। चलो मेरे घरपर। यहाँ माँगना छोड़ो। इस बालकको शिक्षाका प्रबन्ध कर दूँगा और आपको आरामसे रखूँगा।'

यह सुनकर सुरपाल सोचने लगा कि 'क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ!' उसने जानेसे बहुत इनकार किया, किंतु मदनजी नहीं माने। उन्होंने बालकसे अन्धेकी लकड़ी अपने हाथमें ले ली और दोनोंको साथ लेकर अपनी मोटरमें अपने पास ही बैठाकर अपने भवन 'मदनकुंज' में ले आये। स्टेशनपर सैकड़ों यात्री इस दृश्यको देखते ही रह गये। इसे पूर्वजन्मके संस्कार मानकर सभी आश्चर्यचकित हो गये।

अपने हरे-भरे बागमें सुरपालको एक आरामदेह भवनमें ठहराते हुए मदनजीने एक सेवकको उसे सभी तरहका आराम पहुँचानेके हेतु नियत कर दिया। सुरपाल भगवान्‌की अहैतुकी कृपा समझ रात-दिन भगवान्‌की विविध लीलाओंके भजन खँजरी बजाकर गाया करता, जिससे पड़ोसतक गूँजता रहता था।

लाठीवाला लड़का शिक्षित होकर मदनजीके प्रयत्नसे समयपर स्कूलमें व्याख्याता बन गया। दोनों मदनजीके भरे-पूरे परिवारमें सम्माननीय सदस्य समझे जाने लगे।

सुरपालके इच्छानुसार मदनजीने अपने धनका सदुपयोग करते हुए अनाथालयका एक विशाल भवन निर्माण करा दिया। उसमें खोज-खोजकर अनाथोंको लाकर रखा गया। अनाथालयका प्रबन्ध एक ट्रस्टके द्वारा होने लगा।

अपने द्वारा यह परोपकारका कार्य सम्पन्न होता देखकर मदनजी बार-बार भगवान्‌को धन्यवाद देते और नित्य नियमसे भजन करते हुए आनन्दकन्दके चित्रके सम्मुख भक्तिभावसे नतमस्तक होकर अश्रु बहाया करते कि 'हे भगवन्! आपने मुझे सद्बुद्धि देकर धनका सदुपयोग करवाया।' अब मदनजीको हरिभजन करनेका चस्का लग गया। वे खँजरीपर सुरपालसे भगवान्‌की विविध लीलाओंके भजन सुनते और स्वयं भी भाव-विभोर होकर भजन गाते-गाते नृत्य करने लगते। उनका सारा जीवन इसी प्रकार व्यतीत हुआ। दूर-दूरतक उनका 'भजनानन्दी सेठ' नाम प्रसिद्ध हो गया। पड़ोस, नगर, खुदका परिवार और घरके लोग उनके हरि-कीर्तनसे प्रभावित होकर भजनपरायण बन गये।—**कृष्णगोपाल माथुर**

* प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन। इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च॥ (श्रीमद्भागवत ११। २३। १५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् २०११ ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् २०११ ई० का विशेषाङ्क '**दानमहिमा-अङ्क**' वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, उनसे अनुरोध है कि सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजकर रजिस्ट्रीसे पुनः मँगवानेकी कृपा करेंगे। वी०पी०पी०से पुनः मँगवाने-हेतु अनुरोध-पत्र भेजना चाहिये।

जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी उनके रुपये यहाँ न पहुँचने अथवा उनके रुपयोंका यहाँ समायोजन आदि न हो सकनेके कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता तथा अपनी ग्राहक-संख्या आदिके विवरणसहित हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें 'कल्याण' सीधे भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजनहेतु पत्र भेजना चाहिये।

जिन ग्राहकोंका शुल्क प्राप्त हो गया था, उन्हें '**दानमहिमा-अङ्क**' रजिस्ट्रीद्वारा जनवरी माहमें भेज दिया गया है। यदि उन्हें अबतक प्राप्त नहीं हुआ हो तो अपने प्राप्ति-स्थान/पोस्टमैनसे जाँच करनेके उपरान्त रकमकी पावतीके साथ सूचना भेजनी चाहिये, जिससे उचित कार्यवाही की जा सके।

व्यवस्थापक—**'कल्याण-कार्यालय', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर (उ०प्र०)**

SUBSCRIBE : **KALYANA-KALPATARU**

Annual Subscription Rs. 100 (Year—Oct. 2010 to Sept. 2011)

Now Available—Special Issue—**Life after Death Number**

Manager, Kalyana-Kalpataru, P.O.—Gita Press—273005, Gorakhpur (UP)

मेलोंमें गीताप्रेसके विशेष पुस्तक स्टॉल

पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी पुस्तकोंके व्यापक प्रचार-प्रसारके लिये माघ-मेला-प्रयाग, दिल्ली पुस्तक-मेला प्रगति मैदान नयी दिल्ली, विश्व संस्कृत पुस्तक-मेला बेंगलोर, समग्र विकास मेला-गुलबर्गा (कर्नाटक), पुस्तक-मेला-कोलकाता एवं पश्चिम बँगालमें लगभग ९० स्थानोंपर गीताप्रेस द्वारा भव्य पुस्तक-स्टॉल लगाकर विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित पुस्तकोंके प्रदर्शन एवं बिक्रीकी व्यवस्था की गयी।

अभी उपलब्ध—सम्पूर्ण श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण—केवल हिन्दी [अठारह हजार श्लोकोंका श्लोक-संख्यासहित भाषानुवाद] (कोड 1793-1842) 'कल्याण' वर्ष २००८ एवं २००९ के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित। **अब पुस्तक-रूपमें रंगीन लेमिनेटेड कवरके साथ**—इसके प्रथम खण्डमें १ से ६ स्कन्ध एवं द्वितीय खण्डमें ७ से १२ स्कन्धकी कथाएँ दी गयी हैं। प्रत्येक खण्डका मूल्य रु० १०० (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)।

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
1908	**प्रतिकूलतामें प्रसन्नता**	८	1912	**व्रतकल्पत्रयम्** (तमिल)	११	1911	**गोपालसहस्त्रनामस्तोत्रम्** नामावलिसहित (गुजराती)	५
1903	**श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण** खण्ड-२ (तमिल)	१५०	1910	**गजेन्द्रमोक्ष** (गुजराती)	२			
			1909	**आदित्यहृदयस्तोत्र** (गुजराती)	२			

गीता-दैनन्दिनी २०११—अब केवल पॉकेट साइज (कोड 506) मू० रु० २५ उपलब्ध

रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० २२ अतिरिक्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-१-२०११
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

श्रीमहाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

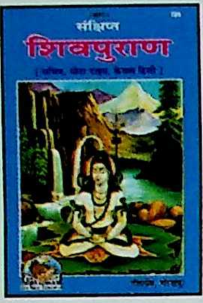

संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 789, ग्रन्थाकार, सजिल्द—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पञ्चदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीकार किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य रु० १५०, डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३७ अतिरिक्त। **(कोड 1468)** विशिष्ट संस्करण मूल्य रु० १९०, डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ४३ अतिरिक्त। **(कोड 1286)** मूल्य रु० १५०, डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३७, गुजरातीमें भी उपलब्ध।

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर	२२	563	शिवमहिम्नःस्तोत्र (मराठी, तेलुगु भी)	३	1599	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् (नामावलिसहितम्)	६
1156	एकादश रुद्र (शिव)-चित्रकथा	५०						
0204	ॐ नमः शिवाय-चित्रकथा	२०	228	शिवचालीसा-पॉकेट साइज	२	230	अमोघ शिवकवच	२
1343	हर हर महादेव-चित्रकथा	२०	1185	शिवचालीसा-लघु (बँगला भी)	१	1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	२०

मानस-पीयूष—(सात खण्डोंमें सेट) अब उपलब्ध
(अलग-अलग खण्ड भी मँगवा सकते हैं)

महात्मा श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजीके द्वारा सम्पादित श्रीरामचरितमानसकी सबसे बृहत् टीका, ख्यातिलब्ध रामायणियों, उत्कृष्ट विचारकों, तपोनिष्ठ महात्माओं एवं आधुनिक मानसविज्ञोंकी एक साथ व्याख्याओंका अनुपम संग्रह, समस्त जिज्ञासुओं तथा शोध-छात्रोंके लिये संग्रह और नित्य स्वाध्यायका अनुपम ग्रन्थरत्न।

कोड	खण्ड	विवरण	मू०रु०
87	मानस-पीयूष	**(बालकाण्ड-खण्ड-१)** बालकाण्डके प्रारम्भसे दोहा ४३ तक।	२००
88	मानस-पीयूष	**(बालकाण्ड-खण्ड-२)** बालकाण्ड दोहा ४४ से दोहा १८८ तक।	२००
89	मानस-पीयूष	**(बालकाण्ड-खण्ड-३)** बालकाण्ड दोहा १८९ से बालकाण्ड समाप्तितक।	२००
90	मानस-पीयूष	**(अयोध्याकाण्ड-खण्ड-४)** सम्पूर्ण अयोध्याकाण्डकी विस्तृत व्याख्या।	२००
91	मानस-पीयूष	**(अरण्य, किष्किन्धाकाण्ड-खण्ड-५)** दोनों काण्डोंकी विस्तृत व्याख्या एक जिल्दमें	२००
92	मानस-पीयूष	**(सुन्दरकाण्ड, लङ्काकाण्ड-खण्ड-६)** दोनों काण्डोंकी विस्तृत व्याख्या एक जिल्दमें	२००
93	मानस-पीयूष	**(उत्तरकाण्ड-खण्ड-७)** सम्पूर्ण उत्तरकाण्डका विस्तृत विवेचन	२००

मानस-पीयूषका सम्पूर्ण सेट एक साथ मँगवानेपर रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० २०० अतिरिक्त। अलग-अलग प्रत्येक खण्ड मँगवानेपर डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ४० अतिरिक्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

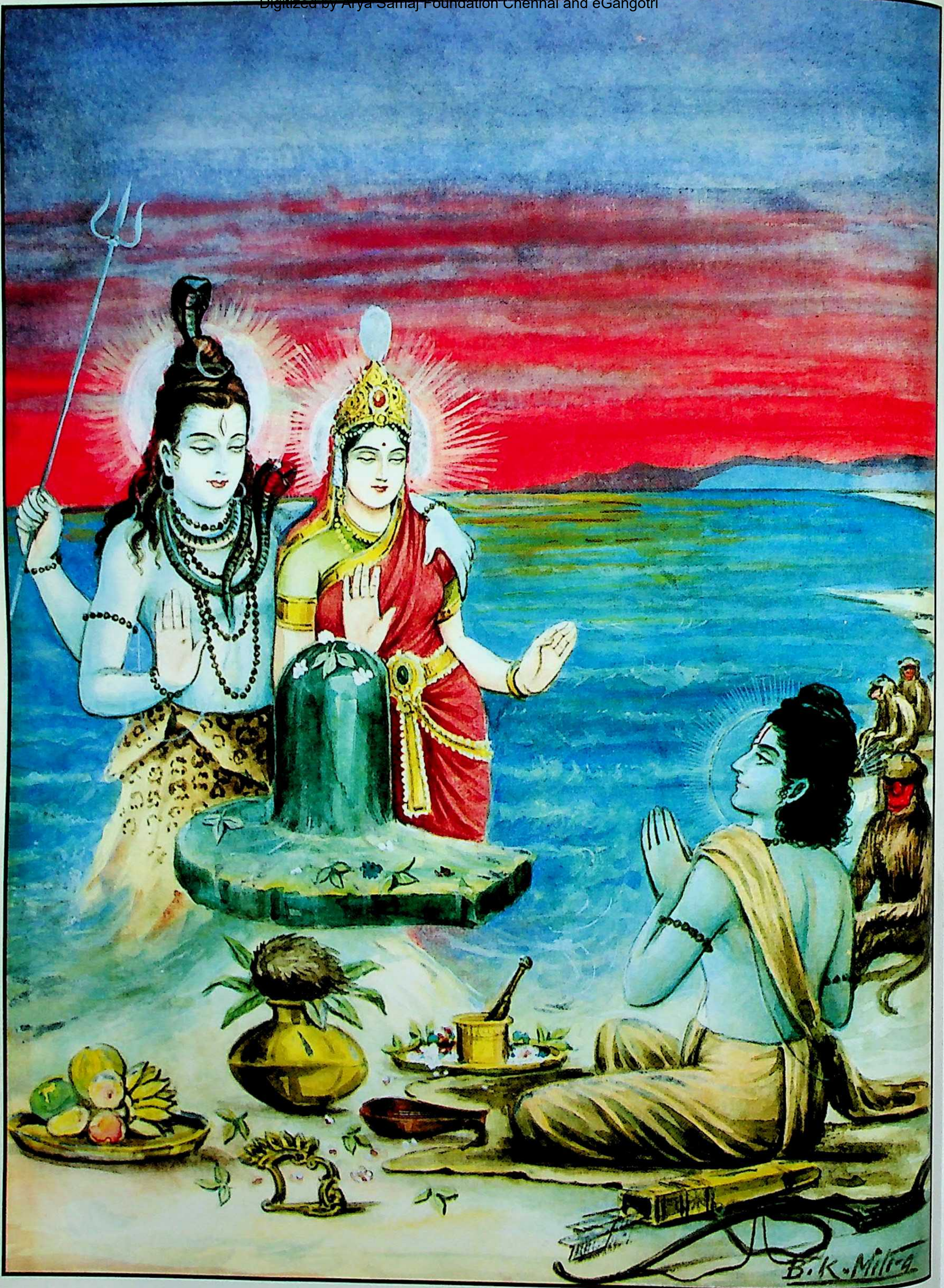

श्रीरामेश्वर-पूजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

तुम क्यों चिन्ता करते हो? चिन्ता करनेवाले तो वे हैं, जिन्होंने माताके गर्भमें तुम्हारी रक्षा की थी और जन्म होनेपर तुम्हारे पीनेके लिये पहलेसे ही माताके स्तनोंमें दूध पैदा कर दिया था। तुम तो बस, एकाग्र मनसे उन्हींका चिन्तन करो। यही कर्तव्य है।

चित्तसे उनका चिन्तन करो, इन्द्रियोंसे उनकी सेवा करो, जीवनका प्रत्येक कार्य उन्हींकी सेवाके लिये करो, परंतु याद रखो—उनकी सेवाके लिये जो कार्य होते हैं, वे सत्कार्य ही होते हैं। बुरे कर्मोंसे उनकी सेवा नहीं हो सकती। भगवान्‌की सेवाके लिये किये जानेवाले शुभ कर्मोंका नाम ही सदाचार है।

यह सदाचार ही मनुष्यका यथार्थ जीवन है। सदाचाररहित मनुष्य तो जीता हुआ भी मुर्देके समान है। बाहर कितनी भी सुन्दरता क्यों न हो, देहको कैसे भी क्यों न सजाया जाय, परंतु यदि सदाचार नहीं है तो कुछ भी नहीं है। सदाचारशून्य मनुष्यकी देहकी सजावट तो वैसी ही है, जैसी जहरसे भरे हुए सोनेके कलशकी!

निरन्तर अपने अन्दर सद्‌गुणोंको भरनेकी चेष्टा करते रहो और सत्कर्मके लिये ही प्रयत्न करो। ये सद्‌गुण और सत्कर्म भी केवल भगवत्पूजनके लिये ही होने चाहिये। इनके बदलेमें मिलनेवाली लौकिक पूजा-मान-बड़ाईको यदि इनका फल समझ बैठोगे तो याद रखो—गिरते देर नहीं लगेगी। सारे सद्‌गुण और सत्कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। दैवी सम्पदाके गुण भगवान्‌के आश्रयपर ही ठहरते हैं, मान-सम्मान या पूजा-प्रतिष्ठाके आधारपर कदापि नहीं।

जिसके जीवनका लक्ष्य भगवान् होता है और जो इस लक्ष्यको दृढ़ताके साथ बनाये रखता है, उसके मार्गमें जगत्‌की विपत्तियाँ रोड़े नहीं अटका सकतीं। भगवत्कृपासे उसका पथ निष्कण्टक हो जाता है। कहीं काँटे रहते भी हैं तो उसके पैरके उनपर टिकते ही वे मखमलके तारोंकी तरह कोमल हो जाते हैं। कोई भी विघ्न उसके सामने आकर विघ्नरूप नहीं रहते, वरं उलटे उसके सहायक बन जाते हैं।

जीवनका लक्ष्य निश्चय करते समय भगवत्प्राप्त महापुरुषों और भक्तोंके जीवनचरित्रोंका अध्ययन करो, उससे तुम्हें अपना लक्ष्य स्थिर करनेमें सहायता मिलेगी और लक्ष्यकी ओर चलनेमें बल, अवलम्बन और पाथेय मिलेगा।

याद रखो—बातोंसे रास्ता नहीं कटता, बहुत ऊँची-ऊँची बातें तो नाटकके पात्र भी किया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण, भीष्मपितामह, शंकराचार्य और बुद्धदेव आदिका अभिनय करनेवाले कहनेमें कौन-सी कमी रखते हैं, परंतु उससे होता क्या है? जबतक जीवन पवित्र नहीं होता—जीवनमें वे बातें नहीं उतरतीं, तबतक वह नाटकमात्र है। इस नाट्यसे यदि कहीं बड़ाई मिल जाय तो उससे अपनी स्थितिको न भूल जाओ। जगत्‌के लोग तुम्हारी बातोंसे मुग्ध होकर धोखा खा सकते हैं, परंतु अन्दरकी जाननेवाले भगवान्‌को तुम नहीं छल सकते। भगवान् तो तुम्हारे सच्चे और ऊँचे जीवनपर ही रीझेंगे—बातोंपर नहीं।

दूसरोंकी निन्दा कभी न करो, न दूसरोंको बुरा समझो। तुम्हें फुरसत नहीं मिलनी चाहिये अपनी व्यवस्था और अवस्थाकी देखभालसे। दूसरोंकी ओर देखे बिना यदि न रहा जाय तो केवल उनके गुणोंको, उनके सत्कर्मोंको और उनके शीलको ही देखो।

निरन्तर आगे बढ़ते रहो, रुको मत, पर अपनी स्थितिपर अभिमान न करो। जबतक अभिमान, ममता या आसक्तिका जरा भी बीज देख पाओ, तबतक साधनामें विश्रामको जरा भी स्थान मत दो।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म और उसका प्रचार

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

इस समय संसारकी प्राय: सभी जातियाँ न्यूनाधिक-रूपसे अपने-अपने धर्मकी उन्नति और उसके प्रचारके लिये अपनी-अपनी पद्धतिके अनुसार प्रयत्न कर रही हैं। इनमेंसे कुछ लोग तो अपने धर्मभावोंका सन्देश संसारके कोने-कोनेमें पहुँचा देना चाहते हैं और वे इसके लिये कोई उपाय भी उठा नहीं रखते। क्रिश्चियन-मतका प्रचार करनेके लिये ईसाई-जगत् कितनी धनराशिको पानीकी तरह बहा रहा है। इस कार्यके लिये अमेरिकातकसे करोड़ों रुपये भारतवर्षमें आते हैं। लाखों ईसाई स्त्री-पुरुष सुदूर देशोंमें जा-जाकर भाँति-भाँतिसे लोकसेवाकर तथा लोगोंको अनेक तरहसे लोभ-लालच देकर, फुसलाकर और उन्हें उलटी-सीधी बातें समझाकर अपने धर्मका प्रचार कर रहे हैं।

कुछ भूले हुए लोग परधन, परस्त्री-अपहरण करके, धर्मके नामपर हिंसा करने और परधर्मीकी हत्या करनेको ही धर्म मान बैठे हैं एवं उसीका प्रचार करना चाहते हैं। इस प्रकारके धर्मप्रचारसे चारों ओर अशान्ति और दु:खका विस्तार होता है। अपनी बुद्धिसे लोक-कल्याणके लिये जिस धर्मको अधिक उपयोगी समझा जाय, उसके प्रचारके लिये प्रयत्न करना मनुष्यका कर्तव्य है। इस न्यायसे कोई भाई यदि वास्तवमें ऐसे ही शुद्ध भावसे प्रेरित होकर केवल लोक-कल्याणके लिये ही अपने धर्मका प्रचार करना चाहते हैं तो उनका यह कार्य अनुचित नहीं है, परंतु उनके इस कार्यको देखकर हमलोगोंको क्या करना चाहिये, यह विषय विचारणीय है।

मेरी समझसे एक हिन्दू-धर्म ही सब प्रकारसे पूर्ण धर्म है, जिसका चरम लक्ष्य मनुष्यको संसारके त्रितापानलसे मुक्तकर उसे अनन्त सुखकी शेष सीमातक पहुँचाकर सदाके लिये आनन्दमय बना देना है। समय-समयपर जगत्के दु:खदग्ध अशान्त प्राणी इसी धर्मका पवित्र सन्देश प्राप्तकर परम शान्तिको प्राप्त हो चुके हैं और आज भी जगत्के बड़े-बड़े भावुक पुरुष अत्यन्त उत्सुकताके साथ इसी सन्देशकी प्राप्तिके लिये लालायित हैं। जिस धर्मकी इतनी अपार महिमा है, उसी अनादि कालसे प्रचलित, पवित्र और गम्भीराशय धर्मको माननेवाली जाति मोहवश जगत्के अन्यान्य अपूर्ण मतोंका आश्रय ग्रहणकर अज्ञान-सरिताके प्रवाहमें बहना चाहती है, यह बड़ी ही चिन्ताकी बात है।

यदि भारतने अपने चिरकालीन धर्मके पावन आदर्शको भूलकर ऐहिक सुखोंकी व्यर्थ कल्पनाओंके पीछे उन्मत्त हो केवल काल्पनिक भौतिक, स्वर्गादि सुखोंको ही धर्मका ध्येय माननेवाले मतोंका अनुसरण आरम्भ कर दिया तो बड़े ही अनर्थकी सम्भावना है। इस अनर्थका सूत्रपात भी हो चला है। समय-समयपर इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। लोग प्राय: परमानन्द-प्राप्तिके ध्येयसे च्युत होकर केवल विविध प्रकारके भोगोंकी प्राप्तिके प्रयत्नको ही अपना कर्तव्य समझने लगे हैं। धर्मक्षयका यह प्रारम्भिक दुष्परिणाम देखकर भी यदि धर्मप्रेमी बन्धु धर्मनाशसे उत्पन्न होनेवाली भयानक विपत्तियोंसे जातिको बचानेकी सन्तोषजनक-रूपसे चेष्टा नहीं करेंगे तो यह बड़े ही परितापका विषय बन जायगा।

इस समय हमारे देशमें अधिकतर लोग तो केवल धन, नाम और कीर्ति कमानेमें ही अपने दुर्लभ और अमूल्य जीवनको बिता रहे हैं। कुछ सज्जन देश और समाजके सुधारके कार्योंमें लगे हैं, परंतु उस सत्य धर्मके प्रचारक तो कोई बिरले ही महात्माजन हैं। यद्यपि मान, बड़ाई और प्रतिष्ठाकी कामना एवं स्वार्थपरताका परित्याग कर देश और समाज-सुधारके लिये प्रयत्न करनेसे भी सच्चे सुखकी प्राप्तिमें कुछ लाभ पहुँचता है, परंतु भौतिक सुखोंकी चेष्टा वास्तवमें परम ध्येयको भुला ही देती है। सच्चे सुखकी प्राप्तिमें पूरी सहायता तो उस शान्तिप्रद सत्यधर्मके प्रचारसे ही मिल सकती है।

यद्यपि मुझे संसारके मत-मतान्तरोंका ज्ञान बहुत ही कम है, परंतु साधारणरूपसे मेरा यह विश्वास है कि सबसे उत्तम सार्वभौम धर्म वह हो सकता है, जिसका लक्ष्य महान्-से-महान् नित्य और निर्बाध आनन्दकी प्राप्ति हो और जिसमें सबका अधिकार हो। केवल ऐहिक सुख या स्वर्गसुख बतलानेवाला धर्म तो वास्तवमें बुद्धिमान्के लिये त्याज्य ही है। अतएव सर्वोत्तम धर्म वह है, जो परम कल्याणकी प्राप्ति करानेवाला होता है। ऐसा धर्म मेरी समझसे वह वैदिक सनातन धर्म ही है, जिसका स्वरूप दैवी गुणोंसे स्पष्ट होता है। श्रीमद्भगवद्गीताके १६वें अध्यायके १ से ३ श्लोकोंतक दैवी गुणोंको यों बताया है—(भगवान्ने कहा है—)

'सर्वथा भयका अभाव, अन्त:करणकी अच्छी प्रकारसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वच्छता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति[१], सात्त्विक दान[२], इन्द्रियोंका दमन, भगवत्पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण, वेद-शास्त्रोंके पठन-पाठनपूर्वक भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्ट-सहन, शरीर और इन्द्रियोंसहित अन्तःकरणकी सरलता, मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय-भाषण[३], अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरामता अर्थात् चित्तकी चंचलताका अभाव, किसीकी भी निन्दा आदि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज[४], क्षमा, धैर्य, शौच अर्थात् बाहर और भीतरकी शुद्धि[५], किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव। (हे अर्जुन! दैवी सम्पदाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण (ये) हैं।') इसी प्रकार मनुने (मनुस्मृति ६। ९२ में) धर्मके ये दस लक्षण बताये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

अर्थात् 'धैर्य, क्षमा, मनका निग्रह, चोरी न करना, बाहर-भीतरकी शुद्धि, इन्द्रियोंका संयम, सात्त्विक बुद्धि, अध्यात्मविद्या, यथार्थ भाषण और क्रोधका न करना—ये धर्मके दस लक्षण हैं।' यम-नियम भी धर्मके ही अंग हैं। योगशास्त्र-(२। ३०)-ने यमकी यह परिभाषा दी है—

'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।'

'अहिंसा, सत्यभाषण, चोरी न करना, ब्रह्मचर्यका पालन और भोग-सामग्रियोंका संग्रह न करना—ये पाँच प्रकारके यम हैं।'

नियमका लक्षण वहीं (२। ३२ में) यह है—

'शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।'

'बाहर-भीतरकी पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और सर्वस्व ईश्वरके अर्पण करना—ये पाँच प्रकारके नियम हैं।' सबका निष्कामभावसे पालन करना ही सच्चा धर्माचरण है।

ये ही धर्मके सर्वोत्तम लक्षण हैं; इन्हींसे परमपदकी प्राप्ति होती है। अतएव जो सच्चे हृदयसे मनुष्यमात्रकी सेवा करना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे उपर्युक्त लक्षणोंसे युक्त धर्मको ही उन्नतिका परम साधन समझकर स्वयं उसका आचरण करें और अपने दृष्टान्त तथा युक्तियोंके द्वारा इस धर्मका महत्त्व बतलाकर मनुष्यमात्रके हृदयमें इसके आचरणकी तीव्र अभिलाषा उत्पन्न कर दें। वास्तवमें यही सच्चा धर्म-प्रचार है और इसीसे लौकिक अभ्युदयके साथ-ही-साथ देश-कालकी अवधिसे अतीत मुक्तिरूप परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है। इस स्थितिको प्राप्त करके पुरुष दुःखरूप संसारसागरमें पुनः लौटकर नहीं आता (गिरता)। ऐसे ही पुरुषोंके लिये श्रुति (छान्दोग्य० ८। १५। १) कहती है—

'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते।'

इस परम आनन्दका नित्य और मधुर आस्वाद मनुष्यमात्रको चखानेके लिये वैदिक सनातनधर्मका प्रचार करनेकी चेष्टा मनुष्यमात्रको विशेषरूपसे करनी चाहिये।

कुछ सज्जनोंका मत है कि राजसत्ता और विपुल धनराशिके अभावमें धर्म-प्रचार नहीं हो सकता; परंतु मेरी समझसे उनका यह मत सर्वथा ठीक नहीं है। राजनीतिक अधिकारोंकी प्राप्तिसे धर्म-प्रचारमें सहायता मिल सकती है, परंतु यह बात नहीं कि राज्यसत्ताके अभावमें धर्मका प्रचार हो ही नहीं सकता। धर्म-पालनसे बड़ा-से-बड़ा आत्मिक स्वराज्य मिल सकता है, तब इस साधारण

१. परमात्माके स्वरूपको तत्त्वसे जाननेके लिये सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे ध्यानकी निरन्तर गाढ़ स्थितिका ही नाम 'ज्ञानयोगव्यवस्थिति' समझना चाहिये।

२. गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित गीताके १७वें अध्यायके २०वें श्लोकका अर्थ देखिये।

३. अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा किसी विषयमें जैसा निश्चय किया हो, ठीक उसी प्रकार प्रिय शब्दोंमें कहनेका नाम 'सत्यभाषण' है।

४. श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है, जिसके प्रभावसे उनके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः अन्यायाचरणसे रुककर श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

५. सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी तथा यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी एवं जल-मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको बाहरकी शुद्धि कहते हैं तथा राग-द्वेष और कपट आदि विकारोंका नाशकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतरकी शुद्धि कही जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यसत्ताकी तो बात ही कौन-सी है।

धनकी भी धर्मके प्रचारमें आवश्यकता नहीं है। यह सम्भव है कि इससे आंशिकरूपसे कुछ सहायता मिल जाय, किंतु धर्म-प्रचारमें प्रधान आवश्यकता सच्चे त्यागी और धर्मज्ञ प्रचारकोंकी है। ऐसे पुरुष मान, बड़ाई, प्रसिद्धि और स्वार्थको त्यागकर प्राणपणसे धर्म-प्रचारके लिये कटिबद्ध हो जायँ तो उन्हें द्रव्यादि वस्तुओंकी भी कोई त्रुटि नहीं रह सकती; साथ ही वे अपने प्रतिपक्षियोंपर भी प्रेमसे विजय प्राप्तकर उन्हें अपना मित्र बना ले सकते हैं। केवल संख्यावृद्धिके लिये ही लोभ-लालच देकर या फुसला-धमकाकर किसीका धर्म-परिवर्तन करना वास्तवमें उसके विशेष हितका हेतु नहीं हो सकता और न ऐसे स्वार्थयुक्त धर्म-प्रचारसे प्रचारकोंको ही विशेष लाभ होता है। जब मनुष्य धर्मके महत्त्वको स्वयं भली-भाँति समझकर उसका पालन करता है, तभी उसे उससे आनन्द और शान्ति मिलती है और इस प्रकार अपूर्व आनन्द और परम शान्ति अनुभव करके ही मनुष्य संसृतिमें फँसे हुए अशान्त, दुःखी जीवोंकी दयनीय स्थितिको देखकर करुणार्द्र-चित्तसे उन्हें शान्त और सुखी बनानेके लिये प्रयत्न करते हैं, यही सच्चा धर्म-प्रचार है।

बड़े खेदकी बात है कि इस अपार आनन्दके प्रत्यक्ष सागरके होते हुए भी लोग दुःखरूप संसार-सागरमें मग्न होकर भीषण सन्तापको प्राप्त हो रहे हैं। मृगतृष्णासे परिश्रान्त और व्याकुल मृग-समूह जैसे गंगाके तीरपर भी प्यासके मारे छटपटाकर मर जाते हैं, वैसी दशा इस समय हमारे इन भाइयोंकी हो रही है। सत्य-धर्मके पालनसे होनेवाली अपार आनन्दकी स्थितिको न समझनेके कारण ही मनुष्योंकी यह दशा हो रही है। अतएव ऐसे लोगोंको दयनीय समझकर उन्हें वैदिक सनातन-धर्मका तत्त्व समझानेकी चेष्टा करनेमें उनका उपकार और सच्चा सुधार है। इस धर्मको बतलानेवाले हमारे यहाँ अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं, जिन सबका मनन और अनुशीलन करना कोई सहज बात नहीं। अतएव किसी एक ऐसे ग्रन्थका अवलम्बन करना उत्तम है, जो सरलताके साथ मनुष्यको इस पावन पथपर ला सकता है। मेरी समझसे ऐसा पावन ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' है। बहुत थोड़े-से सरल शब्दोंमें कठिन-से-कठिन सिद्धान्तोंको समझानेवाला, सब प्रकारके अधिकारियोंको उनके अधिकारानुसार उपयोगी मार्ग बतलानेवाला, सच्चे धर्मका पथप्रदर्शक तथा पक्षपात और स्वार्थसे रहित उपदेशोंके अपूर्व संग्रहका यह एक ही सार्वभौम महान् ग्रन्थ है। जगत्के अधिकतर महानुभावोंने मुक्तकण्ठसे इस बातको स्वीकार किया है। गीतामें सैकड़ों ऐसे श्लोक हैं* जिनमेंसे एकको भी पूर्णतया धारण करनेसे मनुष्य मुक्त हो जा सकता है, फिर सम्पूर्ण गीताकी तो बात ही क्या है।

अतः जिन पुरुषोंको धर्मके विस्तृत ग्रन्थोंको देखनेका पूरा समय नहीं मिलता, उन्हें चाहिये कि वे गीताका अर्थसहित अध्ययन अवश्य ही करें और उसके उपदेशोंका पालन करनेमें तत्पर हो जायँ। मुक्तिमें मनुष्यमात्रका अधिकार है और गीता मुक्ति-मार्ग बतलानेवाला एक प्रधान ग्रन्थ है; इसलिये परमेश्वरमें भक्ति और श्रद्धा रखनेवाले सभी आस्तिक मनुष्योंका इसमें अधिकार है। गीताप्रचारके लिये भगवान्ने किसी देश, काल, जाति और व्यक्तिविशेषके लिये रुकावट नहीं की है, वरं अपने भक्तोंमें गीताका प्रचार करनेवालेको सबसे बढ़कर अपना प्रेमी बतलाया है।

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, अर्थात् निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ायेगा या अर्थकी व्याख्याद्वारा इसका प्रचार करेगा, वह निःसन्देह मुझे ही प्राप्त होगा।' आगे गीता-(१८।६९)-में वे और कहते हैं—

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

'और न तो उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई है और न उससे बढ़कर मेरा अत्यन्त प्यारा पृथिवीमें दूसरा कोई होगा।'

अतएव सभी देशोंकी सभी जातियोंमें गीताशास्त्रका प्रचार बड़े जोरके साथ करना चाहिये। केवल एक गीताके प्रचारसे ही पृथिवीके मनुष्यमात्रका उद्धार हो सकता है। इसलिये इसी गीताधर्मके प्रचारमें सबको यत्नवान् होना चाहिये। इससे सबको आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति हो सकती है। यही एक सरल, सहज और मुख्य उपाय है।

* जैसे गीता अ० २।७१; ३।३०; ४।३४; ५।२९; ६।४७; ७।१४; ८।१४; ९।३२; १०।९-१०; ११।५४-५५; १२।८; १३।१०; १४।१९, २६; १५।१९; १६।१; १७।१६; १८।६५-६६ इत्यादि।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ (गीता १८।६८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थतः अजर-अमरके लिये रोना व्यर्थ

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

श्रीभगवान् ही सार और सत्य वस्तु हैं। उन्हींसे मुख्य सम्बन्ध मानना उत्तम है। संसारके अन्यान्य सम्बन्धियोंका कुछ भी ठिकाना नहीं है। कर्मवश जीवात्मा अनादि कालसे अनन्त योनियोंमें भटकता रहा है। उनमेंसे उसका अनेक देशों, कालों, व्यक्तियों एवं वस्तुओंसे सम्बन्ध बनता और बिगड़ता रहता है। भगवान्की मायाका यह वैचित्र्य है कि प्राणीको नये जन्मके ही कुछ व्यक्तियों एवं वस्तुओंका सम्बन्ध स्मृत रहता है, अन्यान्य जन्मोंकी सब बातें प्रायः भूल ही जाती हैं। जब अविवेकी प्राणी एक ही जन्मके सम्बन्धियोंको स्मरण करके उनके शोक-मोहमें डूबकर रोता रहता है, तब फिर सबका बोध रहनेपर तो किस-किसके दुःखके लिये कितना रोया जाय!

इस सम्बन्धमें श्रीवसिष्ठजीने श्रीरामजीसे एक दृष्टान्त देकर कहा—रघुनन्दन! महेन्द्र नामक पर्वतपर दीर्घतपा नामक एक महर्षि अपनी पत्नीके साथ निवास करते थे। वे

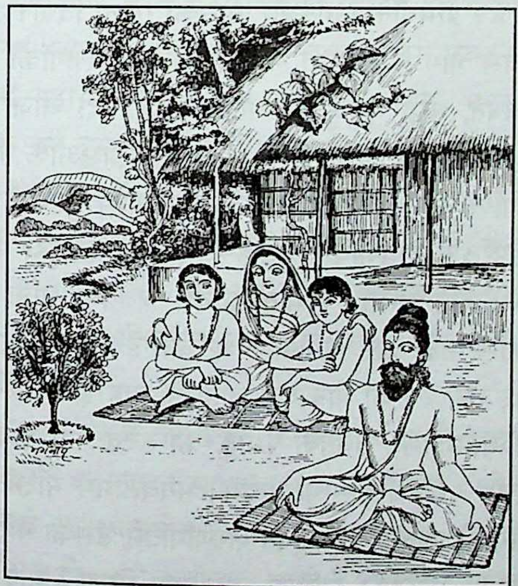

तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनके पुण्य और पावन नामके दो पुत्र थे। समय बीतनेपर उनका ज्येष्ठ पुत्र पुण्य सम्यक् ज्ञानसे सम्पन्न हो गया, किंतु छोटा पुत्र पावन यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ रहा। महर्षि दीर्घतपाने यथासमय अपना शरीर त्याग दिया और माताने भी यौगिक क्रियाद्वारा महर्षिका अनुसरण किया। माता-पिताके दिवंगत हो जानेपर ज्येष्ठ पुत्र धैर्यपूर्वक विवेकसे स्थिरचित्त हो अपना कर्तव्य करता रहा, किंतु रागमें आसक्त पावनका चित्त शोकसे व्याकुल हो गया, वह घूम-घूमकर विलाप करने लगा तथा शोकसंविग्न हो वनमें चला गया और वहीं रहने लगा। माता-पिताकी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्नकर पुण्य वनमें आया और शोकाकुल भाईके पास आकर कहने लगा—वत्स! यह शोक अन्धता (मोह)-का एकमात्र कारण है, तुम इसे घनीभूत क्यों बना रहे हो? महाप्राज्ञ! तुम्हारे पिता तुम्हारी माताजीके साथ उस मोक्ष नामक सच्चिदानन्दघन परमात्मपदको प्राप्त हो गये हैं, जो सबका स्वरूप है, वही सभी प्राणियोंका अधिष्ठान है और वही जितात्मा ब्रह्मवेत्ताओंका स्वरूप है। जब पिता अपने स्वरूपको प्राप्त हुए हैं तो तुम उनके लिये बारम्बार शोक क्यों करते हो? तुमने संसारमें मोहजनित ममता बाँध रखी है, इसीलिये तुम शोक कर रहे हो। भैया! यह संसार मायाका विलास केवल स्वप्न ही है। हम, तुम, संसार—ये सब कल्पनाएँ दुर्दृष्टि ही हैं, परमार्थतः केवल सर्वसाक्षी सर्वाधिष्ठान ब्रह्म ही तत्त्व है। विचार करनेपर माता, पिता, बन्धु—सब कल्पना व्यर्थ है। यदि ये वस्तुएँ हों तो फिर जन्मान्तरके सभी बन्धुओंके लिये रोना चाहिये। फिर तो पिछले किन्हीं जन्मोंमें तुम सुपुष्पित वनस्थलीमें वृक्ष थे, कभी सिंह, कभी मत्स्य, कभी वानर, कभी वनवायस, कभी गर्दभ तो कभी पक्षी हुए थे, तबके बन्धुओंका भी स्मरण करो। कभी विन्ध्यपर्वतपर प्रियाल हुए थे, कभी महावटके घुण हुए थे, तो कभी मन्दराचलपर कुक्कुट हुए थे, फिर बर्फीले ऊश्म हुए, ताल-कन्दके भीतर तथा उदुम्बरके भीतरके कीट भी तुम हो चुके हो। इसी तरह कहाँतक गिनायें, कितने ही तुम्हारे जन्म हुए हैं।

मेरा भी यही हाल है, मैं भी त्रिगर्तमें पहले उत्पन्न हुआ, मेढक बना, फिर वनकालावन पक्षी, विन्ध्यमें चातक, व्याघ्र और गृध्र बना, फिर सिंह बना। आज वही मैं तुम्हारा अग्रज हूँ। विविध जन्म, विविध संस्कार, विविध चेष्टाएँ—सब-की-सब केवल भ्रान्ति हैं।

कहना केवल इतना ही है कि अनन्त जन्मोंके अनन्त सुख-दुःख तथा सुख-दुःखकी सामग्रियों—बन्धु-बान्धवोंका कौन स्मरण करे और कौन कितना, किस-किसके लिये रोना रोये। परमार्थतः आत्मा सदा अजर-अमर एकरस है। आत्मा परमानन्द कूटस्थस्वरूप है। अतः उसीमें प्रतिष्ठित होकर तद्भिन्नका संकल्प-चिन्तन छोड़ना ही श्रेयस्कर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमका अनुभव

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक प्रेमीका बड़ा सुन्दर अनुभव है। वह भगवान्से कहता है—

गोपालाङ्गणकर्दमेषु विहरन् विप्राध्वरे लज्जसे
ब्रूषे गोकुलहुंकृतैः स्तुतिशतैर्मौनं विधत्से सताम्।
दास्यं गोकुलपुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु
ज्ञातं कृष्ण तवाङ्घ्रिपङ्कजयुगं प्रेमैकलभ्यं मुहुः॥

(श्रीराधा-माधव-चिन्तन)

ग्वालोंके घरोंमें कीचड़भरे आँगनमें तो आप विहार करते हैं, लोटते हैं बड़े चावसे। इस कीचड़में लोटें, उस कीचड़में लोटें, ग्वालोंके आँगनोंके कीचड़ोंमें तो आप लोटते हैं और '**विप्राध्वरे लज्जसे**' ऋषि-मुनि, ब्राह्मण वैदिक मन्त्रोंके द्वारा आपका आह्वान करते हैं तो वहाँ जानेमें आप शरमाते हैं। वहाँ नहीं जाना चाहते, नहीं प्रकट होते। '**ब्रूषे गोकुलहुंकृतैः**' कहीं किसी बछड़ेने हुंकार कर दी, जरा-सा बोल दिया, कोई गोपसखा, नन्हा-सा बच्चा बोल दिया—अरे कन्हैया! पुकार उठा तो आप दौड़े चले जाते हैं और '**मौनं विधत्से सताम्**' वहाँ तो बातचीत करते खूब और सत्पुरुष लोग सैकड़ों-सैकड़ों आपकी स्तुतियाँ करते हैं, तब आप मौन धारण कर लेते हैं। बोलते नहीं, कोई उत्तर नहीं देते और '**दास्यं गोकुलपुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु**' गोकुलकी अहीरिनियोंकी आप गुलामी करते हैं और जो इन्द्रियोंका, मनका दमन कर चुके हैं, ऐसे महात्मा लोग कहते हैं कि आप हमारे स्वामी बन जाओ, सेवक बना लो नाथ! तो कहते हैं कि ना, मैं नहीं बनाऊँगा। '**ज्ञातं कृष्ण तवाङ्घ्रिपङ्कजयुगं प्रेमैकलभ्यं मुहुः**' हे श्रीकृष्ण! हम जान गये कि आपके चरणकमल-युगलोंकी प्राप्ति केवल प्रेमसे ही होती है और कोई साधन नहीं है। बड़ा सुन्दर भाव है।

नारद से शुक व्यास रटैं पचिहारे तउ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

यह जादू, चमत्कार केवल प्रेममें है। जो भगवान् किसी भी प्रकारसे वशमें नहीं हो सकते, उनका नाम 'स्ववशु' अपने ही वशमें है। वे सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं। उनपर किसीका शासन नहीं। किसीका कोई अधिकार नहीं, किंतु वे भगवान् स्वयं अपने आपको बँधा लेते हैं प्रेमरज्जुमें—यह प्रेमकी महिमा है।

इसलिये सत्पुरुषोंने—महात्माओंने चार पुरुषार्थोंके अतिरिक्त पंचम पुरुषार्थकी बात कही है। वह पंचम पुरुषार्थ है—भगवत्प्रेम। चार पुरुषार्थ प्रसिद्ध हैं—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। अर्थ भी पुरुषार्थ ही है और काम भी पुरुषार्थ है, यदि ये धर्मके द्वारा नियन्त्रित हों और मोक्ष उनका उद्देश्य हो। धर्मसे अनियन्त्रित काम और अर्थ तो असुरोंका पुरुषार्थ है। धर्मयुक्त अर्थ और काम हो एवं उसका उद्देश्य हो मोक्ष तो ये अर्थ और काम भी पुरुषार्थ हो जाते हैं। परंतु पाँचवाँ पुरुषार्थ श्रेष्ठतम पुरुषार्थ है, जहाँ मोक्षका भी परित्याग हो जाता है। बल्कि उसकी उपलब्धि नहीं होती है मोक्षकी आकांक्षा रहनेतक।

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावत् प्रेमसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥

अर्थात् जबतक भोग और मोक्षकी पिशाचिनी इच्छा हृदयमें वर्तमान है, तबतक प्रेमसुखका प्रादुर्भाव कैसे हो सकता है। प्रेमियोंने भोग और मोक्षको मिला दिया। उनके लिये जैसे भोग है वैसे ही मोक्ष है। विषयी लोगोंकी बड़ी अभिलषित, परंतु मुमुक्षुओंके लिये बड़ी गन्दी चीज है—भोग, भुक्ति और मुमुक्षुओंके लिये, जिज्ञासुओंके लिये, आत्मप्राप्ति करनेवाले महापुरुषोंके लिये परम पुरुषार्थ है—मुक्ति। परंतु ये शिवजीके वचन हैं—**भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।** अर्थात् हृदयमें जबतक भुक्ति और मुक्तिकी—मोक्ष और भोगकी पिशाचिनी इच्छा—पिशाचिनी जो सारे रस, रक्तका पान कर जाती है, वह इच्छा जबतक हृदयमें वर्तमान है, तबतक प्रेमांकुरका उदय नहीं होता है। यह पंचम पुरुषार्थ है—भगवत्प्रेम। भगवत्प्रेममें मोक्षका भी परित्याग हो जाता है। अर्जुनने शरणागतिमें उसका परित्याग कर दिया। अर्जुनको गीताका फल क्या मिला? यदि कोई महाभारतको देखे तो फल सुस्पष्ट है। अर्जुनको मिली भगवान्की शरण—प्रपत्ति और उसका फल हुआ भगवान्की सेवाका लाभ—एकाधिकारकी प्राप्ति महाभारतसे ही प्रमाणित है। महाभारतके स्वर्गारोहण पर्वमें अर्जुनकी भक्तिके सम्बन्धमें वर्णन आया है, वहाँ देखा गया है कि भगवान्के दिव्य धाममें साकार दिव्य विग्रह भगवान्का विराजित है और वहाँ आयुध एवं आभूषण मूर्तिमान् परिकररूपमें हैं तथा उन्हींके साथ अर्जुन भी हैं और भगवान्की सेवा कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताका अठारहवाँ अध्याय है मोक्ष-संन्यासयोग। मोक्षका संन्यास हो जाता है शरणागतिमें। मुक्तिका संन्यास।

भगवत्प्रेम एक प्रकारका सर्वोत्तम पुरुषार्थ है कि बस वही जीवनका लक्ष्य बने और उसका साधन भी बने वही। *'साधन सिद्धि राम पग नेहू।'* (रा०च०मा०, अयो० २८९।८) भगवच्चरणारविन्दका स्नेह—यही साधन और यही साध्य है। जीवनमें इस प्रेमका विकास करे। प्रेमके इस विकासके लिये दो वस्तुओंकी आवश्यकता है। लोग पूछते हैं—प्रेम कैसे हो ? प्रेम होनेमें दो वस्तुओंकी आवश्यकता है। एक वस्तु है—अपने प्रेमास्पदके अतिरिक्त अन्य सभी प्राणी-पदार्थ और परिस्थितिसे विराग। यह सबसे पहली चीज है। प्रेमका अर्थ है—अनन्यासक्ति। अपने भगवान्में—अपने प्रेमास्पद प्रभुमें अनन्य आसक्ति, अनन्य ममता। दूसरी किसी वस्तुमें, प्राणीमें, परिस्थितिमें न ममता और न ही आसक्ति हो। अनन्यासक्ति—पूर्णानुराग। अपने प्रेमास्पद प्रभुके अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओंसे सहज वैराग्य। यह एक आवश्यक वस्तु है। संसारका वियोग भगवान्के साथ हृदयका योग करा देता है। जबतक संसारका वियोग हृदयमें नहीं, संयोग है तबतक नित्य संयुक्त भगवान् भी वियुक्त बने हुए हैं। भगवान्का संयोग हमारे हृदयमें जागृत् हो—यही वास्तविक योग है। भगवान्के साथ चित्तका, जीवनका, आत्माका एकात्मताको प्राप्त हो जाना, जुड़ जाना यही वास्तविक योग है, यही प्रेम है। एक बात तो यह कि भगवान्के अतिरिक्त अन्य प्राणी-पदार्थ और परिस्थितिमें सर्वथा विराग।

दूसरी चीज जो बहुत कामकी चीज है, वह है—स्वसुखकी कल्पनाका सर्वथा परित्याग। विरागमें भी राग न रहे। सारे प्राणिपदार्थोंमें वैराग्य हो जाय और वैराग्यमें भी आसक्ति न हो। बड़ी ऊँची बात आयी है भागवतके माहात्म्यमें। गोकर्णजीने कहा कि वैराग्यके रागके रसिक हो जाओ—

'वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः॥'

(श्रीमद्भा० माहात्म्य ४।७९)

विरागमें भी राग होता है। अर्थात् समस्त वस्तुओंके परित्यागमें एक विशेष प्रकारके रसकी उद्भावना होती है। इस रसका हमलोगोंको इसलिये पता नहीं है कि हमलोगोंने कभी विरागके मीठे रसको चखा ही नहीं है। हमलोग गन्दे विषयानुरागमें रहे। इसीलिये विषयोंके माधुर्यको ही मधुरता मानते रहे। हमें तो वैराग्यके रसका अनुभव है ही नहीं; परंतु सन्त गोकर्णजी कहते हैं कि वैराग्यमें भी एक राग है। उस रागके रसिक बन जाओ। वैराग्यरागके रसिक बन जाओ और भगवान्की शुद्ध भक्तिमें निष्ठावान् बनो। परंतु वह वैराग्य-रस भी भगवत्प्रेमके सामने नीरस हो जाय। यह आवश्यकता है और यह स्वाभाविक होता है।

इसीलिये प्रेमकी प्राप्तिके लिये दो चीजें आवश्यक हुईं। एक, भगवान्के अतिरिक्त—भगवान् भी कौनसे ? प्रेमास्पद भगवान् और कोई भगवान् नहीं, नारदजीके भक्तिसूत्रोंमें बड़ा सुन्दर सूत्र है। इसमें सारे साधन बताये हैं। विरोधी साधन बताये हैं त्यागके लिये, अनुकूल साधन बताये हैं ग्रहण करनेके लिये। अन्तमें उनका फल बताया—**'स प्रेष्ठं लभते'** (ना०भ०सू० ८४)। यह नहीं कहा कि भगवत्प्राप्ति होगी, यह नहीं कहा कि ज्ञानकी प्राप्ति होगी और यह भी नहीं कहा कि मोक्षकी प्राप्ति होगी बल्कि यह कहा कि इस प्रकार साधन करनेवाला महात्मा प्रियतमको प्राप्त करे। यही तो सबसे अच्छी चीज है कि भगवान्के समान कोई प्यारा रह ही न जाय। सारा प्यार सब जगहसे, सदाके लिये सिमटकर एकमात्र भगवच्चरणारविन्दमें स्थित हो जाय—

या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति-प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं॥

(विनय-पत्रिका १०३)

इस जगत्में जहाँतक शरीरके सम्बन्धको लेकर प्रीति-प्रतीति-सगाई है। तीन चीजें—प्रेम, विश्वास और अपनापन—आत्मीयता है। जहाँ-जहाँपर, जो-जो, जितनी-जितनी थोड़ी-बहुत है, सो सब जगहसे हटकर ***'प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं॥'*** सब जगहसे इकट्ठा होकर एक जगह प्रभुके चरणारविन्दमें आकर स्थिर हो जाय, लग जाय। प्रभुचरणोंमें ही प्रीति, प्रभुचरणोंमें ही विश्वास।

और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई॥

(विनय-पत्रिका १०३)

प्रभुको छोड़कर दूसरेकी आशा, दूसरेका भरोसा और दूसरेका विश्वास—यह तो जड़ता है। यही तो अज्ञान है। इसलिये जितना जो कुछ भी सम्बन्ध जहाँतक रहे, वह एकमात्र प्रभुसे रह जाय। जगत्के सारे प्राणी, पदार्थ और परिस्थितिसे विराग हो जाय—यह एक बात है और स्वसुखकी चाहनाका सर्वथा अभाव हो जाय—यह दूसरी बात। [**क्रमशः**]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन साधन है या साध्य ?

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती, सिहोरनिवासी)

बृहस्पतिस्मृतिमें एक श्लोक है—

आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया।
तथा चेद्विश्वकर्तारं को न मुच्येत बन्धनात्॥

'धनकी इच्छासे मनुष्य जैसे आदर और विवेकसे धनवान्‌की सेवा-स्तुति करता है, वैसे ही ईश्वर-प्राप्तिकी इच्छासे विश्वरचयिता भगवान्‌की सेवा करे तो जन्म-मृत्युके बन्धनसे छूट जाय।' श्रीभर्तृहरिने एक प्रसंगमें कहा है—

'न रम्यं नारम्यं प्रकृतिगुणतो वस्तु किमपि।'

अर्थात् 'जगत्‌में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो स्वभावसे ही अच्छी या बुरी हो।' अच्छी-बुरी वस्तु बनती है उसके उपयोगके अनुसार। अणुशक्तिसे लोकसुखके कार्य भी हो सकते हैं और अणुबमसे निरीह लाखों प्राणी मारे भी जाते हैं। साँप दूध पीता है तो उससे जहर पैदा होता है और वह मनुष्योंके प्राण हरता है। वही दूध एक बालकको पिलाया जाय तो उससे बालकके शरीरका गठन होता है। इसी प्रकार धन स्वभावसे बुरा नहीं है, उसका दुरुपयोग ही उसे बुरा बनाता है और उसीसे मनुष्यका अधःपतन होता है। यदि सदुपयोग होता है तो उससे मनुष्यकी उन्नति होती है। धनका उपयोग जहाँतक साधनके रूपमें होता है, वहाँतक वह हानिकारक नहीं होता, पर यदि धनको साधनके बदले साध्यके सिंहासनपर बैठा दिया जाता है तो वह निश्चय ही मनुष्यका पतन कराता है।

यह बात तो सर्वसम्मत है कि मनुष्य-जीवनका ध्येय भगवत्प्राप्ति है; क्योंकि दूसरे किसी भी शरीरमें भगवत्प्राप्तिकी योग्यता नहीं है, जबकि विषय-सुख तो चौरासी लाख योनियोंमें अपने-आप मिल जाता है। अतएव भगवत्प्राप्तिको ही जीवनका ध्येय मानकर जीवन-निर्वाहके साधनके तौरपर न्याय और धर्मके अनुसार धन कमाना बुरा नहीं है। पहले भी और आज भी धनके बिना जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता। इसीसे अर्थको भी एक पुरुषार्थ बताया गया है। जो मनुष्य अपना निर्वाह भी नहीं कर सकता, वह दूसरोंकी सहायता कैसे कर सकता है? अपना निर्वाह करते हुए दूसरेकी सहायता करना—यह भी जीवनका एक बड़ा लाभ है। एक श्लोक है—

भिक्षुका नैव भिक्षन्ति बोधयन्ति गृहे गृहे।
दीयतां दीयतां लोका अदातुः फलमीदृशम्॥

भावार्थ यह कि—भीख माँगनेवाले भीख नहीं माँगते, वे तो घर-घर यह शिक्षा देते हैं कि भाई! दान करो, दान करो, इस जन्ममें दान न करोगे तो इस समय जैसी हमारी स्थिति है, वैसी ही तुम्हारी होगी। इस समय नहीं बोओगे तो वर्षभर क्या खाओगे? हम लोगोंने पूर्वजन्ममें दान नहीं किया, इसीसे आज भीख माँग रहे हैं—इस प्रत्यक्ष उदाहरणसे शिक्षा ग्रहण करो।

यहाँतक हमने देखा कि जीवन-निर्वाहके लिये धन अत्यन्त आवश्यक है; परंतु उसकी प्राप्ति होनी चाहिये सन्मार्गसे। धनकी प्राप्ति सन्मार्गसे ही क्यों करनी चाहिये, यह विषय विशेष विचारणीय है। जिस किसी भी प्रकारसे प्राप्त किया हुआ धन क्या धन नहीं है? बैंकमें उसका ब्याज भी उतना ही मिलता है, जितना न्यायोपार्जित धनका। व्यवहारमें वह धन न्यायोपार्जित धनसे जरा भी कम काम नहीं देता। उत्तरमें, निवेदन है कि ये विचार केवल स्थूल दृष्टिके हैं। इनमें सूक्ष्म विचार और दूरदर्शिता नहीं है। अब देखिये—शास्त्रोंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ बतलाये हैं। यहाँ परम पुरुषार्थ मोक्ष है। पिछले तीनों पुरुषार्थ अन्तिम पुरुषार्थ—मोक्षकी प्राप्तिमें बाधक हों, ऐसे नहीं होने चाहिये। जीवन धर्मपरायण नहीं होगा तो परम पुरुषार्थकी प्राप्ति होगी ही नहीं—यह प्रत्यक्ष है। इस पुरुषार्थचतुष्टयका समन्वय इस प्रकार है कि जो मनुष्य धर्मसे अर्थकी प्राप्ति करके उस अर्थका उतना ही उपयोग करता है, जितना जीवननिर्वाहके लिये आवश्यक है, वह चतुर्थ पुरुषार्थको थोड़े ही प्रयासमें सिद्ध कर सकता है। मनुस्मृतिमें तो कहा है कि 'अधर्मसे प्राप्त किया हुआ धन कुछ दिन रहकर फिर न्यायोपार्जित धनको भी साथ लेकर नष्ट हो जाता है।' यदि कदाचित् ऐसा होनेके पहले ही शरीर छूट जाता है तो वह धन तो यहीं पड़ा रह जाता है और जीवनके किये हुए पापके फलस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यातना-शरीर धारण करना पड़ता है। अतएव अधर्मसे प्राप्त किया हुआ धन बैंकमें चाहे सुन्दर मालूम हो, पर वह है विषसे भरे हुए सोनेके घड़े-जैसा। *'विषरस भरा कनकघट जैसे।'*

अब धर्मसे धन प्राप्त करनेका अभिप्राय भी समझना चाहिये। मनुमहाराजने धर्मके दस अंग बतलाये हैं; परंतु धनके उपार्जनमें तो उनमेंसे दो ही अंगोंका पूरा पालन हो जाय तो बहुत है। इनमें पहला अंग है—**'अस्तेय'**। स्तेय कहते हैं चोरीको, अतः अस्तेयका अर्थ है 'चोरी न करना।' किसीकी अनुपस्थितिमें या नजर चुराकर उसकी वस्तुको ले लेनेका नाम ही चोरी है, ऐसी बात नहीं है। दूसरेके जरासे हकको ले लेना भी चोरी है। यहाँतक कि दूसरेकी वस्तुकी ओर ललचायी नजरसे देखना भी चोरी ही है। श्रुतिमें इसलिये कहा है—**'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।'** व्यापारी उचितसे अधिक मुनाफा ले, यह भी चोरी है। माप-तौलमें कम दे—ज्यादा ले ले, खरीददारकी गरज समझकर अधिक पैसा वसूल कर ले, अच्छा नमूना दिखाकर चाहे जैसा माल दे दे—यह सब चोरी है। बलवान् राजा उचितसे अधिक कर वसूल करे और इसके लिये प्रजाको सताये, यह भी एक प्रकारकी डकैती है। कालाबाजारी, रिश्वतखोरी और अनुचितरूपसे धनकी वसूली करनेवाले चाहे जेलमें न हों, पर वे हैं तो चोर-डाकू ही। इस प्रकार सभी क्षेत्रोंमें मजदूरसे लेकर प्रधान पदोंतकमें, जो कोई भी अपने उचित हकसे अधिक लेते हैं और उचितसे कम काम करते हैं, वे सभी चोर कहलाते हैं!

दूसरा अंग है—**'अपरिग्रह'**। संग्रहको ही परिग्रह कहते हैं। अतएव अपरिग्रहका अर्थ हुआ संग्रह न करना। आजका अन्नसंकट, वस्त्रसंकट और अन्य प्रायः सभी संकट परिग्रहके पापसे ही प्रकट हुए हैं और उसीसे पनप रहे हैं। परिग्रह बड़ा पाप है, यह समझकर कल्याणकामी पुरुषोंको जमाखोरीसे दूर ही रहना चाहिये।

धर्मके इन दो अंगोंपर यदि व्यक्ति और सारी जनता ध्यान रखे तो देशका दुःख अवश्य दूर हो जाय। परंतु जबतक इसके लिये दृढ़ निश्चयके साथ व्यक्तिगत प्रयत्न नहीं होगा, इस दुःखसे प्रजाको रोते ही रहना पड़ेगा। भगवान् सबको सन्मति दें।

अब यह देखना है कि धनको यदि साध्य—जीवनका ध्येय मान लें तो वह किस प्रकार हानिकारक होता है! चित्तका ऐसा स्वभाव है कि वह जिस वस्तुका चिन्तन करता है, उसी आकारका बन जाता है। अतएव यदि धनको ही जीवनका ध्येय बना लेंगे तो जीवनका सारा समय धनके चिन्तनमें ही जायगा और परिणाममें चित्तके ध्येयाकार बन जानेपर धनके सिवा दूसरी चीज अच्छी लगेगी ही नहीं। शास्त्रमें कहा है—

जगल्लुब्धा धनमयं कामुकाः कामिनीमयम्।
नारायणमयं धीराः पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥

भाव यह कि धन ही जिसका ध्येय है, वह जगत्-भरको एक धन-संग्रहके साधनरूपमें देखता है, उसे धनके सिवा दूसरी दृष्टि ही नहीं है। कामीपुरुष जगत्को स्त्री-प्राप्तिके साधनरूपमें देखता है, किंतु धीर-साधक पुरुष ईश्वर-प्राप्तिको जीवनका ध्येय बनाता है; इसलिये वह ज्ञानकी आँखोंसे जगत्को नारायणरूप देखता है।

जब मनुष्यके सारे व्यापार—सारी चेष्टाएँ केवल धनकी प्राप्तिके लिये ही होती हैं, तब उसका अधःपतन किस प्रकार होता है, इसको भगवान्ने गीताके दूसरे अध्यायमें विशदरूपसे समझाया है। वहाँ कहा है—मनुष्य जब धनको (मूलमें 'विषय' शब्द है पर मनुष्य धनकी प्राप्ति इसीलिये करता है कि उससे भोग मिलते हैं) जीवनका ध्येय बनाता है, तब उसका चित्त हर समय धनका ही चिन्तन करता है। चिन्तन करते-करते उसीमें उसकी आसक्ति हो जाती है। आसक्तिसे उसको प्राप्त करनेकी प्रबल कामना जाग उठती है, कामनामें प्रतिरोध होनेपर अर्थात् इच्छित वस्तुकी प्राप्तिमें विघ्न आनेपर क्रोधाग्नि भभक उठती है, क्रोधसे विवेकका नाश हो जानेपर कर्तव्याकर्तव्यका भान नहीं रहता। ऐसा होनेपर सारासार, धर्माधर्म या नीति-अनीतिके विचार ही मनमें नहीं आते। परिणाममें मनुष्यका मनुष्यत्व मिट जाता है और वह क्या बन जाता है—यह कहा नहीं जा सकता। उसे क्या कहना चाहिये—**'ते के न जानीमहे।'** यह बात समझमें नहीं आती—उसका सर्वनाश हो जाता है।

समस्त पाप इस विषय-लालसासे ही होते हैं। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयोंकी लालसा और विषयोंकी प्राप्तिके लिये धनकी लालसा—धन इकट्ठा करनेसे नहीं मिटती। ज्यों-ज्यों धनका ढेर लगता जाता है, त्यों-ही-त्यों अधिक-से-अधिक प्राप्त करनेकी तृष्णा भी बढ़ती ही जाती है। धनसे या विषय-भोगसे किसीका मन भरा हो, ऐसा भूतकालमें भी कभी नहीं सुना गया, फिर आजके भोगपरायणकालमें तो ऐसा होगा ही कैसे?

'बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय-भोग बहु घी ते॥'

भगवान्‌ने कहा है लालसाको—कामनाको तो मार ही डालना चाहिये। उसको मारे बिना अर्थात् वैराग्यके द्वारा उसका दमन किये बिना उसके बन्धनसे छूटनेका दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

जीवन-निर्वाहके साधनरूपमें धनकी प्राप्तिको शास्त्रोंमें निन्दित नहीं बतलाया है; बल्कि उसकी तो आवश्यकता बतलायी है। शास्त्रोंने तो निन्दा की है धनको ही जीवनका ध्येय बना लेनेकी और उसकी अनर्गल लालसाकी, पर जिसकी बुद्धि सारासारका निश्चय करनेमें समर्थ नहीं रह गयी है, उसका ध्यान शास्त्रोंकी चेतावनीकी ओर जाना बहुत कठिन है। एक जगह कहा है—

जनयन्त्यर्जने दुःखं तापयन्ति विपत्तिषु।
मोहयन्ति च संपत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः॥

अर्थात् धनके अर्जनमें दुःख है, विपत्तिकालमें—युद्ध, राज्यक्रान्ति, महामारी, अग्निप्रकोप, बाढ़ तथा भूकम्प आदिके समय धन अत्यन्त संतापदायक बन जाता है। ऐसे समय धनवान्‌की स्थिति बड़ी करुणाजनक हो जाती है। इसी प्रकार जब बहुत अधिक परिमाणमें धन इकट्ठा हो जाता है, तब वह मनुष्यकी बुद्धिको नष्ट कर देता है, जिससे वह एक उन्मत्त नशेबाजके सदृश आचरण करने लगता है, फलतः भयंकर विपत्तियोंमें फँस जाता है, ऐसी अवस्थामें धनको कब सुख देनेवाला समझा जाय?

शास्त्रकार कहते हैं—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

धनकी तीन गति होती है—उत्तम गति है धनका परोपकार—दान, पुण्य आदिमें सद्व्यय करना। मध्यम गति है—अपने उपयोगमें लाना। जो धनी अपने धनका इन दो प्रकारोंसे उपयोग नहीं करता, उसके धनकी तीसरी गति होती ही है। किसी भी मार्गसे उसके धनका नाश हो जाता है।

यहाँ जो धनको अपने उपयोगमें व्यय करनेकी बात कही गयी है, यह जरा विशेष विचारणीय है। धनकी अधिष्ठातृ देवी हैं—श्रीलक्ष्मीजी। लक्ष्मीजी भगवान्‌की अर्धांगिनी हैं। भगवान् परमपिता हैं। वे सबकी माता हैं। वे यदि अपने घर पधारें तो हम उन्हें अपनी भोग्या न मानकर माता मानें और भगवान्‌की सेवामें लगा दें, यही कर्तव्य है। अर्थात् अपने निर्वाहके योग्य धनका अपने लिये उपयोग करें, शेष सारा जनतारूपी जनार्दनकी सेवामें लगा देना चाहिये। मनुष्यका जीवन भोगमय न होकर त्यागमय होना चाहिये। धनका उपयोग भोग-सामग्री-संग्रह करनेमें नहीं होना चाहिये। मनुष्य बेसमझीके कारण ही भोग-सामग्री इकट्ठी करता है। मनुष्यमात्र सुखकी इच्छा करता है और इसीलिये उसकी सारी प्रवृत्तियाँ सुखप्राप्तिके लिये ही होती हैं। वह समझता है कि भोग-सामग्रीका जितना अधिक संग्रह होगा, उतना ही सुख अधिक होगा। पर होता है इससे विपरीत। ज्यों-ज्यों भोगके साधन बढ़ते जाते हैं, त्यों-ही-त्यों भोगतृष्णा अधिक-से-अधिक उग्र बनती जाती है और यह तृष्णा ही संसारमें बड़े-से-बड़ा दुःख है। सुख भोगमय जीवनमें कदापि नहीं है। सुख है—त्यागमय जीवनमें। जिस मनुष्यकी आवश्यकता जितनी ही थोड़ी है, उतना ही वह अधिक सुखी है। अतः जो मनुष्य सुखी जीवन बिताना चाहता हो, उसे धीरे-धीरे अपनी आवश्यकताओंको कम करना चाहिये और सन्तोष वृत्तिकी शिक्षा लेनी चाहिये। **'यदृच्छालाभसन्तुष्टः'** गीताके इस ब्रह्मवाक्यको जीवनमें उतारना चाहिये। श्रीतुलसीदासजीके कथनानुसार 'यथालाभ सन्तोष सुख' की वृत्ति बनानी चाहिये। भोगमें तो चित्त व्यग्र ही रहता है। उससे सुख-शान्तिका अनुभव नहीं हो सकता, पर सन्तोषसे चित्त शान्त रहता है और उस समय सुख-शान्तिका अनुभव होता है। पातंजलयोगदर्शनमें भी कहा है—

'संतोषादनुत्तमसुखलाभः॥' (२।४२)

अर्थात् जिससे बढ़कर दूसरा न हो, ऐसा अप्रतिम सुख प्राप्त करना हो तो सन्तोषवृत्तिको धारण करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। 'सन्तोष ही सुख है'—यह एक महामन्त्र है, इसको सतत स्मरण रखना चाहिये।

संक्षेपमें यही कहना है कि जीवननिर्वाहके साधनके तौरपर धन कमाना आवश्यक है, परंतु धनकी प्राप्ति ही जीवनका ध्येय नहीं बन जाना चाहिये। फिर धनकी प्राप्ति भी न्याय और नीतिके मार्गसे ही होनी चाहिये। अन्याय और अधर्मसे आया हुआ धन नरकोंमें ले जाता है। साथ ही धनका उपयोग भी भोगसामग्रीके संग्रहमें नहीं होना चाहिये; परंतु अपने उपयोगके आवश्यक धनके अतिरिक्त शेष धनको परोपकारमें लगाना चाहिये।

अब जीवननिर्वाह कैसे करें? इसको योगवासिष्ठके इस एक श्लोकमें समझना चाहिये—

आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं
कुर्यादाहारं प्राणसन्धारणार्थम्।
प्राणाः सन्धार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं
तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम्॥

शरीर है, इसलिये उसके निर्वाहार्थ न्यायमार्गसे धन कमाना चाहिये। शरीरको बनाये रखनेके लिये आवश्यक आहार-विहार करना चाहिये। खान-पानके लिये जीवन नहीं, पर जीवनके लिये खान-पान है। इस सूत्रको याद रखना चाहिये। जीवनको बनाये रखना चाहिये भगवत्प्राप्तिके लिये और भगवत्प्राप्ति इसी जीवनमें कर लेनी चाहिये, जिससे पुनः गर्भवासका दुःख न भोगना पड़े। यह नियम जैसे व्यष्टिके लिये सुखरूप फल देनेवाला है, वैसे ही समष्टिके लिये। जो व्यक्ति या समाज इसका पालन करेगा, उसको दुःख नहीं भोगना पड़ेगा।

भौतिकवादका सिद्धान्त इससे सर्वथा उलटा है, वे कहते हैं— 'Do not curtail your wants, but try to attain them.' 'तुम अपनी आवश्यकताओंको घटाओ मत, पर उनको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करो।' आवश्यकताओंको ज्यों-ज्यों पोषण मिलेगा, त्यों-त्यों वे बढ़ती ही जायँगी और इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन आवश्यकताओंकी पूर्तिके प्रयत्नमें ही बीत जायगा। इतनेपर भी आवश्यकताओंकी प्राप्ति अधूरी ही रहेगी। इसीका नाम निष्फल जीवन है और इसीसे हमारे लिये यह सिद्धान्त उपयोगी नहीं है।

सेवा

(श्रीदिलीपजी देवनानी)

आत्मज्ञान हो या परोपकार। कोई भी एक बात जीवनमें होनी चाहिये। आत्मज्ञानमें तो स्वरूपका साक्षात्कार हो जानेपर दूसरा रहता ही नहीं, फिर उपकार किसका करे? पर जबतक संसारमें दूसरा दीखता है, तबतक शरीरको परोपकारमें लगाना चाहिये, बल्कि परोपकारसे भी अच्छा एक भाव है—सेवाभाव। श्रीरामकृष्ण परमहंसजी कहते थे—परोपकार नहीं सेवा करो; क्योंकि परोपकारमें अभिमानका एक भाव आ सकता है, सेवामें नम्रभाव है। जिस परमात्माने सृष्टिकी रचना की है परोपकार तो वही कर सकता है, इनसानकी क्या शक्ति जो वह परोपकार करे। हम तो निमित्तमात्र हैं, करने-करानेवाला तो परमेश्वर है। सेवाके द्वारा परमेश्वरकी आराधना करके हम स्वयंको ही शुद्ध तथा पवित्र बनाते हैं। सेवा अन्तःकरणको निर्मल बनाती है। स्वामी अखण्डानन्दजीने कहा—तनसे सेवा, मनसे भक्ति और बुद्धिमें ज्ञान—यह सम्पूर्ण जीवन है।

माता, पिता, गुरुजनों और अपनेसे ज्ञानमें बड़े लोगोंकी पूजा, अपने कर्मोंद्वारा उन्हें प्रसन्न रखना चाहिये। राष्ट्रकी, समाजकी, परिवारकी और प्राणिमात्रकी सेवा करके मनुष्य धीरे-धीरे ऊपर उठता है। मनुष्यके ऊपर माता-पिताका ऋण है, देवताओंका ऋण है, समाजका ऋण है, इनसे उऋण हुए बिना मनुष्य ज्ञानपथमें आगे नहीं बढ़ सकता। स्वामी शरणानन्दजी कहते थे—यह शरीर सेवाके लिये मिला है, भोगके लिये नहीं। जो शरीरसे सेवा नहीं करता, वह भोगमें फँस जाता है और भोगमें फँसकर अपनेको भयंकर दुःखमें आबद्ध कर लेता है।

सेवा माने हम बड़े नहीं हैं, हम बहुत छोटे हैं। इस छोटेपनमें जो बड़प्पन है, वह बड़ा दुर्लभ है। प्रभुकी यह सृष्टि है, प्रभुके ही साधनोंद्वारा हम प्रभुकी ही आराधना करते हैं। सेवा करते-करते हम न रह जायँ, प्रभु ही रह जायँ; क्योंकि वे ही हैं, हमारा कोई अस्तित्व नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मेरी मान्यतामें गोस्वामी तुलसीदासजी एक स्मृतिकार 'ऋषि' थे। उनकी रचनाओंका प्रमाण माना जाता है। उनकी कवितामें बड़ी विलक्षणता है। भगवान्‌का चरित्र और भक्तकी वाणी होनेसे रामायण बहुत विलक्षण ग्रन्थ है। यह भगवान्‌की कृपासे निकली हुई वाणी है। भविष्यमें संस्कृत जाननेवाले बहुत कम रह जायँगे, इसलिये भगवान् शंकरने हिन्दीमें रामायणकी रचना करनेकी आज्ञा दी।

गीता और रामायण दोनों ग्रन्थ मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। दो ही मुख्य भाषाएँ हैं—संस्कृत और हिन्दी। दोकी ही वाणी मुख्य है—भगवान्‌की वाणी और भक्तकी वाणी। रामचरितमानसकी रचना मुझे बड़ी विलक्षण लगती है। इसे सुननेमें मेरी रुचि रहती है।

गोस्वामीजीने अयोध्याकाण्ड पहले लिखा है। अयोध्याकाण्डकी रचनामें वे नियमसे चले हैं; क्योंकि भरतजी भी नियम (मर्यादा)-से चलते हैं। वे सभी काण्ड दोहेसे शुरू करते हैं, पर सुन्दरकाण्ड चौपाईसे शुरू करते हैं; क्योंकि दोहा विश्राम होता है। हनुमान्‌जी विश्राम नहीं करते—*'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम'* (मानस, सुन्दर० १), इसलिये गोस्वामीजीने सोचा कि जब हनुमान्‌जी विश्राम नहीं करते तो मैं विश्राम क्यों करूँ?

रामायण गृहस्थोंके लिये विशेष कामकी है। किसको कैसा आचरण करना चाहिये—यह शिक्षा रामायणसे मिलती है। रामायणमें बहुत शिक्षाएँ भरी हुई हैं। रामायण सब रीतियोंसे विलक्षण है!

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

(मानस, बाल० १७। ३-४)

भरतजीका मनरूपी भ्रमर रामजीके चरणकमलोंपर मँडराता है, इसलिये भरतजीके चरणोंको कमलकी उपमा नहीं दी। यदि भरतजीके चरणोंको कमलकी उपमा दें तो मनरूपी भ्रमर वहीं रहे, रामजीके चरणोंमें क्यों जाय? ऐसे ही ब्रह्माजीके चरणोंको भी कमलकी उपमा नहीं दी; क्योंकि वे कमलसे उत्पन्न हुए!

× × × ×

संसारसे मैं-मेरेका सम्बन्ध माना हुआ है। हमारा वास्तविक सम्बन्ध परमात्माके साथ है। *'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'*—इस प्रकार भगवान्‌के साथ अनन्य सम्बन्ध होनेपर ही असली भक्ति होती है। दूसरा मेरा है—यही भक्तिमें बाधक है; क्योंकि यह अनन्यता नहीं होने देता। भगवान् अनन्य भक्तके लिये सुलभ हैं—**'तस्याहं सुलभः पार्थ'** (गीता ८। १४)।

संसार मेरा है—यह भाव बाधक है। इसे कैसे छोड़ें? ये सब सेवा करनेके लिये मेरे हैं, लेनेके लिये कोई मेरा नहीं है—यह दृढ़तासे मान लें। सेवा लेनेसे ही आप बँधे हैं। सेवा करनेसे कर्जा उतर जायगा।

× × × ×

मनुष्यशरीर बहुत दुर्लभ है, पर मिल गया, इसलिये दुर्लभताका पता नहीं चलता। मनुष्यशरीर किसलिये मिला है? हमें क्या करना है? इस तरफ ध्यान देनेकी बड़ी आवश्यकता है। यह अन्य योनियोंकी तरह नहीं है। यह इसलिये मिला है कि हम सदाके लिये दुःखोंसे छूट जायँ। परम आनन्द प्राप्त करनेके लिये मानवशरीर मिला है। कुछ करना, जानना और पाना बाकी न रहे—इसके लिये मानवशरीर मिला है। भारत एक विलक्षण देश है। भारतमें जन्म कल्याणके लिये ही होता है।

× × × ×

हम यहाँ आये हैं और जानेवाले हैं—यह मान लें। यह बहुत दामी बात है। कोई जन्म करके आ गया, कोई ब्याह करके आ गयी! इस बातका जप नहीं करना है, इसे बार-बार याद नहीं करना है। यह स्वीकृति है। इस बातकी हर समय जागृति रहनी चाहिये।

किसीके मरनेका दुःख होता है तो वास्तवमें ऋणका ही दुःख होता है। जिससे जितना सुख लिया है, उतना सुख दिया नहीं और जिससे सुखकी आशा है, उसके मरनेसे ही दुःख होता है। सभी दुःख स्वार्थमें ही भरे हैं।

× × × ×

ईश्वर कर्म नहीं करवाता, प्रत्युत फल भुगवाता है। मनुष्य कर्म स्वतन्त्रतासे करता है, फल परतन्त्रतासे भोगता है। काम करते हैं अपनी मरजीसे, फल भोगते हैं दूसरेकी मरजीसे। शुभकर्मका फल सब चाहते हैं, अशुभकर्मका फल कोई नहीं चाहता। इसलिये ईश्वर सबके हृदयमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहकर फल भुगताते हैं—'**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥**' (गीता १८।६१)। अगर ऐसा मानें कि भगवान् ही कर्म करवाते हैं तो फिर शास्त्र, गुरु और शिक्षा सब निरर्थक हो जायँगे। मनुष्यमें मनुष्यपना नहीं रहेगा, वह पशु-पक्षियोंकी तरह परतन्त्र हो जायगा। जैसे कानून अपनेसे विरुद्ध कर्म करनेकी आज्ञा नहीं देता, ऐसे भगवान् अपनेसे विरुद्ध कर्म कैसे करवायेंगे? क्या सरकार बैंकमें चोरी करनेवालेकी सहायता करती है? सरकार तो रुपया जमा करवानेवालेकी ही सहायता करती है।

× × × ×

परमात्मा भी वर्तमान हैं, आप भी वर्तमान हैं, केवल इच्छाकी कमी है! परमात्माकी तरफ चलनेवालेके पास बैठनेसे शान्ति मिलती है—यह परमात्माके होनेमें प्रत्यक्ष प्रमाण है।

जैसे भगवान् नित्य हैं, ऐसे उनकी कृपा, सुहृत्ता आदि गुण भी नित्य हैं। भगवान्के बनाये हुए नियमों (न्याय)-में भी कृपा भरी हुई है। गीतामें आया है—'**मामनुस्मर युध्य च**' (८।७) 'मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।' यहाँ शंका होती है कि मन भगवान्में लगायेंगे तो युद्ध कैसे होगा? युद्धमें तो बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है, नहीं तो गला कट जाय! युद्ध सब समय नहीं होता, पर स्मरण सब समय कर सकते हैं। अतः यहाँ स्मरण करनेका तात्पर्य है कि कामको अपना न मानकर भगवान्का मानकर करे। भगवान्के लिये करनेसे प्रत्येक क्रिया 'पूजा' हो जायगी। भगवान्का काम माननेसे काम करते समय विशेष सावधानी रहेगी।

भगवान्का प्रत्येक विधान कृपापूर्ण ही होता है। परम सुहृद भगवान्के द्वारा हमारा अहित कैसे होगा? भगवान्की कृपामें हित और प्यार दोनों होते हैं।

× × × ×

मृत्यु सब जगह और सब समय खुली है। अतः जो काम आवश्यक हो, उसे जल्दी कर लो। परमात्माकी प्राप्ति आवश्यक काम है, जो खुद ही कर सकते हैं। यह काम भोजन करने और दवा लेनेकी तरह खुद ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं। यह काम केवल बूढ़ोंके लिये ही नहीं है। यह बालकपनेसे ही करनेका काम है। भजन, सत्संग करनेकी कोई अवस्था नहीं होती।

'ब्रजबयार'

(श्रीमुकुन्दजी गोस्वामी)

ब्रजबयार! तुम बहती रहती मन्द-सुगन्धित आठों याम।
लाती क्या सन्देश कि जिसको यमुना सुनती निजगति थाम॥ १ ॥
ऐसा क्या संवाद जिसे सुन लता भरे आंचल में फूल।
आलिंगन करती कदम्ब को लोकलाज-मर्यादा-भूल॥ २ ॥
सुन दूर्वा सन्देश तुम्हारा मोदमग्न हो, उठती नाच।
सन्-सन् कर उच्चार मन्त्र तुम क्या कानों में देती बांच॥ ३ ॥
दूती तुम हो ब्रजनायक की लाती हो क्या सुख संकेत।
सुनकर जिसे चहकता खग कुल, नाच-नाच गाता समवेत॥ ४ ॥
हरिकी अलकावलि बिखराना, धूर्त्त खेल है अरी बयार।
पीताम्बर चंचल कर देना, हिला खिले सुमनों के हार॥ ५ ॥
हरि अठखेली देख तुम्हारी कुपित न हो, करते मृदु हास।
सुमनहार सुस्थित कर, अलकें भी सँवार लेते सायास॥ ६ ॥
गोपीजनके वस्त्रांचल से, अलकों से तुम करतीं खेल।
जूड़ाग्रथित हार-गजरों को, पथ में बिखरा देतीं ठेल॥ ७ ॥
यह अचगरी तुम्हारी, हँसकर सब सह लेते अरी बयार।
क्योंकि सभी को देती हो तुम दुर्लभ हरिपदरज उपहार॥ ८ ॥
मैं भी हूँ श्यामानुरागिणी, श्रवणातुर मेरे भी कान।
हरि का सुन संवाद कभी क्या पुलकित होंगे मेरे प्राण॥ ९ ॥
ब्रजबयार! तुम-सी उदार तो सुनी जगत् में कहीं न अन्य।
हरिपदरज के महादान से क्या न करोगी मुझको धन्य॥ १०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार और भगवान्

(श्रीभूपेन्द्रनाथजी सन्याल)

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।

चक्रीके हीडेपर चढ़कर चारों ओर घूमते रहो और सिरमें भी चक्कर नहीं आयें, यह हो नहीं सकता। बैलगाड़ीपर सवार होकर लगातार ऊँची-नीची जमीनपर चलते रहनेपर भी देहमें दर्द नहीं हो, ऐसी आशा करना व्यर्थ है। इसी प्रकार संसारमें रहनेपर (संसारमें न रहकर जाओगे भी कहाँ?) दुःख-कष्टका भोग भी अनिवार्य है। निश्चित बातके लिये अधिक चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं! इसीलिये भगवान्ने कहा, जानते हो यह सब क्या है? ये हैं मात्रास्पर्श अर्थात् विषयोंके साथ इन्द्रियोंके सम्बन्ध और इसीलिये ये शीत-उष्ण एवं सुख-दुःख देते हैं। ये आगमापायी हैं, यानी सदा रहनेवाली वस्तु नहीं हैं, बीच-बीचमें आते हैं और चले जाते हैं, इसलिये भैया! ये सब सहने ही पड़ेंगे। साफ-साफ बात है, इसका कोई जवाब भी नहीं हो सकता।

तुमसे यदि कोई यह कहे—मैं तेरे सारे दुःख दूर कर दूँगा, तुझे उस सातवें आसमानपर चढ़ा दूँगा, जहाँ दुःख-दर्दका नाम निशान भी नहीं है, सिर्फ मौज-ही-मौज है तो ऐसे गुरुजीसे जरा बचकर ही रहना। कलियुगका कठिन काल है, जहाँ-तहाँ पाखण्डियोंने अड्डे जमा रखे हैं, इसीसे डर लगता है, कहीं फँस न जाओ! यह संसार जिसमें रहते हो, असलमें क्या है? इस बातको लेकर एक बार समझो। संसार एक बड़ी बाजीगरी है। इसका भेद जानना चाहते हो तो इस संसार-नाटकके प्रभु नटराजके सम्बन्धमें जरा मन लगाकर विचार करो। बस, इसीसे सारी बाजीगरी समझमें आ जायगी। जो मनुष्य यह समझता है कि अहा! संसारमें मेरे पास कितना धन-ऐश्वर्य है, कितने बन्धु-बान्धव हैं, कैसी मान-प्रतिष्ठा है, किसी वस्तुका अभाव नहीं है, कुछ दिन मजेसे सुख भोग लिया जाय। यह भ्रान्तचित्तकी कल्पनाएँ हैं, इसी प्रकार जो यह सोचता है कि ओफ! कैसा भयंकर संसार है, इसमें कितने झंझट, कितना दुःख, कितनी दीनता और कितना असमंजस है। कहाँ है इसमें ईश्वर? कहीं कोई भी तो नहीं है, व्यर्थ ही गला फाड़कर मरना है। कैसी बुरी जगह है? बाप रे! मरा—यह भी वैसा ही भ्रान्त है। साधारणतः जगत्में यही दो भाव देखे जाते हैं, परंतु इनमें सच्चा कोई-सा भी नहीं है!

संसारका रूप कैसा है? कभी मालूम होता है, क्या ही सुन्दर है, क्या ही आनन्दकी जगह है? इतना प्रेम, इतना अनुराग, इतना स्नेह और कहाँ है? पिता-माता, पति-पत्नी, भाई-बहन, स्वजन-बान्धव सभी मानो एक-एक सुखके झरने हैं, सभी मानो सुखके बाजार हैं। धन-मान-कीर्ति आदिकी चमक-दमक भी कम नहीं है! जो कुछ मनोरथ किया जाता है, वही हो जाता है। जब जो कुछ चाहा हो जाता है, वही मिल जाता है। शरीरमें बल है, नीरोगता है, गहरी भूख लगती है और भूख मिटानेके लिये भाँति-भाँतिके खाद्य-पदार्थ भी तैयार हैं। किसी वस्तुका अभाव नहीं है, विद्या-बुद्धि, ज्ञान आदि तो मानो हाथमें ही धरे हैं! पर ठहरो, संसारकी एक दूसरी मूर्ति भी देखो। वह भयानकसे भी भयानक है! उसकी याद आते ही कलेजा थर-थर काँपने लगता है! मूर्खता, अज्ञानता तो है ही, खाने पहननेको अन्न-वस्त्र नहीं हैं, रोग, कष्ट और मृत्यु नित्य लगे हुए हैं, दुर्भिक्ष और भयंकर रोग सदा सिरपर सवार रहते हैं, सभी मानो मुँह बाये निगलनेको दौड़े आते हैं। देखते-देखते ही भूकम्पसे घर-द्वार गिर पड़े, आग लग जानेसे सब कुछ स्वाहा हो गया। महामारीके प्रबल प्रकोपसे एकके बाद एक न मालूम कितने पुत्र-कन्या, भाई-बन्धु, मित्र-सम्बन्धी हृदय चीरकर कालके गालमें चले गये। दरिद्रताका तो कहना ही क्या है? बीमारीमें पथ्यके लिये पैसा नहीं है। चूल्हेपर हांडी चढ़ानेके लिये एक मुट्ठी अनाज नहीं है। सभी घृणा और अविश्वास करते हैं। रोगोंने तो मानो शरीरमें रहनेका पट्टा ही लिखा लिया है। झोंपड़ीपर छान नहीं है, बरसातके जलसे दीवार टूट-टूटकर गिर रही है। कन्याओंके विवाहकी उम्र पार कर गयी, पर किसी सत्पात्रको हाथ पकड़ानेका सामर्थ्य नहीं है। विधवाओंसे घर भर रहा है। लड़कोंको पढ़ानेके लिये खर्च नहीं है, घरमें पड़े-पड़े वे सब गँवार बन रहे हैं। मृत्युकी भीषण छाया पल-पलमें चित्तको व्याकुल कर रही है। संसारकी एक यह मूर्ति है। यह प्रकाश-अन्धकार ही संसार है। सभीके भाग्यमें दोनों आते हैं सो भी कोई नियम नहीं है। सम्भव है किसीके जीवनमें दुःख-ही-दुःख हो। परंतु भैया! लगातार सुख कहीं नहीं है। होता तो शायद सुखकी इतनी महिमा भी न रहती!

एक बात स्मरण रखो! इस संसारमें जब ऐसा दिखायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़े कि चारों ओर अन्धकार छाया है, कहीं तम-समुद्रका किनारा नहीं दीखता, असीम अन्धकारमें विपत्तिकी भयावनी उन्मत्त आँधी उठ रही है, सब दिशाएँ उससे भर गयी हैं, मनमें आता है यह क्या हुआ? हम कहाँ आ पड़े? न कोई साथी है, न बन्धु है, न प्रकाश है, न दया है, न कोमलता है और न ही कोई हमारे दु:खसे सहानुभूति करनेवाला है! यह तो नरक है। तब तनिक धैर्य धारण करो। कोई भय नहीं है, दाँतसे दाँत पीसकर चुप होकर बाट देखो, थोड़ी ही देरमें देखोगे, अन्धकार हट गया है, सारी गोलमाल मिट गयी है; क्योंकि इस जगत्‌में नित्य कुछ भी नहीं है।

श्रावणकी मुसलाधार वर्षाके समय घोर अन्धकारमय मेघाच्छन्न रात्रि बारम्बार प्राणोंमें भयका संचार करती है। अनवरत अपार वृष्टि और घन-घन वज्रपात जिस समय प्रलयका अभिनयकर प्राणोंको व्याकुल कर देते हैं, उस समय वनका निराश्रय पथिक शीत-कम्पित शरीरसे खड़ा-खड़ा यही सोचता है—मानो इस रात्रिका अब अन्त नहीं होगा, इस विपत्तिसे प्राण नहीं बंचेंगे, उस समय क्या उसके व्याकुल-चित्तमें यह भाव एक बार भी उत्पन्न होता है कि फिर भी सूर्य उदय होगा, फिर भी दिशाएँ साफ होंगी, मस्तकपर विहंगम फिर भी आनन्द-संगीतकी ध्वनि करेंगे और फिर भी नर-नारियोंके हास्यपूर्ण मुख देखनेको मिलेंगे? परंतु विपत्ति चली जाती है, घोर प्रलय-रात्रिका अन्त होता है। धीरे-धीरे बादल हट जाते हैं, मुसलाधार वर्षा रुक जाती है। शरद-ज्योत्स्ना पुनः केतकी-कुसुमकी भाँति खिल उठती है और मेघमुक्त सूर्यालोककी वे निर्मल किरणें मानो सभी सुन्दर, सभी आशाप्रद प्रतीत होने लगती हैं।

यही संसार है, यही इसका नियम है। परंतु इसमें हमें एक बड़ी अच्छी शिक्षा मिलती है। निरन्तर विपत्तियोंसे घिरा हुआ आश्रयहीन चित्त और भी घन-भावसे भगवान्‌का आश्रय लेना सीखता है। विपत्तियाँ जितनी ही पुंजीभूत होती हैं, भगवान्‌के साथ हमारे संयोगका माधुर्य भी उतना ही घनीभूत होता जाता है। विपदामें यह परम सम्पदा मिलती है, इसीसे तो आदर्शरमणी भारतेश्वरी कुन्तीने विपत्तिका वर माँगा था। विपत्ति सभी समय कष्टमें डालकर हमारा नुकसान करती है, सो बात नहीं है। साथ ही वह एक बड़े भारी सुअवसरकी सम्भावना उत्पन्न करके शान्त होती है। दुर्भाग्यवश जो इस हानिमेंसे इतना-सा लाभ नहीं उठा सकते, उनका नुकसान अवश्य ही कभी भरा नहीं जाता। याद रखो, जैसे तुम्हारा सुख मिथ्या है, वैसे ही दु:ख भी मिथ्या है। इन दोनोंके संयोगका नाम ही संसार है। जिसकी यह संसार-रचना और माया-माधुरी अति विचित्र है, इसमें रहकर भी जो इससे परे रहता है, उसीके चरणकमलोंमें प्रपन्न होकर शरण लेना ही बुद्धिमान्‌का कार्य है, यही असली चतुराई है। एक बार सच्चे मनसे, प्राणोंके अन्त:स्तलसे उसे पुकारकर तो देखो, समस्त अन्धकारको भेदकर उसकी दिव्य ज्योति प्रस्फुटित हो ही उठेगी। उसने स्वयं ही कहा है, 'मैं तुम्हारा सखा हूँ, मैं तुम्हारा बन्धु हूँ, मुझे **'सुहृदं सर्वभूतानाम्'** समझ लो और तुरंत शान्ति प्राप्त करो।' परंतु हम ऐसा नहीं करते। हम केवल उसका नकाबसे ढका हुआ चेहरा देखकर ही डर जाते हैं। वह हमें पुकार रहा है, उसको तो हम नहीं सुनते। यह तो हमारा ही दोष है।

संसारको खेलनेका स्थान बनाकर भगवान् खेल रहे हैं, इसमें शोक-चिन्ताकी कौन-सी बात है? तुम भी खेलमें शामिल हो जाओ। बड़ा आनन्द मिलेगा। पर ऐसा न कर यदि तुम घरके कोनेमें चोर बनकर बैठे रहोगे तो उसके राज-मुकुटयुक्त दण्डधर रूपको देखकर तुम्हें डरना ही पड़ेगा। मिथ्याको सत्य समझकर यदि निश्चिन्त बैठे रहोगे तो अन्तमें अवश्य रोना पड़ेगा। परंतु जो भक्त और प्रेमी है, वह इस खेलसे नहीं डरता। वह तो इस खेलमें उसका जंबूरा बनकर महान् आनन्द-योग करता है। पर भगवान्‌के इस मायाके अभिनयमें कभी-कभी बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी भटक जाती है, भक्त भी विह्वल हो उठते हैं, उनको भी यही मालूम होता है कि सचमुच यह कोई आश्चर्यमय बात है। उस समय वे त्रितापसे तप्त होकर हाहाकार मचाने लगते हैं और खेलको खतम करके भागना चाहते हैं। परंतु बाबा! भागकर जाओगे कहाँ? उसके बिना तो कोई संसार ही नहीं है। वह ऐसे मजेका खेल खेलता है कि उस समय यदि कोई उसे भगवान्-भगवान् पुकारता है, तो वह चुपचाप गम्भीर होकर बैठ जाता है। कोई उत्तर ही नहीं देता। अधिक कहा-सुनी करनेपर कहने लगता है बाबा! क्यों ऐसा करते हो, मेरा न कोई द्वेष्य है और न प्रिय है, **'न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः'** वह रसिकशेखर हँसकर कहता है—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सब सुख-दुःख तुम्हीं लोगोंके हैं, मैं बाबा! कुछ नहीं जानता। ज्ञान तुमलोगोंके अज्ञानसे ढँका है, इसीसे यह विभीषिका देखते हो। मैं तुमलोगोंमेंसे किसीको न तो कर्म करनेको कहता हूँ और न पाप-पुण्य ही प्रदान करता हूँ। मैं तो सर्वत्र समबुद्धि हूँ, तुमलोग भी इसी तरह बुद्धिको सर्वत्र सम कर लो। फिर कोई मोह नहीं रहेगा।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥

जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, जिनका संशय मिट गया है, जो संयतचित्त और सब प्राणियोंके हितमें रत हैं, वे सब ऋषि ब्रह्मनिर्वाणरूप मोक्षको प्राप्त होते हैं।

भक्त कहते हैं, आगे चलकर तो उनको ब्रह्मनिर्वाण-प्राप्ति होगी, परंतु इस समय क्या उपाय है? भगवान् कहते हैं, भय क्या है?

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥

विशेष कुछ नहीं इस काम-क्रोधसे छूटकर चित्तको वशमें कर लो और विदितात्मा हो जाओ। फिर इस काल और पर कालकी कोई बात नहीं, सभी कालमें 'ब्रह्मनिर्वाण' प्राप्त कर सकोगे। इतना कहकर ही अन्तर्धान! भक्त सोचता है, 'वाह-रे-वाह! खूब किया। मैं आया था खेलने, यह मुझे 'ब्रह्मनिर्वाण'का मार्ग दिखलाने लगा।' भक्त रोकर कहता है, मेरे प्रभो! यह क्या? 'मेरे साथ तो तुम्हारी ऐसी बात नहीं हुई थी।' भगवान् मुँह बन्द करके हँस रहे हैं। भक्त जब भगवान्‌का यह भाव देखकर आँखोंके सामने अँधेरा देखता है, तब रसिकचूड़ामणि भगवान् भी गम्भीर बनकर बैठ जाते हैं। मानो सचमुच ही पाप-पुण्य कर्मोंके लिये मनुष्य ही दायी हैं। भगवान्‌का भाव देखकर उस समय यही प्रतीत होता है। तब भक्त भवसागरका कहीं वार-पार नहीं देखकर उच्चस्वरसे रोकर पुकार उठते हैं—

'मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसम्।'

प्रभो! ऐसे नृशंस वचन तुम्हें नहीं बोलने चाहिये। हम जानते हैं तुम्हीं सब कुछ हो, तुम्हीं सर्वमय कर्ता हो, तुम्हीं तीनों लोकोंके ईश्वर हो, तुम्हीं हमारे प्रियतम और प्राण-सखा हो, आज तुमने यह क्या सुनाया कि 'मैं कुछ भी नहीं हूँ।' आज तुम्हारा यह कैसा अद्भुत मुख और विचित्र मूर्ति दीखती है! प्रभो! हम कैसे घरको लौटें और वहाँ जाकर करेंगे ही क्या?

यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा।

भक्तोंकी भीषण मनोवेदना और उनका रुदन देखकर भगवान् उन व्याकुल भक्तोंको सान्त्वना देते हुए कहते हैं। प्रिय! मैंने जो कुछ कहा है सो सब सत्य है, परंतु तुम जानते हो, तुम्हारे लिये तो यह नियम नहीं है। फिर रोते क्यों हो? मेरी ओर देखो। यह तो मेरा नकाबसे ढँका हुआ चेहरा है, इसीका नाम माया है। माया तो तुमलोगोंकी दासी है, तुमलोग मायाको देखकर इतना घबराते क्यों हो? आओ! आओ!! तुमलोग मेरे पास आकर बैठो। तुमलोग तो मेरे अन्तरंग हो, प्राणोंके प्राण हो। तुमलोगोंको छोड़कर मैं क्या कहीं भी निश्चिन्त होकर ठहर सकता हूँ? क्या तुमलोगोंकी विपत्ति देखकर मैं कभी स्थिर रह सकता हूँ? भय नहीं कोई भय नहीं! **'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः'** तुमलोग मेरे शरणागत हो। तुमलोगोंको क्या भय है! पाप-ताप राखका ढेर है। मैं अभी तुम्हें सबसे छुड़ा देता हूँ। लो, मेरा वरदान ग्रहण करो! तब भक्त आश्वासन पाकर कहते हैं—प्रभो! अभी वरदान रहने दो, अपना जगत्-उजागर मुखकमल एक बार दिखलाओ। ओफ! हमें तुमने कैसा डराया प्रभो! ऐसा भय फिर कभी न दिखलाना। देवता भी तुम्हारी माया नहीं समझते, हम तो क्या चीज हैं? प्रभो! दया करके हमें उन चरणकमलोंकी सेवाका अधिकार प्रदान करो। इससे बढ़कर और क्या वर माँगें। इतना कहकर भक्तने भगवान्‌के योगिराजवांछित लक्ष्मीसेवित चरण-कमलोंको अपने प्रेमाश्रुओंसे अभिषिक्त कर दिया। तब भगवान्‌ने प्रेमसे गद्गद होकर भक्तका आलिंगन करके उसके कानमें धीरेसे कहा—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

यह संसार है और यह मोक्ष है। दोनोंमें ही भगवान् हमारे निज जन हैं—यह समझकर संशयशून्य हो रहो। उनके शरणागत होओ, तच्चित्र हो, तन्मना हो, उन्हींका भजन करो और उन्हींको नमस्कार करो। फिर किसी बातके लिये चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत-उद्‌बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव! साधकके जीवनमें इन दो बातोंका होना आवश्यक है। यदि वह सेवा करे तो जिसकी भी करे, उसको अपने व्यक्तित्वसे ज्यादा महत्त्व दे और प्रत्युत्तरमें उससे मान, भोग तथा आशीर्वाद आदि कुछ भी न चाहे। भगवान्‌की आज्ञा तथा अपना कर्तव्य समझकर सेवा करे।

यदि वह प्रेमपथका साधक है तो भगवान्‌को अपना साध्य माने, साधन न बनाये। भगवद्भजनके बदले कुछ माँगना तथा भगवान्‌के सिवाय और कुछ चाहना—यह भगवान्‌को साधन बनाना है। यदि भजन करके भगवान्‌से हम धन, सन्तान आदि कुछ माँगते हैं तो हमारा साध्य तो वह इच्छित पदार्थ ही हुआ, भगवान् तो उसकी प्राप्तिके साधन हुए। यही तो भगवान्‌को साधन बनाना है।

जो भक्त भगवान्‌को छोड़कर कुछ भी चाहता है या भगवान्‌से कुछ भी माँगता है, उसका साधन हुए—भगवान्। इस प्रकार भगवान्‌को माननेवाले तथा भजनेवालेके लिये यह बात बहुत हानिप्रद है।

भगवान् तो सबको सदैव प्राप्त ही हैं। भला, जब वे अनन्त, सर्वव्यापी और सर्वाधार हैं तो किसीको भी अप्राप्त कैसे हो सकते हैं! आवश्यकता है उनके योग, बोध और प्रेमकी, जिनके बिना सदैव प्राप्त प्रभु भी अप्राप्त-से भासते हैं।

हमने अपनेमें जो चाह पैदा कर ली है, यही हमारे और प्रभुके बीचमें मोटा परदा कहो चाहे गहरी खाई कहो, बन गयी है। इस चाहके कारण ही हम उन सर्वशक्तिमान्‌के योग-बोध-प्रेमसे वंचित हैं। इसलिये साधकको चाहरहित होना अनिवार्य है।

जो मनुष्य गलती नहीं करता, वही सबसे बड़ा त्यागी है और जो ठीक करता है, वही सबसे बड़ा सेवक है। जो हर हालमें प्रसन्न रहता है, वही सबसे बड़ा तपस्वी है।

की हुई भूलपर पश्चात्ताप करनेके समान कोई प्रायश्चित्त नहीं। भविष्यमें भूल न करनेके निश्चयके समान कोई दूसरा व्रत नहीं।

भगवान्‌को अपना माननेके बराबर प्रेम-प्राप्तिका अन्य साधन नहीं है। ये बातें जिसके जीवनमें आ गयीं, उसका कल्याण निश्चित है। यह बात परम सत्य है।

भुक्ति और मुक्तिका त्याग करनेपर ही प्रेमकी प्राप्ति होती है। प्रेम अनन्त और अगाध रससे पूर्ण है और अनिर्वचनीय है।

ममता और कामनाका त्याग करनेपर मनका स्वत: निरोध होनेसे योग सिद्ध हो जाता है। इसका फल है शान्तिकी अभिव्यक्ति। इसी भाँति सभी प्रकारके दोष और कामनाओंका त्याग करनेपर चित्त शुद्ध होकर असंग और मोहरहित हो जाता है, जिसके होनेसे बोधका उदय होता है। इसका फल है—स्वाधीनताकी अभिव्यक्ति।

जो मनुष्य शान्तिमें भी रमण नहीं करता और स्वाधीनतामें भी सन्तुष्ट नहीं होता, उसीको प्रेमकी प्राप्ति होती है। इसलिये सही मायनोंमें तो जीवन्मुक्त होनेके बाद ही मनुष्य प्रेमप्राप्तिका अधिकारी होता है।

जिसके हृदयमें भोग-सुखोंका लालच और काम-क्रोधादि विकार मौजूद हैं, वह प्रेमकी प्राप्ति तो क्या, प्रेमकी चर्चा करने तथा सुननेका भी अधिकारी नहीं है। वास्तवमें तो जिसके हृदयमें ममता, आसक्ति, कामना और स्वार्थकी गन्ध भी न हो, वही प्रेमी हो सकता है।

इन दोषोंका सर्वथा अभाव होनेपर ही प्रेमका प्रादुर्भाव होता है। इन दोषोंके रहते हुए अपनेको प्रेमी मानना, अपनेको और दूसरोंको धोखा देना है। इसलिये यदि सच्चा प्रेमी होना है तो सभी दोषोंका त्याग करो, प्रेम अवश्य मिलेगा। ॐ आनन्द!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्प्रेमके सात्त्विक भाव

(डॉ० पुष्पाजी मिश्रा, एम०ए०, पी-एच० डी०)

अंगोंका अकड़ जाना, पसीना होना, रोमांच होना, बोलते समय आवाज बदल जाना, शरीरमें कम्पन होना, मुँहका रंग उड़ जाना, नेत्रोंसे आँसू बहना तथा मरणान्तक अवस्थातक पहुँच जाना—ये आठ भगवत्प्रेमके सात्त्विक भाव हैं—

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः॥
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः।

(साहित्यदर्पण ३। १३५-१३६)

संसारमें भगवान्‌के जन्म और लीलाकी बहुत-सी मंगलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं, उनका श्रवण तथा भगवान्‌के गुणों और लीलाओंका स्मरण करना चाहिये। भगवान्‌के अनन्त नाम प्रसिद्ध हैं, उनका लाज-संकोच छोड़कर कीर्तन करना चाहिये। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थानमें आसक्ति न करके सदैव स्वतन्त्र विचरण करना चाहिये।

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥
खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४०-४१)

जो इस प्रकार विशुद्ध व्रत-नियम ले लेता है, उसके हृदयमें भगवान्‌के नाम-संकीर्तनमें अनुरागका—प्रेमका अंकुर जाग उठता है। उसका चित्त द्रवित हो जाता है। वह सामान्य लोगोंकी स्थितिसे ऊपर उठ जाता है, लोगोंकी मान्यताओं, धारणाओंसे परे हो जाता है। दम्भसे नहीं, स्वभावसे ही मतवाला-सा होकर कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है, कभी-कभी फूट-फूटकर रोने लगता है, कभी मधुर स्वरसे भगवान्‌को पुकारने लगता है और कभी-कभी जब वह अपने प्रियतमको अपने नेत्रोंके सामने अनुभव करता है तो उन्हें रिझानेके लिये नृत्य करने लगता है। वह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष, वनस्पति, नदी और समुद्र सब-के-सब भगवान्‌के शरीर हैं; सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं—ऐसा समझकर जो कोई भी उसके सामने आ जाता है, उसे अनन्य भावसे—भगवद्भावसे प्रणाम करता है। ऐसे भक्तके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

अर्थात् जो सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें मुझे व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझमें देखता है, उसके लिये मैं ओझल नहीं होता और न वह मेरे लिये कभी अदृश्य होता है। मेरी कृपासे वह सर्वदा सुरक्षित रहता है।

श्रीकृष्णदास कविराजविरचित श्रीचैतन्यचरितामृतमें भगवत्प्रेम-विरहके दस लक्षणोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—१. दीर्घनिश्वास (लम्बे-लम्बे ठण्डे श्वास छोड़ना), २. अधोवदन (ग्रीवा नीचे झुकाये रखना), ३. भूमिलेखन (भूमिपर हाथ या पाँवके नाखूनसे रेखा खींचना), ४. विवर्णता (शरीरका रंग पीला पड़ जाना), ५. निद्राशून्यता, ६. विलाप, ७. उत्ताप (शरीरका जलना), ८. कृशता (शरीरका दुबला-पतला होना), ९. नेत्र-जल (अश्रु बहाना) एवं १०. दैन्य (अपनेको दीन-हीन जानना)। श्रीचैतन्य महाप्रभुमें ये सभी लक्षण विद्यमान थे। उनके प्राणोंमें श्रीकृष्ण-अप्राप्तिका इतना गम्भीर आवेग था कि उनसे कुछ भी पूछनेपर वे हा कृष्ण! हा कृष्ण! कहाँ हो? कहाँ जाऊँ?—यही उत्तर दिया करते थे।

यह कहा गया है कि सांसारिक विषयोंमें आसक्त मनका निग्रह वैसा ही दुष्कर है, जैसे वायुके वेगको रोकना। महापुरुषोंका इस सन्दर्भमें यह मत है कि मनको बलात् नहीं रोका जा सकता है। प्रेमके बन्धनमें बँधकर वह स्वयं रुक जाता है। जैसे सूखे काष्ठको भी काट देनेका सामर्थ्य रखनेवाला भ्रमर अपने-आपको कमलकी कोमल पंखुड़ियोंके भीतर कैद कर लेता है। यह केवल प्रेमबन्धनके कारण ही होता है। पंखुड़ियोंको काटकर वह कभी भी बाहर निकल सकता है।

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुदृढबन्धनमुक्तम्।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे॥

अतः आनन्दकन्द भगवान्‌के प्रेमका आस्वादन यदि मनको मिल जाय तो वह निश्चित रूपसे रुक जायगा, ऐसा महापुरुषोंका मत है। परंतु भगवान्‌के माहात्म्यको जाने बिना उनसे प्रेम होना सम्भव नहीं है। अतः श्रीमद्वल्लभाचार्यजीका कथन है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहात्म्यज्ञानयुक्तस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया साष्टर्यादि चान्यथा॥

अर्थात् भगवान्‌का माहात्म्य जानकर उनमें सबसे अधिक दृढ़ प्रेम होना ही भक्ति है और उसके उपरान्त ही मुक्ति होती है। मुक्तिका इससे अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है।

किसी प्रारब्धवश अथवा इस जन्ममें भगवदनुरागी भक्तोंके संगके फलस्वरूप सर्वप्रथम हृदयमें भगवन्निष्ठाका उदय होता है। फिर शनैः-शनैः रुचिका आविर्भाव होता है। यह रुचि ही आसक्तिमें परिणत होती है। गाढ़ आसक्तिका नाम ही भाव या रति है, जिसे प्रेमकी प्रथमावस्था कहा जाता है। आसक्तिपूर्वक श्रवण-कीर्तनादिरूप भक्तिके अनुष्ठान करते-करते चित्तमें शुद्ध-सत्त्वके आविर्भावकी योग्यता उत्पन्न हो जाती है।

भगवान्‌की स्वरूप-शक्तिकी तीन वृत्तियाँ हैं—सत्, चित् और आनन्द। ये सभी स्वप्रकाश हैं। स्वरूप-शक्तिकी जिस स्वप्रकाश वृत्तिविशेषके द्वारा भगवान् स्वयं निजस्वरूपको प्रकट करते हैं और स्वरूप-शक्तिके दूसरे रूप—परिकरोंको प्रकटित करते हैं, उस वृत्तिविशेषका नाम ही शुद्ध-सत्त्व है। इस वृत्तिमें मायाका कभी संसर्ग नहीं होता। इस कारण ही यह विशुद्ध-सत्त्व भी कहलाती है। भाव या रति किसी साधनका फल नहीं है वरन् यह निरपेक्ष और स्वप्रकाश है। श्रवण-कीर्तनादिकी आवश्यकता केवल इसलिये है कि अन्तःकरण निर्मल हो जाय और उसमें विशुद्ध-सत्त्वके ग्रहणकी क्षमता आ जाय। यह भाव ही भक्ति-कल्पलताका पुष्प है। भाव उत्पन्न होनेपर भावुकमें जो लक्षण प्रकट होते हैं वे भी विलक्षण होते हैं, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। भाव जब गाढ़ताको प्राप्तकर प्रेममें परिणत होता है, तब वह मोक्षको भी तुच्छ बना देता है। समस्त अज्ञान, कल्मष आदि उस अवस्थामें नष्ट हो जाते हैं। भावग्राही भगवान् प्रेमी भक्तके हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं। फिर उसके हृदयमें अन्य कोई सांसारिक पदार्थ, बन्धुबान्धव आदि टिक नहीं सकते। इस स्थितिमें प्रेमी भक्त यह प्रार्थना करता है—

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥

(श्रीमद्भा० ६। ११। २५)

हे प्रभो! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डलका साम्राज्य, रसातलका एकछत्र राज्य, योगकी सिद्धियाँ—यहाँतक कि मोक्ष भी नहीं चाहता।

ऐसे प्रेमीभक्तके प्रति भगवान् कहते हैं—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १६)

जिसे किसीकी अपेक्षा नहीं, जो जगत्‌के चिन्तनसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तनमें लीन रहता है और राग-द्वेषसे रहित सबके प्रति समभाव रखता है, उस भक्तके पीछे-पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमता हूँ कि उसके चरणोंकी धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय, ताकि मैं पवित्र हो जाऊँ।

'सूने ब्रज में होली'

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

ब्रज से कृष्ण गये मथुरा को, फिर जब आयी होली रे।
रोती रहती नैन बन्द कर, राधा मन की भोली रे॥ १॥
मारी-मारी फिरती राधा, कुँजों बीच अकेली रे।
फागुन बीता कृष्ण बिना ही, बीती भी अब होली रे॥ २॥
ना मन भावे गोपिन का संग, ना कोइ सखा सहेली रे।
कृष्ण-विरह की पीड़ा भड़की, जब से आयी होली रे॥ ३॥
गोपी व्याकुल थीं कितनी ही, पर राधा अलबेली रे।
महाभाव की मूरत राधा, करे याद अठखेली रे॥ ४॥
इक गोपी को कृष्ण बना कर, सबने खेली होरी रे।
भीगी फिरती कृष्ण नाम रस, राधा निपट अकेली रे॥ ५॥
राधा की गति राधा जाने, कोई ना हमजोली रे।
कृष्ण बिना सब लगता सूना, फीकी फीकी होली रे॥ ६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दरकाण्डका सौन्दर्य

(पं० श्रीकपिलदेवजी तैलंग, एम०ए०, बी०एड०)

सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे सुन्दरः कपिः।
सुन्दरे सुन्दरी वार्ता सुन्दरे सर्वसुन्दरम्॥

सन्त तुलसीदासद्वारा रचित श्रीरामचरितमानसमें वैसे तो समस्त काण्डोंका वर्णन-सौन्दर्य, चरित्र-सौन्दर्य, लीला-सौन्दर्य सब कुछ सुन्दर है, किंतु सुन्दरकाण्डमें *'यथा नाम तथा गुण'* वाली उक्ति अक्षरशः लागू होती है। चारित्रिक दृष्टिसे, वर्णनात्मकताकी दृष्टिसे, घटनाक्रमकी दृष्टिसे तो यह काण्ड अनूठा है ही, इसके अतिरिक्त माता सीताका उदात्त चरित्र, हनुमान्‌जीकी कर्तव्यनिष्ठा और पराक्रम, विभीषणकी शरणागति, श्रीरामका सात्त्विक कोप—सब कुछ अद्भुत और अद्वितीय है।

सबसे पहले प्रश्न यह उठता है कि मानसके अन्य सभी काण्ड घटना या स्थानविशेषके द्वारा सन्दर्भित एवं नामित किये गये हैं, जैसे—बालकाण्डमें श्रीरामजन्म, बाल-लीला, विवाह आदिके प्रसंग तथा अयोध्याकाण्डमें अयोध्यामें घटित घटनाओंका वर्णन है। अरण्य और किष्किन्धाकाण्ड भी इसी प्रकार स्थानविशेषपर आधारित नाम हैं। लंकाकाण्ड लंकामें घटित राम-रावणके युद्ध आदिसे सम्बन्धित है। उत्तरकाण्ड रावणपर विजयके पश्चात् रामराज्य और अन्य उत्तरकथाओंसे गुम्फित है।

किंतु सुन्दरकाण्ड इन सबसे भिन्न है, सुन्दरकाण्डका नामकरण न तो किसी घटनासे सन्दर्भित है और न ही स्पष्टरूपसे किसी स्थानविशेषसे नामित है। यह उद्देश्यप्रधान काण्ड है। सुन्दरकाण्डमें वर्णित घटनाओंसे आगेकी कथाका विस्तार पूर्ण हुआ है।

अभीतक सीताजीके विषयमें असमंजसकी स्थिति बनी हुई थी, किंकर्तव्यताकी स्थिति बनी हुई थी, किंतु इस काण्डकी घटनाने सन्देहका अवरुद्ध द्वार खोला। यदि सीतामाताकी जानकारी प्राप्त न होती तो आगेकी सम्पूर्ण घटनाएँ आगे नहीं बढ़ पातीं, अतः यह काण्ड श्रीरामकथाको आगे ले जानेमें सहायक है।

'सुन्दर' शब्दके सम्बन्धमें विद्वानों एवं संतोंका अलग-अलग कथन है, कुछ विद्वान् इष्ट-सम्प्राप्ति या उद्देश्य-सम्पूर्तिके आधारपर सुन्दर शब्दका समर्थन करते हैं, जो इस काण्डमें सम्पन्न हुआ है।

कुछ विद्वानोंका यह कथन है कि लंकापुरी त्रिकूट पर्वतपर बसी हुई थी, जो तीन शिखरोंवाला पर्वत है—नील शिखर, सुबेल शिखर और सुन्दर शिखर। नील शिखरपर लंकाकी स्वर्णपुरी बसी थी, युद्ध-भूमि सुबेल पर्वतपर थी एवं सुन्दर शिखरपर अशोकवाटिका नामक अत्यन्त सुरक्षित रावणका प्रियातिप्रिय उद्यान था। रावणने सीताजीको इसी शिखरपर विनिर्मित उद्यान—अशोकवाटिकामें वास

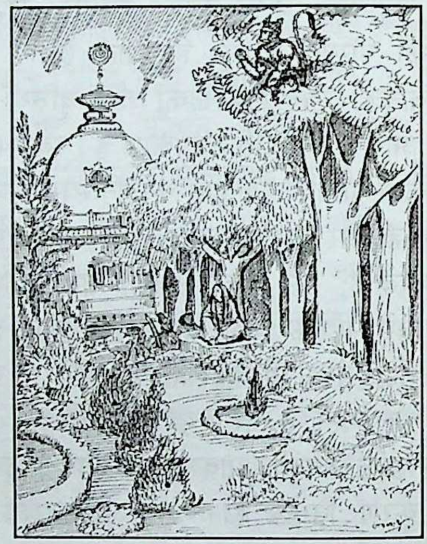

दिया था। यहाँ अन्योंका प्रवेश वर्जित था। यह रावणका आमोद-उद्यान था। इस वाटिकामें सब कुछ सुन्दर-ही-सुन्दर था, जैसे—वृक्ष, लता, बेल, बिटप आदि। अशोकके वृक्षोंकी गहन छाया थी, इसलिये इसका नामकरण अशोकवाटिका किया गया। अतः इस काण्डका नामकरण जहाँ इष्ट-सम्प्राप्तिरूप सुन्दर कार्य सम्पन्न होनेके कारण हुआ, वहाँ सुन्दर शिखरपर शोभायमान अशोकवाटिकाके कारण सुन्दरकाण्ड नामकरण किया गया।

इस काण्डमें सुन्दर शब्द भी अपनी विशेषतासे भरा हुआ है, प्रायः आठ बार सुन्दर शब्द आया है—*(१) सिंधु तीर एक भूधर सुंदर, (२) कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना, (३) स्याम सरोज दाम सम सुंदर, (४) तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥, (५) सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥, (६) सावधान*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥, (७) हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥, (८) सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥

तुलसीदासजीने कदाचित् ये नामकरण वाल्मीकीय रामायणके आधारपर किये हैं, वैसे रामचरितमानस एक मानसरोवर है और सरोवरमें सोपान होते हैं। इसलिये तुलसीदासजीने समस्त काण्डोंकी समाप्तिपर सोपान शब्दका ही प्रयोग किया, जो अधिक समीचीन है।

सुन्दरकाण्ड एक आशीर्वादात्मक काण्ड है। अतः भक्ति, भगवत्कृपा एवं भगवत्प्रीति प्राप्त करनेका यह सहज मार्ग बतलाता है। इस काण्डमें जहाँ हनुमान्‌जीको चार-चार बार आशीर्वाद मिला है, वहाँ विभीषणकी शरणागतिका प्रसंग शरणागति चाहनेवालोंके लिये एक मार्गदर्शक भी है।

इस काण्डमें हनुमान्‌जीको चार आशीर्वाद प्राप्त हुए हैं, यथा—सुरसाने आशीर्वाद दिया—

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥

लंकिनी—

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥

इसके अतिरिक्त और भी आशीर्वाद हैं, जैसे—

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥

माता सीताने भी बहुतसे आशीर्वाद दिये, जैसे—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

सीताकी सुधि लानेके पश्चात् श्रीरामने भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

वे केवल हनुमान्‌जीकी ओर निहारते ही रह गये। नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। इससे सिद्ध है कि वे उपकारके बोझसे इतने बोझिल हो रहे थे कि सोचने लगे कि आशीर्वाद दूँ तो क्या दूँ? इसपर श्रीहनुमान्‌जीने श्रीरामकी इस विवशताको पहिचाना और स्वयं ही आशीर्वाद माँगने लगे—

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥

इसपर श्रीराम केवल *'एवमस्तु'* ही कह पाये। *'एवमस्तु तब कहेउ भवानी'* श्रीराम अपनेको अकिंचन अनुभव करने लगे और अकिंचन किसको क्या दे सकता है। इस प्रकार चार-चार आशीर्वाद श्रीहनुमान्‌जीको मिले, अतः यह आशीर्वादात्मक काण्ड है।

विभीषणकी शरणागति इस काण्डकी एक अन्य विशेषता है। तमका सत्‌के प्रति आत्मसमर्पण है, ***'तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥'***

शरणागतिके पूर्व विभीषणके मनमें कुछ वासना थी, जिसे वे स्वयं ही स्वीकार करते हैं—

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥

विभीषणकी वासना निर्वासित हो चुकी थी। अतः वे प्रार्थना करते हैं—

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥

श्रीरामने एवमस्तु कहा और विभीषणके अन्तर्मनकी विगलित वासनाका ध्यान रखते हुए राजतिलक कर उन्हें लंकेश बना दिया। धन्य है श्रीरामकी वत्सलता! जो माँगा वह दिया और जो नहीं माँगा, वह भी दे दिया।

किष्किन्धा विचारकाण्ड है, सुग्रीव केवल विचार करता है, कार्य नहीं, लंकाकाण्ड कर्म या कार्यप्रधान है। युद्ध आदिका वर्णन है, किंतु सुन्दरकाण्ड विचारप्रधान है, कर्मप्रधान है और पराक्रमप्रधान है। हनुमान्‌जीने अनेक बार विचार ही किया है और फिर कार्य किया। ***'करइ बिचार करौं का भाई॥'***

कर्मके क्षेत्र वाटिका-विध्वंस एवं पराक्रमके क्षेत्रमें लंकादहन इसके प्रतीक हैं, विचारपूर्वक किया हुआ कार्य ही सफल होता है। सुन्दरकाण्डका यह भी एक सन्देश है।

इस काण्डमें भगवान् श्रीरामने अपने मनकी बात प्रकट करते हुए कहा है—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

भगवान्‌को निर्मल मन ही प्रिय है। यहाँ कपट, छल और छिद्र—ये तीन शब्द आये हैं; जो क्रमशः तन, मन और आचरणसे सम्बन्धित हैं। कपट मानसिक होता है, छल आचरण या तनसे सम्बन्ध रखता है और छिद्र चरित्रदोष है, रावणके मनमें कपट था, मारीचने छलका प्रयोग किया था।

एक बात और विचारणीय है कि सभी काण्डोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भ दोहेसे होता है, किंतु सुन्दरकाण्डका प्रारम्भ चौपाईसे हुआ है—

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥

बस क्या था हनुमान्‌जी ***'यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥'***

हनुमान्‌जीकी इसी आतुरताको ध्यानमें रखते हुए तुलसीदासजीने दोहेका व्यवधान बीचमें नहीं रहने दिया।

सुन्दरकाण्डके मंगलाचरण भी बहुत सुन्दर हैं। प्रथम मंगलाचरणमें श्रीरामजीकी वन्दना है और उनकी सोलह विशेषताएँ व्यक्त की गयी हैं, दूसरी वन्दना मानो तुलसीदासजीने अपने अन्तर्मनकी व्यथाके रूपमें और निःस्पृह भक्तिकी याचना करते हुए लिखी है—**'नान्या स्पृहा।'**

और इसके लिये अन्तरात्मामें विराजमान स्वयं भगवान्‌को साक्षीके रूपमें प्रकट किया है, तीसरे मंगलाचरणमें अतुलितबलधाम श्रीरामदूतकी शरणागति माँगी गयी है।

रामदूतको अतुलितबलधाम ही होना चाहिये।

हनुमान्‌जीका प्रत्येक कार्य भगवत्-स्मरणके साथ ही प्रारम्भ हुआ है। सुन्दरकाण्डमें कई जगह मनोवैज्ञानिक सत्य भी प्रकट हुए हैं, जिस कार्यको हर्षोल्लासके साथ किया जाता है, उसमें सफलता निश्चित होती है। हनुमान्‌जी भी ***'चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा'*** भगवान्‌को उन्होंने अपने कर्मका साक्षी बनाया। इससे सिद्ध होता है कि हनुमान्‌जी लंकामें अकेले नहीं गये थे। अपने हृदयके सिंहासनपर श्रीरामको विराजमानकर ले गये थे। तभी तो सीताजीके समक्ष हनुमान्‌जीके हृदयमें विराजमान राम अपनी विरह-व्यथा स्वयं ही कहते हैं।

'कहेउ राम बियोग तव सीता' अन्यथा हनुमान्‌जी अपनी मातृरूपा सीताजीसे क्या यह कह सकते थे— ***'जानत प्रिया एकु मनु मोरा'*** या ***'सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥'*** यहाँ राम स्वयं अप्रत्यक्षरूपसे हृदयकी व्यथा कह रहे थे।

'लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी' यहाँ रामको ही नरहरि शब्दसे सम्बोधित किया गया है, नरश्रेष्ठ, नरव्याघ्र आदि।

दूसरा भाव 'नरहरिसे, नरसिंहावतारसे सम्बन्धित प्रतीत होता है। रावण-जैसे शत्रुकी पुरीमें जानेके पूर्व हिरण्यकशिपुके संहारक और प्रह्लाद-जैसे भक्तके संरक्षक नरहरिभगवान्‌का स्मरण उचित ही था।'

तुलसीदासके गुरु भी स्वामी नरहरिदास थे। अतः उन्होंने गुरुसे प्रार्थना की कि मैं इस महान् चरित्रको अपनी विवेकहीन मतिसे एवं निर्बल लेखनीसे यथावत् वर्णन कर सकूँ, वह शक्ति और सामर्थ्य मुझे प्रदान कीजिये।

सीताजीको जिस अवस्थामें हनुमान्‌जीने देखा, वह भी मनोविज्ञानपर आधारित है, अपने चरणोंपर दृष्टि गड़ायी हुईं श्रीसीताजी रामके चरण-कमलोंका ध्यान कर रही थीं।

'निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन'

सीताजी अपने नेत्रोंसे अपने चरणोंपर ही दृष्टि गड़ायी हुई थीं, किंतु उनका ध्यान श्रीरामके चरणकमलोंमें लगा हुआ था, यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है; क्योंकि किसी कार्यमें संलग्न व्यक्ति तबतक अपनी स्वयंकी सुध भूला रहता है, जबतक कार्य पूरा नहीं हो जाता है।

हनुमान्‌जीकी जब सीताजीसे भेंट हो गयी अर्थात् उन्हें सौंपा गया कार्य जब पूरा हो गया तब उन्हें भूखका स्मरण हो आया, वे बोले— ***'सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥'***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंकासे लौटनेपर जब वे मधुवनके फल तोड़-फोड़कर खाने लगे, तब सुग्रीवने निश्चय किया कि *'जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥'* तथा *मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥*

जब विशेष उत्साह होता है तो व्यक्ति हर्षातिरेकमें कुछ अमर्यादित कार्य भी कर बैठता है, सुग्रीवजी समझ गये कि अवश्य ही हनुमान्‌जी सीतामाताकी सुध लेकर ही लौटे होंगे; अन्यथा ऐसे उपद्रव नहीं कर सकते थे, इस प्रकार सुन्दरकाण्डमें अनेक स्थलोंपर मनोवैज्ञानिक तथ्य वर्णित पाये जाते हैं।

सुन्दरकाण्डमें राजनीति, नीतिशास्त्र और व्यवहारशास्त्रका यथास्थान प्रयोग किया गया है। राजनीतिके क्षेत्रमें *'नीति बिरोध न मारिअ दूता'* तथा—

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

शत्रुपक्षके भी किसी उपयुक्त व्यक्तिको अपने पक्षमें मिलाकर दलबदल करा देना यह भी राजनीतिकी एक चाल होती है। श्रीहनुमान्‌जीने विभीषणको श्रीरामके पक्षमें लाकर राजनीतिशास्त्रका उचित उपयोग किया।

सुन्दरकाण्डमें समाज-नीति और व्यवहार-नीतिका भी उचित उपयोग किया गया है, परिवारकी मर्यादाका विभीषणने जिस तरह पालन किया, वह भी अनूठा है, रावणका पाद-प्रहार सहन करते हुए वे सहनशीलताका परिचय देते हैं और कहते हैं—

'तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा' इसपर भी *'अनुज गहे पद बारहिं बारा'*; क्योंकि *'उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥'* इसी प्रकार व्यवहार-नीतिके भी अनेक उदाहरण सुन्दरकाण्डमें उपलब्ध होते हैं, जैसे—

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥

'क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥'

'शठे शाठ्यं समाचरेत्' इस कौटिल्यनीतिका परिपालन भी भगवान्‌ने यथास्थान किया—

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥

रावणकी यह उक्ति भी एक राजनीतिक सत्य है। रावण कहता है—

सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥

विभीषण रामभक्त थे, रामनाम लेते थे। प्रातः उठकर रामनामका स्मरण करते थे, किंतु हनुमान्‌जीने देखा कि केवल रामनाम लेना ही उचित नहीं, रामका काम करना भी जीवनका लक्ष्य होना चाहिये, इस प्रकार हनुमान्‌जीने विभीषणको प्रेरित किया कि वे रामकार्यमें भी सहयोगी बनें और सीताजीके निवास-स्थलका मार्गदर्शन करायें। आगे चलकर विभीषणके द्वारा रावणकी नाभिमें अमृत है, इसका संकेत श्रीरामको दिया गया और तब रावण-वध हुआ, अतः मानव-जीवनका कर्तव्य है कि रामनामके साथ रामका काम भी किया जाय। हनुमान्‌जीका जीवन भी रामनाम लेते और रामका काम करते ही संचालित रहा।

हनुमान्‌जी स्वर्णशैलाभदेह थे, वे *'कनक भूधराकार सरीरा'* और *'कंचन बरन बिराज सुबेषा'* थे। उनका शरीर स्वर्णके समान वर्णका था, वर्णका एक अर्थ ब्राह्मण आदि वर्णसे भी होता है। हनुमान्‌जीने अपने चरित्रमें वर्णोंकी भूमिका भी निभायी है, वे विप्रवेशमें ही सुग्रीवके कहनेपर राम-लक्ष्मणसे भेंट करने गये थे। लंकापुरीमें भी विभीषणको उन्होंने *'बिप्र रूप धरि बचन सुनाए'* इस प्रकार उन्होंने ब्राह्मणधर्मका निर्वाह किया।

लंकापुरीमें भी वाटिका-विध्वंस, अक्षयकुमारका वध एवं मेघनादके समक्ष अपना शौर्य और युद्ध-कौशल प्रकटकर मानो उन्होंने क्षत्रियकी भूमिकाका निर्वाह किया।

उन्होंने एक धनिक वैश्यकी भी भूमिका निबाही है—वैश्य कर्जा देता है, ऋण बाँटता है, हनुमान्‌जीने श्रीरामको कर्ज देकर यह कार्य पूरा किया और उनको सदा-सदाके लिये कर्जदार बना लिया। श्रीराम स्वयं कहते हैं—*'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥'*

सेवा-विधान शूद्र-कर्ममें समाहित है, हनुमान्‌जी एक स्वामीके हैं और स्वामीके छोटे-मोटे संदेश लाने-ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानेवाले सेवक हैं, तभी तो रावणकी सभामें अंगद हनुमान्जीके विषयमें कहते हैं—*'सो सुग्रीव केर लघु धावन॥'*

'सुन्दरे सुन्दरी सीता।' नारीका सौन्दर्य उसका सतीत्व एवं पातिव्रत होता है। सतीत्वकी रक्षाके लिये अबला भी सबला बन जाती है, वह पराक्रमी रावणके सम्मुख उसकी निन्दा करती है। यही सीताका सच्चा सौन्दर्य है, अतः *सुन्दरे सुन्दरी सीता*—यह कथन पूर्णरूपसे समीचीन है।

'सुन्दरे सुन्दरः कपिः' नरका नरत्व उसका शौर्य ही है, गरलयुक्त भुजंग ही क्षमाशील हो सकता है, हनुमान् शौर्य-शिरोमणि हैं, रावणकी सभामें जहाँ *'कर जोरें सुर दिसिप बिनीता'* की स्थितिमें हैं, वही हनुमान्जी *'जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका'* हैं, वे रावणके सम्मुख सहस्रबाहु और बालिका सन्दर्भ देकर उसे बलहीन और कायर सिद्ध करनेमें भी नहीं चूकते। यही है उन कपिश्रेष्ठका सुन्दरत्व।

'सुन्दरे सुन्दरी वार्ता' जाम्बवान्के सुहाने वचन, सुरसा और लंकिनीसे हनुमान्जीकी वार्ता, विभीषणसे मिलन-प्रसंग, सीताजीके सम्मुख श्रीरामचन्द्रके गुणोंका वर्णन करना, सीता-हनुमान्-संवाद और लंकासे लौटनेपर श्रीरामके सम्मुख सीता-विरहकी कथा आदि वार्ताएँ सुन्दर हैं, समीचीन हैं, समुचित हैं।

अतः **'सुन्दरे किं न सुन्दरं** अपितु **सुन्दरे सर्व-सुन्दरम्'** है। अनुष्ठानकी दृष्टिसे भी सुन्दरकाण्डका विशेष महत्त्व है, कई चौपाइयाँ मन्त्ररूपमें प्रयुक्त होती हैं। सभी सन्त-महन्त-भक्त चाहे वे शैव, वैष्णव या शाक्त हों, सगुण हों या निर्गुण हों, सभी सुन्दरकाण्डकी महिमाको सर्वोपरि मानते हैं। हनुमान-चालीसामें भी सुन्दरकाण्डकी घटना वर्णितकर हनुमान्जीको प्रसन्न किया जाता है।

कार्यकी सफलताके लिये *'प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।'* भारी-से-भारी विपत्तिके निवारणहेतु *'दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥'* और सर्वविधमंगलके लिये—

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

—का पाठ किया जाता है।

इस प्रकार सुन्दरकाण्ड सब प्रकारसे सुन्दर ही है।

भगवत्प्राप्तिका सुगम साधन—भक्तियोग

(श्रीघनश्यामदासजी मोदानी, बी०ए०, एल-एल०बी०)

भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग—भगवत्प्राप्तिके ये तीन प्रमुख साधन हैं। ज्ञानयोग और कर्मयोगकी साधना करना एवं उसका अधिकारी बनना आसान कार्य नहीं है; क्योंकि उसके लिये जो नियम हैं, उनका पालन करना साधारण मनुष्यके लिये कठिन कार्य है। इसमें लक्ष्य प्राप्त करनेकी जिम्मेदारी स्वयं साधककी रहती है। साधक लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये जो प्रयत्न करेगा, उससे साधकमें अहम् उत्पन्न होगा, अहम्से सुख-दुःखका अनुभव होगा और सुख-दुःखसे राग-द्वेषका जन्म होगा। अहम् साधकके लिये पतनका कारण भी बन सकता है। ज्ञानयोग एवं कर्मयोगकी साधनामें मोक्षकी प्राप्ति होगी। किंतु इसमें प्रेमानन्दका सर्वथा अभाव रहेगा, इसलिये भक्तियोग भगवत्प्राप्तिका सुगम साधन है।

भक्तियोगमें भक्तका कल्याण उसके अपने प्रयत्नोंका फल न होकर भगवत्कृपासे होता है। भगवान् सर्वसमर्थ और सर्वशक्तिमान् हैं। संसारका बड़े-से-बड़ा कार्य या कठिन-से-कठिन कार्य केवल उनकी इच्छामात्रसे हो सकता है। भक्त भगवान्के अतिरिक्त किसीको मानता या जानता ही नहीं है। भगवान् मिलें या न मिलें, दर्शन दें या न दें, भक्तको इसका ध्यान ही नहीं रहता, वह तो सगुण साकार भगवान्को ही अपना इष्टदेव मानता है। इसलिये अपने आराध्यदेवमें उसका इतना आकर्षण उत्पन्न हो जाता है कि वह तल्लीन होकर उन्हें ही निहारता रहता है, जैसे कृष्णावतारके समय एक गोकुलकी गोपीने अपनी सखीसे कहा कि सखी नन्दबाबाके आँगनमें मत निहारना, अन्यथा वहाँ एक नंग-धड़ंग, श्याम रंगका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नीली आँखोंवाला बालक रहता है, वह बरबस अपनी ओर खींचकर सर्वस्व लूट लेता है; इसलिये तू लुट जायगी और कहींकी नहीं रहेगी।

भक्तिके प्रारम्भमें साधक अपनेको भगवान्‌का दास और भगवान्‌को अपना स्वामी मानता है, फिर क्रमशः सखा, पुत्र और प्रियतम मानने लगता है। वास्तवमें भक्त भगवान्‌के अतिरिक्त किसी अन्यको मानता या जानता ही नहीं है, इसलिये भक्तके इस दृढ़ विश्वासपर भगवान् रीझ जाते हैं और भक्तका कल्याण कर देते हैं। भक्त प्रारम्भमें जिन बातोंको भगवान्‌के समक्ष प्रकट करनेमें शंका करता था, वह परदा हट जाता है और भक्त अपने मनमें आयी सभी बातोंको भगवान्‌को सुनाता रहता है; क्योंकि भगवान् उसके अपने हैं और इस अपनेपनकी प्रगाढ़ता ही भक्त और भगवान्‌के मध्य बढ़ते प्रेमका रूप धारण कर लेती है। सांसारिक पति-पत्नीके मध्य यह अपनेपनकी प्रगाढ़ता ही है, जो सारे परदोंको हटा देती है और सांसारिक प्रेमके रूपमें हमें दिखलायी देती है, जबकि वास्तविक रूपसे यह प्रेमकी एक झलकमात्र ही है; क्योंकि यह कथित प्रेम दोनों ओरसे स्वार्थ या लेनेकी भावनापर टिका रहता है, जबकि भगवदीय प्रेम भगवान्‌को सुख कैसे मिले—भक्तकी इस देने या त्यागकी भावनापर टिका रहता है। यह प्रेम जितना गहरा और प्रगाढ़ होगा, आनन्द उतना ही अधिक मिलेगा। स्वार्थमें अभिलाषाकी तृप्ति होती है जो न होनेपर दुःख बन जाती है, जबकि त्यागमें वास्तविक आनन्द मिलता है, इसमें आनन्द न मिलना सम्भव ही नहीं है।

जीवके अतिरिक्त संसारमें दो ही तत्त्व विद्यमान हैं, भगवान् और उनकी माया। जीवने मायाका संग करके भोग भोगने या संग्रह करनेकी इच्छा करके भगवान्‌से विमुखता कर ली। इस विमुखतामें भी जीवपर भगवान्‌की कृपा ज्यों-की-त्यों बनी रहती है, किन्तु जीव अपनी सांसारिक अभिलाषाकी पूर्तिके लिये उसमें इतना लिप्त रहता है कि भगवत्कृपाका अनुभव ही नहीं कर पाता। अगर जीव भगवान्‌के सम्मुख होनेका प्रयत्न करे तो साधन-अवस्थामें ही भगवत्कृपाका अनुभव होने लग जायगा।

भगवान् और उनकी भक्तिमें ऐसा गुण है कि जो भी व्यक्ति, वस्तु या पदार्थ उनके सम्पर्कमें आनेके पूर्व अशुद्ध या सदोष थे, वे भी धीरे-धीरे शुद्ध और निर्दोष होते जाते हैं। पारस पत्थरका गुण है कि वह अपने सम्पर्कमें आनेसे लोहेको सोना बना देता है, किंतु भगवान्‌का गुण ऐसा है कि वे अपने सम्पर्कमें आनेवालेको शुद्ध बना देते हैं। रावण, कुम्भकर्ण, कंस, शिशुपाल आदि बड़े-बड़े दुष्टोंको भी भगवान्‌ने उनका उद्धारकर अपने धाम भेज दिया।

संसारमें तीन बातोंकी प्राप्तिको शास्त्रोंने दुर्लभ बताया है—पहला मानवशरीरकी प्राप्ति, दूसरा भगवत्प्राप्तिकी प्यास या इच्छा (मुमुक्षा) और तीसरा ऐसे महात्माओंका सत्संग मिलना, जिन्होंने भगवत्प्राप्ति कर ली है।

हमें भगवान्‌ने कृपाकर चौरासी लाख योनियोंमेंसे सर्वश्रेष्ठ मानवशरीर प्रदान कर दिया, पवित्र देश भारतवर्षमें जन्म दे दिया। धार्मिक भावनाओंसे ओत-प्रोत माता-पिता दे दिये, जन्मसे ही हिन्दू संस्कारोंमें शरीरका लालन-पालन करवा दिया, पूर्णरूपसे शाकाहारी परिवार दे दिया। भगवान्‌ने उपर्युक्त सारे साधन देकर अपनी प्राप्तिकी मंशा हमें जता दी है। अब हमें उनके ऊपर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास रखकर अनुकूल परिस्थितियोंके लाभसे वंचित नहीं रहना है, अन्यथा हमारी महान् भूल होगी और फिर हमें चौरासी लाख योनियोंमें चक्कर लगाना पड़ेगा। इसलिये हमें दृढ़ विश्वास और श्रद्धाके साथ तत्पर होकर साधनाके पथपर भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यको लेकर तीव्र गतिसे आगे बढ़ना चाहिये। पता नहीं, इस क्षणभंगुर शरीरसे प्राणपखेरू कब, कहाँ और किस समय उड़ जायँ और हमको पछताते या हाथ मलते रह जाना पड़े। भगवान्‌ने आजतक हमारे कल्याणके लिये सभी कार्य सकारात्मक ढंगसे करवाकर हमारा कल्याण करनेका संकेत दे दिया है। अब हमें अपना कर्तव्य ईमानदारी और दृढ़ विश्वाससे निभाना है।

भगवत्प्राप्ति प्राप्तकी प्राप्ति है, सांसारिक वस्तुओं या पदार्थोंकी पूर्ति होना अप्राप्तकी प्राप्ति है, वह भी हमारी मान्यतापर आधारित है, अन्यथा है नहीं। अतः भगवत्प्राप्तिके लिये जीवका कार्य दृढ़ मान्यता करना है, वरना प्राप्तका प्राप्त करना क्या मुश्किल कार्य है अर्थात् भगवत्-अप्राप्तिका वहम या अज्ञानमात्र मिटाना है। यह वहम या अज्ञान भी भगवत्कृपासे ही दूर होगा, अगर हमारे हाथका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य होता तो अज्ञान कभीका मिट गया होता; क्योंकि जीव सर्वज्ञ भगवान्‌का अंश है, अत: अज्ञानी कहलवाना कभी भी, किसीको भी, कैसी भी परिस्थितिमें अच्छा नहीं लगता; इसलिये अज्ञानकी निवृत्ति करना जीवका प्रारम्भिक उद्देश्य है, इसके लिये हमें भगवान्‌की पूर्ण शरणागति स्वीकार करनी होगी, जिससे भगवान् हमें दिव्य-मन, दिव्य-बुद्धि और दिव्य-दृष्टि प्रदान कर सकें, जो भगवान्‌को जाननेकी क्षमता रखती हो और हमारा अज्ञान या वहम मिटा सके; अन्यथा वर्तमानमें हमारी प्राप्त प्राकृत इन्द्रियाँ भगवान्‌को जाननेमें असक्षम हैं। यह सभी कुछ लुका-छिपीके खेलकी तरह है, जहाँ एक बालक अज्ञात स्थानपर छिप जाता है और अपने साथी अबोध बालकको आवाज देकर खोजनेके लिये कहता है। खोजनेवाला बालक अपनी पूर्ण सामर्थ्यके अनुसार खोजनेका प्रयत्न करता है, किंतु सफलता हाथ नहीं लगती और हताश होकर छिपनेवाले बालकको आवाज देकर कहता है कि मैं हार गया हूँ, तू ही बाहर आ जा। छिपनेवाला बालक जीतकी खुशीमें पीछेसे आकर हारनेवाले बालकको अपनी बाहोंमें पकड़कर कहता है—मैं यहाँ हूँ। ठीक, इसी प्रकार भगवान् जो सर्वव्यापक हैं, आप स्वयं तो छिप जाते हैं और संसारमें मायाके रूपसे मौजूद रहते हैं, किंतु माया अपना परदा डालकर जीवको भ्रमित कर देती है। भगवान् जीवको जो अल्पज्ञ है, आवाज देकर खोजनेके लिये कहते हैं। सर्वव्यापक परमात्माको अल्पज्ञ जीव उनकी कृपाके बिना (इच्छाके प्रतिकूल या मायाकी मौजूदगीमें) कैसे खोज सकता है अर्थात् जीवके लिये यह कार्य बिना भगवत्कृपाके सम्भव ही नहीं है। फिर ज्ञानकी दृष्टिसे सर्वव्यापक परमात्माका एक जगह छिपना और जीवद्वारा सर्वव्यापक परमात्माको एक जगह खोजकर बतला देना दोनों ही असम्भव कार्य हैं। रामावतारमें भगवान् रामने वन-प्रवासके दौरान वाल्मीकिजीसे अपने लिये वनमें रहनेके स्थान बतलानेका आग्रह किया, उसके उत्तरमें वाल्मीकिजीने भगवान् रामसे जानना चाहा कि 'आप कहाँ नहीं हैं, पहले वह स्थान मुझे बतला दीजिये, फिर मैं आपको आपके रहनेके स्थान बतला दूँगा।' यह भक्त और भगवान्‌के मध्य विनोदकी आन्तरिक़ गूढ़ और तात्त्विक बातें हैं, जिनका सीधा-सा अर्थ है कि भगवान् संसारके कण-कणमें व्याप्त हैं।

साधनाकी दृष्टिसे गहरे चिन्तनमें उतरनेसे ज्ञात होता है कि सारे ब्रह्माण्डमें एकमात्र परमात्माकी सत्ता ही पूर्णरूपसे विद्यमान है, अन्यथा परमात्मा सर्वव्यापक कैसे होता? जीव, परमात्मा और क्रियाका एकीकरण हो जानेपर क्या शेष रहेगा? अर्थात् न तो प्राप्त करनेवाला रहा, न प्राप्त होनेवाला परमात्मा रहा और क्रियाके रहनेका तो प्रश्न ही नहीं है; क्योंकि प्रकृतिका नियम है कि कर्ता और करणके बिना क्रियाका होना सम्भव ही नहीं है। यह स्थिति भी अहम्‌की सत्ताका अपनी विराट् सत्तामें विलय हो जानेतक ही भासती रहती है और फिर केवल एक सत्तामात्र ही रह जाती है। यह सत्ता ही भगवत्-सत्ता है।

जिस प्रकार संसारी माता-पिता अपने बालकके हित या इच्छाकी पूर्तिके लिये अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रयत्न करते हैं, वैसे ही भगवान्‌पर हमारे मानव-जीवनके एकमात्र प्रयोजन—भगवत्प्राप्तिकी आवश्यक माँगकी पूर्ति करवानेका दायित्व हमसे ज्यादा है, अन्यथा हमको मानव-शरीर देनेका उनका प्रयोजन ही क्या था? हमें तो केवल इतना ही कहना है कि—मेरे स्वामी, मेरे माता-पिता, मेरे मालिक, मेरे सर्वस्व आप ही सोच-विचार कीजिये कि आपको इस अबोध और असहाय बालकका हित कैसे करना है; क्योंकि आप जैसा चाहें वैसी पात्रता इस बालकको प्रदानकर, इच्छित क्रिया करवाकर आपके दिये प्रयोजनकी सिद्धि करवानेकी कृपा करें; क्योंकि यह सभी कुछ आपकी कृपासे ही सम्भव है। मैं तो आजसे ही आपके शरण हो गया, अब आप जानें या आपका काम जाने। मुझे अपने प्राकृत मन एवं बुद्धिसे शरणागतिकी स्वीकृति हो पाना असम्भव कार्य लगता है, आप सर्वसमर्थ और शरणागतवत्सल हैं, आपका तो यह प्रण है कि आप शरणागत जीवको निराश नहीं लौटाते। यह बात आप रामावतारमें विभीषणजीकी शरणागति प्रसंगमें घोषित कर चुके हैं। हे प्रभु! शरणागतिकी स्वीकृति जीवका हित समझकर आप अपनी ओरसे भी करनेमें हिचकिचाते नहीं हैं। फिर मेरी बारी आनेपर आपने इतना विलम्ब क्यों कर दिया? लगता है मेरे शरणागति पानेके प्रयत्नमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई दोष अवश्य रह गया है, अन्यथा आपसे भूल होनेका तो प्रश्न ही पैदा नहीं हो सकता और मुझे शरण कभीकी मिल गयी होती, इसलिये अपनी उस त्रुटिके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपका अबोध, असमर्थ, अज्ञानी, पतित और संसारके भोगोंमें रचा निर्लज्ज बालक हूँ, किंतु आपका दास, पुत्र, सेवक और अंश हूँ और आप करुणानिधान, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, पापका हरण करनेवाले और दयानिधान हैं; इसलिये मेरी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि इस अधमको संसाररूपी भूलभुलैयासे निकालकर आप अपनी भक्तिका दान देनेकी कृपा करें। फिर आप तो सर्वज्ञ हैं, इसलिये जिसमें आपको मेरा हित लगता हो, वैसा करनेकी कृपा करें; किंतु यह जो चौरासी लाख योनियोंमें आपने कृपाकर सर्वश्रेष्ठ मानवशरीर मुझे प्रदान किया है, इसका कल्याण न होनेसे आपका प्रयोजन विफल न हो जाय! अनेक वर्षोंसे मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। फिर भी ये इन्द्रियाँ अपने निर्माताको जाननेके लिये तरस रही हैं। आप कृपानिधान हैं, आजतक हर समय आपकी कृपाके परिणामस्वरूप ही मेरा यह जीवन चल रहा है। हे कृपानिधान! अब एक कृपा और कर दीजिये कि यह शरीर अन्त होनेके पूर्व आपके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त कर सके।

आरोग्यदान

(डॉ० श्रीएम०एल० कौशल, आयुर्वेदरत्न)

आयुर्वेदकी उत्पत्तिकी कथा ही आरोग्य-दानकी कथा है। अंगिरा, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु आदि महर्षियोंने विचार किया कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल आरोग्य है और रोग इस पुरुषार्थचतुष्टयके साधक कल्याणकारी आरोग्यको ही नष्ट करनेवाला है, अतः ऐसे शास्त्रका निर्माण किया जाय, जो आतुर मनुष्योंको आरोग्यका दान दे। इसी मंगल उद्देश्यसे आयुर्वेदका प्रादुर्भाव हुआ।

आयुर्वेदके उद्देश्यका वर्णन करते हुए महर्षि चरकने कहा है—

धर्मार्थं चार्थकामार्थमायुर्वेदो महर्षिभिः। प्रकाशितो धर्मपरैरिच्छद्भिः स्थानमक्षरम्॥

अर्थात् धर्मकार्यमें तत्पर, अक्षरस्थान (ब्रह्मप्राप्ति)-की इच्छा रखनेवाले महर्षियोंने धर्म (आरोग्यदान)-के लिये आयुर्वेदका प्रकाश किया। आयुर्वेदका उपदेश धनार्जन करने या अपनी विशेष कामनाकी सिद्धिके लिये नहीं किया।

आयुर्वेदके महान् चिकित्साग्रन्थ चरकसंहिताके रसायनाध्यायमें आरोग्यदानका वर्णन किया गया है और वहाँ बताया गया है कि जीवनदानसे बढ़कर अन्य कोई दान नहीं—

दारुणैः कृष्यमाणानां गदैर्वैवस्वतक्षयम्। छित्त्वा वैवस्वतान् पाशाञ्जीवितं यः प्रयच्छति॥
धर्मार्थदाता सदृशस्तस्य नेहोपलभ्यते। न हि जीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते॥

(चिकित्सास्थान, रसायनाध्याय ४।६०-६१)

अर्थात् भयंकर रोगोंद्वारा यमपुरीकी ओर बलात् ले जाते हुए प्राणियोंके प्राणको जो वैद्य यमराजके पाशोंको काटकर बचा लेता है, उसके समान धर्म, अर्थको देनेवाला इस जगत्में कोई नहीं है; क्योंकि जीवनदानसे बढ़कर अन्य दान कोई नहीं है। अर्थात् सब दानोंमें जीवनदान बहुत बड़ा दान बताया गया है और वैद्य जीवनको देनेवाला है। इसलिये इस संसारमें धर्म, अर्थको देनेवाला सबसे बड़ा वैद्य ही कहा जाता है। चिकित्साका उद्देश्य भूतदया है—अन्य प्राणियोंपर दया करना ही उत्तम धर्म है, यह समझकर जो चिकित्सामें प्रवृत्त होता है, वह सफल मनोरथ और अत्यन्त सुखभागी होता है—

परो भूतदया धर्मं इति मत्वा चिकित्सया। वर्तते यः स सिद्धार्थः सुखमत्यन्तमश्नुते॥

चिकित्सा करते हुए जो वैद्य अर्थ (धन), काम (विशेषरूपसे अपने मनोरथ)-को ध्यानमें न रखते हुए केवल प्राणियोंपर दया रखकर ही अपना कार्य करता है, वह चिकित्साक्षेत्रमें सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक कहा जाता है और वह सभी सांसारिक विषयोंको त्यागकर ब्रह्ममें लीन हो जाता है—

नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति। वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[गतांक सं० २ पृ०-सं० ५३८ से आगे]

आज भारतका गोधन लगभग ७५ प्रतिशत नष्ट हो चुका है, केवल २५ प्रतिशत बचा है। कोई समय आयेगा कि लोग चित्र बनाना भूल जायँगे कि गायका चित्र कैसा होता है। होगा नहीं, ऐसा हो गया। कई-कई जगह बच्चे नहीं पहचानते कि भारतीय गाय कैसी होती है। वे सबको गाय ही समझते हैं। एक मन्दिरके उत्सवकी बात थी। गिरिराजधरणका मन्दिर था। वहाँ दीवालपर गायोंका चित्र बनाया गया था। जिनका चित्र बनाया गया था—न किसीके गलकम्बल, न किसीके ककुद्। वहाँके आयोजक कह रहे थे—देखिये, कैसा बढ़िया, क्या सजीव चित्रकारी की है। हमने कहा, चित्रकारी तो बहुत अच्छी की है, पर गायका चित्र इसमें नहीं है। अरे! आप कैसे कह रहे हैं गायका चित्र नहीं है? उस लड़केको बुलाया गया, जिसने चित्र बनाया था तो उसने घीके पीपेपर जो जर्सी गायके चित्र बने थे, वे दिखाये और कहा—देखो, ऐसी तो होती है गाय। हमने कहा—अरे! यह दूध नहीं, यह तो सफेद पानी तैयार करनेवाला एक संयन्त्र है, यह गाय नहीं है। जिसके शास्ना—गलकम्बल हो, ककुद् हो उसको गाय कहते हैं, गायके लक्षण इसमें घटित नहीं हैं। यह सुनकर चित्र बनानेवाला झेंप गया।

अभी कुछ समय पूर्वकी बात है। कल्याण-पत्रमें एक लेख आया था कि 'जर्मनीमें एक मांसाहारी जंगली पशु था, जिसका ऐन गायके जैसे चार थनवाला था, वह मांसाहारी जंगली पशु था, उस पशुको वहाँके लोगोंने पकड़ा और सूअर एवं भैंसा—इन पशुओंसे संक्रमण कराकर उससे एक नस्ल तैयार की, उसी नस्लका नाम है जर्सी। इसलिये गायकी प्रकृतिसे उसकी प्रकृति बिलकुल भी मिलती-जुलती नहीं। हम भैंसका दूध पीनेका समर्थन नहीं कर रहे हैं, लेकिन हम समझते हैं कि जर्सीकी अपेक्षा भैंसका दूध पीना उतना बुरा नहीं है। यद्यपि व्रत गायके दूध पीनेका ही रहना चाहिये, किंतु जर्सीका दूध तो बिलकुल गुणवत्तायुक्त नहीं है। अनेक प्रकारके उसमें रोग हैं। हमने देखा तो नहीं है, पर सुना है कि उस जर्सीको मांसके टुकड़े भी भूसेमें डालकर खिलाये जायँ तो वह खा लेगी; क्योंकि इसकी जो मूल प्रकृति है, वह मांसाहारी है, किंतु देशी गाय तो घास आदिका ही सेवन करती है, ऐसा सुना जाता है कि देशी गाय किसीका जूठा पानीतक नहीं पीती।

महापुरुषोंके श्रीमुखसे ऐसा सुना गया है कि अपनी भारतीय गायमें 'सूर्यकेतु' नामकी नाड़ी होती है, जो सूर्यनारायणसे सीधा सम्पर्क रखती है और 'गौ-किरण' जो सूर्यमें आती है, वह सीधे गोलोकसे आती है। हमारी भारतीय गाय चौबीसों घंटे गोलोकके सीधे सम्पर्कमें रहती है, इसलिये गोलोककी जो पावनता है, जो दिव्यता है, जो निर्विकारिता है, वह उस गायके दूधमें, दहीमें, गोमूत्रमें और गोमयमें मिश्रित होती है। उसके रोम-रोममें वह दिव्यता होती है, जिसको हम गायकी सेवा करके और गव्य-पदार्थोंका सेवन करके प्राप्त करते हैं।

आज विश्वमें जो भी समस्याएँ हैं, उन सारी समस्याओंका मूल है रजोगुण, तमोगुणकी वृद्धि और इनकी आशातीत वृद्धिका एकमात्र कारण है—गायका वध। इसलिये जबतक गोवध पूर्ण प्रतिबन्धित नहीं होता, तबतक पृथ्वीपर सात्त्विक वातावरण प्रभावी नहीं हो सकता।

पृथ्वीके सात सुदृढ़ स्तम्भ हैं—गाय, ब्राह्मण, वेद, सती स्त्री, सत्यवादी, लोभरहित तथा दानशील। इनमें पहला ही स्तम्भ है—गाय। सातके ऊपर पृथ्वी टिकी हुई है। उन सात खम्भोंमें पहला खम्भा है—गाय। गायमें देवता, तीर्थ, हव्य, कव्य प्रतिष्ठित हैं, इसलिये गाय सनातन संस्कृतिका मूल आधार है। गायके नष्ट होनेसे ब्राह्मण संस्कारच्युत हो रहे हैं। सन्ध्या-गायत्रीसे उन्हें कोई मतलब नहीं, जनेऊ भी नहीं पहनते, चोटी नहीं रखते। वस्तुतः उनकी धर्म और सदाचारमें कोई निष्ठा नहीं रह गयी है। ऐसे दूषित संस्कार ब्राह्मणजातिमें कैसे आ गये? इसका कारण है कि गाय नष्ट हो रही है। गायके नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते ही ब्राह्मण नष्ट हो जायगा। शास्त्रमें लिखा है कि गायोंका कुल और ब्राह्मणोंका कुल—दोनों एक है। इसलिये एक है; क्योंकि एकमें मन्त्र प्रतिष्ठित हैं और एकमें हविष्य प्रतिष्ठित है। ब्राह्मण नष्ट हो जायँगे तो वेद नष्ट हो जायँगे। तीसरा खम्भा है वेद। और जब गाय, ब्राह्मण, वेद—ये तीनों नष्ट हो जायँगे तो समाजमें सदाचार नहीं रहेगा और सदाचारके बिना सतीत्वकी कल्पना नहीं की जा सकती। फिर साध्वी, पतिव्रता नारियाँ भी नहीं होंगी और जब पतिव्रता नारियाँ नहीं होंगी तो लोभरहित, सत्यवादी और दानशील पुरुष कहाँसे आयेंगे? ऐसे महापुरुष सती नारियोंकी कोखसे ही जन्म लेते हैं, तो मूलमें गाय ही है। इसलिये गायके सुदृढ़ होते ही इसी धरतीपर सत्ययुगका वातावरण आ जायगा।

दुर्भाग्यसे भारतमें जिन लोगोंकी गायमें श्रद्धा नहीं थी, ऐसे लोगोंके हाथ शासन आया और आज भी ऐसे ही लोगोंके हाथमें शासन है। सब एक-से ही हैं; क्योंकि धर्मको निष्ठापूर्वक अंगीकार करनेके लिये सत्यनिष्ठा चाहिये, त्यागकी भावना चाहिये जो इन शासकोंमें नहीं है, इनसे क्या आशा की जा सकती है!

अब तो एक ही बात है ठाकुरजी कृपा करें। अपने परिकरमेंसे सन्तोंको भेजें तो भगवत्कृपासे यह कार्य सम्भव है। हम तो भगवान्‌से बार-बार प्रार्थना करते हैं, हे प्रभो! जैसे संत हमें आज प्रभुकृपासे देखनेको मिल रहे हैं, ऐसे संत भगवान् अनेककी संख्यामें धरतीपर भेजें तो एक बहुत बड़ा आदर्श प्रकट हो जायगा।

आज हमारी बुद्धिमें बैठा हुआ है कि जो भोले-भाले भारतीय किसान हैं, उनका अन्न बड़ा पवित्र है—कोई झूठ नहीं, कोई फरेब नहीं, यह बात सच्ची भी है, लेकिन आज परिस्थिति इतनी विकट आ गयी है कि अब सहसा यह भी कह पाना कठिन है कि सभी किसानोंका अन्न शुद्ध रहा। वे श्रमपूर्वक खेती करते हैं, अन्नका उत्पादन करते हैं, किंतु अपनी बूढ़ी गाय और अपने नवजात बछड़े कसाइयोंके हाथ बेच देते हैं। उनको भार लगता है और वे यह अच्छी प्रकारसे जानते हैं कि जब यह गोधन हमारे लिये उपयोगी नहीं है तो दूसरेके लिये उपयोगी क्या होगा? वे बेचनेवाले यह भी जानते हैं कि इसको खरीदनेवाला कसाई है और इसका वह वध करेगा। फिर भी व्यर्थमें ही वे गोवधका पाप ले लेते हैं, अपने सिरपर चढ़ा लेते हैं।

कैसा दुर्भाग्य है! प्रातःकाल होनेतक ५० से ६० हजारतक गोवंश काट दिया जाता है। यह धरती जो गायके गोबर और गोमूत्रसे सिंचित होती थी, वह आज गायके रक्तसे रंजित हो रही है। क्या धरती छूनेयोग्य रही? उन कत्लखानोंसे जो हड्डियाँ एकत्रित की जाती हैं, उनसे फास्फोरस आदि रासायनिक खाद तैयार होती है और उसको खेतोंमें डाला जा रहा है। अन्नमें गोवधके परमाणु व्याप्त हो रहे हैं। श्रद्धा कैसे हो गायके प्रति!

हमारे यहाँ गायोंको घटोध्नी कहा जाता है, क्योंकि उनका जो ऐन—ऊधस् है, वह घड़ेके जैसा हुआ करता था। ऐसी-ऐसी गायोंका वर्णन है, जिनके थन भूमिका स्पर्श करनेमें केवल चार अंगुल ही ऊपर रह जाते थे। वे ऊँचे स्थलसे जाती थीं तो धरतीका स्पर्श करते थे। हमारे गुरुजी तो कहते थे—यहाँ 'घट' शब्दका अर्थ है, जिसमें एक मन दूध आ जाय यानी एक मन दूध जिसके ऐनमें आ जाय, उसको घटोध्नी कहते हैं। भागवतमें लिखा है कि जैसे अत्याचार, अनाचार बढ़ेगा तो वे घटोध्नी गौएँ बकरी-जैसी कम दूध देनेवाली हो जायँगी, कारण यह है कि गायका हमें जैसा आदर करना चाहिये, वैसा आदर हम नहीं कर रहे हैं।

एक महात्मा थे, जंगलमें रहते थे और १००-२०० गायें उनके साथ रहती थीं। घोर जंगलमें घूमते रहते। वे विलक्षण महात्मा थे, गौर वर्ण था, विशाल उनकी जटाएँ थीं, अवधूत थे। एक मोटा आड़बन्द और एक कौपीन, इनके अतिरिक्त कोई वस्त्र सर्दी, गर्मी, बरसातमें नहीं रहता था और एक लट्ठ हाथमें रखते थे। गाय चराते रहना और जब भूख लगे तो अपने-आप कोई-न-कोई गोमाता उनके निकट चली आती। पीठ थपथपाकर उसके थनमें मुँह लगाया और भिक्षा ग्रहण कर ली। १०-५ गायोंसे मधुकरी लेते थे। बछड़ा भी पी रहा है और बाबाजी भी पी रहे हैं। सब गायें उनको अपने बछड़े-जैसे ही चाट-चाट करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध पिलाती थीं। वे सिद्ध-महात्मा कभी प्रकट हो जाते, कभी अन्तर्हित हो जाते, लोग दर्शन करने जाते तो गाय चराते-चराते बाबा अन्तर्धान हो जाते। गाय दिखायी पड़ रही है, बाबा नहीं दिख रहे हैं। परम सिद्ध सन्त थे और उनकी आयु सैकड़ों वर्ष थी। तपे हुए सोनेके समान उनका वर्ण सुना है हमने। जिन लोगोंने उनका दर्शन किया, वे कहते थे कि अन्धकारमें वे घूमते तो एक दिव्य कान्ति उनके शरीरसे छिटकती रहती, प्रकाश निकलता था, केवल गोदुग्धका ही आहार करते थे, वह भी दुह करके नहीं, सीधे मुँह लगा करके। उनके शिष्य भी गौ चराते थे। उनका स्मरण करके चित्तमें यह बात आती है कि वस्तुतः वे कितनी उच्च कोटिके महान् योगी थे, आध्यात्मिक शक्तियोंसे सम्पन्न थे, दीर्घायु थे। निश्चित ही इसमें उनकी जो गोसेवा है, गोभक्ति है और केवल गव्य पदार्थोंको ही भिक्षाके रूपमें ग्रहण करना—ये ही कारण हैं। उनकी आध्यात्मिक उच्च अवस्थाको प्राप्त करानेमें ये ही विशेष बातें रही होंगी।

भगवान्‌के अवतारोंद्वारा गोसेवा

चौबीस अवतारोंमें भगवान् दत्तात्रेय परम गो-सेवक हैं। गायके प्रति दत्तभगवान्‌की बड़ी प्रीति है, इसलिये दत्तात्रेयजीके चित्रपटमें गाय जरूर होती है। वे गौसे टिक करके खड़े हुए दिखायी देते हैं। गोपालजी भी जहाँ-कहीं हैं, गायके साथ हैं। साक्षात् कामधेनु सदा-सर्वदा उनके साथ रहती है।

आज जगह-जगह इतने बड़े-बड़े धार्मिक अनुष्ठान हो रहे हैं, आयोजन हो रहे हैं फिर भी जैसा लाभ होना चाहिये, वैसा लाभ नहीं दिखायी पड़ रहा है। इसका मूल कारण यही है कि गोवध-जैसा भयंकर पाप हो रहा है। यह कलंक मिट जाय और फिर जो आयोजन हो रहे हैं, वे हों तो सत्ययुग लौट आयेगा। इसलिये जहाँसे रोग है, वहाँसे उसे दूर किया जाय तो तभी रोग दूर होगा। सारी समस्याओंकी जड़ है गो-हत्या और सारी समस्याओंका समाधान है गायकी सेवा, गायकी रक्षा, गायका आदर; क्योंकि भगवान्‌की सृष्टिके जितने प्राणी हैं, उन समस्त प्राणियोंमें भगवान्‌ने सम्पूर्ण सात्त्विकता गायके भीतर विराजमान की है। जिसके गोमूत्र और गोबरसे लिपे-पुते घरको देखकर मनमें सात्त्विकता आ जाय, वह कैसा सात्त्विक प्राणी होगा! तो ऐसी गायके गोबर और गोमूत्रसे सब धरती सिंचित हो तो सब जगह सात्त्विकताका वातावरण आ जायगा तब अत्याचार नहीं होगा, दुर्भिक्ष नहीं होगा, फिर समस्त प्राणियोंकी एक-दूसरेके साथ सद्भावना होगी। पथमेड़ा-धामके गो-सदनमें सबेरे परिक्रमा करने जाओ तो गोसेवा-सदनके छोटे-छोटे बच्चे नंग-धड़ंग घूमनेवाले, रजमें लोटनेवाले श्रद्धासे प्रणाम करते हैं। कहते हैं 'हरि ॐ बाबाजी हरि ॐ'। हमारे मनमें आता है कि भाई, इतने छोटे बच्चोंको कौन सिखाता है! तब समझमें आता है कि ये जो गायकी सात्त्विकता है, इस कारण इन बालकोंमें यह संस्कार है। इनको कोई सिखानेवाला नहीं, लेकिन ये सौभाग्यशाली बालक हैं, जो गो-रजमें जन्म ले रहे हैं, जन्मसे ही गायका दर्शन कर रहे हैं, ये निश्चित बड़े भाग्यशाली हैं। [क्रमशः]

'मनुज आज संशय में पलता'

(श्रीसुन्दरलालजी बोहरा)

जो देखो वो भाग रहा है, बिना काम ही जाग रहा है।
लोभ-मोह का अन्त नहीं है, मन को पल भर चैन नहीं है।
दौलत का सब झगड़ा चलता, मनुज आज संशय में पलता॥
कौन टिका है सदा धरा पर, धीर लुटा है सदा धरा पर।
बहे बाढ़ में महल-अटारी, सुख से सूनी चीजें सारी।
सूरज का भी यौवन ढलता, मनुज आज संशय में पलता॥
बहते रहना कर्म लहर का, परिवर्तन ही धर्म पहर का।
पंच तत्त्व का सभी तमाशा, बढ़ती हर पल मन की आशा।
विधि का लेख कभी ना टलता, मनुज आज संशय में पलता॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न-ब्रह्मकी उपासना

(डॉ० अलकाजी सिंघल)

सर्वशक्तिमान् ब्रह्मकी प्रेरणासे इस सृष्टिकी रचना हुई। जड़-चेतन प्रत्येक रचनामें उसका अंश विद्यमान है। सृष्टि-रचनामें उस तत्त्वसे सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई। पृथ्वीसे औषधियाँ और औषधियोंसे अन्न उत्पन्न हुआ। इन पंचभूतोंमें आकाश पहला तत्त्व है और पृथ्वी अन्तिम तत्त्व है। बीचके तीनों तत्त्व आकाश और पृथ्वीके अन्तर्गत हैं। समस्त भोग्यपदार्थरूप अन्न इन पंचमहाभूतोंके ही कार्य हैं। अतः ये पंचमहाभूत भी अन्नके रूपमें ही प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार अन्नमें ही अन्न प्रतिष्ठित माना जाता है।

मानव-शरीरके स्थूल और सूक्ष्म दो भेद हैं—उपनिषदोंमें मानवके स्थूल शरीरको 'अन्नमय कोश' की संज्ञा प्रदान की गयी है। अन्नको 'सर्वौषध' (प्राणियोंकी देहके सन्तापको शान्त करनेवाला) कहा गया है। समस्त औषधियोंका सार अन्नमें है। वीर्यरूपमें परिणत हुए अन्नसे पुरुषकी उत्पत्ति हुई, इसलिये पुरुषको 'अन्नरसमय' (अन्न और रसका विकार) कहा गया है—**'स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।'** रसादिरूपमें परिणत हुए अन्नसे ही इस पृथ्वीपर स्थावर-जंगमरूप प्रजा उत्पन्न होती है, अन्नके द्वारा ही जीवित रहती है और अन्तमें अन्न (अन्न उत्पन्न करनेवाली अन्नरूपा पृथ्वी)-में ही लीन हो जाती है। इस अन्नमय शरीरके पोषणहेतु अन्नरूप ब्रह्मकी उपासना वेदों और उपनिषदोंमें वर्णित है।

अन्नका संस्कृतमें व्युत्पत्तिपरक अर्थ है **'अद्यतेऽत्ति च भूतानि'** अर्थात् अन्न प्राणियोंके द्वारा (**अद्यते**) खाया जाता है तथा अन्न भी प्राणियोंको (**अत्ति**) खाता है। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोंका भोज्य और उनका भोक्ता होनेके कारण वह 'अन्न' कहा जाता है।

अन्न साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है **'अन्नं ब्रह्मेति'**। अन्नके उपासकको कभी अन्नका अभाव नहीं रहता। उसे जीवनोपयोगी समस्त भोगोंकी प्राप्ति हो जाती है **'सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते'**। (तैत्तिरीयोपनिषद्)

जो जिस वस्तुका अनादर करता है, वह वस्तु कभी भी उसका वरण नहीं करती। अतः जो मनुष्य अन्नसे सम्पन्न होनेकी कामना रखते हैं, उन्हें कभी अन्नकी निन्दा न करनेका व्रत लेना चाहिये—**'अन्नं न निन्द्यात्। तद् व्रतम्'**। उसे कभी अन्नकी अवहेलना भी नहीं करनी चाहिये—**'अन्नं न परिचक्षीत। तद् व्रतम्'**।

अन्नकी ब्रह्मरूपसे उपासना इस प्रकार करनी चाहिये—'मैं अन्नसे उत्पन्न, अन्नस्वरूप और अन्नमें ही लीन हो जानेवाला हूँ, इसलिये अन्न ब्रह्म है, **'अन्नजोऽन्नात्मान्नप्रलयोऽहं तस्मादन्नं ब्रह्मेति'** (तैत्तिरीयोपनिषद् शाङ्करभाष्य)।

मनुस्मृतिमें भी कहा गया है कि भोजनको हमेशा पूज्य दृष्टिसे देखें तथा बिना निन्दा किये भोजन करें। भोजन देखकर आनन्दित और प्रसन्न होना चाहिये और सर्वतोभावेन अन्नका अभिनन्दन करना चाहिये—

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥

(मनुस्मृति २।५४)

नित्य अभिनन्दित भोजन बल एवं शक्ति प्रदान करता है, इसके विपरीत अनादृत एवं अपूजित अन्न बल एवं शक्तिको नष्ट कर देता है—

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥

(मनुस्मृति २।५५)

अन्नोपासकको यह भी संकल्प लेना चाहिये कि 'मैं अन्नको खूब बढ़ाऊँगा'—**'अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्'**। इसके साथ ही **'अतिथिदेवो भव'** की भावना भी उसके मनमें होनी चाहिये। केवल अपना तथा कुटुम्बका पोषण करनेके लिये नहीं, अपितु अतिथिके सेवा-भावार्थ भी व्यक्तिको न्यायोचित उपायसे बहुत-से अन्नका संग्रह करना चाहिये।

अन्न और अन्नका भोक्ता—ये दोनों ही साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। उपनिषद्में ब्रह्मवाणी है कि 'जो अन्नरूप मुझे अन्नार्थियोंको दान करता है, वह मानो मुझे देकर मेरी रक्षा करता है—**यो मा ददाति स इदेवा मा३वाः**। इसके विपरीत जो केवल स्वयं ही अन्न-भक्षण करता है, उस अन्न-भक्षण करनेवाले पुरुषको मैं अन्नरूप होकर निगल जाता हूँ—**'अहमन्नमन्नमदन्तमद्मि'**। अर्थात् उसका विनाश हो जाता है, उसकी भोग-सामग्री स्थायी नहीं रहती। तात्पर्य यह है कि योग्यपात्रको भोग्य-पदार्थका दान देना ही उसकी रक्षाका सुन्दर उपाय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मावतमें दान-महिमा

(श्रीइन्द्रदेवप्रसाद सिंहजी)

हिन्दी साहित्यमें प्रेमाख्यानक काव्यधाराके प्रख्यात कवि जायसी भारतीय संस्कृतिके अद्भुत आख्याता थे। इनकी प्रमुख रचना 'पद्मावत' है, जो अर्थमाधुर्यसे इतना ओत-प्रोत है कि पाठक इसे पढ़कर आनन्द-विभोर हो उठते हैं। पद्मावत महाकाव्यमें निहित साहित्यिक सौन्दर्यके साथ-साथ सांस्कृतिक सौन्दर्यका सरस सौरभ सर्वथा सराहनीय है। हिन्दुओंके धार्मिक एवं लौकिक कृत्योंका वर्णन अति उदारतासे इन्होंने किया है। महाकवि जायसीने अपने पद्मावतमें दान-महिमाका बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। दानशीलताके महिमांकनके साथ ही इस आस्तिक एवं सहृदय कविने दान नहीं देनेके दुष्परिणामका भी भारतीय पद्धतिसे चिन्तन किया है।

जायसीके अतिरिक्त अन्य सूफी कवियोंने भी दानकी महिमापर प्रकाश डाला है। महादानियोंकी स्थितिका चित्रण निम्नांकित पंक्तियोंमें दर्शनीय है—

दान निसान सरग गै बाजै। हातिम करन भोजबलि राजै॥

(मधुमालती)

इसी प्रकार कवि उसमानने भी दान-महिमाका आस्थापूर्ण वर्णन किया है—

दुहूँ जग हित दान सम नाहीं। बूड़त दधि काढ़ै गहि बाँहीं॥

(चित्रावली)

कितनी मार्मिक उक्ति है दानशीलताको प्रेरित करनेके लिये। उभय लोकोंमें दानके समान अन्य कोई हितकारी नहीं है। साथ ही कविका यह भी निष्ठापूर्ण कथन है कि दान समुद्रमें डूबते प्राणीको बाँह गहकर उबार लेता है। इसी प्रकार एक अन्य कवि कासिमने हंस जवाहिरमें दान नहीं देनेकी भयावहताको दर्शाया है—***'दान दियो तहि होऊ उबारा। दान बिना बूड़ो मज धारा॥'*** सूफी कवि शेख रहीम अंशदानकी ओर इंगित करते हुए कहते हैं—***'चालिस अंस में एक अलाना। रब के नाँव दउ तुम दाना॥'*** इसी भावको एक कविने और दर्शाया है और अपनी शुद्ध आमदनीमेंसे कतिपय अंश दान देनेकी प्रेरणा दी है—

चालिस दरब मां एक मोहि देवो। उतरो पार राह तब पावो॥

(कुँवरावत-अलीमुराद)

अब सूफी कवियोंके महान् पुरोधा कविवर जायसीकी दृष्टिमें दान-महिमाका समाकलन दर्शनीय है।

जायसीने अपने पद्मावतमें दानकी महिमासे सम्बन्धित छिट-पुट संकेत तो कई प्रसंगोंमें किये है, मगर कलिंगनरेश गजपति और राजा रत्नसेनके संवादमें दान-महिमाका आकर्षक वर्णन किया है। पद्मावतके विदाई-खण्ड एवं यात्रा-खण्डमें भी दानका अच्छा अंकन किया गया है। कविने शेरशाहको भी अद्वितीय दानियोंमें परिगणित किया है। कवि कहता है कि शेरशाहके हाथमें एक दिव्य अँगूठी है—***'हाथ सुलेमा केरि अँगूठी। जग कहँ जिअन दीन्ह तेहि मूठी॥'*** ध्यातव्य है सुलेमान अत्यन्त दानी सम्राट् था। उसको एक फकीरने चार रत्नोंसे समन्वित एक ऐसी अँगूठी दी थी, जिसके प्रभावसे वह जितना दान देता था, उतनी ही सम्पत्ति बढ़ती जाती थी। शेरशाहके हाथमें भी यही विशेषता थी कि वह भी जितना अधिक दान देता था, उतनी ही सम्पति बढ़ती जाती थी। शेरशाहकी दानशीलताकी बानगीहेतु ये पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं—

पुनि दातार दइअ बड़ कीन्हा। अस जग दान न काहूँ दीन्हा॥
दान डाँग बाजइ दरबारा। कीरति गई समुद्रहिं पारा॥
कंचन बरिस सोर जग भएउ। वारिद भाजि देसतर गएउ॥
जौं कोइ जाइ एक बेरि माँगा। जनमहुँ होइ न भूखा नाँगा॥
दस असुमेध जगिग जेइँ कीन्हा। दान पुन्नि सरिसेउ न दीन्हा॥
अइस दानि जगउपना सेरसाहि सुलतान।
ना अस भयेऊ न होइहि ना कोइ देइ अस दान॥

(स्तुति-खण्ड, पद्मावत)

कविका कथन है दैवने उसे (शेरशाहको) बड़ा दानी बनाया है। उसके दरबारमें दानका डंका बजता है। उसके दानकी कीर्ति समुद्रपारतक फैल गयी है। लोकमें ऐसी प्रसिद्धि है कि उसके यहाँ कंचनकी वर्षा होती है। दारिद्र्य भागकर देशान्तर चला गया है। मात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार उससे अगर कोई याचना कर लेता है तो वह जन्मभर नंगा-भूखा नहीं रहता। यहाँ काल्पनिकता-मिश्रित यथार्थ दानशीलताका चित्रण अत्यन्त मोहक एवं हृदयावर्जक है।

इसी प्रकार योगीवेशधारी राजा रत्नसेन और राजा गजपति (उत्कलनरेश)-के संवाद-खण्डमें भी दान-महिमाका शास्त्रानुमोदित, किंतु रोचकतापूर्ण वर्णन है—

धनि जीवन औ ताकर हिया। ऊँच जगह महँ जाकर दिया॥
दिया सो जप तप सब उपराहीं। दिया बराबर जग किछु नाहीं॥
एक दिया ते दशगुण लहा। दिया देखि सब जग मुख यहा॥
दिया करै आगे उजियारा। जहाँ न दिया तहाँ अँधियारा॥
दिया मन्दिर निसि करै उजियारा। दिया नहिं घर मूँसहि चोरा॥
हातिम करन दिया जो सिखा। दिया रहा धर्मन्ह महँ लिखा॥
दिया सो काज दुवौं जग आवा। इहाँ जो दिया उहाँ सो पावा॥
निरमल पन्थ कीन्ह तेइ जेइ रे दिया कछु हाथ।
किछु न कोइ लेइ जाइहि दिया जाय पै साथ॥

(राजा गजपति-संवाद-खण्ड)

कविका कथन है कि जो दानियोंमें यशस्वी है, वह जीवन एवं प्राण दोनोंसे धन्य है। कविकी दृष्टिमें जप-तपसे दान सर्वोपरि है। दान देनेसे दसगुना लाभ होता है। दानियोंका मुखावलोकन सर्वापेक्षित है। उभय लोकोपकारी माना है कविने दानको। अन्धकार-निवारणार्थ दान परम प्रकाशक दीपक है। भविष्योज्ज्वल बनानेमें दान अनुपम है। कविकी दृष्टिमें दानरूपी दीपक शरीररूपी मन्दिरको आभा-प्रभायुक्त बनाकर घोर तमिस्रारूपी विपत्तिको विदीर्ण करनेवाला है। अर्थात् दान सर्वसुखकारक है। दानदाताओंकी धर्मशीलमें गणना की गयी है। कविने कर्ण, हातिम आदिको श्रेष्ठतम धार्मिक माना है। धनकी सार्थकता दान देनेमें ही है। कविने लोक-परलोकमें निष्ठा जताते हुए यह कहा है कि दान दोनों लोकोंमें फलदायी होता है। *'कर पवित्र कछु दान'* के आलोकमें दानदाताओंके पथ ज्योतित एवं स्वच्छ होनेकी बात भारतीय धर्मशास्त्रकी मान्यताओंको प्रदर्शित करती है। जीवनलीला-समाप्तिके बाद कोई भी प्राणी अपने साथ किसी भौतिक पदार्थको नहीं ले जाता हाँ, उसकी दानशीलताकी यशमयी गाथा अवश्य शेष रह जाती है। यहाँ पूरे सन्दर्भमें जायसीने दान-सम्बन्धी धार्मिक मान्यताओंका सहृदयतायुक्त वर्णन किया है। कविकी इन उक्तियोंसे व्यक्ति दानी बननेमें चेष्टारत हो सकता है।

कवि जायसीने रत्नसेनकी विदाईके समय पद्मावतीको दिये गये दायजको भी भारतीय पद्धतिसे ही प्रतिपादित किया है। बेटीकी विदाईके समय दिया गया सामान भी एक विशिष्ट प्रकारका दान ही है। सम्राट् गन्धर्वसेनने पद्मावतीके साथ जड़ाऊ साड़ियाँ चार लाखकी संख्यामें पिटारीमें साजकर दिये थे। सुसज्जित रथोंमें रत्न-पदार्थ, माणिक्य-मोती राजकोषसे दिये गये थे। हजारों घोड़े-हाथियोंके झुण्ड भी दिये गये थे। कविने दानोंकी संख्या असंख्यमें वर्णित की है, कुछेक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

भले पटोर जराव सँवारे। लाख चारि एक भरे पेटारे॥
रतन पदारथ मानिक मोती। काढ़ि भंडार दीन्ह रथ जाती॥
सहसन पाँति तुरग कै चली। औ सौ पाँति हस्ति सिंघली॥

(रत्नसेन-विदाई-खण्ड)

इन पंक्तियोंमें कविने सहर्ष दानकी झलक प्रदान की है। इसमें कहीं भी माँग तथा दबावकी गन्ध नहीं आती। हाँ, कविने आगे यह भी कहा है कि अतिशय दान पाकर रत्नसेन गर्व-संयुक्त हो गया, जो सर्वथा अनुचित है—***'देखि दरब राजा गरबाना। दिष्टि माँह कोई और न आना॥'*** कविने धनके प्रति लोभ और अहंकारकी निन्दा की है; क्योंकि यह दानशीलताके सर्वथा विपरीत है—***'दरब से गरब लोभ-विष-भूरी। दत्तन रहै सत्त होइ दूरी॥'*** सचमुच लोभ और अभिमानके कारण दिये हुए दानका महत्त्व मूल्यहीन हो जाता है। सत्यकी समाप्ति हो जाती है। जायसीने 'देशयात्रा'-खण्डमें दान नहीं देनेके दुःखद परिणामका भी चित्रण किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि जायसी मुसलिम समुदायमें सम्मिलित रहते हुए भी हिन्दू-संस्कारके स्वस्थ पारखी थे। दानकी महिमाका जो चित्रण मधुरोपदेशात्मक शैलीमें कविने किया है, वह अत्यन्त हृदयग्राही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनकी राह और भगवद्गीता

(श्रीगोपीकृष्णजी डालमिया)

श्रीमद्भगवद्गीताका जबसे प्राकट्य हुआ है, तबसे पता नहीं कितनी पीढ़ियोंने अपने संशयके क्षणोंमें इससे जीवनकी राह पायी है। ये उपदेश आज ही नहीं सदाके लिये प्रासंगिक हैं। जिस प्रकार रणक्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको कर्तव्य-अकर्तव्यसे परिचित कराते हैं और ऊहापोहके भ्रमजालसे निकालकर उन्हें नयी दृष्टि देते हैं, उसी प्रकार गीताका पाठ भी हमें वर्तमान दुश्चिन्ताओंसे मुक्ति दिलानेमें सहायक है। गीता मानवमात्रको जीवनमें प्रतिक्षण आनेवाले छोटे-बड़े संग्रामोंके सामने हिम्मतसे खड़े रहनेकी शक्ति देती है। मनुष्यका कर्तव्य क्या है? इसका बोध कराना ही गीताका केन्द्रीय विषय है। गीताका दर्शन जाति या धर्मविशेषके लिये नहीं है, वह सार्वभौम है।

गीता साहित्यके प्रेमियोंको साहित्यिक आनन्द देती है; कर्मवीरोंको कर्म करनेका उत्साह देती है, ज्ञानियोंको ज्ञानगंगामें डुबकी लगानेका अवसर देती है और भक्तोंको गीतामें भक्तिका रहस्य मिलता है। गीता किसी भी स्थितिमें श्रद्धाको नष्ट नहीं होने देती। निराशाके अन्धकारमें भटकनेवाले मानवके जीवनमें गीता आशाका प्रकाश बिखेरती है। हतोत्साही मानवको गीता नवीन प्रकाश देती है। भगवान् मेरे साथ हैं, ऐसा माननेवाला मानव कभी निराश नहीं होता। आस्थावान् मनुष्योंके लिये गीता मातृतुल्य है। मानव असफल होनेपर निराश हो जाता है, लेकिन गीता बताती है कि असफलता सफलताके विरुद्ध नहीं है, बल्कि वह सतत प्रयत्न करनेकी प्रेरणा देती है। इसलिये मनुष्यको अधिक शक्तिसे काममें लगना चाहिये।

प्रयत्नशील मानवके जीवनमें आनेवाली असफलताएँ सफलताका सोपान बनती हैं। निराशावादी मनुष्य गुलाबपर काँटे देखता है, किंतु गीता उसको काँटोंमें गुलाब देखनेकी दृष्टि प्रदान करती है।

गीता मानवको जीवन जीनेकी कला सिखाती है, सुखी बननेका मनोविज्ञान बताती है। संन्यासीको गीता कहती है कि संन्यास केवल बाहरी दिखावा नहीं है, वह आन्तरिक परिवर्तनका प्रतीक है। संन्यास लेना नहीं होता है, अपितु वैसी मनोवृत्ति बनानी होती है। संन्यास कपड़ोंमें नहीं वृत्तिमें समाया होता है। गीता त्याग, बलिदान या समर्पणकी भावना सिखाती है। गीताका उपदेश है—'**तस्मात् योगी भव**', अर्थात् तू योगी बन यानी किसी संरचनात्मक कार्यमें लग जा।

सकारात्मक कार्य ईश्वरके साथ जुड़े होते हैं, इसलिये ऐसे सकारात्मक कार्य करनेवाले व्यक्तिका जीवन सफल बनता है। जबतक वृक्ष भूमिके साथ जुड़ा होता है, तभीतक उसका अस्तित्व होता है। गीताका आग्रह है कि सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक किसी भी क्षेत्रका व्यक्ति हो, यदि वह अपने समाजका नेतृत्व करता है तो समाजको अपने आचरणसे प्रेरक मार्गदर्शन देना उस व्यक्तिका कर्तव्य है। ऐसे व्यक्तिकी चिन्ता स्वयं भगवान् करते हैं। गीतामें भगवान् भक्तको आश्वासन देते हैं कि अपने भक्तोंका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ। उसको जो अप्राप्त है, उसकी प्राप्ति मैं करा देता हूँ और प्राप्त वस्तुका रक्षण मैं स्वयं करता हूँ। भगवान्को जीवन समर्पित करनेवाले भक्तकी चिन्ता भगवान् करते हैं, इसमें क्या सन्देह है।

कर्ममें कुशलताका नाम ही योग है—'**योगः कर्मसु कौशलम्**' कुशलतासे कार्य करना यानी मन लगाकर कार्य करना, मन चुराकर नहीं। महात्मा गाँधीके जीवनपर गीताका गहरा प्रभाव था। गाँधीजीके लिये गीता माँके समान थी। उनका मानना था कि गीतासे सभीको लाभ उठाना चाहिये। गीताका मुख्य उद्देश्य अनासक्तिके सिद्धान्तका प्रतिपादन करना है, गीता ब्रह्मविद्या है, क्योंकि वह सब उपनिषदोंका सार है। इसे अच्छी तरह पढ़कर इसके अर्थ और प्रयोजनको हृदयमें उतार लेना अत्यन्त श्रेयस्कर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरथ-सिद्धिका आधार चिन्तन है, चिन्ता नहीं

(पं० श्रीरघुनाथजी शर्मा)

यह नियम है कि मनुष्य जिस वस्तुका भलीभाँति चिन्तन करता है, उसे उसीकी प्राप्ति होती है। अतएव जिसको जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, उसको उसीका चिन्तन करना चाहिये। यही ईप्सितार्थ-सिद्धिका सर्वोत्तम उपाय है। यह एक ऐसा बल है जो चिन्तनीयसे चिन्तनकर्ताका सम्बन्ध करवा देता है। दोनोंके बीचमें चाहे कितना भी अन्तर क्यों न हो, पर चिन्तन क्रमशः उसको दूरकर दोनोंको मिला देता है। यानी जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, पर जिसके प्राप्त होनेकी कुछ भी सम्भावना न हो, भलीभाँति किये जानेवाले चिन्तनके प्रभावसे उसकी प्राप्ति भी अद्भुत प्रकारसे सम्भव हो जाती है। चिन्तन एक ऐसा यन्त्र है, जो अबतक बड़े-बड़े काम कर चुका है। ऋषि-मुनियोंद्वारा वर्णित आठों सिद्धियाँ और नवों निधियाँ, भीमके साहसिक कार्य और मन्त्र-तन्त्रकी पुराणोक्त गाथाएँ केवल इस एक शब्द चिन्तनके ही अधीन हैं। यह जिसको साध्य है वह प्रभुके समान है, उससे त्रिलोकीनाथ भगवान् दूर नहीं हैं।

मन एक प्रकारका चुम्बक है। यह जैसे विचार या चिन्तनमें लगा रहता है, वैसे ही मनोरथोंकी सिद्धि होती है। अवश्य ही इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये कि चिन्तन हो उत्तम प्रकारसे और तभी वह परिपक्वावस्थाको प्राप्त होता है। सारांश यह कि फल प्राप्त होनेतक चिन्तन करते ही रहना चाहिये। यदि कोई किसी जगह जानेके लिये घरसे निकले तो उसे वहाँ पहुँचनेतक चलते ही रहना चाहिये। 'अभी वह जगह क्यों नहीं आयी? अबतक वह स्थान दृष्टिगोचर क्यों न हुआ?' वस्तुस्थितिका विचार करनेसे इस प्रकारके अधैर्ययुक्त उद्‌गार निरर्थक हैं; क्योंकि इनसे लक्ष्यस्थान प्राप्त नहीं हो जाता। यदि गन्तव्य स्थान प्राप्त न हो तो समझना चाहिये कि जितना चलनेकी आवश्यकता है, उतना अबतक चला नहीं गया। अभी हमें और चलना चाहिये। उसकी प्राप्तिके लिये जितना चलना आवश्यक है, जब उतना चल चुकेंगे तब वह स्थान हमें अवश्य ही प्राप्त हो जायगा, पर इस विचारको त्यागकर मनुष्य अधीर हो उठता है। 'मुझे मेरी ईप्सित वस्तु शीघ्र क्यों प्राप्त नहीं होती' इस अनुचित विचारके वशीभूत हो वह वस्तु-प्राप्तिके लिये प्रारम्भ किया हुआ शुभ प्रयत्न बीचमें ही त्याग देता है!

ईप्सितार्थकी सिद्धिके पथपर चलनेवालेको उचित है कि वह प्रारम्भ किये हुए प्रयत्नको कभी न छोड़े, निश्चल-वृत्तिसे उसमें लगा ही रहे। प्रयत्न जारी रहनेसे एक दिन फल अवश्य मिलेगा। विश्वका यह नियम है कि कोई भी क्रिया निष्फल नहीं होती। इसलिये दृढ़ विश्वास रखकर प्रयत्न करते रहना ही हितकर है। सतत संलग्न रहनेसे फल स्वतः प्रकट हो जाता है, परंतु जबतक फल न मिले तबतक अन्तःकरणकी श्रद्धान्वित स्थितिको सुदृढ़ रखकर उत्साहपूर्वक प्रयत्न करनेसे कभी विमुख नहीं होना चाहिये।

एक बात और विचारणीय है। यह देखा जाता है कि बहुधा गन्तव्य-स्थानपर पहुँचनेकी इच्छा रखनेवाला पथिक राह चलते रहनेपर भी वहाँ नहीं पहुँचता, परंतु यह बात ठीक नहीं है; क्योंकि ठीक रास्तेपर चलते रहनेवालेकी यह दशा कभी नहीं हो सकती। जो उससे उलटे मार्गपर चलता है, चाहे वह अपने मनमें मानता हो कि मैं ठीक रास्तेपर चल रहा हूँ, वह अवश्य वहाँ नहीं पहुँचता है। पूर्वकी ओर जानेकी आवश्यकता हो और थोड़ी देर पूर्वकी ओर चले भी, परंतु दूसरे ही मुहूर्तमें भ्रमसे वह उत्तरमें जाने लगे तो वह पूर्वदिशामें कदापि नहीं पहुँचेगा। इसलिये लक्ष्य स्थानपर पहुँचनेकी इच्छा रखनेवाले पथिकको सावधानीकी बड़ी आवश्यकता है, जिससे वह सीधे मार्गको छोड़कर उलटे पथपर न चल पड़े। योग्य मार्गपर चलनेवाला अवश्य ही वहाँ पहुँचता है। ऐसे ही कभी-कभी ईप्सित वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छावाला उसका चिन्तन तो करता है, परंतु उसे फल नहीं मिलता। इसमें भी यही बात समझनी चाहिये कि वह पूर्वोक्त गन्तव्य-स्थानके सीधे मार्गको छोड़ भ्रमसे दूसरे मार्गपर चलनेवालेकी तरह लक्ष्य वस्तुके चिन्तनको छोड़कर दूसरे विषयका चिन्तन करने लगता है। इसीसे उसे उसकी प्राप्ति नहीं होती और जब कुछ समय बीतनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी फल नहीं मिलता, तब या उससे पूर्व ही कर्मके नियमोंको नहीं समझनेवाले लोग अत्यन्त अधैर्यसे या तो आरम्भ किया हुआ चिन्तन सर्वथा छोड़ देते हैं अथवा चिन्तनकी जगह भ्रमसे चिन्ता करने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि वह चिन्ता उन्हें उलटे मार्गपर ले जाती है, जिससे वे अपने लक्ष्यसे और भी दूर चले जाते हैं।

चिन्ता और चिन्तनको एक समझना बड़ी भारी भूल है। ये दोनों सर्वथा भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। दोनोंके परिणाम भी भिन्न-भिन्न होते हैं। चिन्तन फलको प्रकट करता है और चिन्ता उसका नाश करती है। चिन्तन प्राणोंको शान्ति देता है और चिन्ता शान्तिका नाश करती है। चिन्तन धैर्य तथा श्रद्धाका पोषण करता है और चिन्ता इनका विध्वंस करती है।

मनुष्यकी स्वाभाविक ही इच्छा होती है कि मेरा मनोरथ आज ही सिद्ध हो जाय तो बहुत अच्छा हो, परंतु जब ऐसा नहीं होता अथवा धारणासे कम परिमाणमें होता है तो वह अधीर और चिन्तातुर हो जाता है, परंतु उसे याद रखना चाहिये कि योग्य अधिकारी हुए बिना अर्थकी सिद्धि कदापि नहीं होती। इसलिये अधिकारीकी स्थिति परिपक्व होनेके लिये आवश्यक समयकी बड़ी आवश्यकता है। हमारा मनोरथ तत्काल सिद्ध न हो तो चिन्ता करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। चिन्तासे कभी अर्थ सिद्ध नहीं होता, अधीरताके कारण अर्थके शीघ्र सिद्ध न होनेपर मनुष्य भ्रमसे दूसरोंको कारण मानकर कहने लगता है कि अमुकने मेरा अर्थ सिद्ध नहीं होने दिया। इस प्रकार दूसरोंपर दोषारोपण करनेसे अर्थकी सिद्धिका चिन्तन छूट जाता है और वह दूसरे मनुष्यों अथवा विघ्नोंकी चिन्ता करने लगता है, फिर वह निरन्तर यही चिन्ता करता है कि अमुक मनुष्य मेरे कार्यमें विघ्नरूप है। यों अर्थ-चिन्तनके बदले जब विघ्नोंकी चिन्ता होने लगती है, तब अर्थसिद्धि और भी दूर हट जाती है। अतएव ईप्सितार्थकी सिद्धि चाहनेवालेको उसका विशुद्ध चिन्तन कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

अध्यात्म-शास्त्रका नियम है कि जो जैसा चिन्तन करता है, वह वैसा ही फल पाता है। अर्थसिद्धिके लिये प्रधान कर्तव्य केवल चिन्तन है, परंतु सावधान! चिन्तनके बदले कहीं चिन्ता न होने लगे!

दानविषयक कतिपय शंकाओंका समाधान

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)

दान-भजन-सत्संगादिसे लाभ

शंका—दान, गंगास्नान, तीर्थ, व्रत आदि महान् पुण्यकर्म करनेवाले भी आजीवन दुःखी देखनेमें आते हैं। दान, भजन आदि पुण्यकर्म न करनेवाले तथा नित्य पापकर्म करनेवाले भी मरणपर्यन्त सुखी देखनेमें आते हैं। ऐसी दशामें यह शंका होती है कि दानादि पुण्यकर्मसे सुख और पापकर्म करनेसे दुःख होता है, शास्त्रकी यह बात सत्य कैसे?

भजन-ध्यान करनेवाले भी कुछ लोग ऐसे होते हैं कि वे अतिकाम, क्रोध-मोहादि दोषोंसे ग्रस्त रहते हैं। इसके विपरीत भजन-ध्यान न करनेवाले भी कुछ लोग ऐसे होते हैं कि कामादि दोषोंसे मुक्त रहते हैं। ऐसा देखकर यह कैसे कहा जा सकता है कि भजन-ध्यानसे अन्तःकरण शुद्ध होकर कामादि विकार नष्ट हो जाते हैं?

आजीवन सत्संग करनेवालोंमें भी कुछ लोग ऐसे होते हैं कि वे दूसरोंकी सेवा कभी नहीं करते, सदा स्वार्थकी सिद्धिमें लगे रहते हैं। इसके विरुद्ध कुछ लोग ऐसे भी देखनेमें आते हैं कि कभी भी सत्संगमें नहीं जाते, फिर भी दूसरोंकी सेवामें अपना तन-मन-धन लगा देते हैं, स्वार्थरहित विवेकयुक्त होते हैं। ऐसी दशामें यह कैसे माना जा सकता है कि सत्संग करनेसे विवेकादि गुणोंका लाभ होता है? वर्तमानमें तो सत्संग करनेवाले ही नहीं, अपितु सत्संग करानेवाले भी अतिलोभ आदि दोषोंसे ग्रस्त देखे जाते हैं।

ऐसा भी देखनेमें आता है कि किसीका एक पुत्र माता-पिताकी खूब सेवा करता है, इसलिये माता-पिता पुत्रसे बहुत प्रसन्न रहते हैं। पुत्रके धनहीन होनेके कारण स्वयं भी अन्न-वस्त्रके अभावसे दुःख पाते हैं। इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रात:काल पादवन्दना करते समय विनयी सुशील पुत्रको हृदयसे आशीर्वाद देते हैं, फिर भी उस पुत्रको धन नहीं मिलता। उन्हीं माता-पिताका दूसरा पुत्र माता-पिताको कटुवचन सुनाता है, मूर्खतावश कभी मारपीट भी कर देता है, इसलिये माता-पिता उसे कभी भी आशीर्वाद नहीं देते। ऐसा होनेपर भी उस पुत्रके पास धन-धान्य सदा विद्यमान रहता है। ऐसी दशामें यह कैसे माना जाय कि माता-पिताके आशीर्वादसे धन-धान्यकी प्राप्ति होती है?

कहाँतक कहें, जिन-जिन कार्योंको शास्त्रकारोंने सुखका साधन बताया है, उनको जीवनपर्यन्त करनेवालोंमें कुछ लोग मरणपर्यन्त दु:खी देखनेमें आते हैं। इसके विपरीत जिन-जिन कार्योंको शास्त्रोंमें दु:खका कारण बताया गया है, उन कार्योंको आजीवन करनेवालोंमें भी कुछ लोग आजीवन सुखी देखनेमें आते हैं। ऐसी स्थितिमें नास्तिकोंको ही नहीं, आस्तिकोंके हृदयमें भी यह शंका होती है कि दान-भजन-सत्संगादिसे क्या लाभ? कृपया इस शंकाका सम्यक् समाधान बतायें।

समाधान—शास्त्रकथित दानादि अलौकिक कार्योंका फल कब होता है, इसे समझनेके लिये पहले खेती आदि लौकिक कार्योंका फल कब होता है, इसे समझना आवश्यक है। देखिये—खेतमें बोया गया गेहूँ उचित ऋतु, मर्यादित खाद, समयानुसार जलसेचन आदि सहयोगी सामग्री होनेपर और पाला, ओला, कीड़ा आदि विरोधी सामग्रीका अभाव होनेपर कालान्तरमें ४-५ महीने बाद खेती पकनेपर ही फल देता है, तत्काल नहीं देता। इसके अतिरिक्त बीजोंके स्वभाव-वैचित्र्यके कारण भी शीघ्र या विलम्बसे फल प्राप्त होता है। देखिये—ककड़ी-खीरेका बीज २ मासमें, आमका बीज ८-१० वर्षमें और खिरनीका बीज २५-३० वर्षमें फल देता है। इस प्रकार सहयोगी तथा विरोधी सामग्री और बीजोंके स्वभाव-वैचित्र्यको समझे बिना कोई व्यक्ति आमका बीज बोकर ४-६-१२ महीनेतक प्रतीक्षा करनेपर भी आमरूप फल खानेको न मिले तो यह कहने लग जाय कि 'आमका बीज बोनेपर आम खानेको मिलते हैं' यह बात झूठी है, सत्य नहीं। उसके ऐसा कहनेसे बात झूठी नहीं हो जायगी, सत्य ही रहेगी।

इसी प्रकार दान-भजन-सत्संगादि साधन भी सहयोगी सामग्रीके होनेपर और विरोधी सामग्रीके न होनेपर कालान्तरमें इस जन्ममें या प्राय: जन्मान्तरमें परिपक्व होनेपर ही फल देते हैं, तत्काल फल नहीं देते। बीजोंकी तरह दानादि कर्मोंके स्वभावमें भी वैचित्र्य होता है, इसलिये कोई कर्म इसी जन्ममें और कोई कर्म १-२-१०-१०० जन्मोंके बाद फल देता है। भविष्यपुराणमें स्पष्ट कहा है कि—इस जन्ममें किये कर्मका फल (प्राय:) अन्य जन्ममें मिलता है। जन्मान्तरमें किये कर्मका फल ही (प्राय:) मनुष्योंद्वारा (इस जन्ममें) भोगा जाता है—

इह जन्मकृतं कर्म परजन्मनि पच्यते।
परजन्मकृतं कर्म भोक्तव्यं तु सदा नरै:॥

यही कारण है कि जिन्होंने जन्मान्तरमें दान-भजन-सत्संगादि शुभ कर्म किये हैं, वे शुभकर्म परिपक्व होकर जिस जन्ममें फल देते हैं, उस जन्ममें दान-भजन-सत्संग न करनेपर भी वे लोग काम-क्रोध-लोभ आदि दोषोंसे रहित, विवेकी, परोपकारी, धन-धान्यसम्पन्न एवं आजीवन सुखी रहते हैं। इसी प्रकार जिन्होंने जन्मान्तरमें प्राय: पापकर्म किये हैं, दान-भजन आदि शुभकर्म नहीं किये हैं, इस जन्ममें ही सत्संग आदि शुभकर्म प्रारम्भ किये हैं, उन्हें उनका फल जन्मान्तरमें परिपक्व होनेपर अवश्य मिलेगा। इस जन्ममें जो वे निर्धन, दु:खी हैं, वह तो जन्मान्तरमें किये अशुभकर्मोंका फल है।

इस रहस्यको जो लोग समझ लेते हैं, वे ही लोग मृत्युपर्यन्त दु:ख-दारिद्र्यसे ग्रसित रहते हुए और इस जन्ममें किये दान-भजन आदिका फल प्रत्यक्ष न मिलनेपर भी भजन-ध्यानादि साधनमें संलग्न रहते हैं। उन्हें कभी भी यह शंका नहीं होती कि दान-भजन-सत्संगादिसे क्या लाभ? यह शंका तो ऊपर लिखे रहस्यको न जाननेवालोंके हृदयमें ही होती है।

इसी प्रकार जो लोग पापकर्म करते हुए भी इस जन्ममें सुखी हैं, वह सुख तो जन्मान्तरमें किये उनके शुभकर्मका फल है। इस जन्ममें वे जो पापकर्म कर रहे हैं, उसका फल (दु:ख) तो उन्हें जन्मान्तरमें अवश्य ही भोगना पड़ेगा। इस रहस्यको जो लोग जान लेते हैं, वे लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही अत्यन्त एकान्त, अतिप्रलोभन और अति-संकटके समय भी पापकर्मोंसे बचे रहते हैं।

अभीतक जन्मान्तरमें फल देनेवाले अलौकिक दानादि कर्मोंपर विचार किया गया। आगे इस जन्ममें ही फल देनेवाले अलौकिक जप-दान-यज्ञादि अनुष्ठानरूप कर्मोंपर विचार किया जाता है कि वे कर्म कभी शीघ्र फल देते हैं, कभी-कभी विलम्बसे फल देते हैं, कभी फल नहीं देते और कभी अधूरा तथा कभी विपरीत फल देते हैं। इन सबका क्या कारण है?

इसी जन्ममें फल देनेवाले पुत्रेष्टियज्ञ आदि अलौकिक कर्मोंके बारेमें विचार करनेसे पहले इसी जन्ममें फल देनेवाले शिक्षा, चिकित्सा आदि लौकिक कर्मोंके बारेमें विचार कर लिया जाय तो अलौकिक कर्मोंका विचार समझनेमें सुगमता होगी। देखिये—चिकित्सारूप कर्मकी सफलताके लिये रोगका सम्यक् निदान, रोगभेदका ज्ञान, रोगनाशक औषधिका ज्ञान, शुद्ध शास्त्रविधानसे निर्मित औषधिका सेवन, देश-काल-आयु-बलका ध्यान रखते हुए औषधिकी मात्रा, कुपथ्य-त्याग, सुपथ्य-सेवन करना अति आवश्यक है। इन सबका पालन करनेपर ही चिकित्साका फल होगा, न करनेपर नहीं होगा और मनमाना करनेपर विपरीत फल होगा।

इसी प्रकार पुत्रेष्टियज्ञ आदि अलौकिक कर्मोंकी सफलताके लिये पवित्र धनका होना, शास्त्रविधिको ठीक जाननेवाले सदाचारी ब्राह्मणद्वारा यज्ञ कराना, जप-स्तोत्र आदिके पाठमें शुद्ध उच्चारण करना, ऋषि-देवता-छन्द आदिका ज्ञान होना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, शुद्ध सात्त्विक हविष्यान्नका भोजन करना आदि नियम पालन करना अति आवश्यक है, तभी पुत्रेष्टियज्ञादि साधनसे फल प्राप्त होगा। उक्त नियमका पालन न करनेपर फल प्राप्त नहीं होगा। मनमाना करनेपर विपरीत फल होगा। वर्तमानमें प्रायः इन नियमोंका पालन न होनेके कारण ही जपादिके अनुष्ठान फल प्रदान नहीं करते। अतः लौकिक-अलौकिक कर्मोंके विधि-विधानका सम्यक् ज्ञान सम्पादन करके उनका अनुष्ठान करना ही बुद्धिमान् मानवका कर्तव्य है। इनके बिना सफलता प्राप्त न होनेपर कर्मोंपर अश्रद्धा करना या 'इनसे क्या लाभ' ऐसा कटाक्ष करना तो अबुद्धिमान्का ही काम है।

शंका—शास्त्रीय विधि-विधानका पूरा पालन करते हुए भी कभी-कभी अनुष्ठान फल प्रदान क्यों नहीं करते?

समाधान—भगवान्ने स्वयं नियम बनाया है कि तीव्रतम अतिप्रबलप्रारब्धका नाश भोग बिना नहीं होगा। ऐसा तीव्रतम अतिप्रबलप्रारब्ध जब उदय होकर बाधक होता है तब अलौकिक जपादि ही नहीं, अपितु लौकिक चिकित्सा आदि साधन विधि-विधानपूर्वक अनुष्ठान करनेपर भी फल प्रदान नहीं करते। ऐसे स्थलोंके लिये शास्त्रोंमें अतिस्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि (अन्तिम) जरावस्था अथवा मृत्युसे युक्त मानवकी रक्षा औषधि, मन्त्र, होम, जप, दान और कोई बन्धु-बान्धव भी नहीं करते—

न मन्त्रा न तपो दानं न मित्राणि न बान्धवाः।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम्॥

(पद्मपु० भूमि० ८१।३३)

नौषधानि न मन्त्राश्च न होमो न पुनर्जपः।
त्रायन्ति मृत्युनोपेतं जरया वापि मानवम्॥

(विष्णुधर्मोत्तरपु०)

ऐसे अपवादस्थलोंको छोड़कर चिकित्सासे लाभ होता ही है, इसलिये चिकित्सा आदि लौकिक साधनोंपर जैसे सन्देह या अविश्वास करके त्यागना ठीक नहीं, वैसे ही अलौकिक जपादि साधनोंपर सन्देह या अविश्वास करना ठीक नहीं। [**क्रमशः**]

संत-वाणी

❁ सत्यसे बढ़कर संसारमें कोई अन्य धर्म नहीं है और मिथ्याभाषणसे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है, अतः ऐसी दशामें सत्यकी सदा अर्चना करो; उसे कभी मत छोड़ो।

❁ सत्यवादी मनुष्य यद्यपि आर्थिक दृष्टिसे दरिद्र है, किंतु वह मनुष्योंका वास्तविक राजा है।

❁ प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह जैसा दूसरेको उपदेश करता है, वैसा पहले अपनेको बना ले। जिसने अपने मन, इन्द्रियोंको वशमें किया, वह दूसरोंको भी वशमें कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समभावकी साधना

(श्रीप्रकाशजी रातड़िया)

प्रत्येक व्यक्ति सुखी होना चाहता है, किंतु भौतिक साधनों, धन, सम्पदा एवं भोग-उपभोगकी सुविधाओंसे परिपूर्ण व्यक्ति भी स्वयंको दु:खी अनुभव करता है। लालसाएँ अनन्त हैं। एक इच्छा पूरी होती है तो दूसरी पैदा हो जाती है। इच्छा पूर्ण होनेपर भी व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं होता तथा इच्छा पूरी नहीं होनेपर दु:खी होता है। तीर्थंकर भगवान् महावीरने मनुष्यकी इस दशासे मुक्तिकी खोजकर यह प्रतिपादित किया कि समभावकी साधना दु:खोंसे मुक्तिका मार्ग है।

महावीरजीका जन्म राजकुलमें हुआ, सभी भौतिक सुख उन्हें सहज उपलब्ध थे, किंतु उन्होंने इस वैभवपूर्ण जीवनको त्यागकर वैराग्य धारण कर लिया। कठोर तपस्याके दौरान उन्हें भी अनेक दु:ख झेलने पड़े, किंतु वे किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए; क्योंकि उन्हें यह बोध था कि प्रत्येक जीवको अपने कर्मका फल भोगना होता है। तपस्याके फलस्वरूप सर्वज्ञता प्राप्त कर लेनेपर उन्होंने जनसाधारणके लिये उपदेश दिया, जिसका कुछ सार अंश यहाँ प्रस्तुत है—

सब प्राणियोंको अपना जीवन प्यारा है। सब सुखकी इच्छा करते हैं, कोई दु:ख नहीं चाहता, मरना सबको अप्रिय है, सब जीनेकी कामना करते हैं, इसलिये किसी भी प्राणीको दु:ख न दो, न उन्हें सताओ, किसी प्राणीके प्राण हरण मत करो। मन, वचन और कर्मसे सत्यका आचरण करो। सत्यका आचरण करनेवाला आत्मस्थ व्यक्ति साक्षात् निर्विकार निरानन्द परमात्मस्वरूप हो जाता है। उसे किसी भी प्रकारका राग-द्वेष, हर्ष-विषाद अपने बाहुपाशमें आबद्ध नहीं कर पाता।

अन्तर्मनकी निर्विकार दशा ही सच्चा ब्रह्मचर्य है। किसी वस्तुका अनावश्यक संग्रह मत करो, परिग्रहसे काम, क्रोध, मान, लोभ उत्पन्न होते हैं, जीवनमें न्याय, क्षमा, सन्तोष, नम्रता आदि सब गुणोंके संरक्षणके लिये अपरिग्रह आवश्यक है।

जितने भी पंथ संसारमें दिखायी दे रहे हैं, वे सब अपने-अपने दृष्टिकोणसे ठीक हैं। उन सबका समन्वय ही यथार्थ है। अनेकान्त दृष्टिसे ही पूर्ण सत्यकी अनुभूति हो सकती है। अच्छे मार्गपर चलनेवाली आत्मा ही मित्र और बुरे मार्गपर चलनेवाली आत्मा ही शत्रु है। परमात्मा दूसरा और कोई नहीं है, बल्कि आत्मा ही अपने शुद्धस्वरूपको प्राप्त कर लेनेपर परमात्मा हो जाता है। इसलिये अपने शुद्धस्वरूपको प्राप्त करनेका प्रयत्न करो।

सुख और दु:ख, अनुकूल और प्रतिकूल तथा मनोवांछित या मनसे परे सभी परिस्थितियोंमें समभावमें रहना अत्यन्त कठिन है, किंतु जब आत्माके स्वरूप और परिणतिका बोध हो जाता है तब यह कठिन नहीं रह जाता। आत्माकी शाश्वतता और शरीरकी नश्वरताके शाश्वत सत्यको अपने चिन्तनमें जीवन्त बनाये रखनेकी दशामें समभावकी साधना सम्भव होती है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार आदि कषाय आत्मस्वरूपके बोधमें बाधक हैं। इसलिये समभावकी साधनाके लिये इन कषायोंसे उबरनेकी आवश्यकता है। इसके लिये तपका मार्ग प्रतिपादित किया गया है।

समभावकी साधनाके लिये जहाँ पंचमहाव्रतकी पूर्ण आराधनाका विधान है, वहीं अणुव्रत एवं श्रावक-व्रतका विधान भी किया गया है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य—ये पाँच महाव्रत हैं, जिनका पूर्ण पालन साधुओंके लिये अपेक्षित है, श्रावकोंको भी उनका यथासम्भव पालन करना होता है। दुर्व्यसनों, जुआ, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी तथा परस्त्रीगमनका पूर्ण त्याग श्रावकोंके लिये विशेष पालनीय है।

वर्तमानकालमें जब भोग-उपभोगकी होड़ मची हुई है तथा आम आदमी जीवननिर्वाहके साधन जुटानेके लिये संघर्ष कर रहा है, तब त्यागका विचार आत्मसात् करनेमें व्यक्तिको दुविधा प्रतीत होती है, किंतु जब जीवनके प्रति सही दृष्टिकोण विकसित होगा, तभी व्यक्ति समभावकी साधनाके मार्गका अनुसरण कर सकता है। नि:स्वार्थता, समर्पण और प्रेम अपनाकर ही समभावकी साधनाके द्वारा जीवनको सार्थक किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त-चरित

(पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दूबे)

सन्त, महात्मा, महापुरुष, जो हमें जीवनका सच्चा मार्ग दिखलाते हैं, उनके उपदेशोंको जीवनमें उतारना हमारा धर्म है। इसी उद्देश्यसे तीन सन्त भक्तोंके पावन चरितका यहाँ स्मरण किया जा रहा है।

भक्त धन्ना—धन्नाजी एक निर्धन जाट थे। एक बार एक साधु उनके यहाँ आये। वे धन्नाजीकी भगवत्-निष्ठा देखकर बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने शालग्रामजीकी एक श्यामसुन्दर मूर्ति धन्नाको दे दी और उनसे कहा धन्ना! ये ही तुम्हारे भगवान् हैं। प्रतिदिन नियमपूर्वक पूजा-अर्चना करना। इनको भोग लगानेके पश्चात् भोजन करना, तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। धन्नाने साधुकी बात गाँठ बाँध ली।

पूजा-अर्चा करनेके पश्चात् वे ठाकुरजीको बाजरेकी रोटीका भोग लगाने लगे। सरलचित्त धन्नाजीके मनमें साधुकी यह बात जम गयी थी कि भगवान् (शालग्राम)-को भोग लगानेके पश्चात् भोजन करना है। भगवान्के द्वारा प्रत्यक्ष भोग न लगानेसे धन्नाजी बारह दिनतक भूखे-प्यासे रहे। तब भगवान्का आसन हिला। वे परम मनोहररूप धारण किये प्रकट हो गये और रोटियोंको हाथमें लेकर बड़े प्रेमसे भोग लगाने लगे तथा आधी रोटियाँ धन्नाके लिये छोड़ दीं। अब तो भगवान् प्रतिदिन धन्नाजीके साथ भोजन करने लगे। धन्य हैं धन्नाजी, जिन्हें ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भक्त पीपाजी—पीपाजी स्वामी श्रीरामानन्दजीके शिष्य थे। पहले ये राजा थे, किंतु अपने गुरुकी आज्ञासे इन्होंने राज्यका त्याग कर दिया। पीपाजीका त्याग महान् था। कहाँ वे राजमहलोंमें रहकर राजसी सुखोंका उपभोग करते थे और कहाँ सब कुछ छोड़कर वैरागी बन गये। पीपाजीकी धर्मपत्नी श्रीसीताजी पतिव्रता थीं। उन्होंने भी अपने पतिके आज्ञानुसार नाना प्रकारके भोग-विलासोंको त्याग दिया और वे पतिकी अनुगामिनी हो गयीं। पीपाजीने भगवन्नामका यथेष्ट प्रचार किया। ये जिस प्राणीके कानमें श्रीरामनामका मन्त्र फूँक देते थे, वह भक्त बन जाता था।

एक दिनकी बात है—पीपाजी अपनी पत्नी सीतादेवीके साथ कहीं जा रहे थे, रास्तेमें घोर जंगल पड़ता था। पीपाजी जब उस घोर जंगलमें पहुँचे तो एक सिंह इन्हें खानेके लिये झपटा, इन्होंने झट जोर-जोरसे भगवान्का नाम लेना आरम्भ किया। भगवान्का पावन नाम सुननेसे सिंह अपनी हिंसक वृत्तिको भूल गया। वह मुग्ध होकर इनके चरणोंमें लोटने लगा। इसी प्रकारके बहुत-से चमत्कार पीपाजीके जीवनमें हुए। ये साधुसेवासे कभी भी विमुक्त न होते थे।

भक्त नरसी मेहता—नरसी मेहता एक सरलहृदय भक्त थे, वे अपने भगवान्को सब जगह और सारी वस्तुओंमें देखते थे। नरसीजीका जन्म जूनागढ़में नागर ब्राह्मणकुलमें हुआ था। प्रारम्भिक जीवनमें ही इन्हें साधुओंकी संगति मिल गयी थी, जिससे ये श्रीकृष्णकी उपासनामें तल्लीन रहने लगे।

भौजाईके ताना मारनेपर ये घरसे निकल पड़े और एकान्तमें तपस्या करने लगे। महादेवजी इनकी तपस्यासे प्रसन्न हो गये और वे नरसीजीको भगवान्की पुरीमें ले गये और उन्हें भगवान् कृष्ण और गोपियोंकी रासलीलाके दर्शन कराये। उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हुईं, वे घर लौट आये। घर-गृहस्थीसे उदासीन रहने लगे। पुत्री विवाहयोग्य हो गयी थी, किंतु नरसीजीको उसके विवाहकी तनिक भी चिन्ता नहीं थी। नरसीजीको दृढ़ विश्वास था कि श्रीकृष्ण मुझे समस्त सांसारिक चिन्ताओं-क्लेशोंसे मुक्त करेंगे, यही हुआ भी। भक्तवत्सल प्रभुने अपने विरदको सम्हाला। भक्तवत्सल भगवान् कृष्णने भक्तकी लज्जा रखी। उन्होंने सब बहुमूल्य वस्तुएँ जो पुत्रीकी सासने माँगी थीं, सारी-की-सारी लाकर उपस्थित कर दीं। भक्तभयहारी भगवान्ने स्वयं मण्डपमें उपस्थित होकर भक्तके सारे कार्य अपने हाथोंसे सँवारे। अहा! धन्य भक्तवत्सलता।

एक बार जूनागढ़के राजाने इन्हें बुलाकर इनसे कहा—नरसीजी, आपकी भक्तिकी तो आजकल बड़ी धूम मच रही है, किंतु हम तो आपको सच्चा भक्त तभी मान सकते हैं, जब आप अपने इस भक्तिमार्गकी सत्यताको हमारे सामने प्रमाणित करो। आप भगवान्के मन्दिरमें जाकर उनकी मूर्तिके गलेमें पुष्पहार पहनाओ और फिर भगवान्की मूर्तिसे प्रार्थना करो कि वे स्वयं उठकर उस हारको आपके गलेमें डाल दें। ऐसा न हुआ तो आपको प्राणदण्ड दिया जायगा।

नरसीजीने अपने भगवान्की भक्तिकी सत्यता प्रमाणित करनेके लिये रातभर मूर्तिके सामने श्रीकृष्णका गुणगान किया। प्रातःकाल होते ही लोगोंने देखा कि मूर्ति अपने स्थानसे खिसककर नरसीजीके पास चली आयी और उनके गलेमें अपना हार डाल दिया। इस सरलहृदय भक्तके सम्बन्धमें इस प्रकारकी अनेक आश्चर्यमय घटनाओंका उल्लेख मिलता है। नरसीजीके पदोंमें उनकी गाढ़ भक्ति तथा हृदयकी निर्मलता टपक पड़ती है। नरसीजीने हमें जीवनका सच्चा मार्ग बतलाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

(१)

सालासर बाबाकी कृपासे प्राणरक्षा

घटना लगभग आठ-दस साल पहले की है। मेरी मझली बेटी तब नागपुरके पास हींगनघाटमें रहती थी। मुझे अपने लड़केकी शादीके जेवरात एवं चाँदीके सामानसहित बेटी एवं छः महीनेकी दौहित्रीको लेकर नागपुरसे जयपुर जाना था। जयपुरकी सीधी टिकटें न बननेके कारण हम जीटी मेलसे मथुरा तथा मथुरासे बसद्वारा जयपुर जानेका विचारकर रवाना हुए। सामानमें तीन छोटी अटैचियाँ तथा दो बैग थे। हम लोग दूसरे दिन करीबन ९ बजे मथुरा पहुँचे। मथुरा बस स्टैण्डपर पहुँचे तो पता लगा कि आज किसी कारणवश बसें नहीं चलेंगी। बीच-बीचमें ये भी अफवाहें आ रही थीं कि एक घण्टे बाद चलेंगी—दो घण्टे बाद चलेंगी। इसी उधेड़बुनमें वहीं ख़ड़े रहनेकी लाचारी थी। गरमी भी तेज थी। लड़कीको मैंने चाय-नाश्ता करनेके लिये कहा और वह पासहीमें एक स्टालपर जाकर नाश्ता करने लगी। इतनेमें एक २०-२५ सालका लड़का मेरे पाससे गुजरता हुआ जयपुर-जयपुर पुकारने लगा। मैंने उसे रोककर पूछा तो वह बोला कि हम पैसेन्जर छोड़ने मथुरा आये थे और अब वापस जयपुर जा रहे हैं। मैंने जानेकी इच्छा व्यक्त की तो उसने कहा—हमारे पास सिर्फ दो ही सीटें बची हैं। आप चाहें तो चल सकते हैं। उसने किराया भी बस-जितना ही बताया। मैं जैसे ही सामान उठाकर चलनेको तैयार हुआ कि मेरी लड़की भी आ गयी। उसे बात बतानेपर यह बात उसे नहीं जँची, लेकिन मेरी परेशानीको देख वह चुप रही। पास ही एक टाटा सूमो गाड़ी खड़ी थी। उसकी बीचवाली सीटपर तीन आदमी पहलेसे बैठे थे। पूछनेपर 'जयपुर जा रहे हैं' ऐसा उन्होंने कहा। गाड़ीमें ऊपर कैरियर नहीं था। अतः हमारा सामान पीछेकी खाली जगहमें रखकर हमें अगली सीटपर ड्राईवरके पास बैठा दिया। भगवान्‌का नाम लेकर जैसे ही हम कुछ दूर चले दो आदमियोंने हाथ देकर गाड़ी रुकवायी और पीछे हमारे सामानके पास बैठ गये। ड्राईवर गाड़ी धीरे चला रहा था। पूछनेपर उसने कोई जवाब नहीं दिया। मुझे कुछ शंका हुई और जैसे ही मैंने पीछे देखना चाहा तो मेरी पिछली सीटपर बैठे तीनों आदमियोंने अखबारको इस कदर ले लिया, ताकि मुझे कुछ दिखे नहीं। मुझे लगा कि पीछे बैठे दोनों आदमी हमारे सामानको उलट-पलट रहे हैं। मुझे मामला समझते देर नहीं लगी। मैं समझ गया कि हम डाकुओंसे घिर गये हैं। कुछ विरोध करनेका मतलब था प्राण गँवाना। संकटको भाँपकर मैं बुरी तरह घबड़ा गया। इस संकटकी घड़ीमें मुझे सालासरके बालाजीका ही भरोसा दिखायी दिया। तुरन्त बालाजीका सुमिरनकर मैं हनुमानचालीसाका पाठ करने लगा। अभी कुछ ही दूर चले थे कि हमें सड़कके किनारे एक घरके आँगनमें दो आदमकद पत्थरकी भव्य मूर्तियाँ दिखायी दीं। एक सिन्दूर लगी हनुमान्‌जीकी मूर्ति थी, दूसरी भगवान् कृष्णकी थी। हमने हनुमान्‌जीको मन-ही-मन प्रणामकर इस संकटसे उबारनेकी प्रार्थना की। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि जहाँ मैं भयसे काँप रहा था, वहाँ तुरन्त मुझमें कुछ साहसका संचार हुआ तथा कुछ हिम्मत बँधी। यह भगवच्छरण तथा भगवत्प्रतिमा-दर्शनका ही फल था। कोई बहाना बनाकर तत्काल, जहाँ सड़कके किनारे पाँच-सात आदमी दिखें या दूकानें हों गाड़ीको रुकवानेका दृढ़ संकल्प मेरे दिमागमें उपजा। बहाना भी बाबाकी कृपासे ही मनमें उपजा। कोई एक फर्लांग चले थे कि मुझे दूरसे सड़कके किनारे दो-तीन दूकानें तथा कुछ आदमी दिखे। मैंने हिम्मतकर ड्राईवरसे कहा—भैया! जरा गाड़ी रोकना, बच्चीको शौच करवाना है। ड्राईवरने मुझे खा जानेवाली दृष्टिसे देखा, लेकिन बाबाकी प्रेरणासे उसने गाड़ी रोक दी। जैसे ही गाड़ी रुकी, मेरी लड़कीने फौरन दरवाजा खोला और जोर-जोरसे बचाओ-बचाओ चिल्लाने लगी। मैंने भी कड़ककर ड्राईवरसे कहा—ऐ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख क्या रहे हो? फटाफट सामान पकड़ाओ, हमें नहीं जाना है। लड़कीके चिल्लानेसे वहाँ खड़े लोग भी गाड़ीके पास आ गये। इस अप्रत्याशित घटनासे वे लोग बुरी तरह बौखला गये तथा धड़ाधड़ हमारा सामान पकड़ाकर तीव्र गतिसे गाड़ीको मोड़कर मथुराकी तरफ भाग गये।

लोगोंको जब हमने सारी घटना बतायी तो वे कहने लगे, बाबूजी! आप भगवान्की कृपासे बच गये। यहाँ ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। आपका माल जाता सो जाता, आपकी लड़कीकी इज्जत भी जाती। यहाँसे कोई तीन-चार मीलपर नदी है, वहाँ दलदलका बीहड़ है। दिनमें भी वहाँ कोई नहीं जाता। आप ज्यादा कुछ बोलते तो ये लोग आदमीको मारनेमें भी नहीं हिचकिचाते। मारकर दल-दलमें फेंक देते। फिर उनलोगोंने बताया कि यहाँपर कोई बस नहीं रुकेगी। आपको यहाँसे लोकल बस मिलेगी, जो कुछ दूरतक आगे जायगी, वहाँसे फिर आपको लोकल बस मिलेगी, जो आपको भरतपुर बस-स्टैण्डतक ले जायगी। भरतपुरसे आपको जयपुरकी बस मिलेगी। मेरा तो बुरा हाल था। भयसे शरीर काँप रहा था। सोच ही नहीं पा रहा था कि कैसे भरतपुर पहुँचूँगा। नयी जगह, यहाँके आदमियोंका क्या विश्वास! अगर वे डाकू फिर आ गये तो क्या होगा? इतनेमें वहाँ खड़े लोगोंमेंसे एक व्यक्ति हमारे समीपमें आया और कहने लगा—बाबूजी! आप बिलकुल घबड़ाएँ नहीं, मुझे भी भरतपुर जाना है। मैं आपके साथ चलता हूँ। न जाने क्यों मुझे उसकी बातपर भरोसा-सा हो गया और मन भी कुछ आश्वस्त-सा हो गया। मुझे तो वह कोई देवदूत-सा ही लगा। थोड़ी देरमें बस आ गयी और उसने हमारे साथ चलकर हमें भरतपुर पहुँचाया। इसे संयोग ही समझें कि भरतपुर स्टैण्डपर जयपुरकी बस लगी हुई थी तथा जानेको तैयार भी थी। उन सज्जनने तुरन्त हमारा सामान बसमें रखा और कहने लगे, बाबूजी! जल्दी चढ़ो। जैसे ही हम बसमें चढ़े, बस चल दी। जयपुर पहुँचकर सामान सम्हाला तो सब सही सलामत था। सारी घटनाको देखकर लगा कि सारा रक्षा-कवच हनुमान्जी महाराजका था। मुझे आज भी मलाल है कि जिन देवदूतने हमारी इतनी सहायता की, जल्दबाजीमें आते समय हम उनको ठीकसे देख भी न पाये। उनको धन्यवाद तथा कृतज्ञताके दो शब्द कहनेकी भी सुध नहीं रही।

वे देवदूत जो भी रहे हों, मैं उन्हें सालासर हनुमान्जीद्वारा प्रेषित उन्हींका कृपाविग्रह मानता हूँ। आज भी उन्हें कोटि-कोटि नमन करता हूँ तथा जीवनभर करता रहूँगा।—**श्याम गगड़**

(२)

सच्ची आराधनाका फल

घटना ८ जुलाई सन् २००८ ई०की है। मेरे एक मित्र श्रीशर्माजी बैंकमें कार्यरत हैं। उन्होंने मुझे बताया कि वे स्वयं और उनका एक सहयोगी बैंकके कार्यसे कारद्वारा कोटा (राजस्थान)-से शाहबाद जा रहे थे, उनके साथ रास्तेमें एक ऐसी दुर्घटना घटित हुई कि आज भी उसका स्मरण होते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

बात यह हुई कि जब वे कारसे शाहबाद जा रहे थे तो रास्तेमें एक नदी पड़ती है, उसका नाम है घड़ावली। जब उनकी कार नदी पारकर ऊपर चढ़ रही थी तो कार फिसलकर नदीकी ओर जाने लगी। कुछ दूर जाकर अपने-आप क्षणभरके लिये अचानक रुक भी गयी और इसी बीच वे दोनों शीघ्रतासे कारमेंसे बाहर आ गये। वे बाहर निकले ही थे कि कार पलटियाँ खाती हुई नदीमें जा गिरी। जिस सीटपर वे लोग बैठे थे, वह बिलकुल नष्ट हो गयी; उन्होंने बताया कि हम साँस रोके सारा दृश्य देख रहे थे। श्रीहनुमान्जीकी कृपासे हम बाल-बाल बच गये, कारका फिसलते हुए अचानक रुक जाना और हमारा कारसे बाहर निकलना श्रीहनुमान्जीकी कृपाका ही फल था। श्रीशर्माजी हनुमान्जीके भक्त हैं, उन्होंने बताया कि वे सदैव यात्राके समय श्रीहनुमान-चालीसा साथ रखते हैं और मन-ही-मन उसका पाठ भी करते रहते हैं।

इस घटनासे यह सिद्ध होता है कि व्यक्तिकी सच्चे मनसे की जानेवाली ईश्वर-आराधना निष्फल नहीं जाती। भक्तकी रक्षा भगवान् अवश्य करते हैं।—**प्रह्लाद गोस्वामी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ताँगेवालेकी आदर्श ईमानदारी और सेवाभाव

घटना पुरानी है, मध्यप्रदेशके एक प्रतिष्ठित व्यापारी पचास हजार रुपये लेकर दक्षिणमें (मैसूर, मदुरा और मद्रास) माल खरीदनेके लिये जा रहे थे। इस प्रान्तमें शतरंजी और साड़ियाँ एवं मैसूरमें चन्दनकी लकड़ीकी कलामय वस्तुएँ अच्छी और सुन्दर बनती हैं। व्यापारीने एक-एक हजारके ५० नोट बनियाइनकी दोनों जेबोंमें रख लिये और जेबोंको खूब सी लिया था। सबसे पहले यह व्यापारी मैसूर उतरकर यहाँसे १४ मील दूर कृष्णराजसागरका बाँध और इलेक्ट्रिक प्रदर्शन देखने गया।

यह प्रदर्शनीय स्थल शामको ४ बजेसे रातके १० बजेतक मैसूर-सरकारकी ओरसे आम जनताके लिये खुला रहता है। व्यापारीने कृष्णराजसागरका बाँध एवं अद्भुत विद्युत्-प्रकाश, जो कि फुहारों और क्यारियोंमें अपनी अनोखी छटा दिखाकर दर्शकोंको मोहित कर लेता है, देखा। देखकर वह पुलकी सीढ़ियोंपर चढ़ रहा था कि उसे अचानक चक्कर आया और पुलकी सीढ़ियोंपर लुढ़कता हुआ नीचे आ गया।

व्यापारीका शारीरिक सुदृढ़ गठन और शारीरिक शक्ति अच्छी थी। अत: वह हाथ-पैरों एवं मस्तिष्कका रक्त पोंछकर फिर पुलकी सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। अन्तिम सीढ़ीपर ज्यों ही पैर रखा कि उसे फिर जबरदस्त चक्कर आया और दूसरी बार पुन: सीढ़ियोंपर लुढ़कने लगा। पुलके पास ही ताँगा-स्टैण्ड है। कई ताँगेवाले खड़े थे, जिनमेंसे एक ताँगेवालेने इस व्यापारीको पुलकी सीढ़ियोंसे लुढ़कते देख लिया। उसने चाबुक ताँगेमें रखा और पुलपर आया। तबतक आहत व्यापारी लुढ़कता हुआ सबसे नीचेकी सीढ़ीपर आकर लहूलुहान हालतमें पड़ा था। बेहोशी भी आ गयी थी।

ताँगेवालेने उस रक्तरंजित व्यापारीको, जिसके वस्त्र रक्तमें सने थे, गोदीमें उठाया और जैसे-तैसे सीढ़ियाँ चढ़कर ताँगेमें सुला दिया। एक हाथसे व्यापारीको, जो कि अर्धमृतक-सी अवस्थामें था, पकड़े और एक हाथसे घोड़ेकी रास थामे घोड़ेको हाँक रहा था। चार-पाँच मील चलनेके बाद व्यापारीको कुछ होश-सा आया और उसने लड़खड़ाती जबानसे पूछा, 'कौन?' 'मैं हूँ ताँगेवाला। मैंने आपको कृष्णराजसागरके पुलके जीनेसे गिरते हुए देखा था। आपके साथ कोई था नहीं और आप बेहोशीकी हालतमें थे। मेरे मनमें आया कि मैं एक घायल व्यक्तिकी सेवा करूँ और आपको आपके घर भेज दूँ। हूँ तो ताँगेवाला, पर ईमानदार हूँ और ईमानदारीके लिये ही जीता हूँ।'

व्यापारीने कोटकी जेबमेंसे एक सौका नोट निकालकर ताँगेवालेको देते हुए कहा—'लो तुम्हारे लिये इनाम।'

ताँगेवालेने व्यापारीसे कहा—'सेवाका मूल्य सोने-चाँदीके टुकड़ों या कागजके रंगीन टुकड़ोंसे नहीं आँका जा सकता। मैं आपको इसलिये नहीं लाया कि आप मुझे इनाम दें और न मुझे इस प्रकारका लोभ-लालच ही है, मेरा पेशा ऐसा है कि सभ्य-समाज इस पेशेको हल्का पेशा कहता है और हमारे समाजको बेईमान, धोखेबाज, चालबाज बतलाता है, पर ऐसी बात नहीं है। मैं तो भगवान्‌को चारों ओर देखकर जीता हूँ। मुझे डर लगता है कि यदि मैं बेईमान हो गया तो भगवान्‌के न्यायालयमें क्या उत्तर दूँगा। मैं ऐसा मानता हूँ कि इस प्रकार मेरा डरना मेरे लिये ईमानदार बननेके सम्बन्धमें रामबाण सिद्ध हुआ है।'

ताँगेवालेका लम्बा भाषण सुनकर व्यापारीने कोटकी दूसरी जेबमेंसे सौ-सौके पाँच नोट निकालकर ताँगेवालेके हाथपर रख दिये। ताँगेवाला अबकी बार झल्ला उठा और उसने कहा, 'माफ कीजिये, मुझे एक भी पाई आपसे लेना हराम है!' और उसने सौ-सौके पाँच नोट व्यापारीको लौटा दिये, किंतु नोट व्यापारीके हाथमें न जाकर ताँगेमें ही गिर गये। ताँगेवालेने मुड़कर देखा तो व्यापारी बेहोश हो गया था और उसके मुँहसे सफेद झाग निकल रहा था।

इस दृश्यको देखकर ताँगेवालेके मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। हे प्रभो! क्या यह व्यक्ति अपने घर पहुँचनेके पहले ही विदा ले लेगा और मेरी सेवा अधूरी रहेगी? यह व्यक्ति तो श्रीमान् मालूम पड़ता है अन्यथा दो-चार रुपयेकी मजदूरीके लिये ५०० रुपये न देता। लगता है यह व्यक्ति मैसूर या मैसूर-प्रान्तका नहीं है; यह हिन्दी बोलता है, उत्तरप्रदेश या मध्य-प्रदेशका होना चाहिये। तब क्या यह व्यापारी है? तब तो इसके पास हजारों रुपये होंगे। मैसूर यहाँसे ८ मील दूर है और वहाँतक पहुँचनेके लिये कम-से-कम एक घण्टा लगेगा।

पाँच नोट जो कि ताँगेमें ही गिर गये थे, उन्हें उठाकर उसने व्यापारीके कोटकी जेबमें रख दिया। पर कोटके नीचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ उठा हुआ-सा भाग दीख रहा था; ताँगेवालेने टटोलकर देखा तो बनियाइनकी दोनों जेबें लबालब भरी थीं। उसे सन्तोष हुआ कि दोनों जेबें सिली हुई थीं। ठीक १० बजे ताँगेवाला मैसूर पहुँचा और पुलिस स्टेशनपर जाकर उसने ताँगा रोका और रिपोर्ट की।

समयकी बात कि उस समय डी०एस०पी० वहीं थे। वे अन्य चार पुलिस जवानोंके साथ ताँगेके पास आये। देखा तो एक सुन्दर सुडौल गौरवर्ण नवयुवक मुँहसे झाग डाल रहा है। कभी-कभी एक सेकेण्डके लिये आँखें खुल जाती हैं। डी०एस०पी० ने सबसे पहले सिविल सर्जनको फोन करके बुलाया। इसके बाद पुलिसके जवानोंके साथ नवयुवककी तलाशी ली। कोटकी जेबमें सौ-सौके ७ नोट, माल खरीदनेकी सूची, डायरी और कर्नाटक रेस्तोराँकी एक स्लिप मिली। कमीजकी जेब खाली मिली। बनियाइनकी जेबोंको खोलकर देखा गया तो पचास हजारके नोट मिले।

अब डी०एस०पी० को यह समझते देर न लगी कि यह मध्य-प्रदेशका एक प्रतिष्ठित व्यापारी है, दक्षिण-प्रान्तमें माल खरीदने आया है। ताँगेवालेके बयान लिये। उसने ईमानदारीके साथ सभी घटनाएँ स्पष्ट रख दीं। ताँगेवालेकी ईमानदारीसे डी०एस०पी० को विशेष हर्ष हुआ कि एक ताँगेवाला, जिसे लोग बेईमान समझते हैं, कितना ईमानदार हो सकता है। फिर डी०एस०पी० ने कर्नाटक रेस्तोराँके मैनेजरको फोन किया कि रोजनामचा (जिसमें बाहरसे आनेवाले मुसाफिरोंका नाम, धाम एवं पता होता है) लेकर शीघ्र आओ। इतनेमें सिविल सर्जन मय स्टाफ (नर्सरी एवं सर्जरी)-के आ गये, उन्होंने उसकी श्रमपूर्वक अच्छी तरह जाँच की।

जाँचकर सिविल सर्जनने बताया कि यह मरीज अधिक-से-अधिक एक घण्टेका मेहमान है। सतत रक्त-प्रवाहके कारण अब इसका बचना असम्भव है। डॉक्टरने अथक प्रयत्न करके आहत नवयुवक व्यापारीको सचेत किया। वह होशमें आ गया। उसने पासमें ही ताँगेवालेको बैठा देखा और धीमे स्वरमें कहा—'मैं कृष्णराजसागर पुलकी सीढ़ियाँ चढ़ रहा था कि एकाएक चक्कर आया और मैं जमीनदोस्त हो गया। जैसे-तैसे साहस करके दुबारा सीढ़ियाँ चढ़ने लगा कि मुझे फिर चक्कर आ गया। इसके बाद क्या हुआ, यह मुझे पता नहीं। होश आनेपर मैंने अपने आपको पाया कि मैं एक ताँगेमें जा रहा हूँ। विचार आया कि ताँगेवालेने हमदर्दीके नाते मुझपर दया की और मैसूर ले जा रहा है।'

'मैं ताँगेवालेकी हमदर्दीसे बहुत प्रभावित हुआ और उसे १०० रुपये इनाममें दिये। पर उसने नहीं लिये। फिर ५०० रुपये इनाममें दिये। इनाम देनेके बाद ही मुझे बेहोशी आ गयी। होश आनेपर मैं आपलोगोंको अपने सामने देखता हूँ। मुझे यह पता नहीं कि ताँगेवालेने ५०० रुपये लिये या नहीं; यह मुझे ईमानदार, नेक एवं सेवाभावी व्यक्ति मालूम होता है।' इतनेमें कर्नाटक रेस्तोराँके मैनेजर आ गये। उन्होंने वह रोजनामचा बतलाया, जिसमें निम्न प्रकार लिखा हुआ था—दिनांक २२.१२.५४ ई० श्रीमहेशचन्द्र कौल, फर्मका नाम महेशचन्द्र गिरिजाशंकर, निवासी मालपुरा, जिला बस्तर, मध्यप्रदेश। तीन दिनों रेस्तोराँमें ठहरनेकी स्वीकृति और मैनेजरके हस्ताक्षर थे।

इसके बाद महेश कौलने पुनः मन्द स्वरमें कहा—'मुझे ऐसा लगता है कि अब मैं कुछ ही मिनटोंका मेहमान हूँ। ताँगेवालेने मेरी खूब सेवा की है, इसे पाँच हजार रुपये मेरी ओरसे इनाम दे देना। मैं पचास हजार नौ सौ रुपये लेकर घरसे चला था। पचास हजार मैंने बनियाइनकी जेबमें रख लिये थे और नौ सौ ऊपरी खर्चके लिये, जिसमें ७०० रुपये अभी भी मौजूद हैं। शेष खर्च (मार्गव्यय आदि) हो गये। आप मेरी फर्मके नामपर फोन कर दें, मेरा छोटा भाई गिरिजाशंकर आ जायगा।'

डी०एस०पी० ने कहा—'आप घबराइये नहीं, हम सरकारी नौकर ही नहीं, आपलोगों (जनता)-के भी नौकर एवं सेवक हैं। आपके ५०७०० रुपये सुरक्षित हैं। आपने ताँगेवालेको पाँच सौ दिये थे, वे उसने लिये नहीं; और आपकी बेहोशी हालतमें उसने आपके कोटकी जेबमें रख दिये थे। सचमुच ताँगेवाला बहुत ही ईमानदार व्यक्ति है, इसकी ईमानदारी जनताको ईमानदार बननेका पाठ पढ़ाती है। मैंने बहुतसे ताँगेवाले देखे हैं, पर ऐसा ईमानदार ताँगेवाला नहीं देखा। आपकी बेहोशी हालतमें वह ५०७०० रुपये अपने कब्जेमें करके, आपका गला घोटकर, चाहे जहाँ भाग सकता था। पर जहाँ ईमानदारीका प्रश्न है, वहाँ न तो परका हनन होता और न स्वयंका; किंतु वहाँ तो स्व-परका संरक्षण एवं कल्याण होता है।'

महेश कौल डी०एस०पी० के कथनको ध्यानसे सुन रहा था कि दो मिनट बाद ही उसे खूनकी उल्टी हुई और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। तमाम पुलिस स्टाफ, सिविल सर्जनका स्टाफ और कर्नाटक रेस्तोराँके स्टाफने सलाह करके निर्णय किया कि महेश कौलके शवका अग्नि-संस्कार ताँगेवाला ही करेगा; इसकी महती सेवा है और सेवाके नाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे यह अधिकार प्राप्त है। ताँगेवालेने काँपते हाथों 'कौल' के शवका अग्नि-संस्कार किया और चितामेंसे निकली धूम्रराशि अनन्त आकाशमें विलीन होने लगी।

शव-यात्राके यात्री विधिके विधानपर सोच रहे थे कि 'कौल' कहाँ जन्मा, कहाँ स्वर्गवासी हुआ और किस प्रकार पचास हजारकी रकम सुरक्षित बची रही। दूसरी ओर उपस्थित जनता ताँगेवालेकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा कर रही थी और ताँगेवालेकी ईमानदारीके प्रति सभीके मस्तक झुके हुए थे।

तीसरे दिन महेशचन्द्र 'कौल' के छोटे भाई श्रीगिरिजाशंकर आ गये। उन्होंने महेशके मृत्यु-सम्बन्धी सभी समाचार ज्ञात किये। उन्हें भाईकी मृत्युसे असह्य दु:ख हुआ; पर ताँगेवालेकी ईमानदारी, उदारता एवं नि:स्वार्थ वृत्तिसे अपार आनन्द भी हुआ। गिरिजाशंकरने विचार किया कि भाई साहब पचास हजार रुपयेका माल खरीदने आये थे। अब वे असमयमें ही चले गये, फिर ये रुपये मैं वापस क्यों ले जाऊँ? बड़े भाईकी स्मृतिस्वरूप ताँगेवालेकी सेवाके उपलक्ष्यमें उसे दान क्यों न कर दूँ? फलतः गिरिजाशंकरने पचास हजारकी बृहद् धनराशि ताँगेवालेको देते हुए कहा कि 'तुम्हें और तुम्हारे बच्चोंके ये काम आयेंगे।' पर ताँगेवालेने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—'भाई! आप मुझे जो धनराशि दे रहे हैं, उसका मूल्य है; पर ईमानका मूल्य नहीं होता। अत: आप मुझे आशीर्वाद दें कि मेरे लिये सतत अमूल्य निधि ईमानकी प्राप्ति हो; फिर मैं संसारमें सबसे बड़ा धनिक हूँ, ऐसा मैं मानता हूँ। आप मुझे क्षमा कर दें। मैं आपका आज्ञापालन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। रही बात बच्चोंकी, सो वे अपने भाग्यके निर्माता स्वयं हैं। गरीबीमें ईमान बना रहे, यही मुझे और मेरे परिवारके लिये सब कुछ है।' गिरिजाशंकरके मुँहसे अनायास निकल गया 'तुम इनसान नहीं, इनसानके रूपमें फरिश्ते हो। मैं अपने भाईको खोकर और तुमसे ईमानदारीका बोध-पाठ लेकर हर्ष-विषादके वातावरणमें अपने देश वापस जा रहा हूँ, तुम्हारी ईमानदारीकी चर्चा सर्वत्र करूँगा।' धन्य! (स्वतन्त्र)

(२)

सच्ची सेवा

मेरे बचपनके सहपाठी तथा अभिन्नहृदय मित्र श्रीहुकमचन्द शर्मा (दीक्षित नाम शिवानन्द) रेलवेकी नौकरी छोड़कर ४८ वर्ष पूर्व सेनामें धर्मशिक्षकके पदपर नियुक्त हुए। वे प्रतिदिन १६ घण्टे पूजा करते थे। कहते थे कि आठ घंटेकी पूजा मेरे वेतनके बदलेमें है और आठ घंटेकी मेरे लिये।

४० वर्ष पूर्व जब वे चण्डीगढ़में पदस्थापित थे तो उनके कमान अधिकारीकी पुत्रीको असाध्य रोग हो गया था। सब प्रकारके उपचार करनेके पश्चात् भी रोगमुक्त न होते देखकर उनके अधिकारीने श्रीशर्माजीसे महामृत्युंजय मन्त्रका अनुष्ठान अपनी पुत्रीहेतु करानेका अनुरोध किया, जिसके अनुसार इन्होंने सवा लाख महामृत्युंजयमन्त्रका अनुष्ठान अकेले ही प्रारम्भ कर दिया। किसी अन्य पण्डितको इन्होंने यह कहकर भाग लेनेसे मना कर दिया कि कई लोग शुद्ध उच्चारण तथा पूर्ण तन्मयतासे जप नहीं करते।

कुछ सप्ताहके पश्चात् अनुष्ठान पूर्ण होनेपर पूर्णाहुतिके समय शर्माजीने अपने अधिकारीसे कहा कि वे अपनी पुत्रीको भी बुला लें। इसपर उन्होंने कहा कि कन्याका स्वास्थ्य इतना गिर चुका है कि वह आनेमें असमर्थ है। तब शर्माजी बोले—'आप भगवान् आशुतोषपर भरोसा रखें, मुझे विश्वास है कि भगवान् शंकरकी कृपा होगी और वह जरूर आ सकेगी। आप उससे कहें कि वह दीवारका सहारा लेकर आ जाय।'

वैसा ही हुआ भी। उनकी पुत्री दीवारका सहारा लेकर आयी और पूर्णाहुतिके पश्चात् सामान्य लोगोंकी भाँति बिना दीवारका सहारा लिये वापस गयी और जाकर अपने बिस्तरपर बैठ गयी।

पूजनके पश्चात् अधिकारीने इस चमत्कारसे अति प्रसन्न होकर दक्षिणाके बारेमें पूछा तो शर्माजीने कहा कि आप जो ठीक समझें, दे दें। अधिकारीने दूसरी बार पूछा तो फिर वही उत्तर मिला। तीसरी बार पूछनेपर शर्माजीने हँसकर कहा—'मैं दो बार आपकी मर्जीपर छोड़ चुका हूँ, फिर सोच लीजिये, अब तीसरी बार मैं जो माँगूँगा वह आपको देना होगा।' एक बार तो वे भी ठिठके, किंतु फिर भगवान् शंकरकी कृपाका ख्याल करके आश्वस्त हो गये और ब्राह्मणदेवताकी सदाशयताको देखकर बोले—महाराजजी! मुझपर अनुग्रह करनेके लिये ही सही, कुछ तो आप कहें। शर्माजी बोले—मैं ब्राह्मण हूँ और ब्राह्मणका कोई शुल्क नहीं होता, फिर भी आप सवा रुपया दे दीजिये। अधिकारी अवाक् रह गये। शर्माजीने देखा कि इन्हें संकोच हो रहा है तो बोले—आप मुझे तो सवा रुपये दे दीजिये और शेष जो आप देना चाहते हैं, उसके बदलेमें अनाथालयमें अनाज भिजवा दें, गोशालामें सामग्री भिजवा दें। यही सच्ची दक्षिणा होगी और यही भगवान् आशुतोषकी सच्ची सेवा होगी। यह सुनकर अधिकारीकी बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने वैसा ही किया जैसा शर्माजी चाहते थे।—**बलदेवराज शर्मा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

डॉ० मुखर्जीकी कर्तव्य-भावना

बात तबकी है, जब डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी बंगाल-सरकारमें वित्तमन्त्री थे। उन्होंने देखा कि अँग्रेज-सरकार भारत-छोड़ो आन्दोलनको दबानेके लिये दमननीति अपना रही है। उन्होंने तुरंत वायसराय लार्ड लिनलिथगोको पत्र लिखकर दमननीति बन्द करनेका आग्रह किया। कुछ दिन बाद मिदनापुरमें विकराल तूफान आया। अँग्रेजोंने तूफान-पीड़ितोंकी मददके कार्योंके प्रति उपेक्षा नीति अपनायी। डॉ० मुखर्जीने वायसरायसे कहा—'मैं मन्त्रिमण्डलमें बना रहूँ और देशकी जनता उत्पीड़न सहन करती रहे—यह तो घोर कर्तव्यहीनता मानी जायगी।' उन्होंने तुरंत मन्त्रिमण्डलसे त्यागपत्र दे दिया।

एक दिन वायसराय लार्ड लिनलिथगो बंगालके दुर्भिक्षग्रस्त इलाकेका दौरा कर रहे थे। उन्होंने देखा एक गाँवमें डॉ० मुखर्जी अपने युवा साथियोंके साथ दुर्भिक्ष-पीड़ितोंको अपने हाथोंसे भोजन बाँट रहे हैं, बीमार व्यक्तियोंको अस्पताल भिजवा रहे हैं—वे हतप्रभ रह गये। उन्होंने अपने साथ खड़े आला अँग्रेज अधिकारीसे कहा—'आज पता लगा कि डॉ० मुखर्जीने मन्त्रिमण्डलसे त्यागपत्र क्यों दिया। वास्तवमें कोई भी सच्चा जनसेवक अपने देशके संकटग्रस्त लोगोंको भाग्यपर छोड़कर उनसे दूर नहीं रह सकता।'

डॉ० मुखर्जीने दिन-रात एक करके सेवा एवं सहायतामें जुटकर हजारों व्यक्तियोंके प्राण बचानेमें सफलता प्राप्त की।

(२)

वृद्धकी सेवाका अनूठा उदाहरण

पुरीके सुविख्यात सन्त श्रीरामरमणदासबाबा बचपनसे ही परोपकारी एवं सेवाभावी थे। उनके बचपनका नाम राइचरण था।

उनकी माँ कनकसुन्दरी भगवान् जगन्नाथजीकी परम आराधक थीं। वे पुत्रको बताया करती थीं कि जो व्यक्ति दूसरेके दुःखमें सहायता करता है, भगवान् जगन्नाथजी उसपर सहजमें ही कृपा करते हैं। कनकसुन्दरी स्वयं प्रतिदिन कम-से-कम दो गरीबोंको भोजन करानेके बाद भोजन ग्रहण करती थीं।

एक दिन राइचरण जगन्नाथ-मन्दिरके दर्शनकर लौट रहे थे। उन्होंने देखा कि भीषण गर्मीके कारण एक वृद्ध व्यक्ति अचानक चक्कर आ जानेसे जमीनपर गिर पड़ा। वे उसके पास पहुँचे। पंखेसे हवा की, पानी पिलाया तथा उसके पास पड़ी गठरीको अपने सिरपर रखकर साथ-साथ चल दिये। वृद्धने कहा—'महाराज, आप ब्राह्मण हैं—यह क्या कर रहे हैं?'

राइचरण बोले—जगन्नाथजीकी नगरीमें जातिसे कोई बड़ा या छोटा नहीं होता। आप मुझसे आयुमें वृद्ध हैं—आपकी सेवा मेरा कर्तव्य है। माँ कनकसुन्दरी अचानक वहाँ आ गयीं। उन्होंने पुत्रको सिरपर गठरी उठाये तथा वृद्धकी सेवा करते देखा तो बोलीं—'बेटा! तूने एक वृद्धजनकी सेवा की है, उसकी गठरी उठाई है, अब भगवान् जगन्नाथ तेरे जीवनकी नैया पार करेंगे।'

आगे चलकर राइचरणका नाम सन्त रामरमणदास बाबा हुआ तथा वे उड़ीसाके अग्रणी सन्तोंमें माने गये।

(३)

आदर्श हकीम

डेरागाजीखानमें रायसाहब रघुनाथदास हकीम अपने युवा पुत्र श्यामदासके साथ रोगियोंकी चिकित्सा किया करते थे। पूरा परिवार चैतन्यमहाप्रभुका अनन्य भक्त था, भगवान् श्रीकृष्णका परम उपासक था।

भारत-विभाजनके परिणामस्वरूप उन्हें परिवारसहित डेरागाजीखानसे पलायन करना पड़ा और वे अपने इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि वृन्दावन आकर रहने लगे।

श्रीश्यामदास हकीमजीने साधनाके साथ-साथ जीविकोपार्जन एवं सेवाके उद्देश्यसे रोगियोंकी चिकित्साका काम शुरू किया। एक दूकानमें औषधालय खोला। उन्होंने संकल्प लिया कि अपने इष्टदेव श्रीकृष्णकी लीलाभूमिके गरीबोंकी चिकित्सा निःशुल्क करेंगे।

दीपावलीका पर्व आया। परिवारके लोगोंने कहा—'नया-नया औषधालय स्थापित किया है। औषधालयमें दीपावलीके उपलक्ष्यमें लक्ष्मीपूजन किया जाना चाहिये।'

श्यामदासजीने उत्तर दिया—'लक्ष्मीपूजन ज्यादा-से-ज्यादा आर्थिक लाभकी आकांक्षाके लिये किया जाता है। क्या मैं पूजनके समय यह कामना करूँ कि ज्यादा-से-ज्यादा लोग बीमार होकर यहाँ आयें। मैं ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकता।'

वे दवाओंकी लागतमात्र लेकर रोगियोंकी सेवा करते रहे। आगे चलकर जीवनपर्यन्त वे भक्ति-साधना तथा साहित्यके सृजनमें लगे रहे।—**श्रीशिवकुमारजी गोयल**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Dear Contributors,

The annual number of **Kalyana-Kalpataru** on **'Life after Death'** published last year has been very well taken and much appreciated by our valuable readers. This is the outcome of Divine Grace and sincere efforts of our respected contributors. We propose to publish the annual number on **Sādhanā** this year in October 2011 as **Kalyana-Kalpataru** is the journal of seekers and *Sādhakas*.

The goal of human life is self-realization which may be expressed in different words and can be achieved through different methods. The proposed special issue of the **Kalyana-Kalpataru** is expected to focus on different dimensions of spiritual practices which have been followed from time immemorial and are being practised even today by seekers of truth and enlightenment all over the world.

A tentative list of suggested topics is given below. The contributors may choose any topic from the list or may select any related issue for their write up. The write up should be concise and expression simple and lucid. The write up may please be sent to reach us latest by **May, 2011**.

Sādhanā Number

1. What is spirituality?
2. Spirituality—life goal or means to achieve it?
3. Spirituality a source of joy, love and peace.
4. Essential characteristics of spiritual behaviour—
   1. Humility 2. Simplicity 3. Sincerity 4. Generosity 5. Detachment 6. Devotion 7. Tolerance 8. Truth 9. Non-violence 10. Selflessness 11. Sweet and helpful tongue 12. Moral courage 13. Broad mindedness 14. Sympathy 15. Chastity
5. Religion and spirituality followed by—
   1. Hindu 2. Jain 3. Muslim 4. Buddhist 5. Christian 6. Sikh 7. Parsi
6. Spiritual behaviour in a householder's life
7. Five sacrifices for a householder
8. Spiritual education
9. Niṣkāma Karma—desireless action and spirituality
10. Spiritual practices—
    1. Meditation 2. Japa-Pūjā 3. Upāsanā 4. Kīrtana 5. Tīrthayātrā 6. Prayers 7. Sufi practices
11. Devotion and love to God
12. Nine devotional practices—
    1. According to Bhāgavata
    2. According to Rāmāyaṇa
13. Surrender to God
14. Importance of a true guide (Satguru) in spiritual practice
15. Cleanliness and inner hygiene in spiritual life
16. Yoga and Spirituality
17. Vision of God in everything
18. Self-realization
19. Salvation through honesty in trade
20. Illustrations of honest traders
21. Service to humanity
22. Contemplation on the formless
23. Hinderances in spiritual practices
24. Renunciation
25. Faith
26. Self control
27. Discrimination
28. Austerity of mind, speech and body
29. Obedience to great souls
30. Equanimity
31. Fearlessness
32. Feeling of brotherhood
33. Brief account of great spiritual personalities—
    1. Ṛṣis 2. Saints 3. Devotees

Central Library Gurukul Kangri University Hardwar

—Editor, Kalyana-Kalpataru, Gita Press, P. O. Gita Press—273005, Gorakhpur (U.P.) India

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-२-२०११

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

'कल्याण' की सूचना

'कल्याण' सन् २०११ ई० के मार्च मासका अङ्क आपके हाथमें है। जिन ग्राहकोंका शुल्क समयसे यहाँ प्राप्त हो गया था, उन्हें इस वर्षका विशेषाङ्क **'दानमहिमा-अङ्क'** रजिस्ट्रीसे तथा शेष सभी वार्षिक ग्राहकोंको वी०पी०पी० से भेज दिया गया है। यदि अभीतक विशेषाङ्क प्राप्त नहीं हुआ हो तो डाकघरसे पता लगाकर रकम आदि भेजनेके विवरणसहित पूरा नाम एवं सही पता जाँच-हेतु शीघ्र भेजना चाहिये। फरवरी मासका अङ्क भी ग्राहकोंको फरवरीके अन्तिम सप्ताहमें भेज दिया गया है।

जिन ग्राहक महोदयको शुल्क भेजनेके बाद भी यहाँपर समयसे प्राप्त न होने या रकमका समायोजन न हो पानेके कारण विशेषाङ्क वी०पी०पी०से प्रेषित हो गया है और उन्होंने सहृदयतावश वी०पी०पी० छुड़ा ली है, उनकी प्राप्त रकम आगामी वर्ष-हेतु सुरक्षित जमा कर ली जायेगी। यदि उक्त वी०पी०पी०से कोई नया ग्राहक बना दिया गया है तो उनका पूरा पता एवं वी०पी०पी० आदिके विवरणसहित सूचित करना चाहिये, जिससे शेष अङ्क नये ग्राहकके पतेपर भेजा जा सके तथा आपको पुन: विशेषाङ्क आदि प्रेषित किया जा सके।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

पाठकोंसे एक निवेदन

☞ चालू वर्षके 'कल्याण' के मनीआर्डर एवं पत्र आदि भेजनेके लिये **'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस**—273005, **गोरखपुर (उ० प्र०)**, ✆ (0551) 2334721 / 2333030 Ext.237, 238 पर सम्पर्क करें।

☞ 'कल्याण' के गतवर्षोंके पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क एवं गीताप्रेस-प्रकाशनोंके लिये पत्र, ड्राफ्ट, मनीआर्डर आदि **पुस्तक-प्रचार-विभाग, पो० गीताप्रेस**—273005, **गोरखपुर (उ० प्र०)**, ✆ (0551) 2331250, फैक्स 2336997 पर सम्पर्क करें।

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१- प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,

२- प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,

३- मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये),
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

४- सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

५- उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं। केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी वैशाख कृष्णपक्ष तृतीया (२० अप्रैल)-से सत्संगका आयोजन किया गया है।** इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। **गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्नपाठका कार्यक्रम रहता है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको यहाँ पधारकर अवश्य उठाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको जहाँतक सम्भव हो नहीं लाना चाहिये।

व्यवस्थापक—गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम—२४९३०४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य ७ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलकण्ठ महादेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—अहंकार ही सारे अनर्थोंका मूल है, अहंकारसे ही ममता तथा राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। 'मैं' है तो 'मेरा' है; 'मेरा' है तो मेरा सुरक्षित रहे और बढ़े। जो मेरा है, उसमें राग हो जाता है और जो मेरा नहीं, उसमें द्वेष। राग-द्वेष ही काम-क्रोध-लोभ-मोहकी उत्पत्तिमें प्रधान हेतु हैं।

इस अहंकारके कारण ही बुद्धिमान्—वाणीसे आत्माका तत्त्व निरूपित करनेवाले बुद्धिमान् भी मूर्ख हो जाते हैं और अपने-अपने मतवादके लिये लड़ने-झगड़ने लगते हैं। इस अहंकारजनित अज्ञानके कारण ही स्थूल शरीरकी पूजा और नामकी प्रशंसा चाहते हैं। 'लोग मेरा चित्र या मूर्ति रखकर पूजा-सम्मान करें, मेरा नाम इतिहासमें अमर रहे'—ऐसी आकांक्षा आत्मामें नहीं होती। ये सारी अज्ञानकी क्रियाएँ होती हैं अहंकारके कारण ही। बुद्धिमान् मनुष्य भी अपनी प्रशंसात्मक जीवनी लिखना-लिखाना चाहता है; बुद्धिमान् मनुष्य भी गुण-प्रशंसाके हेतुभूत अभिनन्दनादि स्वीकार करता है; बुद्धिमान् मनुष्य भी लोकोपकारके नामपर अपने भावोंका प्रचार करता है और बुद्धिमान् मनुष्य भी धन कमाकर उसके द्वारा परोपकारके बहाने नाम-आरामकी आकांक्षा करता है। ये यथार्थ बुद्धिके लक्षण नहीं हैं। तमसाच्छन्न विपरीतदर्शी बुद्धिका ही यह स्वरूप है। इस बुद्धिवाला मनुष्य वास्तवमें बुद्धिमान् नहीं है। आत्मदर्शनकी दृष्टिसे यह वास्तवमें मूर्खता ही है। यह सब अहंकारका ही अवश्यम्भावी दुष्परिणाम है।

याद रखो—इस अहंकारका दमन हुए बिना कभी न तो त्याग होगा, न शक्ति मिलेगी और न मूर्खता ही मिटेगी। अहंकारके नाशके लिये खास तीन उपाय हैं—

१-अपने तथा जगत्‌के स्वरूपपर विचार करके अपनी दीनता, असमर्थता और असहायताका परिचय प्राप्त करना, उसे स्वीकार करना और सर्वशक्तिमान्, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ तथा अहैतुक सुहृद् भगवान्‌के शरणापन्न होकर उनसे नित्य संयोग कर लेना। अपना सच्चा दैन्य ही अहंकारका नाश करनेमें समर्थ है और इसी दैन्यसे समर्थ भगवान्‌की प्रपत्ति प्राप्त होती है।

२-विवेक-विचारपूर्वक शरीर तथा नाममेंसे अहंकारको निकालकर सबके द्रष्टा आत्मामें उसे स्थिर करना या समझना कि मैं शरीर नहीं हूँ, नाम नहीं हूँ—इन सबकी सारी क्रियाओंको हर समय जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिमें देखनेवाला निरपेक्ष द्रष्टा हूँ। शरीर और नामके हानि-लाभसे मेरा कोई हानि-लाभ नहीं होता और वस्तुतः यह द्रष्टा भी एक कल्पना ही है; वास्तवमें एक परमात्मसत्ताके अतिरिक्त और कुछ भी न है, न होता है। वही सर्वत्र व्याप रहा है।

३-भगवान् ही अपने-आप अपने ही खेलके लिये अपने ही संकल्पसे सृष्टिके समस्त कार्योंके रूपमें अभिव्यक्त हैं। वे आप ही नित्य अपने-आप अपनेमें लीला कर रहे हैं। सृजन-संहार, उत्पत्ति-प्रलय सभी उन लीलामयकी लीला है। यहाँ दो ही वस्तुएँ हैं—लीलामय और उनकी लीलाएँ। फिर लीलामय और लीलामें भी अभेद है; क्योंकि लीलामय ही लीला बने हुए हैं; व्यक्ति तो उनकी लीलाका, उन्हींका अपनेसे ही बनाया हुआ एक खिलौना है। वास्तवमें वे ही वे हैं—**'एकमेवाद्वितीयम्।'**

इन तीनोंमेंसे किसी एकको अपनाकर अहंकारका नाश करनेका प्रयत्न करना चाहिये। अहंकार ही बन्धन है, अहंकारका नाश ही मुक्ति है। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यकी शरणसे मुक्ति

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

सत्—यह शब्द व्यापक है। असलमें तो 'सत्' शब्दपर विचार करनेसे यही सूझता है कि यह परमात्माका ही स्वरूप है—उन्हींका नाम है। जो पुरुष सत्के तत्त्वको जानता है, वह परमात्माको जानता है। जो सत् है; वही नित्य है—अमृत है। इसके तत्त्वका ज्ञाता मृत्युको जीत लेता है। शोक और मोहको लाँघकर निर्भय होकर नित्य परमधामको जा पहुँचता है। वह सदाके लिये अभय अमृतपदको प्राप्त कर लेता है। उसीको लोग संसारमें जीवन्मुक्त, ज्ञानी, महात्मा आदि नामोंसे पुकारते हैं। उसकी सबमें समबुद्धि हो जाती है; क्योंकि परमात्मा सबमें सम है और वह सत्में स्थित है, इसलिये उसमें विषमताका दोष नहीं रह सकता। वह कभी असत्य नहीं बोलता। उसके मन, वाणी और शरीरसे होनेवाले सभी कर्म सत्य होते हैं। उसकी कोई भी क्रिया असत्य न होनेसे उसके द्वारा किया हुआ प्रत्येक आचरण सत्य समझा जाता है। वह जो आचरण करता या बतलाता है, वही लोकमें प्रामाणिक माना जाता है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३।२१)

ऐसे पुरुषका अन्तःकरण, शरीर और उसकी इन्द्रियाँ सत्यसे पूर्ण हो जाती हैं। उसके आहार-व्यवहार और क्रियाओंमें सत्य साक्षात् मूर्ति धारण करके विराजता है। ऐसे नर-रत्नोंका जन्म संसारमें धन्य है; अतः हमलोगोंको यह तथ्य समझकर सत्यकी शरण लेनी चाहिये अर्थात् उसे दृढ़तापूर्वक भलीभाँति धारण करना चाहिये।

सत्य-भाषण

कपट, शब्द-चातुरी और कूटनीतिको छोड़कर (हिंसारहित) सरलताके साथ जैसा देखा, सुना और समझा हो, उसे वैसा-का-वैसा—न कम, न ज्यादा—कह देना सत्य-भाषण है। सत्य-भाषणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको निम्नलिखित बातोंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये—

(१) न कभी स्वयं झूठ बोलना चाहिये और न किसीको प्रेरित करके बुलवाना चाहिये। दूसरेको प्रेरित करके अथवा उसपर दबाव डालकर जो उससे झूठ बुलवाता है, वह स्वयं झूठ बोलनेकी अपेक्षा गुरुतर मिथ्या-भाषण करता है; क्योंकि इससे झूठका प्रचार अधिक होता है। किसी झूठ बोलनेवालेसे सहमत भी नहीं होना चाहिये। उस समय मौन साधे रहना भी एक प्रकारसे झूठ ही समझा जाता है। तात्पर्य यह कि कृत, कारित और अनुमोदित—इनमेंसे किसी प्रकारका मिथ्या-भाषण नहीं होना चाहिये।

(२) जहाँतक बन पड़े किसीकी निन्दा-स्तुति नहीं करनी चाहिये। निन्दा-स्तुति करनेवाला व्यक्ति स्वार्थ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय एवं उद्वेग आदिके वशीभूत होकर जोशमें आकर कम या अधिक निन्दा-स्तुति करने लग जाता है। इनमें निन्दा करना तो सर्वथा ही अनुचित है। विशेष योग्यता प्राप्त होनेपर यदि कहीं स्तुति करनी पड़े तो वहाँ भी बड़ी सावधानीके साथ काम लेना चाहिये; क्योंकि जो अधिक स्तुतिके योग्य हो और उसकी कम स्तुति की जाय तो अर्थान्तरसे वह स्तुति निन्दाके तुल्य ही हो जाती है तथा जो कम स्तुतिके योग्य हो, उसकी अधिक स्तुति हो जाय तो उससे जनतामें भ्रम फैलकर लाभके बदले हानि होनेकी सम्भावना है। इस प्रकारकी झूठी स्तुतिसे स्वयं अपनी और जिसकी स्तुति की जाय उसकी, लाभके बदले हानि ही होती है, परंतु किसी बातका निर्णय करनेके लिये राज्यमें या पंचायतमें जो यथार्थ बात कही जाय तो उसका नाम निन्दा-स्तुति नहीं है। उसमें यदि किसीकी निन्दा-स्तुतिके वाक्य कहने पड़ें तो भी उसे वास्तवमें वक्ताकी नीयतके शुद्ध होनेसे उसे निन्दा-स्तुतिमें परिगणित नहीं करना चाहिये।

कोई व्यक्ति यदि अपने दोष जाननेके लिये पूछनेका आग्रह करे तो प्रेमपूर्वक शान्तिसे उसे उसका यथार्थ दोष बतला देना भी निन्दा नहीं है।

(३) यथासाध्य भविष्यकी क्रियाओंका प्रयोग नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिये। ऐसी क्रियाओंका प्रयोग विशेष करनेसे उनका सर्वथा पालन होना कठिन है; अतः उनके मिथ्या होनेकी सम्भावना पद-पदपर बनी रहती है; जैसे किसीको कह दिया कि 'मैं कल निश्चय ही आपसे मिलूँगा', किंतु यदि किसी कारणवश वहाँ जाना न हो सका तो उसकी प्रतिज्ञा झूठी समझी जाती है। अतः ऐसे अवसरोंपर यही कहना उचित है कि 'आपके घरपर कल मेरा आनेका विचार है या प्रयत्न करूँगा।'

(४) किसीको शाप या वर नहीं देना चाहिये। इससे तपकी हानि होती है। शाप देनेसे तो पापका भागी भी होना सम्भव है। इस प्रकारके बुरे अभ्याससे स्वभावके बिगड़ जानेपर सत्यकी हानि और आत्माका पतन होता है।

(५) किसीके साथ हँसी-मजाक नहीं करना चाहिये। इसमें बहुधा विनोद-बुद्धिसे असत्य शब्दोंका प्रयोग हो ही जाया करता है। जिसकी हम हँसी उड़ाते हैं, वह बात उसके मनके प्रतिकूल पड़ जानेपर उसके चित्तपर आघात पहुँच सकता है, जिससे हिंसा आदि दोषोंके आ जानेकी भी आशंका है।

(६) व्यंग्य और कटाक्षके वचन भी नहीं बोलने चाहिये। इनमें भी झूठ-कपट और हिंसादि दोष आ सकते हैं।

(७) शब्द-चातुरीके वचनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। जैसे—शब्दोंसे तो कोई बात सत्य है, परंतु उसका आन्तरिक अभिप्राय विपरीत है। राजा युधिष्ठिरने अपने गुरुपुत्र अश्वत्थामाकी मृत्युके सम्बन्धमें अश्वत्थामा नामक हाथीका आश्रय लेकर शब्दचातुर्यका प्रयोग किया था। वह मिथ्या भाषण ही समझा गया। ऐसा असत्य 'अनृत' कहा जाता है और वह असत्यसे बढ़कर पापजनक होता है।

(८) मितभाषी बनना अर्थात् गम्भीरताके साथ विचारकर यथासाध्य बहुत कम बोलना चाहिये; क्योंकि अधिक शब्दोंका प्रयोग करनेसे विशेष विचारके लिये समय न मिलनेके कारण भूलसे असत्य शब्दका प्रयोग हो सकता है।

सत्यके पालन करनेवाले मनुष्यको काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, द्वेष, ईर्ष्या और स्नेहादि दोषोंसे बचकर बोलनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जिस समय सत्यकी प्रतिष्ठा हो जाती है, उस समय उपर्युक्त दोष प्रायः नष्ट हो जाते हैं। जब कि इनमेंसे किसी एक दोषके कारण भी मनुष्य सत्यसे विचलित हो जाता है तो फिर अधिक दोषोंके वशमें होकर असत्य-भाषण करे तो आश्चर्य ही क्या है?

सत्य बोलनेवाले पुरुषको हिंसा और कपटसे अधिक सावधानी रखनी चाहिये। जिस सत्य-भाषणसे किसीकी हिंसा होती है, वह सत्य वस्तुतः नहीं है। इसके सम्बन्धमें महाभारत-कर्णपर्वके दसवें अध्यायमें कौशिक ब्राह्मणकी कथा प्रसिद्ध है। ऐसे अवसरपर सत्य-भाषणकी अपेक्षा मौन रहना अथवा न बतलाना ही सत्य है। हाँ, अपनी या दूसरेकी प्राण-रक्षाके लिये झूठ बोलना पड़े तो यह सत्य तो नहीं समझा जाता, परंतु उसमें पाप भी नहीं माना गया है।

जिस सत्यमें कपट होता है, वह सत्य, सत्य नहीं समझा जाता। सत्य बोलनेवाला मनुष्य जान-बूझकर सत्यका जितना अंश शब्दोंसे या भावसे छिपाता है, वह उतने अंशकी चोरी करता है। हिंसा और कपट—ये दोनों ही सत्यमें कलंक लगानेवाले हैं। इसलिये जिस सत्यमें हिंसा और कपटका थोड़ा भी अंश रहता है, वह सत्य शब्दोंसे सत्य होनेपर भी झूठ ही समझा जाता है।

जो विषयी और पामर पुरुष हैं, वे तो बिना ही कारण प्रमादवश झूठ बोल दिया करते हैं; क्योंकि सत्य-भाषणके रहस्य और महत्त्वसे सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं। फलतः उनका पतन होना भी स्वाभाविक ही है, परंतु जो विचारशील पुरुष हैं, वे सत्यको उत्तम समझकर उसके पालनकी इच्छा तो रखते हैं, किंतु उनसे भी सर्वथा सत्यका पालन होना कठिन है। अनन्त जन्मोंसे मिथ्याभाषणका अभ्यास होनेके कारण उनके लिये भी सत्यकी सिद्धि दुष्कर है। पर विवेक-बुद्धिके द्वारा स्वार्थको छोड़कर जो सत्यके पालनकी विशेष चेष्टा करते हैं, उनके लिये इसका पालन होना—इसकी प्रतिष्ठा होना सम्भव है—असाध्य नहीं। जो सत्यका अच्छी तरह अभ्यास कर लेता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अर्थात् जिसकी सत्यमें सर्वांग प्रतिष्ठा हो जाती है, उसकी वाणी सत्य हो जाती है अर्थात् वह जो कुछ कहता है, वह सत्य हो जाता है। महर्षि पतंजलि भी (योगसूत्र २।३६ में) कहते हैं—

'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।'

सत्यकी दृढ़ स्थिति हो जानेपर क्रियाफलके आश्रयका भाव आ जाता है।

अगस्त्यके वचनोंसे नहुषका पतन हो जाना आदि अनेक कथाएँ शास्त्रोंमें प्रसिद्ध ही हैं।

सत्य बोलनेवाला पुरुष निर्भय हो जाता है। जबतक भय रहता है, तबतक यथार्थभाषण नहीं होता—भयके कारण कहीं-न-कहीं मिथ्याभाषण हो ही जाता है। जो सर्वथा सत्यको जीत लेता है, वही क्षमाशील होता है, वही क्रोधके वशीभूत नहीं होता। क्रोधी मनुष्य सत्यके पालनमें सर्वथा असमर्थ रहता है। क्रोधोन्मादमें वह क्या-क्या प्रलाप नहीं कर बैठता!

सत्य-पालनके प्रभावसे मनुष्यमें निरभिमानिता आ जाती है। मान और प्रतिष्ठाकी जहाँ इच्छा होती है, वहाँ दम्भ और कपटको आश्रय मिल जाता है। और बस, जहाँ इन्होंने प्रवेश किया, वहाँसे सत्य तत्काल कूच कर जाता है। निःसन्देह कपटी और दम्भीका सत्यसे पतन हो जाना अनिवार्य है।

जब सर्वथा सत्यकी प्रतिष्ठा हो जाती है तो उस सत्यवादीमें किसी प्रकारकी इच्छा या कामना नहीं रहती। भोगोंकी इच्छावाला मनुष्य भला क्या-क्या अनर्थ नहीं कर बैठता; क्योंकि काम ही पापोंका मूल है। इसीलिये कामके वशीभूत हुआ कामी पुरुष झूठ, कपट, छल आदि दोषोंकी खान बन जाता है। अतएव सत्यके सम्यक् पालनसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अहंकार आदि दोषोंका नाश हो जाता है और वह मनुष्य एक सत्यके ही पालनसे दया, शान्ति, क्षमा, समता, निर्भयता आदि सम्पूर्ण गुणोंका भण्डार बन जाता है। अतः मनुष्यको सत्य-भाषणपर कटिबद्ध होकर विशेषरूपसे प्रयत्न करना चाहिये। **'सत्यमूल सब सुकृत सोहाये।'** [क्रमशः]

धन या धर्म

मनुष्यके जीवनमें धन मुख्य नहीं, धर्म मुख्य है। धन धर्मकी मर्यादामें रहकर मिलना चाहिये। धनकी अपेक्षा धर्म श्रेष्ठ है। मनुष्य-जीवनमें धनकी आवश्यकता है, परंतु धन भौतिक सुख देता है, जबकि धर्म मनकी शान्ति देता है। धन तो अनेक बार दुःख भी देता है। मनुष्यको धन प्राप्त करनेमें, उसको बढ़ानेमें, उसका रक्षण करनेमें तथा उसका उपयोग करनेमें भी पग-पगपर परिश्रम, त्रास तथा चिन्ता होती है। धनका नाश होनेपर मनुष्य बहुत दुःखी हो जाता है। धन हो तो दुःख है, न हो तो दुःख है; जबकि धर्म तो इस जीवनको सुधारता है। धर्म इस लोकमें शान्ति देता है और अन्तमें परमात्माके चरणोंमें ले जाता है। धर्म ही मनुष्यका सच्चा धन है—उत्तम धन है। धर्म ही उसका सच्चा मित्र है, सच्चा बन्धु है। मरनेके बाद धन साथ नहीं जाता, धर्म ही साथ जाता है। कोई भी साथ न दे, सब साथ छोड़ दें तब भी धर्म साथ देता है। यह मृत्युके पश्चात् भी साथ रहता है।

अपने बालकोंको धनका उत्तराधिकारी न बना सकें तो कोई बात नहीं, समस्त संस्कारोंका अधिकारी बनाना है। सम्पत्तिसे कदाचित् थोड़ा सुख मिल सके, परंतु संस्कारोंसे बहुत शान्ति मिलती है। अच्छे संस्कारोंसे जो सुख मिलता है, वह सम्पत्तिसे नहीं मिलता। 'पैसेसे ही सुख मिलता है'—ऐसा मनुष्य जबसे समझने लगा है, तबसे पाप बढ़ गया और जीवनमेंसे शान्ति चली गयी है। पैसेको मुख्य माननेसे सदाचार गया, संस्कार गया, सच्चा सुख गया, मित्रता गयी, आपसका प्यार गया। पैसा जो सुख देता है, उससे अधिक सुख संयमसे, सच्चाईसे और सदाचारसे मिलता है। पैसेसे थोड़ा सुख मिलता है—यह बात कदाचित् सच्ची हो सकती है, परंतु पैसेसे शान्ति नहीं मिलती—यह भी पूर्णतः सत्य ही है। मनुष्य 'धर्म' की मर्यादा तोड़ता है, उससे दुःखी होता है। परमात्मा हमको अधिक सुख देता है तो हमें धर्मकी मर्यादाका अधिक-से-अधिक पालन करना चाहिये। इसीमें जय है। इसीमें सच्ची सुख-शान्ति है। [श्रीरोशनलालजी गोयल]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्यपालनकी आवश्यकता

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

ब्रह्मतत्त्वका निरूपण परम कल्याणकारक है, किंतु परिस्थितिका सामना करना भी आवश्यक हो जाता है। अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा भी परिस्थितिके अनुसार अपने निर्गुण, निराकार, अलक्ष्य, अग्राह्य, अचिन्त्य अव्यपदेश्यरूपसे सगुण साकाररूपमें अवतरित होकर जगत्का कल्याण करते हैं। जब सर्वानर्थोंके मूलभूत अधर्मकी निवृत्ति, परमकल्याणमूल धर्मका संस्थापन, प्राणियोंमें सद्भावना एवं विश्वकल्याणके लिये ही भगवान् नानाविध अवतार धारण करते हैं, तब भगवद्भक्तोंका भी यह परम कर्तव्य है कि अपने परमाराध्य भगवान्का अनुसरण करें। जिस देशमें, जिस जातिमें जन्म हो, उसके प्रति भी जीवका कुछ कर्तव्य होता है। खाना, पीना, सोना, रोना, संतान उत्पन्न करना तो पशु भी जानता है, पर मानव-जीवन केवल इतने ही भरके लिये नहीं है, उसका जन्म तो धर्मकी जय, अधर्मकी निवृत्ति एवं भगवत्प्राप्तिके लिये होता है। जो अपने वर्णाश्रमानुसार कर्तव्य कर्मका परित्यागकर केवल रामनाम रटा करता है, वह वस्तुतः भगवान्का प्रेमी नहीं, किंतु भगवान्का द्वेषी है; क्योंकि भगवान्का जन्म ही '**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥**'—इस उक्तिके अनुसार अधर्मकी निवृत्ति, धर्मका संस्थापन, सज्जनोंका परित्राण एवं असुरोंके आसुरी भावका विनाश करनेके लिये ही होता है। कहा भी है—'**अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः। ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥**' भला भगवान्का अवतार ही जिस अपने परमप्रिय सनातन वैदिक धर्मके संस्थापनके लिये होता है, उस धर्मकी रक्षाके कार्यमें जो हाथ न बटाये, तो वह फिर भगवान्का भक्त कैसे कहला सकता है? कल्पना कीजिये कि किसीको अपने मित्रका पत्र मिलता है कि 'मैं कल दो बजेकी गाड़ीसे आऊँगा, स्टेशनपर किसीको सुविधाके लिये भेज देना।' यदि इस पत्रको पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कि 'मेरे मित्रका पत्र आया-मेरे मित्रका पत्र आया', की रट लगाकर नाचने लगे, पत्रको सोनेकी चौकीपर रखकर उसकी गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजा करे, बाजे बजवाये और उत्सव मनाये, किंतु दो बजे मित्रको लेनेके लिये स्टेशनपर जाना है अथवा किसीको भेजना है—इस बातको भूल जाय और मित्र ठीक समयपर आकर किसी प्रकारकी सुविधाको न पाकर परेशान भटकता हुआ उसके यहाँ पहुँचे और उसके ताण्डव नृत्यसहित उत्सवको देखे, तो क्या ऐसे मित्रको कोई अपना प्रेमी या भक्त कहेगा? ठीक इसी प्रकार हमें मंगलमय भगवान्का संकीर्तन तो करना ही चाहिये, किंतु वेदशास्त्रस्वरूप भगवदाज्ञाओंका पालन भी अवश्य करना चाहिये। देशकी रक्षाके लिये, धर्मकी रक्षाके लिये, सभ्यता एवं संस्कृतिकी रक्षाके लिये मर-मिटनेमें तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ ही नहीं, अपितु संन्यासीका भी यह परम कर्तव्य है कि वह अपने देश, धर्म, जाति तथा सभ्यता, संस्कृतिकी रक्षाके लिये सब उचित प्रयत्न करे। 'स्कन्दपुराण' का वाक्य है कि अत्यन्त प्रयत्न करके भी इस वैदिक मार्गका संस्थापन करो। इसके सुस्थिर हो जानेपर ही आधि, व्याधि, शोक-संताप मिटेगा, दीनता, दरिद्रता, परतन्त्रता भी मिटेगी और सुख, समृद्धि, शान्ति, स्वाराज्य, वैराज्य, साम्राज्य एवं अनन्त धन-धान्यकी प्राप्ति होगी—'**स्थापयध्वमिमं मार्गं प्रयत्नेनापि भो द्विजाः। स्थापिते वैदिके मार्गे सकलं सुस्थिरं भवेत्।**' विपत्तियोंका कोई आवाहन नहीं करता, कोई दुःख, द्ररिद्रता, दीनता, हीनताको बुलाना नहीं चाहता, परंतु जब उनके कारण (अधर्म)-को पैदा किया जाता है, तब फलरूप सारी विपत्तियाँ भी भोगनी ही पड़ेंगी। इसी तरह जब धर्मानुष्ठानपर आरूढ़ होंगे, तब जैसे बरसाती नदियाँ तीव्र वेग एवं विशेष जलराशिके साथ समुद्रकी ओर स्वेच्छापूर्वक बढ़ती हैं, उसी तरह सारी सुख-सम्पत्ति धर्मानुष्ठान करनेवालोंके पास अवश्यमेव आयेगी—

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

(रा०च०मा० १।२९४।२-३)

'**यश्च स्थापयितुं शक्तो नैव कुर्याद्विमोहितः। तस्य हन्ता न पापीयानिति वेदान्तनिर्णयः॥**' अर्थात् जो इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक धर्ममार्गकी स्थापनामें समर्थ होता हुआ भी प्रयत्न नहीं करता, उसके मारनेमें कोई पाप नहीं होता, यह वेदका निर्णीत सिद्धान्त है। वैसे तो यह अर्थवाद ही है, किंतु अर्थवाद भी गुणवाद, अनुवाद नहीं, भूतार्थवाद है। यह सर्वथा ठीक है कि अपने समक्ष माता-पिता, गुरुजनोंकी हत्या, उनका अपमान, अत्याचारियोंद्वारा उनके ऊपर अत्याचार, व्यभिचारियोंद्वारा माँ, बहन, बेटीका व्यभिचार देखकर भी क्षमा और दयाकी डींग-हाँकना केवल कायरता, कृपणता है। धर्मके अनुकूल क्षमा और दया पुण्य है, पर धर्मके प्रतिकूल वह पाप है। वैसे तो मृत्युसे बढ़कर कोई कष्ट तथा स्वर्गके राज्यसे बढ़कर कोई सुख नहीं, किंतु अर्जुन सबसे बड़े सुख—त्रैलोक्यराज्यका परित्याग तथा सबसे बड़े दुःख—मृत्युको दयापरवश होकर सहन करनेके लिये तैयार था—'**यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः। धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥**' यदि धृतराष्ट्रके पुत्र शस्त्र हाथमें लेकर मुझ अशस्त्रको युद्धमें मार दें, तो इसमें मेरा अधिक कल्याण है। '**अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते॥**' परंतु भगवान्ने इसे पाप ही बतलाते हुए कहा—अर्जुन! तुमको इस विषमकालमें यह अस्वर्ग्य, अनार्यसेवित, अकीर्तिकारक पाप कहाँसे प्राप्त हुआ? '**कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्। अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥**' केवल भगवान्ने ही नहीं कहा, अर्जुनने भी कार्पण्यदोष स्वीकार किया—'**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥**' कृपणताका अर्थ कई आचार्योंने कई प्रकारसे किया है। किसी आचार्यका कहना है कि जो थोड़ा-सा भी व्यय सहन नहीं कर सकता, वह कृपण है—'**यः स्वल्पामपि स्वात्मनो वित्तक्षतिं न क्षमते स कृपणः।**' अहर्निश आजतक लाखों शरीर अन्याय, अत्याचार, दुराचार, दुर्विचार, पापाचार, व्यभिचारमें खत्म हुए होंगे, किंतु एक शरीरको जब सदाचार, सद्विचार, सद्धर्म, सत्कर्म, सत्संगमें लगानेके लिये कहा जाय, तो उत्तर देते हैं कि अजी, मरनेकी भी फुर्सत नहीं, यह उनका थोड़ा-सा उचित व्यय सहन न करना ही कृपणता है। श्रुतिने भी बतलाया है—हे गार्गि! जो इस अक्षर, अनन्त, अखण्ड, एकरस, अद्वैत परमात्माको बिना जाने हुए इस लोकसे चला जाता है, वह कृपण है—'**योध्वा गार्गि एतदक्षरमविदित्वा अस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः।**' ऐसी कृपणता अहन्ता, ममताको आगे करके हुआ करती है। यदि साधारण स्त्रियाँ यह सोचती हैं कि हमारे पति, पुत्र धर्म-देश-राष्ट्रकी रक्षाके लिये प्राणको हथेलीपर रखकर जीवनको संकटमें डालकर रणक्षेत्रमें आगे बढ़ें, इसकी अपेक्षा भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करना अच्छा है, हम कभी भी अपने पति, पुत्रको रणमें न भेजेंगी, तो अहन्ता-ममताके वशीभूत होकर इस तरह पति-पुत्रको बचाना परम अधर्म है। इसीलिये भरतपुत्र पुष्कल महाराजकी धर्मपत्नीने भगवान् रामचन्द्रके अश्वमेध यज्ञमें अश्वरक्षाके लिये जाते हुए पुष्कलसे यह कहा था कि 'पतिदेव! मैं वीरपत्नी हूँ, आप रणक्षेत्रमें प्राणोंको हथेलीपर रखकर जीवनको खतरेमें डालकर आगे बढ़ना, कभी मुझ वीरपत्नीको लजाना नहीं। कहीं मेरी देवरानी, जेठानी मेरी हँसी न करें।'

लोग कहा करते हैं—गीतामें अर्जुनके इस प्रश्नका कि 'वीरोंके मर जानेसे उनकी स्त्रियाँ दूषित हो जायँगी, वर्णसंकरी-सृष्टि हो जायगी।' भगवान्ने कुछ उत्तर नहीं दिया। कुछ तो कहते हैं-भगवान्ने इस बातको मान लिया कि कलियुगमें यह होना ही चाहिये, किंतु अर्जुन बिना उत्तर पाये कब चुप बैठ रह सकता था? वह तो भगवान्के एक कथनपर भी कि मैं एक अंशसे समस्त संसारको व्याप्त कर रहा हूँ, मेरी विभूतियोंका अन्त नहीं है, वह चुप न बैठा और कहने लगा—भगवन्! आप जो कुछ कहते हैं, सब ठीक है, ऋषि लोग भी आपको ऐसा बतलाते हैं, परंतु भगवन्! यदि सम्भव हो तो मैं आपके उस रूपको देखना चाहता हूँ—'**द्रष्टुमिच्छामि ते रूपम्।**' और अन्तमें उस रूपको देखकर ही माना। वह अर्जुन बिना उत्तर पाये, इतनी परिस्थितिको बिना सुलझाये आगे कैसे चल सकता था? भगवान्ने तो पहले ही श्लोकमें इसका उत्तर दे दिया कि 'हे अर्जुन! तू बुद्धिमान् पण्डितों-जैसी बात करता है और जिनके लिये शोक नहीं करना चाहिये, उनके लिये शोक करता है '**अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥**' तुझे अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये और यह न सोचना चाहिये कि स्त्रियाँ विधवा होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णसंकर पैदा करेंगी। एक सिपाही किसी चौराहेपर पहरा दे रहा है। वहाँसे २० कदमपर कोई भयंकर काण्ड होने लगता है। उस समय भले ही साधारण पुरुषोंकी दृष्टिमें उस चौराहेसे हटकर उस २० कदमपर होनेवाले काण्डको सुलझाना उस सिपाहीका कर्तव्य हो; परंतु बुद्धिमान् लोग इस बातको कभी स्वीकार न करेंगे। उनका तो यही कहना रहेगा कि भले ही २० कदमपर ही ऐसा हो, परंतु चौराहेपरसे उस सिपाहीको कभी हटना नहीं चाहिये। यदि वह वहाँसे चला जाता है और इतनेमें ही उस चौराहेपर मोटर, ताँगा, साइकिलकी दुर्घटना हो जाती है तो उसकी जिम्मेदारी किसपर रहेगी? बूढ़ी माँ, बूढ़े पिता, युवती स्त्री तथा छोटे-छोटे दूधमुँहे बच्चेवाला कोई हत्यारा जजके सामने आता है। भले ही साधारण लोगोंकी दृष्टिमें उसको फाँसी देना सारे कुटुम्बको नष्ट कर देना होगा, परंतु जजका यही कर्तव्य है कि वह और किसी भी परिस्थितिका धन या धर्म विचार न करते हुए उसको उचित दण्ड दे। सारांश यह कि सबको अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये।

अर्जुन अपने समयका गण्यमान्य सम्मानित आदर्श व्यक्ति था। अतः भगवान्ने पहले श्लोकसे ही उत्तर दिया कि अर्जुन! यदि तुम अपने धर्मसे विमुख हो जाओगे, तो विधवाएँ भी विमुख हो सकती हैं; क्योंकि वे विचारेंगी कि हमारे यहाँका गण्यमान्य अर्जुन ही यदि अपने धर्मसे विमुख हो गया तो हम अपने धर्मका पालन क्यों करें— **'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।'** जिसके घरकी माँ, बहन, बेटियाँ यह देखेंगी कि हमारे भाई, पिता, पुत्र अपने धर्म-कर्मकी रक्षाके लिये बलिवेदीपर प्राणोंको न्योछावर करनेको तैयार हैं, तो क्या वे कभी व्यभिचारिणी हो सकती हैं? आज हमारा धर्म, हमारे शास्त्र, हमारी संस्कृति खतरेमें हैं। भगवान्का भजन तो हर समय करना ही चाहिये। वह तो हमारा सहारा है, पर साथ ही कर्तव्यविमुख कदापि न होना चाहिये।

'मामनुस्मर युद्ध्य च' यही भगवान्का आदेश है। इस समय चुप बैठना कायरता है। हमें दृढ़संकल्प होकर कर्तव्यपालन करना चाहिये। हमारे प्राण चले जायँ, भले ही हम सफल न हों, परंतु सर्व पापोंसे विमुक्त होकर मोक्ष अवश्य हमें प्राप्त होगा—**'यः स्थापयितुमुद्युक्तः श्रद्धयैवाक्षमोऽपि सन्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्॥'**

'हर वन वृन्दावन लगता है'

(डॉ० श्रीदेवेन्द्रजी आर्य)

जब से मेरे मन-आँगन में,
वंशी की धुन नाच गई है।
हर मूरत है कान्ह कान्ह सी,
हर वन वृन्दावन लगता है॥
शरद चाँदनी में यमुना-तट,
महारास की धुन बजती है।
तब कान्हा के साथ नाचती,
हर गोपी राधा लगती है॥
जब कदम्ब पर बैठ, बाँसुरी,
मधुर स्वरों में टेर बुलाती।
साँस-साँस नर्तन करती सी,
रोम-रोम मधुवन लगता है॥
स्वप्न-पलक पर बैठ कभी,
वह रूप आँख में हँस गाता है।
बना त्रिभंगी, सरल हृदय में,
वेणु बजाता फँस जाता है॥
फगुनाहट की छुअन अंग में,
विद्युत की सिहरन भरती जब।
काँधे पर पिचकारी साधे,
हर मौसम फागुन लगता है॥
आकुल मन का उत्सव रचने,
जब वसन्त पाँखें सजती हैं।
रुनुक-झुनुक बजती पायल में,
विश्व बीन तब स्वर भरती है॥
फूल-फूल से रस लेकर जब,
मलयज सुधा-बिन्दु झरता है।
कण-कण में सम्मोहन भरता,
जगत् कुंज-कानन लगता है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमका अनुभव

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गतांक सं० ३ पृ०सं० ५६९ से आगे]

प्रेमका स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—**'तत्सुखसुखित्वम्'** (ना०भ०सू० २४) अर्थात् उस प्रियतमके सुखमें सुख हो। उसके सुखसे सुखी होना—तत्सुखीभाव है। वे भगवान्, वे हमारे प्रियतम हैं और उनका सुख ही हमारा सुख है। इसमें कोई भी बात सोचने-विचारनेकी नहीं है कि यह सुख कैसा और वह सुख कैसा? प्रियतमको जो अभिलषित हो, वे जो चाहें, वही मेरा सुख है। उनकी जैसी मर्जी हो, वही हमारा स्वभाव बने। वह जिस प्रकारका चाहें, उसी प्रकारका हमारा जीवन बने। अपने जीवनकी बात सोचनेवाले हम नहीं हैं। स्वयं अपना स्वभाव बनानेवाले हम नहीं। यदि हम केवल उनमें ही अनुराग करते हैं तो उनका स्वभाव हमारे स्वभावमें उतर आता है।

इसलिये स्वसुखकी चाह—यह सबसे बड़ी बाधा होती है संसारके प्रेममें भी। घरमें भी यदि दो भाई हैं। घरमें यदि दो स्त्रियाँ—देवरानी-जेठानी आदि हैं तो वहाँपर भी यही प्रयोग करके देखिये, घरमें आनन्द हो जायगा। दूसरेके लिये त्याग करिये, अपने लिये कुछ मत चाहिये। यह शान्ति और प्रेमका भण्डार खोल देनेकी कुंजी है। इसमें कुछ करना नहीं पड़ता, केवल भाव रखिये। अपने सुखको यदि त्याग सकें तो सर्वोत्तम है, नहीं तो अपनेको गौण रखिये और उसको मुख्य रखिये। दो फल भी घरमें आयें तो भाईके लड़केको अच्छावाला दे दीजिये। जरा बड़ावाला दे दे और अपने लड़केको छोटावाला दे। यह मामूली त्याग है, परंतु इसका प्रभाव बड़ा है। जितना-जितना त्याग उतना-उतना प्रेम और जितना-जितना प्रेम उतना-उतना आनन्द—यह सिद्धान्त है। जहाँ त्याग है वहाँ प्रेम होगा। चाहे वह परिवारका प्रेम हो, भाईका प्रेम हो, देशका प्रेम हो, जातिका प्रेम हो, धर्मका प्रेम हो, विश्वप्रेम हो अथवा भगवत्प्रेम हो। जितना-जितना, जिस-जिस प्रेममें त्याग होगा, उतना-उतना प्रेम विशुद्ध होगा।

यह जो विशुद्धानुराग है, इसका स्वरूप यही है कि अपनी विस्मृति। अपने सुखकी विस्मृति और प्रेमास्पदके सुखको ही जीवन बना लेना। किसीको भी अपने वशमें करना हो तो सीधा कार्य कि उसके लिये त्याग करो। उसके लिये अपनी चीजको दे डालो। अपनी प्यारी चीजको उसकी प्यारी चीज बना दो। पहले हम त्याग करें। स्वयं त्याग करेंगे तो इसका फल प्रेम होगा और जहाँ प्रेम है, वहाँ आनन्द है। श्रीरामचरितमानसमें वर्णित कैकेयीद्वारा भरतको राज्यके लिये वरदान माँगने और पादुका लेकर भरतके लौटनेतकका इतिहास—यह जगत्में सदाके लिये एक नित्य आदर्श बना रहेगा। दोनों ही अधिकारको ठुकराते हैं। दोनोंका अधिकार रहता है और आनन्दका कोई ठिकाना ही नहीं है। इतना आनन्द बढ़ता है कि भरत रामका जप करते हैं और राम भरतका, दोनों एक-दूसरेका नाम सुनकर प्रफुल्लित हो जाते हैं। दोनों अपनेको एक-दूसरेके हाथ मानो बेच देते हैं। यह क्या चीज है? केवल त्याग, उस त्यागका फल है—परम प्रेम और प्रेमका फल है—परमानन्द। अगर त्याग न होता तो राम-भरतका इतिहास जो आज उपलब्ध है, वह नहीं मिलता। अगर कहीं भरतने माँकी बात मान ली होती तो न जाने क्या होता! कैकेयीके मनमें यह बुरी चीज क्या थी कि अपने बेटेको राज्य मिल जाय। परंतु भरतने बात नहीं मानी। भरतने फिर कैकेयीको माँ नहीं कहा। गीतावलीमें ऐसा आता है कि जब श्रीराम लंकासे लौट आये, लंकाविजय हो गयी, रामराज्य हो गया, सब प्रकारसे सब सुखी हो गये तो उस समय कैकेयीके मनमें एक बड़ा दुःख था। श्रीराम कैकेयीदेवीकी बहुत सेवा करते थे। एक दिन कैकेयीने रामसे कहा—बेटा! मेरे मनमें एक चीज है, उसे यदि तुम करवा दो तो मेरे जीवनका एक बड़ा काँटा निकल जाय। रामने कहा—माँ! बोलो। उन्होंने कहा—यह काम भरतसे करवाना है। भगवान्ने कहा—यह मेरे हाथकी बात तो नहीं है, परंतु आप बतायें। क्या बात है? कैकेयीने कहा—एक बार भरत मुझे माँ कह दे। रामने कहा—अच्छी बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं भरतसे कहूँगा। फिर रामजीने अकेलेमें भरतको बुलाया और कहा—भैया! एक मेरा अनुरोध है। एक काम तुझे करना पड़ेगा। भरतने कहा—महाराज! इसमें पूछना क्या है? भरत समझ गये कि एक बातको छोड़कर रामकी कोई बात मेरे लिये अमान्य नहीं है। उन्होंने कहा—महाराज! कैकेयीको 'माँ' कहनेके अतिरिक्त और जो कोई भी आपकी आज्ञा हो, उसे करनेके लिये मैं तैयार हूँ। कैकेयीको माँ कहना भरतकी जीभ स्वीकार नहीं करती है। ऐसी निष्ठा थी राममें तब वहाँ प्रेम कैसे न रहे? उस माँका मुँह नहीं देखना चाहा और कहा—मेरे समान कलंकी, मेरे समान कुलघातक, मेरे समान नीच, पापी कौन होगा, जिसके उदरसे मैं पैदा हुआ, वह रामका वनवास चाहती है। इसके लिये सारा निमित्त तो मैं हूँ न! अब वहाँ क्लेश, द्रोह, द्वेष, वैर कहाँसे आये। यह सब बह गये और उन्हींके नहीं बह गये, उन भरतजीका नाम आज जो लेते हैं, उनके चरित्रको जो आज देखते हैं, उनके भी बह जाते हैं।

लंकाविजयके पश्चात् जब सुग्रीव और विभीषण लौटकर आये और जब उन्होंने राम और भरतको मिलते हुए देखा तो इन्हें बड़ी लज्जा हुई, वे दोनों अलग जाकर रोने लगे और कहने लगे कि हम भी भाई हैं और ये भी भाई हैं। माना कि हम रामके सेवक हैं, माना कि हम सत्पथके गामी हैं, परंतु हम भाई तो नहीं हैं न! इसलिये जितना भी प्रेम है, उसकी मूल भित्ति त्याग है और जहाँ प्रेम है, वहीं स्वाभाविक आनन्द है। यह घरमें करके देख लीजिये। दो आदमी बैठे हैं प्रेमसे और भीड़ हो रही है। तीसरा आया वह भीड़में कैसे कहे कि आप उठ जायँ, हम बैठेंगे। सोये तो आप हैं नहीं सिकुड़े बैठे हैं। उसीमें आप कह दें कि भैया! हम इधर हो जाते हैं, तुम यहाँ बैठ जाओ तो वह आप्यायित हो जायगा और यदि आप कहीं उठकर खड़े हो गये तब तो वह चरणोंमें पड़ने लगेगा—'नहीं-नहीं आप बैठिये, हम नहीं बैठेंगे।' स्थान माँगनेवाला कहेगा—नहीं, आप बैठें। जगह नहीं है तो क्या खड़े रहेंगे। अपने-आप त्यागकी भावना उदय होते ही अनुकूलता आ जायगी और जहाँ भावना खींचातानी की है; लेने और देनेकी नहीं, वहाँ संघर्ष होगा।

प्रेम देना जानता है, लेना नहीं जानता है। यह प्रेमका स्वरूप है। प्रेम देता रहता है। प्रेम माँगना तो जानता ही नहीं, ग्रहण करना भी नहीं जानता, लेना भी नहीं जानता। प्रेम कहाँ लेता है? जहाँ प्रेमास्पदको सुख होता है, वहाँ प्रेमास्पदके लिये प्रेम ग्रहण भी कर लेता है, परंतु करता है, प्रेमास्पदके सुखके लिये। वहाँ उसके लिये कोई नीति-मर्यादाकी आवश्यकता नहीं है, ग्रहण करनेमें भी।

जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ भी ऐसा हो जाता है—अपने पूज्यके प्रति, अपने श्रद्धास्पदके प्रति। जहाँ भक्ति होती है, वहाँ भी होता है, परंतु जहाँ प्रेम होता है, वहाँ तो सहज ही होता है। श्रद्धा-भक्तिमें एकलव्यने सहर्ष अपना अँगूठा दे दिया। यह मामूली बात है? यह श्रद्धाकी बात है, परंतु प्रेममें जीवन देनेकी बात आ जाय तो अपने हाथों काटकर रख दे और बोले कि प्रेमास्पद तुम हँसते हो तो हम जीवन देते हैं। तुम हँसते रहो, चाहे हमारा शरीर खण्ड-खण्ड हो जाय, कोई आपत्ति नहीं। बड़ा सुन्दर है। हमारे शरीरके कट जानेपर, खण्ड-खण्ड हो जानेपर, अगर तुम हँस सको, तुम्हारे अधरोंपर अगर मुसकान आ सके तो बड़ा अच्छा है। इसीलिये प्रेमी जो है, वह वियोगमें बहुत प्रसन्न रहता है। वह कहता है कि यह वियोगकी अग्नि यद्यपि मुझे जलाती है, परंतु यह मेरे प्रेमास्पदके हृदयको शीतल करती है न! इसलिये यह आग और धधके। यह प्रेमकी आग कभी बुझे नहीं, धधकती रहे। वह मिलना नहीं चाहता है, अपितु वह प्रेमास्पदका सुख चाहता है। मिलनमें उसको बड़ा सुख है, मिलनका उसे विरोध नहीं है, परंतु यदि वह मिलन प्रेमास्पदके लिये असुखकारक है तो उसके लिये त्याज्य है। अपना सुख यदि प्रेमास्पदका सुख नहीं है तो वह त्याज्य है। बल्कि यहाँ तककी चीज है कि यदि वह जलेबी खा रहा है और जलेबी खानेमें जीभको मधुर स्वादसे यदि प्रेमास्पदको प्रसन्नता नहीं है तो उसको स्वाद नहीं आयेगा। वह स्वादका परित्याग कर देगा। प्रेमास्पदकी रसना यदि उस रसका अनुभव करती है, तब तो उसे स्वीकार होगा, नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती है तो वह उसे स्वीकार नहीं करेगा। आगे जाकर ऐसी चीज होती है कि जब प्रेमकी अभिव्यक्ति तनमें हो जाती है—तमाम इन्द्रियोंमें, रोम-रोममें, तब ये सब-के-सब अंकुरित हो जाते हैं। जैसे हमारी जीभ कड़वी हो रही है और हमारी कड़वी जीभपर मिस्री हमें मीठी नहीं लगती और हमारी जीभ आपकी जीभपर आ बैठे तो आपको भी मिस्री कड़वी लगेगी, क्योंकि हमारी जीभ आपकी जीभ हो गयी। इसी प्रकारसे श्रीअरविन्दके एक सिद्धान्तमें है कि Divine (दिव्य)-का अवतरण कभी इस भौतिक शरीरमें हो जायगा। प्रेमकी जहाँ पराकाष्ठा होती है, वहाँ व्यक्तिमें प्रेमास्पदके शरीरका अवतरण हो जाता है। व्यक्तिमें प्रेमास्पदके शरीरका, मनका और वृत्तियोंका अवतरण हो जाता है। उनका रूपान्तर हो जाता है। यह जो प्रेम है, यह बहुत विशेष बात है। प्रेम केवल मनको ही रूपान्तरित नहीं करता, बल्कि सारे शरीरको रूपान्तरित कर देता है और ऐसा अनुभव होता है कि मैं वह हो गया। केवल भावनासे ही नहीं, प्रेम-वैचित्त्यमें तो और आगे बढ़कर ऐसा होता ही है। निकुंज-लीलामें कभी-कभी श्रीकृष्ण हो जाते थे राधा और राधा श्रीकृष्ण हो जाती थीं। यह केवल भावसे ही नहीं, तमाम बदन बदल जाता था ज्यों-का-त्यों। सारे अंग, अवयव, भाव, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, रोम-रोम सब-के-सब। योगीका जो निर्वाण होता है, उसमें योगी अपनी योगसिद्धिके द्वारा काल-निर्माण कर लेता है और उसी प्रकार स्वभाव और बुद्धिको ले आता है। भगवान्‌का जो ऐश्वर्ययोग है, उस योगमें क्या हुआ? सारे बछड़े, सारे गोप, बालक उस ऐश्वर्ययोगके द्वारा ज्यों-के-त्यों बन गये। केवल बछड़े और बालक ही नहीं, उनके जितने सामान थे, सब वैसे-के-वैसे हो गये, जिसकी नाक जैसी, जिसकी आँख जैसी, जिसके बाल जैसे, जिसकी लकड़ी-लाठी, बाँस-बँसरी, सिंघा-जूती—सब-के-सब ज्यों-के-त्यों रूपान्तरित हो गये। नवीन निर्माण हो गया। भगवत्प्रेममें भगवान्‌का निर्माण नहीं होता है, भगवान्‌का अवतरण होता है प्रेमीके शरीरमें और वह अवतरित होकर ज्यों-का-त्यों, जैसे-का-तैसा बन जाता है। [**क्रमशः**]

निरन्तर भजनकी आवश्यकता

(श्रीभँवरलालजी परिहार)

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥

(श्रीमद्भा० ११। २०। १७)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—उद्धव! यह मनुष्यशरीर समस्त शुभ फलोंकी प्राप्तिका मूल है। यह अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी अनायास ही सुलभ हो गया है। इस संसारसागरसे पार जानेके लिये यह एक सुदृढ़ नौका है। शरण ग्रहण करनेमात्रसे ही गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवारका संचालन करने लगते हैं और स्मरणमात्रसे ही मैं अनुकूल वायुके रूपमें इसको लक्ष्यकी ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होनेपर भी जो पुरुष इस शरीरके द्वारा संसारसागरसे पार नहीं हो जाता, वह तो अपने हाथोंसे ही अपनी आत्माका हनन—अधःपतन कर रहा है।

प्रतिदिन सूर्योदय होता है और हमारे जीवनके अमूल्य समयमेंसे एक दिन निकल जाता है। इस प्रकार हजारों दिन हमारे जीवनमेंसे निकल चुके हैं। जिन श्वासोंके आधारपर यह जीवन टिका हुआ है, वे श्वास प्रतिक्षण नष्ट हो रहे हैं—हम प्रतिक्षण मृत्युकी ओर बढ़ रहे हैं। हमारे इस संसारसे कूच कर जानेका समय समीप, अति समीप आ रहा है। उस दिन सारे मनसूबे धरे रह जायँगे। सारी कामनाएँ मिट्टीमें मिल जायँगी। घर-परिवार, पद-अधिकार, धन-सम्पत्ति, पत्नी-पुत्र, सगे-सम्बन्धी—सब पीछे छूट जायँगे। ये बड़े-बड़े मकान, बंगले, गाड़ियाँ, नौकर-चाकर, बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ, मान-प्रतिष्ठा आदि कुछ काम न आयेंगे। मेरा-मेरा कहनेवाले घर-परिवारके लोग कुछ दिन रो-धोकर अपने काम-धंधेमें लग जायँगे—समयके साथ हमको भुला भी देंगे। उस दिन हमारी क्या गति होगी? हम कहाँ जायँगे? कौन देगा हमारा साथ? क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा हमारा भविष्य? थोड़ा-सा भी विचार करनेपर ये बातें परम सत्य प्रतीत होती हैं। फिर भी उस दिनकी दयनीय दशापर ध्यान देनेकी हमें किंचिन्मात्र भी परवाह नहीं है, फुरसत नहीं है।

रे नर वा दिन की याद कर जब ले चल, ले चल, ले चल हो।

× × × ×

सब माल धरा रह जायगा जब लाद चलेगा बंजारा।

कैसा आश्चर्य है! सम्पूर्ण विश्वकी भलाईका ठेका लेनेवाले मनुष्यको इतनातक पता नहीं है कि उसकी स्वयंकी भलाई किस बातमें है। उसका अपना वास्तविक कार्य क्या है? क्या अनादिकालसे इस संसारमें ऊँची-नीची चौरासी लाख योनियोंमें क्यों भटक रहा है? उसके जीवनमें बार-बार दु:खोंके थपेड़े क्यों आ रहे हैं? इन अनन्त अपार यन्त्रणाओंको भोगनेपर भी इनसे सदा-सदाके लिये मुक्ति पानेके लिये उसके मनमें परम शुभ भावना जाग्रत् नहीं होती। इस परम हीन दशामें ही पड़ा रहनेसे इसको सुखका अनुभव हो रहा है। यह स्थिति बड़ी ही चिन्ताजनक और दुर्भाग्यपूर्ण है।

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम्।
गृहेषु खगवत् सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः॥

(श्रीमद्भा० ११।७।७४)

अर्थात् मोक्षके खुले द्वाररूप मनुष्यशरीरको पाकर भी जो पक्षीकी तरह घरमें आसक्त रहता है, उसे आरूढच्युत समझना चाहिये।

इस संसारमें मेरा-मेरा कहनेवाले और मेरा लगनेवाले सब पराये हैं। जब सबसे अधिक नजदीक लगनेवाला अपना यह शरीर भी मेरा नहीं है, यह भी साथ छोड़ देगा, अग्निमें जलकर भस्म हो जायगा, तब अन्य लोगोंकी पदार्थ-परिस्थितियोंकी तो बात ही क्या है?

गुल शोर बबुला आग हवा, सब कीचड़ पानी मिट्टी है।
हम देख चुके इस दुनिया को, सब धोखे की-सी टट्टी है॥

इस संसारमें सभीको तो देख लिया, परख लिया। अब कौन-सा अनुभव बाकी रह गया है? माता-पिता, पत्नी-पुत्र, सगे-सम्बन्धी—सब मतलबके मनुहार हैं। वक्त आनेपर कोई भी साथ देनेवाला नहीं है।

आराम के हैं सब संग-साथी, जब वक्त पड़ा तब कोई नहीं।
यहाँ मतलब के हैं लोग सभी, दुनिया में किसी का कोई नहीं॥
जब टिकट मिला है जाने का, तब डेरा किया है मसानों में।
वहाँ जलानेवाले लाखों थे, पर जलनेवाला कोई नहीं॥

वक्त आनेपर केवल एक भगवान् ही काम आयेंगे, अन्य कोई नहीं; क्योंकि केवल वे ही हमारे अपने हैं। जिस मनुष्यशरीरमें हम भगवान्‌को भूलकर मौज-मजे कर रहे हैं, वह मनुष्यशरीर केवल भगवान्‌की अहैतुकी कृपाका ही प्रसाद है। ऐसे कृपालु प्रभुसे मुँह मोड़ लेना, उनको भूल जाना कितनी बड़ी नीचता और कृतघ्नता है!

जबै जमराज-रजायसतें मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तातु न मातु, न स्वामि-सखा, सुत-बंधु बिसाल बिपत्ति-बँटैया॥
साँसति घोर, पुकारत आरत कौन सुनै, चहुँ ओर डटैया।
एकु कृपालु तहाँ 'तुलसी' दसरत्थको नंदनु बंदि-कटैया॥

(कवितावली, उत्तरकाण्ड ५१)

लाखों युगोंतक चौरासी लाख योनियोंमें भटकते-भटकते जब जीव अपार-असह्य दु:खों-यन्त्रणाओंसे त्राहि माम्-त्राहि माम् पुकार उठता है, तब भगवान् उसपर महान् कृपाकर चौरासी लाखके दु:खमय चक्रसे छूटनेके लिये मनुष्यशरीर प्रदान करते हैं ताकि वह भजनकर भगवान्‌को प्राप्त कर सके और सदा-सदाके लिये सुखी हो जाय। ऐसा अवसर लाखों युगोंके बाद मिलता है; क्योंकि सृष्टिमें अनन्त जीव हैं और सभी जीव मनुष्यशरीर प्राप्त करनेके लिये पुकार मचा रहे हैं। इसमें किस जीवका कब नम्बर लगेगा—यह कल्पना करना भी मुश्किल है। ऐसा महामूल्यवान् और दुर्लभ मनुष्यशरीर हमें भगवान्‌की विशेष कृपासे मिल गया है। इसको भगवत्प्राप्तिके अलावा किसी अन्य कार्यमें लगाना कितनी भारी मूर्खता है—यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। गोस्वामीजीने हमें कितने सुन्दर ढंगसे समझाया है—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं बिषय रत मंद मंद तर॥
काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं॥

(रा०च०मा० ७।१२१।९—१२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जीवन भगवान्‌का दिया हुआ है और इसपर भगवान्‌का ही अधिकार है। अत: इसको भगवान्‌के चरणकमलोंमें समर्पित कर देना ही हमारा एकमात्र कर्तव्य है। यदि भगवान् हमको मनुष्य नहीं बनाते तो हम क्या कर सकते थे? पशु-पक्षी, कुत्ता-बन्दर आदि बना देते तो गलियोंमें भटकते-फिरते या पेड़ोंकी डालोंपर कूदते रहते। अब भी यदि भजन नहीं करेंगे तो यह स्थिति शीघ्र ही आ सकती है। मनुष्यशरीरकी यह मौज बार-बार मिलनेवाली नहीं है। इससे जितना अधिक लाभ उठा सकते हैं, उठा लेना चाहिये। वह लाभ है भगवान्‌का निरंतर भजन करना। गोस्वामीजीने लिखा है—

श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥

(रा०च०मा० ७।१२३।२)

विचार करना चाहिये कि भगवान्‌से अधिक प्यारा हमारा और कौन हो सकता है? संसारके सम्बन्धी तो दो दिनके साथी हैं। ये पहले भी हमारे साथ नहीं थे और आगे भी हमारे साथ नहीं रहेंगे। इनको अपना मानकर मोह-ममता करना कितना बड़ा अज्ञान है। महामति विदुरजीने धृतराष्ट्रसे कहा—

अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः।
नैते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना॥

(महाभारत, स्त्रीपर्व २।१३)

[राजन्!] जिनको तुम अपने मान रहे हो, वे सब अदर्शनसे आये हुए थे अर्थात् जन्मसे पहले अप्रकट थे और पुनः अदर्शनको प्राप्त हो गये हैं। अतः वास्तवमें न ये तुम्हारे हैं और न तुम इनके हो, फिर इस विषयमें शोक कैसा?

हमारी मनुष्यता इसी बातमें है कि हमारेद्वारा निरन्तर भजन होता रहे। पाप-ताप और दुःखोंसे त्राण पानेका इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। जिस कार्यमें मनुष्यकी महत्त्वबुद्धि होती है, उसमें वह मन-वचन-कर्मसे स्वतः संलग्न हो जाता है। इसमें किसीके कहनेकी या उपदेशकी भी आवश्यकता नहीं होती। भजनमें महत्त्वबुद्धि नहीं होनेके कारण ही ऐसा जवाब दे दिया जाता है कि भजन नहीं होता।

सांसारिक सुखों और भोगोंकी लालसाके कारण आज मनुष्यका जीवन अत्यधिक अशान्त तथा दुःखपूर्ण बन गया है। भोग दुःखोंके उत्पत्ति-स्थान हैं—**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।** (गीता ५।२२) मनुष्य जबतक भोगोंको छोड़कर भगवान्‌की प्रकाशमय, आनन्दमय राह नहीं पकड़ेगा, तबतक वह स्वप्नमें भी कभी सुखी नहीं हो सकता। इसके लिये भगवान्‌के परम पावन नामका जप और उनके मंगलमय स्वरूपका ध्यान ही एकमात्र उपाय है। भगवान्‌ने भी यही आदेश दिया है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(गीता ९।३३)

सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्यशरीरको प्राप्तकर तू निरन्तर मेरा भजन कर।

यह संसार दुःखालय है, दुःखोंका घर है—**'दुःखालयमशाश्वतम्'** (गीता ८।१५)। जैसे औषधालयमें दवाई ही मिलती है, मिठाई नहीं। वैसे ही इस संसारमें दुःख ही मिलते हैं, सुख नहीं। इसको तो छोड़नेमें ही कल्याण है। अतः भोगोंसे वैराग्यकर भगवान्‌के भजनमें जोरोंसे लग जानेकी आवश्यकता है। संत सगरामदासजी महाराजने बड़े सुन्दर शब्दोंमें समझाया है—

कहै दास सगराम, बड़गड़ै घालो घोड़ा।
भजन करो भरपूर, रह्या दिन बाकी थोड़ा॥
थोड़ा दिन बाकी रह्या, कद पहुँचोला ठेठ।
अधबिचमें बासो बसो, तो पड़सो किठारे पेट॥
पड़सो किठारे पेट, पड़ेला भारी फोड़ा।
कहै दास सगराम, बड़गड़ै घालो घोड़ा॥

भजनके घोड़ोंको तेजीसे दौड़ानेकी आवश्यकता है। ऐसे धीरे-धीरे चलेंगे तो अपने गन्तव्य स्थानपर कब पहुँचेंगे? यदि बीचमें ही प्राण छूट गये तो अनन्त अपार दुःखोंके बवंडरमें फँस जाना निश्चित है—***'लख चौरासी जूण में दुःख को आर न पार।'***

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।

फिर जन्मो, फिर मरो, फिर माताके गर्भमें आओ—यह क्रम कभी समाप्त नहीं होगा। इस जीवनके समाप्त होनेसे पहले ही भगवान्‌को प्राप्त कर लेना बुद्धिमानी है। यदि भगवान्‌को प्राप्त किये बिना ही इस संसारसे जाना पड़ा तो वह मृत्यु बड़ी भयानक होगी—मृत्युकी अनन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम्पराको जन्म देनेवाली होगी। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने अपने अनुभवका सार बता दिया है—

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहिं तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते॥

(विनय-पत्रिका १९८)

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

(रा०च०मा० ७।४३)

सृष्टि अनादिकालीन है। पृथ्वीके रजकणोंकी अथवा समुद्रके जल-बिन्दुओंकी गणना भले ही कोई व्यक्ति कर ले, किंतु हमारे कितने जन्म हो चुके हैं, इसकी गणना असम्भव है। इन अनन्त जन्मोंमें हमने अनन्त पाप किये हैं तथा काम-क्रोध-लोभ-मद-मात्सर्य-अभिमान आदि दुर्गुण-दुराचारोंका अनन्त भण्डार अपने अन्तःकरणमें एकत्र किया है। यह गंदगीका संग्रह इस एक ही जन्ममें भगवान्‌के भजनके तीव्र अभ्याससे, निरन्तर नामजपसे भस्म हो सकता है। भगवान्‌के भजनका यह विलक्षण चमत्कार है। कलियुगकी यही विशेषता है कि इसमें भगवान्‌की कृपाका पार नहीं है—*'और जुगन तें कमलनयन! कलिजुग बहुत कृपा करी॥'*

प्रेमपूर्वक निरन्तर भजनके प्रभावसे दुर्गुण-दुराचार तथा पापोंके पहाड़ भस्म होने लगते हैं एवं अन्तःकरण शुद्ध होने लगता है। शुद्ध अन्तःकरणमें वैराग्यकी लहरें उठने लगती हैं और साधकको भगवान्‌को छोड़कर कुछ भी नहीं सुहाता। उसका हृदय भगवान्‌से मिलनेके लिये छटपटाने लगता है।

दीर्घकालीन भजनकी नींवपर ही साधनाका महल बनता है। भक्तिके आचार्य देवर्षि नारदका आदेश है—

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः। सुखदुःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्धमपि व्यर्थं न नेयम्। (भक्तिसूत्र ७९, ७७)

सब समय, सर्वभावसे निश्चिन्त होकर केवल भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये। सुख-दुःख, इच्छा-लाभ आदिका पूर्ण त्याग हो जाय—ऐसे कालकी प्रतीक्षा करते हुए आधा क्षण भी भजनके बिना व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये।

कई बार मनमें यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि पूर्णरूपसे भजनमें लगनेपर संसारका काम कैसे चलेगा? इसका पहला उत्तर तो यह है कि मनुष्यशरीर भजनकर भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये मिला है, संसारका कार्य करनेके लिये नहीं। संसारका काम कितना भी सुधार लेंगे तो भी बिगड़ ही जायगा; क्योंकि अन्तमें सभी काम बिगड़नेवाले हैं। संसारका काम सुधर गया तो भी बिगड़ गया और बिगड़ गया तो भी बिगड़ गया। फिर चिन्ता किस बातकी? दूसरी ओर यदि भजनका काम सुधर गया तो हमेशा-हमेशाके लिये आनन्द हो जायगा। इस प्रश्नका दूसरा उत्तर यह है कि संसारका काम भगवान्‌का काम समझकर करनेसे वह भी भजन बन जाता है। जिसका जीवन भजनमय बन जाता है, उसको कुछ भी प्राप्त करना बाकी नहीं रहता। वह कृतार्थ हो जाता है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते।
मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि॥

(श्रीमद्भा० ११।२६।३०)

सांसारिक प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियोंकी कामना तथा आसक्तिके कारण ही निरन्तर भजनमें कठिनाई अनुभव होती है। अपने जीवनका वास्तविक उद्देश्य समझनेपर यह कठिनाई समाप्त हो जाती है तथा भजनका रास्ता बहुत ही सरल हो जाता है। वास्तवमें भजन तथा भगवान्‌में इतना अधिक आकर्षण एवं मिठास है कि मनुष्य इनको किसी भी हालतमें छोड़ ही नहीं सकता। स्वप्नमें भी एक बार हल्की-सी झाँकी होनेपर मनुष्य दीवाना हो जाता है। सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार संसारसे मोह-ममता छोड़कर अनन्यमनसे भगवान्‌का निरन्तर भजन करनेमें ही है—

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥

(रा०च०मा० ४।२३।६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

परमात्मप्राप्ति, तत्त्वज्ञान, कल्याण जितना सुगम है, उतना संसारका काम भी सुगम नहीं है। परमात्मासे अलग किसीकी भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है—**'मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति'** (गीता ७।७), **'मत्त एवेति तान्विद्धि'** (गीता ७।१२)। सब कुछ परमात्माका ही स्वरूप है। भगवान् ही चौरासी लाख रूपोंसे प्रकट हुए हैं। भगवान्‌के सिवाय दूसरा आये कहाँसे? संसार नींदमें, बेहोशीमें दीखता है। आँख खुलते ही भगवान् दीखने लग जायँगे। गहने बननेपर क्या सोना नहीं रहता? बर्तन बननेपर क्या मिट्टी नहीं रहती? भगवान् ही संसारमें अनेक रूपोंसे प्रकट हुए हैं। जब 'सब भगवान्‌के ही रूप हैं'—ऐसा देखेंगे तो कौन क्रोध करेगा? किसपर करेगा? कैसे करेगा? सब दोष मिट जायँगे।

× × ×

गुरु बनानेसे उद्धार नहीं होता। अन्य सम्बन्धोंकी तरह यह भी एक सम्बन्ध है। एकलव्यने गुरु बनाया नहीं, पर धनुर्विद्यामें अर्जुनसे भी तेज हो गया। विद्या लेनेमें चेलेकी मुख्यता है, जायदाद लेनेमें गुरुकी मुख्यता है।

वास्तवमें गुरु बनाया नहीं जाता, प्रत्युत गुरु बन जाता है। जिससे ज्ञान-प्रकाश मिले, वही गुरु है। दत्तात्रेयजीने चौबीस गुरु बनाये, पर उन गुरुओंको मालूम ही नहीं कि हमारा कोई शिष्य है। पिंगलाके गुरु दत्तात्रेय बन गये और दत्तात्रेयकी गुरु पिंगला बन गयी, पर दोनोंको एक-दूसरेका पता ही नहीं! गुरु पराधीन होता है, चेला स्वाधीन।

भगवच्चरणोंके शरण होनेपर सब कुछ मिल जाता है। **'वासुदेवः सर्वम्'** माननेवालेके लिये क्या गुरुकी आवश्यकता रहेगी?

× × ×

ज्ञानमार्गमें विवेक मुख्य है। विवेक हरेक साधनमें आवश्यक है। इसलिये भगवान्‌ने गीताका आरम्भ विवेकसे ही किया है। भगवान्‌ने विवेकी पुरुषको 'पण्डित' कहा है—**'नानुशोचन्ति पण्डिताः'** (गीता २।११)। जहाँ ममता होती है, वहाँ बुद्धि काम नहीं करती। इसलिये डॉक्टरके घर कोई बीमार हो जाय तो दूसरे डॉक्टरको बुलाते हैं। काम-क्रोधादिसे बुद्धि नष्ट होती है। चिन्तासे भी बुद्धि नष्ट होती है—**'बुद्धिः शोकेन नश्यति'**। सच्छास्त्र, सत्संग, सद्विचारसे विवेक बढ़ता है और शोक-चिन्ता मिटते हैं।

माँको बालककी जितनी चिन्ता रहती है, उतनी बालकको नहीं। ऐसे ही असली गुरुको शिष्यकी जितनी चिन्ता रहती है, उतनी शिष्यको नहीं। अतः गुरुकी चिन्ता मत करो, गुरु अपने-आप आयेगा।

मनके अनुकूल परिस्थिति न होनेसे बाहरसे उच्चाटन होता है। काम-क्रोधादिसे भीतरसे उच्चाटन होता है।

पैसोंसे सत्संग नहीं होता, प्रत्युत कुसंग होता है।

× × ×

जो जितने बड़े धनी हैं, वे उतने ही बड़े दरिद्र, मँगते हैं। धनियोंको लाखों-करोड़ों रुपयोंका घाटा होता है, पर गरीबको कभी घाटा होता ही नहीं।

रुपये काम नहीं आते, वस्तुएँ काम आती हैं। रुपयोंका खर्च बढ़िया है, रुपये नहीं। यदि खर्चा न करो तो रुपयोंमें और कंकड़-पत्थरोंमें क्या फर्क है? कम-से-कम एक जगह तो खुली रखो, जहाँ कृपणता न रखकर खुला खर्च करो।

लोभ दो काम करता है—अन्यायपूर्वक कमाना और खर्चमें कंजूसी करना, आवश्यक खर्च न करना। लोभ नहीं हो तो रुपया सुख नहीं दे सकता।

× × ×

भगवान् हैं—इस बातको दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लें। भगवान्‌का प्रह्लादजीके साथ जैसा सम्बन्ध था, वैसा ही हमारे साथ भी है। भगवान्‌को सदा अपने साथ मानें, फिर कोई भय नहीं—***'बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय।'*** ऐसा भाव रखें कि भगवान् सब जगह होते हुए भी भगवान् विशेषतासे मेरे साथ हैं; क्योंकि मैं नाम जपता हूँ।

× × ×

अपनी जगह स्त्री और पुरुष दोनों श्रेष्ठ हैं। जैसे, घड़ीका प्रत्येक पुर्जा अपनी जगह श्रेष्ठ है। दो जगह समान पहिये होनेसे रथ चलता है, पर पहिये अपनी जगह होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। यदि दोनों पहिये एक जगह कर दें तो क्या रथ चलेगा? सेवा करनेकी ताकत जितनी स्त्रीमें होती है, उतनी पुरुषमें नहीं। स्त्रीमें पालन-पोषणकी विशेष शक्ति है। जो भी अपने कर्तव्यका पालन करेगा, वह श्रेष्ठ हो जायगा।

स्वभाव बिगड़ेगा तो कोई अपना नहीं होगा। स्वभाव सुधरेगा तो दुनिया अपनी हो जायगी।

खुद अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते और दूसरोंको कर्तव्य सिखाते हैं, फिर सीखेगा कौन? कर्तव्य अपना होता है, अधिकार दूसरेका।

× × ×

रामायण-पाठका आनन्द भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। सांसारिक सुख पारमार्थिक सुखकी बराबरी नहीं कर सकता। जिस जगह रामायण-पाठ होता है, वह जगह तीर्थ बन जाती है। आप अपने-अपने घरोंमें भी रामायणका नवाह अथवा मासिक पाठ करें। कम-से-कम नौ दोहोंका पाठ अवश्य प्रतिदिन करें। नवरात्रके समय नवाह पाठ करें।

भगवान्‌की कृपा सबपर समान है, पर जो उनके सम्मुख हो जाता है, उसपर विशेष कृपा होती है। सामूहिक रामायण-पाठ-जैसे उत्सव भगवान्‌की सम्मुखताके लिये ही होते हैं। यह 'अन्नप्राशन'-संस्कार है। इसमें भगवान् पारमार्थिक सुखका स्वाद चखाते हैं। यह सदाके लिये अमर बनानेवाला अमृत है।

× × ×

हृदयसे ऐसा मान लें कि हम भगवान्‌के हैं। इस बातको आप दृढ़तासे पकड़ लें। ऐसा मानें कि अब हम अपने घरपर आ गये। अब भटकना समाप्त हो गया। हम शरीर, संसार, वर्ण, आश्रम, कुटुम्ब आदिके बने हुए हैं, उनके हैं नहीं। उनकी सेवा कर दो। हम तो भगवान्‌के ही हैं और भगवान् ही हमारे हैं। अब हम भगवान्‌के हो गये, अपने घरमें आ गये। अब चिन्ता किस बातकी? ***'अमरापुर म्हारो सासरो, पीहर सन्ता पास'***। हमारा घर भगवान् हैं। हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं। हमें तो अपने घर जाना है। यह सच्ची बात है। नयी बात नहीं है।

हर समय यह भाव रहे कि हम तो भगवान्‌के घरमें हैं। सब संसार भगवान्‌का है। हम भगवान्‌के हैं। वास्तवमें भगवान् ही संसाररूपसे प्रकट हुए हैं। ***'सब जग ईस्वररूप है, भलो बुरो नहिं कोय'***—ऐसा भाव हो जाय तो यह शिकायत मिट जायगी कि मन भगवान्‌में लगता नहीं।

× × ×

जो अपने सुखके लिये अनेक वस्तुओंकी इच्छा करता है, उसको वस्तुओंके अभावका दुःख भोगना ही पड़ेगा। उसका अभाव कभी मिटेगा नहीं।

जैसे भूखके बिना भोजनसे सुख नहीं मिलता, ऐसे ही दुःखी हुए बिना संसारका सुख भोग सकते ही नहीं। दुःखी व्यक्तिको ही सुख मिलता है और सुखभोगका परिणाम भी दुःख ही है। अतः संयोगजन्य भोगोंके आदिमें भी दुःख है और अन्तमें भी दुःख है। गीतामें आया है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'हे कुन्तीनन्दन! जो इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे पैदा होनेवाले भोग (सुख) हैं, वे आदि-अन्तवाले और दुःखके ही कारण हैं। अतः विवेकशील मनुष्य उनमें रमण नहीं करता।'

× × ×

अभी भगवान्‌के मनमें देनेकी आयी है। भगवान् विशेष कृपा कर रहे हैं। यदि इस समय हम उनके सम्मुख हो जायँ तो बहुत लाभ होगा। अतः तत्परतासे भगवान्‌में लग जायँ।

भगवान्‌का आश्रय लेनेसे समग्रका ज्ञान होता है। मुक्ति होनेपर भी दार्शनिकोंमें अलगाव रहता है। यह अलगावपना भी मिट जाय—ऐसी बात गीता कहती है।

अन्तिम लक्ष्य प्रेम है, ज्ञान नहीं। प्रेम अन्तिम तत्त्व है। ज्ञानमें अलगाव रहता है। एकता प्रेममें होती है। प्रेममें सब एक हो जाते हैं। जैसे शरीरके सभी अंग मिलकर शरीर है, ऐसे ही सब मिलकर परमात्मा हैं। अपने शरीरके सभी अंगोंमें प्रियता होती है। ठीक-बेठीकका भेद ज्ञानमें रहता है, प्रेममें नहीं ***'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥'***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोकनाशके उपाय

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

दु:ख अथवा शोकके दो ही कारण होते हैं—प्रियका वियोग और अप्रियका संयोग अथवा इष्टका विनाश और अनिष्टकी प्राप्ति। इन्हीं दो बातोंको लेकर सम्पूर्ण संसार दु:खी और शोकग्रस्त हो रहा है। कुछ लोग तो इनके कारण इतने अधिक व्यथित हो जाते हैं कि उन्हें समस्त संसार अन्धकारमय दिखायी देने लगता है, उन्हें निराशा घेर लेती है और वे अवसादकी स्थितिमें पहुँच जाते हैं। कभी-कभी तो ऐसे दु:खसे पीड़ित व्यक्ति आत्महत्यातक कर लेते हैं। वस्तुत: ज्ञान, भक्ति अथवा विवेक-विचार किसी भी दृष्टिसे शोक करना अज्ञानके अतिरिक्त कुछ नहीं है। अतएव सन्त-मनीषियोंका कथन है कि मनुष्यको न तो धन-मकान, जमीन-जायदाद आदि जड़ वस्तुओंके लिये और न स्त्री, पुत्र आदि चेतन प्राणियोंके लिये कभी किसी प्रकारका शोक नहीं करना चाहिये। जिनका विनाश हो चुका है, उनके लिये शोक करना व्यर्थ है; क्योंकि अब वे पुन: प्राप्त होनेवाले नहीं हैं। इसी प्रकार जिनका विनाश होनेवाला है, उनके लिये भी बुद्धिमान् मनुष्यको शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि उनका विनाश होना विधिद्वारा पूर्वनिर्धारित है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय भक्त अर्जुनको भी यही उपदेश देते हुए कहा है—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता:॥
(२।११)

अर्थात् हे अर्जुन! तू शोक न करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितों-जैसे वचन कहता है, परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण अभी नहीं गये हैं अर्थात् जो मरनेवाले हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते। ज्ञानके सिद्धान्तके अनुसार जगत्‌में दो ही प्रकारके पदार्थ माने गये हैं—जड़ और चेतन। इन्हींको दूसरे शब्दोंमें हम असत् और सत् भी कह सकते हैं। सत् वह है, जिसका कभी नाश नहीं होता और असत् वह है, जो कभी स्थिर नहीं रहता। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:**' अर्थात् असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्‌का अभाव नहीं है। इस वचनसे भगवान्‌ने यह सिद्ध किया है कि इन्द्रियोंद्वारा दिखायी देनेवाले जितने भी पदार्थ हैं, वे सब जड़, अनित्य, क्षणिक एवं नाशवान् हैं। कुछ गहन विचार करनेपर यह प्रतीत होता है कि वे सभी वस्तुएँ स्वप्नवत् हैं और स्वप्नवत् होनेके कारण उनका अस्तित्व ही नहीं है। इसलिये ऐसे नश्वर और जड़ पदार्थोंके लिये शोक करना किसी भी दृष्टिकोणसे उचित नहीं है। इसके विपरीत जो चेतन तत्त्व है, वह नित्य है, सत् है और उसका कभी विनाश नहीं होता, इसलिये उसके लिये भी शोक करनेका कोई औचित्य नहीं है। त्रेतायुगमें बालिके मारे जानेपर उसकी पत्नी ताराको भगवान् श्रीरामने यही उपदेश देते हुए कहा था—

छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥

कहनेका तात्पर्य यह है कि जो वस्तु विनाशी है, नाश होनेके पूर्व भी उसे नष्ट ही समझना चाहिये; क्योंकि अन्तत: उस वस्तुको नष्ट होना ही है, वह स्थिर रहनेवाली नहीं है। अत: उसके लिये शोक कैसा? उसी प्रकार अनिष्टकी प्राप्तिमें भी ज्ञानकी दृष्टिसे शोक करना उचित नहीं है। इस बातको एक दृष्टान्तके माध्यमसे सरलतासे समझा जा सकता है। मान लीजिये स्वप्नमें किसी व्यक्तिको कोई रोग हो जाय, जेल अथवा बन्धन हो जाय अथवा जलप्लावन आदि कोई अन्य संकट उत्पन्न हो जाय या बाघ, भालू, सर्पादिसे भय प्राप्त हो जाय तो नेत्र खुलनेपर उस अनिष्टकी सत्ता नहीं रहती। तब विचार करनेपर यह समझमें आता है कि स्वप्नके समय भी उसका अभाव ही था। अज्ञानके कारण अथवा निद्रादोषके फलस्वरूप अकारण ही उस भयकी प्रतीति हो गयी थी, जिसके कारण उस स्वप्नको देखनेवाला व्यक्ति दु:खी हो गया था। इस दृष्टांतसे हमें यह बोध होता है कि यदि जाग्रत् अवस्थामें हमें अपने मनके प्रतिकूल किसी अनिष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है तो वह भी वास्तवमें असत् ही है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि कुछ समय पश्चात् उस वस्तुका अभाव हो जाता है और जिस वस्तुका अभाव हो जाता है, वह वास्तवमें है ही नहीं, केवल प्रतीत होती है। ज्ञान होनेके उपरान्त दृश्य जगत्का अभाव हो जाता है—ऐसा समझकर विवेकी पुरुषको अनिष्टकी प्राप्तिमें भी शोक नहीं करना चाहिये। गीतामें भगवान् अर्जुनको यही बात समझाना चाहते हैं।

जिस प्रकार ज्ञानकी दृष्टिसे इष्ट वस्तुके वियोग और अनिष्ट वस्तुके संयोग होनेपर शोक करनेका कोई औचित्य नहीं है, उसी प्रकार भक्तकी दृष्टिमें संसारके समस्त पदार्थ—जड़ अथवा चेतन सभी भगवान्के ही होते हैं—**वासुदेवः सर्वम्।** ऐसी स्थितिमें यदि किसी व्यक्तिका पुत्र मर गया, पत्नी स्वर्ग सिधार गयी, धन नष्ट हो गया, पद-प्रतिष्ठा चली गयी तो उसे ऐसा समझना चाहिये कि वह वस्तु कहीं गयी नहीं, अपितु उसका स्थान-परिवर्तन हो गया है; क्योंकि जब सब कुछ भगवान्का है और भगवान् सर्वव्यापी हैं, सब जगह और सब कालमें हैं, तब जो वस्तु हमसे छिन जाती है, वह भगवान्के राज्यको छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं जा सकती। वह भगवान्के ही भण्डारमें रहती है। जब सब कुछ भगवान्का है, तब यदि वे अपनी किसी वस्तुको एक स्थानसे हटाकर दूसरे स्थानपर ले जाते हैं तो हमें उसके लिये दुःखी क्यों होना चाहिये। स्वामीको अपनी वस्तुको कहींपर भी ले जानेका सर्वाधिकार है। इस बातको एक दृष्टान्तके द्वारा आसानीसे समझा जा सकता है।

मान लीजिये एक सेठकी कई दुकानें हैं अथवा सरकारी बैंक जगह-जगहपर हैं। यदि वह सेठ अपनी दुकानका कुछ सामान आवश्यकतानुसार दूसरी जगह भेजता है अथवा सरकारी बैंक अपनी एक शाखाका कुछ धन अपनी दूसरी शाखामें स्थानान्तरित करता है तो मुनीमको अथवा बैंक कर्मचारीको इसके लिये रोनेकी अथवा मन मैला करनेकी क्या आवश्यकता है? यदि वे ऐसा करते हैं तो नितान्त मूर्खतापूर्ण कृत्य ही करते हैं। मालिक अपनी इच्छासे या आवश्यकतासे अपनी वस्तुको कहीं भी रख सकता है। सच्चा सेवक तो वही है, जो मालिकके इच्छानुसार कार्य करे। इसी प्रकार जो मनुष्य भगवान्की वस्तुको अपनी मानकर भगवान्के माँगनेपर देनेमें आनाकानी करता है अथवा मन मैला करता है वह बेईमान है, भक्त नहीं। भक्तको तो प्रभुके विधानमें सदैव प्रसन्न और सन्तुष्ट रहना होता है। भगवान्की प्रत्येक क्रिया निर्भ्रान्त एवं हितकी होती है और जो कुछ भी होता है वह प्रभुकी इच्छा, प्रेरणा और शक्तिसे होता है, ऐसा समझकर वह प्रत्येक घटना एवं परिस्थितिमें अविचलित रहता है। भक्तके लिये कोई भी स्थिति शोक करनेयोग्य नहीं होती, हमारे पास जो भी वस्तु है, वह भगवान्की धरोहर है। हम किसी भी वस्तुके मालिक नहीं है, अपितु न्यासी हैं। भगवान् जब चाहें, अपनी वस्तु हमसे वापस ले सकते हैं। धरोहरको वापस लौटानेमें जो आनाकानी करता है, वह तो बेईमान है और विश्वासघाती कहलाता है। धरोहरको लौटानेपर शोक करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठना चाहिये। इसलिये एक भक्तको भगवान्की वस्तु भगवान्को सौंप देनेमें प्रसन्नताका ही भान होता है।

परिवर्तन प्रकृतिका स्वभाव है और वह प्राणिमात्रके लिये सर्वदा हितकारी ही होता है। जो कुछ भी हमें मिला है, हमारी पात्रताके अनुसार मिला है और जो हमें नहीं मिला है, उसके लिये हमारी पात्रता थी ही नहीं। जो प्रिय या इष्ट वस्तु हमसे छूट गयी है, उसके लिये यह मानना चाहिये कि उसकी अवधि पूरी हो गयी है। इसके विपरीत न चाहते हुए भी जो अप्रिय वस्तु हमें प्राप्त हुई है अथवा अनिष्टका संयोग प्राप्त हुआ है, वह हमारे पाप हरण करने और हमें निर्मल बनानेके लिये आया है। इसलिये किसी भी परिस्थितिमें दुःखकी कोई बात ही नहीं है। यदि कोई व्यक्ति स्त्री, पुत्र आदिको भगवान्की वस्तु न समझे तो भी उसे यह समझकर प्रसन्नता होनी चाहिये कि मेरी स्त्री, मेरा पति अथवा मेरा पुत्र भगवान्के पास उनकी रक्षामें पहुँच गया है। जितनी सुरक्षा उसकी भगवान् कर सकते हैं, उतनी सुरक्षा तो वह कर ही नहीं सकता था। ऐसी स्थितिमें अपनी प्रिय वस्तुको अपनेसे कहीं अधिक समर्थ एवं प्रेमी रक्षककी देख-रेखमें रखकर उसे शोककी अपेक्षा प्रसन्नता ही होनी चाहिये। हमारे सार्वभौम ग्रन्थ गीताका यही उपदेश है। यदि हम इस देशनापर चल सकें तो हमारे सभी प्रकारके शोक एवं दुःख दूर हो सकते हैं और हम एक आनन्दमय-सुखमय जीवन व्यतीत करनेमें समर्थ हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव! यह सभीको विदित है कि सर्वांशमें तो कभी किसीके जीवनमें अकर्तव्य तथा असाधन नहीं होता। किसी-न-किसी अंशमें कर्तव्यपरायणता आदि साधन सभीके जीवनमें रहते ही हैं। आंशिक साधनके आधारपर अपनेको सन्तुष्ट करना बड़ा ही भयंकर असाधन है। इससे सजग साधकको बड़ी ही सावधानीपूर्वक अपनेको बचाना चाहिये।

यह तभी सम्भव होगा, जब साधकको आंशिक असाधन भी असह्य हो जाय। आंशिक साधनको साधना नहीं मानना चाहिये। साधना एक अलौकिक तत्त्व है। मानवने उसकी खोज की है। साधना मानवकी उपज नहीं है अपितु ईश्वरीय शक्ति है। ईश्वरीय शक्ति अनन्त और अविनाशी है। उसका कभी नाश नहीं होता।

यदि यह कह दिया जाय कि साध्यके समान ही साधना भी अनुत्पन्न हुआ तत्त्व है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। साधनामें ही साधकका अस्तित्व विलीन हो जाता है। साधना सदैव साध्यसे अभिन्न है। असाधन प्राकृतिक नहीं है। मानव अपनी ही भूलसे असत्के संगको अपनाकर असाधनको जन्म देता है।

जिसे मानवने अपनी भूलसे उत्पन्न किया है, उसका नाश भूलरहित होनेपर ही होगा। इस दृष्टिसे भूलरहित होनेमें ही मानवका पुरुषार्थ है। भूलरहित होनेके लिये अपनी भूलका अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है।

अपनी भूलका अनुभव तभी होगा, जब आंशिक साधनाको अपनी साधना स्वीकार न किया जाय, अपितु आंशिक असाधनको भूल मान लिया जाय। भूल कितनी ही पुरानी क्यों न हो, यदि उसे नापसन्द कर दिया जाय तो तुरंत मिट जाती है। भूल मिटानेमें अधिक समय नहीं लगता। भूलको भूल अनुभव करनेमें भले ही समय लग जाय।

जिस साधकको पर-दोष-दर्शनमें सुख मिलता है, वह बेचारा अपनेहीद्वारा अपनी भूलको पुष्ट करता है और फिर अपने दुःखका कारण दूसरोंको मानता रहता है। उसका परिणाम यह होता है कि नित नये दुःखमें आबद्ध होता रहता है। यद्यपि सुख-दुःख प्राकृतिक तथ्य हैं, पर साधन-सामग्री हैं।

सत्यको स्वीकार करनेपर सुख-दुःख साधन-सामग्रीके अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाते। इस दृष्टिसे प्राकृतिक न्यायसे आये हुए सुख-दुःख दोनोंहीसे साधक साधननिष्ठ हो सकता है। साधननिष्ठ होनेमें तो एकमात्र असत्का संग बाधक है।

सत्यको स्वीकार करनेपर सभी बाधाएँ स्वतः नष्ट हो जाती हैं—यह साधननिष्ठ साधकोंका अनुभव है। यह भलीभाँति स्पष्ट है कि सत्यको स्वीकार किये बिना कामकी निवृत्ति, जिज्ञासाकी पूर्ति और प्रेमकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। इस कारण शीघ्रातिशीघ्र बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयोंको सहन करते हुए भी सत्को स्वीकार करनेके लिये सतत प्रयत्नशील होना चाहिये। सफलता अवश्यम्भावी है।

सर्वसमर्थ प्रभु अपनी अहैतुकी कृपासे मानवमात्रको सत्को स्वीकार करनेकी प्रेरणा प्रदान करें, जिससे मानव उनका होकर सदाके लिये सब प्रकारसे पूर्ण हो जाय।

श्रद्धाकी प्रगाढ़ताका नाम ही निष्ठा है। जिस बातमें मनुष्यकी निष्ठा होती है, वह उसका त्याग किसी हालतमें भी नहीं कर सकता। जैसे, किसीकी सत्यमें निष्ठा है तो वह किसी भी भय अथवा प्रलोभनके कारण सत्यका त्याग नहीं कर सकता। उसको यदि स्वप्नमें भी कोई सत्यके त्यागकी बात कहे तो उसे वह स्वीकार नहीं करेगा।

उसके जीवनमें चाहे जितनी कठिनाइयाँ आयें, परंतु सत्यके त्यागकी बात उसके मनमें कभी नहीं आती। न ही उसके मनमें कभी यह भाव आता है कि सत्यके लिये मैं इतने कष्ट उठा रहा हूँ। सत्यको त्यागकर वह जीना भी नहीं चाहता।

जैसे राजा हरिश्चन्द्रपर कितनी विपत्तियाँ आयीं, परंतु वे न तो घबराये और न सत्यको त्यागनेकी बात ही कभी उनके मनमें आयी, सहर्ष सब कठिनायोंको सहन करते हुए सत्यके पालनमें तत्पर रहे। यह है सत्यमें निष्ठाकी पहचान!

अब रही निष्ठाकी प्राप्तिकी बात। तो सत्यनिष्ठ होनेके लिये प्रथम सत्यप्रतिज्ञ होना पड़ेगा। सत्यकी प्रतिज्ञा किये बिना कोई भी मनुष्य सत्यनिष्ठ नहीं हो सकता। इसलिये पहले हमें सत्यकी प्रतिज्ञा यानी सत्यका व्रत लेना होगा। फिर सत्यमें पूर्ण विश्वास तथा प्रगाढ़ श्रद्धा होनेपर सत्यनिष्ठाकी प्राप्ति होगी। ॐ आनन्द!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुखकी चाह, दुःखको बुलावा'

(श्रीमहेन्द्रजी बंसल)

कुछ समय पूर्वकी बात है, मैं अपने एक मित्रसे मिला था। उसने एक-दो महीने पहले मुझसे पूछा था कि क्या तुम सुखी हो? उस प्रश्नसे एक बार तो मैं चौंका, फिर संयत हो मैंने उससे कहा कि 'सुख ऐसी चीज है, जिसके बारेमें ज्यादा न सोचें तो अच्छा है। भगवत्कृपासे जीवन जैसे चल रहा है, चलने दो।' मेरी इस बातसे वह बहुत खुश हुआ। उसने कहा—आपकी बातसे मैं भी सहमत हूँ। मैंने भी एक किताबमें पढ़ा था कि जब कोई आदमी बीमार होता है, तो यदि वह अपनी बीमारीके बारेमें ज्यादा न सोचे तो उसके लिये अच्छा होता है। इसी तरहसे इनसान भी सुख और दुःखके बारेमें ज्यादा न सोचे तो अच्छा है। उस समय हमलोगोंकी बात पूरी हो गयी और हम दोनों सन्तुष्ट हो अपने-अपने रास्ते चल पड़े।

जिसने मुझसे प्रश्न पूछा था, वह आदमी समाजमें अच्छे मुकामपर है। उसने काफी पैसा कमा लिया है। उसका काम-धंधा भी अच्छा चल रहा है, फिर भी उसने मुझसे कहा—उसे लगता है कि वह तो जीवनमें कुछ नहीं कर पाया। सब कुछ होनेपर भी चारों ओर निराशा ही दिखती है।

मैं सोचने लगा कि इतना होनेके बाद भी वह आदमी निराश था तो इसका कारण क्या हो सकता है? फिर मुझे लगा कि व्यक्ति बड़े-बड़े सपने पाल लेता है, किंतु उनका पूरा होना तो सम्भव नहीं होता, इसीलिये वह दुःखी होता है। वस्तुतः जीवनकी हकीकत उसे मालूम नहीं रहती। उसे अपनी बुद्धिमत्तापर, अपनी कुशलतापर मिथ्या विश्वास होता है तथा भाग्यपर भी उसे बहुत भरोसा होता है। किंतु व्यवहारमें कुछ और ही घटित होता है। जब उसका स्वप्निल मोहजाल देर-सबेर टूट ही जाता है तो वह उसे सहन नहीं कर पाता और दुःखी हो जाता है। ऐसा घटित होना आम बात है। अतः ऐसे सुखकी चाह नहीं करनी चाहिये, जो दुःखको जन्म दे।

दुःखी होनेका एक बड़ा कारण यह भी प्रतीत होता है कि इनसानको लगता रहता है कि जब वह इस दुनियासे चला जायगा तो उसका कोई नाम नहीं रहेगा। उसे लगता है कि वह बहुत बड़ा आदमी हो गया होता तो उसका नाम होता, इसका उसे मन-ही-मन असन्तोष होता है। वह भूल जाता है कि आजतक दुनियाके इतिहासमें लाखोंकी संख्यामें बड़े-बड़े लोग हो चुके हैं, परंतु कौन किसको जानता है, यह नामकी हस्ती एक दिन तो मिटनेवाली ही है। नाम-बड़ाईकी चाह दुःखका महान् कारण है। हमारे जानेके बाद हमारा नाम नहीं होगा, यह सोच-सोचकर जो हम दुःखी जीवन जी रहे हैं, इससे बड़ी मूर्खता और क्या हो सकती है? महत्त्वाकांक्षाकी पूर्तिके लिये मनुष्यको कोशिश करते रहना चाहिये, पर इसे लालसा न बनने दें। अपनी सुख-शान्ति भंग न करें। अपना विवेक न खोयें।

एक बार मेरे एक साथीने मुझसे सत्संगमें चलनेको कहा। सत्संगका विषय था कि हम सुखी कैसे रहें! वह मेरा साथी काफी पैसेवाला है। समाजमें उसकी इज्जत है, नाम है, परंतु उसे भी सुखकी जरूरत पड़ रही थी। मैंने मजाकमें कहा, तुम्हें सुखकी क्या जरूरत है? तुम्हारे पास कोई कमी तो है नहीं। इसपर वह कुछ बोला नहीं, पर उसका मौन उत्तर यही था कि इनसान तथाकथित बड़ा होनेके बाद भी सुखके लिये कितना तड़पता रहता है, यह तो कोई अनुभवसे ही जान सकता है।

मूलभूत बात यही है कि हम सुखके बारेमें ज्यादा सोचें नहीं तथा अपनी भौतिक उन्नतिके लिये अपनी आत्माको बाजूमें न रख दें। भौतिक उन्नति हो, पर उसके लिये अपना विवेक नहीं खोना चाहिये।

यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि जीवनमें कोई कार्य करते समय विवेकका साथ न छोड़े। लोग नाम कमानेकी चाहमें अपने जीवनको झोंक देते हैं। वे बेहद मेहनत करते हैं। इससे वे कई बार पैसा कमानेमें तो सफल हो जाते हैं। उनका नाम भी हो जाता है, परंतु सुखके लिये वे भटकते रहते हैं। अतः भौतिक संसाधनोंमें सुखकी खोज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना दु:खको ही बढ़ावा देना है।

यदि आप सच्चा नाम चाहते हैं तो उसका एक आसान-सा तरीका है कि लोगोंसे प्यार करना सीखें। इस बारेमें एक उदाहरण प्रस्तुत है। बहुत साल पहले एक छोटा-सा लेख मैंने पढ़ा था, जो कि एक सच्ची घटनापर आधारित था। यह घटना शायद अमेरिकाके किसी शहरमें घटी थी। एक साधारण व्यक्ति था। वह एक छोटे-से कसबेमें रहता था। उस कसबेके बाजारसे जब वह गुजरता था तो करीब-करीब हर दूकानदारसे दुआ-सलाम करते हुए जाता था। वह हर किसीसे मधुर सम्बन्ध बनाये हुए था। जब उस आदमीकी मृत्यु हुई तो पूरा कसबा उसके अन्तिम संस्कारमें शामिल था।

जीवनके लिये सुखके संसाधनोंकी बात की जाय तो यूरोप और अमेरिकाके विकसित देशोंमें एक आम नागरिकके पास जीवन-यापन करनेके लिये बहुत कुछ है। उनकी न्यूनतम जरूरतें पूरी हो जाती हैं। सरकारकी ओरसे उन्हें सामाजिक सुरक्षा प्राप्त है। सुखके कई साधन उनके पास होते हैं, फिर भी उन्हें सुखकी इतनी चाहत लगी रहती है कि बहुत-से लोग इन सब चीजोंसे ऊब जाते हैं। अति सुखके चक्करमें वे नशीली दवाइयोंके आदी हो जाते हैं और अपनी जिन्दगी बरबाद कर देते हैं। अतः इन साधनोंमें सुख मत खोजो, यह सुखका—आनन्दका रास्ता नहीं है। असली सुखकी चाह है तो बाहरकी ओर मत देखो, अपने अन्दरकी ओर झाँको।

आजके युवा सुखके दीवाने होते हैं, वे थोड़ी देर भी उसके बिना नहीं रह सकते। उन्हें टायॅलेट, बाथरूम हर जगह रेडियो चाहिये। बाहर जायँगे तो वॉकमैन चाहिये। वे जोर-जोरसे म्यूजिक सुनना चाहते हैं। उन्हें लगता है कि इसमें उन्हें बहुत सुख मिलेगा और इस चाहमें वे हमेशा भटकते रहते हैं। परंतु सुखकी प्यास मिटती नहीं है, अपितु वह अतृप्त ही रह जाती है, बढ़ती ही जाती है। मतलब यह कि उन्हें हमेशा कमी महसूस होती रहती है। इसीका नाम है तृष्णा, तृष्णा कभी जीर्ण नहीं होती, वह नित युवा बनी रहती है, तृष्णा जीर्ण नहीं होती, वह हमें जीर्ण कर डालती है। अतः यदि सुखकी चाह है तो दु:खरूपी इस तृष्णाका परित्याग करो।

कई लोग कहते हैं कि जीवनका क्या भरोसा! कभी भी जीवन खत्म हो जाय। दुर्घटना, बीमारीसे या और कोई कारणसे तो फिर मौज-मस्ती क्यों न की जाय? उनकी यह बात सही है। जीवनका कोई भरोसा नहीं है, परंतु मौज-मस्ती करनेसे वे क्या पा लेंगे! जीवनका अन्त तो होगा ही, परंतु मौज-मस्ती करनेसे जो काम करनेमें वे पीछे रह जाते हैं या पढ़ाई करनेमें पीछे रह जाते हैं, उसके कारण उन्हें आगे जाकर जो तकलीफ उठानी पड़ती है, इसे वे भूल जाते हैं। अतः मौज-मस्तीको भूलो और अपने सच्चे स्वरूपका स्मरण करो। ऐसी मौज-मस्ती करो कि तुम उनका गुलाम न बनो। जिन्दगी मौज-मस्तीके लिये नहीं है, यह कुछ कर गुजरनेके लिये है।

गीतामें कहा है कि कर्म किये जा, फलकी चिन्ता मत कर। हमें अपना जीवन वैसे ही बिताना चाहिये। राजा जनकको विदेह माना गया है। वे राजा थे, फिर भी उन्हें योगियोंसे, ऋषि-मुनियोंसे और सन्तोंसे श्रेष्ठ माना गया है। सुननेमें तो यह बात कितनी अजीब लगती है कि वे राजाके सब सुख भोगते थे, फिर भी ऋषि-मुनियोंसे श्रेष्ठ हो गये; क्योंकि वे सुखोंके गुलाम नहीं थे। सुखोंमें आसक्त नहीं थे। वे एक आदर्श जीवन बिताते थे।

कहनेका सार यह है कि अपनी भौतिक तरक्कीके लिये कोशिश करें, पर अपना विवेक न खोयें, विवेक रहेगा तो चूक नहीं होगी। मनोरंजन करें, पर उसका गुलाम न बनें। नशीली चीजोंके व्यसनसे बचें। दूसरोंकी यथाशक्ति मदद करें। रातको सोनेसे पूर्व शान्तचित्तसे दिनभरकी बातोंपर विचार करें। अच्छे लोगोंकी संगति करें। कुछ समय एकान्तमें सच्चिन्तन करें, इससे तृष्णा मरती है और सच्चे अभ्युदयका रास्ता खुलता है। भूतकालकी गलतियों या असफलताओंपर पश्चात्ताप करें और उन्हें न दोहरानेकी प्रतिज्ञा करें। जीवनके प्रति नवीन उत्साह रखें। अपनी ऊर्जाको समझें और उसे अच्छे कार्योंमें व्यय करें। ऐसा करनेसे जीवनकी सोच बदलेगी, दु:ख भागेगा और सुख स्वतः ही वरण करनेके लिये उपस्थित होगा। सबसे अच्छी बात तो यही होगी कि सुखके मूल भगवान्‌को हमेशा याद रखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोज परम सत्यकी

(श्रीरघुकुलतिलकजी)

एक सर्वव्यापी, अनन्त, सहज चैतन्यमय, निराकार, निर्गुण, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, परब्रह्म परमात्माके अतिरिक्त कहीं भी, किसी कालमें भी कोई अन्य नहीं है।

भिन्न-भिन्न तरीकोंसे भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंमें, आश्रमोंमें, धर्मोंमें, भिन्न-भिन्न साधनोंद्वारा उस एक परमात्माकी ही उपासना, पूजा, ध्यान, जप, स्मरण, आराधना हो रही है। सब कर्म उसीकी सेवा-पूजामें अर्पण हो रहे हैं, जाने-अनजाने।

वह परमात्मा चराचर सब भूत-प्राणियोंमें, बाहर-भीतर, चारों ओर, कण-कणमें सर्वत्र परिपूर्ण है।

वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही समस्त चराचर जीवोंके रूप-नाम-आकारमें, उनके अपने जीवन-रूपमें, हर एक मनुष्यके निज सहज चैतन्यके रूपमें अवतरित हो रहा है।

मनुष्यको जिस परमात्मतत्त्वकी, परमतत्त्वकी, परम सत्यकी तलाश है, वह दिव्य निधि तो स्वयं उसीके पास है, उसीका स्वरूप है। हर जीवरूपमें स्वयं परब्रह्म ही प्रकट है।

निराकार, निर्गुण परमात्माका हर मनुष्य स्वयं एक साकार, सगुण, ज्ञान-शक्तियुक्त, चेतन-शक्तियुक्त स्वरूप है। प्रत्येक मनुष्यरूपमें, जीवरूपमें स्वयं सर्वव्यापी अनन्त चेतन परमात्मा मूर्तिमान् होकर दर्शन दे रहा है।

समस्त ब्रह्माण्ड, समस्त सृष्टिमें एक ही परम सत्ता है। परमात्मा ही सृष्टिकर्ता है। परमात्मा ही एकसे अनेक रूपोंमें दृष्टिगोचर रहा है।

वह सत्-चित्त-आनन्दघन परब्रह्म परमात्मा सब प्रकारसे सदा, सर्वदा, सर्वत्र परिपूर्ण है। यह जगत्, इसमें रह रहे सब चर-अचर जीव स्वभावसे उस परब्रह्म परमात्माकी दिव्यतासे ही पूर्ण हैं, क्योंकि ये सब-के-सब प्राणी उस अनन्त चेतन सर्वान्तर्यामी, पुरुषोत्तम, पूर्ण परमेश्वरकी ही संतानें हैं, उसीसे उत्पन्न हैं।

वास्तवमें वह परमात्मा ही भ्रमवश, मायावश, अज्ञानवश भिन्न-भिन्न नाम-रूपमें पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रभुकी मायाशक्ति ही है, जिसके कारण एक ही तत्त्व अनेक स्वरूपोंमें दिखलायी दे रहा है, निराकार साकार दिख रहा है, निर्गुण परमात्मा ही गुण और दोषोंसहित नजर आ रहा है, प्रतीत हो रहा है।

भ्रमवश मनुष्य अपनेमें और अन्य दूसरोंमें, जिनके वह सम्पर्कमें आ रहा है, गुण और दोष देख रहा है। यह मायाका कार्य है। यह अविवेक है।

वास्तविकता यह है कि मनुष्य कोई पृथक् एक स्थानीय, गुण और दोषोंसे युक्त व्यक्तित्त्व है ही नहीं। अहंकार (मैं-मेरा) जिसके कारण तू-तेराकी पृथक्-पृथक् भावना हो रही है, यह मिथ्या है। यह 'मैं-मेरा, तू-तेरा, वह-उसका, यह-इसका, जीव-ईश्वर' इस द्वैतभावकी पृथक्‌ताका मतिभ्रम अविवेक है, माया है।

यह प्रभुकी ही मायाशक्ति है, जिसने एक सर्व-व्यापक परमात्माको छिपा दिया है और पृथक्-पृथक् जीव-भिन्नताकी प्रतीतिका मतिभ्रम पैदा कर दिया है। यह मतिभ्रम उस मायापति परब्रह्म परमेश्वरकी सच्ची उपासनासे ही मिट सकता है।

ज्ञानमय पूजा यही है कि स्वयंमें आत्मरूप परमात्माका निरन्तर स्मरण किया जाय, जो भजन कहलाता है और समस्त कर्मोंद्वारा सर्वान्तर्यामी, घट-घटवासी परमात्माकी पूजाकी जाय।

'हम' नामकी कोई वस्तु है ही नहीं, एकमात्र एक परमात्मा ही स्वयं है, इसलिये जो कुछ भी हो रहा है, निर्माण, पालन या विनाश—यह सब परमात्माकी ही दिव्य इच्छासे हो रहा है। 'हम' हैं ही नहीं। इसलिये 'हमारे' हाथमें, 'हमारे' वशमें कुछ भी नहीं है। 'हम' तो मालिक परमात्माके केवल यन्त्रमात्र हैं। मन, बुद्धि, विवेक सब परमात्माके हैं। 'मैं-मैं' मिथ्या अहंकार भी उस लीलाधर परमात्माने ही धारण किया हुआ है, जिससे कि यह संसाररूपी नाटक—लीला चलती रहे।

सारा जगत् भगवान्‌से निकला है और इसमें सर्वत्र केवल भगवान् ही भरे हैं। भगवान् सर्वथा कल्याणमय सद्‌गुणसमुद्र हैं। अतः जगत्‌में भी सर्वत्र सर्वथा कल्याणमय गुणसमूह ही भरे हैं।

जब सर्वत्र केवल भगवान् ही भरे हैं, तो यह 'हम' रूपी मतिका भ्रम ही तो बाधा है। इस मिथ्या भ्रमका त्याग करना हमारी जिम्मेदारी है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीतामें पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञानकी चर्चा है। ग्रहण करना साधकका कार्य है। गीताके सातवें अध्याय (४-५)-में भगवान् कहते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—इन पाँच प्राकृतिक तत्त्वोंसे निर्मित ये सब शरीर और जगत् एवं मन, बुद्धि, अहंकार—यह आठ प्रकारसे विभाजित भगवान्‌की प्रकृति है। यह आठ प्रकारके भेदोंवाली तो अपरा अर्थात् भगवान्‌की जड़ प्रकृति है और इससे दूसरी, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, भगवान्‌की ही जीवरूपा परा अर्थात् चेतन प्रकृति है।

इससे पता चलता है कि सब कुछ यह जगत्‌रूपी खेल-तमाशा, रचना प्रभु परमात्माकी ही है और स्वयं वे ही इसमें दर्शक, दृश्य और दर्शनरूपसे मौजूद हैं।

मनसे परमात्मा ही विचारक हैं। बुद्धिसे वे ही निर्णय ले रहे हैं और 'मैं-मैं' अहंकार-रूप भरकर भी वे परमात्मा ही अभिनय कर रहे हैं। वे परमात्मा मन, बुद्धि, अहंकार—इन तीनोंसे परे हैं और निर्लिप्त हैं। उनकी स्मृतिसे देहाध्यासका विनाश होता है और सच्चे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरोगी शरीरसे ही मानव-जीवनके पुरुषार्थकी प्राप्ति

(श्रीबरजोरसिंहजी, एम०ए०)

हमारी भारतीय संस्कृतिमें पूज्य स्थान प्राप्त करनेवाले ऋषियों, मुनियों एवं सन्तोंका मत है कि संसारमें पहला सुख निरोगी काया है, अर्थात् शरीरका निरोग रहना और मनका स्वस्थ रहना सबसे बड़ा सुख है। यदि हमारे पास निरोगी शरीर नहीं है तो हम कोई भी कार्य सुचारु रूपसे नहीं कर सकते, हम स्वयं समाजके ऊपर भारस्वरूप हो जाते हैं और हम स्वयं समाजके लोगोंसे सेवा करवाते हैं तथा दूसरेका सेवारूपी कर्ज लेकर प्राण त्यागकर इस संसारसे विदा हो जाते हैं। ऋषि-मुनियोंने हमारे जीवनको चार आश्रमोंमें बाँट दिया है, जिसमें ब्रह्मचर्य आश्रम सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसी आश्रममें मनुष्यके जीवनका बनाव-बिगाड़ होता है। २५ वर्षका कार्यकाल ब्रह्मचर्य आश्रम माना गया है, इसमें मुख्यरूपसे शक्तिका और विद्याका अर्जन किया जाता है। इस आश्रममें हम यदि भोगी—विलासी हो गये तो हमारा स्वास्थ्य सदाके लिये खराब हो जाता है और हम बीमारियोंके चंगुलमें फँस जाते हैं। व्याधिग्रस्त तन-मनवाले व्यक्तिसे कुछ नहीं बन सकता, दुःखोंका अन्त होना ही आरोग्यताकी सच्ची प्राप्ति है। इस तरहकी आरोग्यता प्राप्त करना ही मानव-जीवनका सच्चा पुरुषार्थ है। यदि हम बीमार हैं तो जप-तप-साधना नहीं कर सकते, साधनामें सधैर्य जुटे रहनेकी शक्ति किसी बिरले सन्तमें ही हो सकती है।

स्वस्थ मन एवं निरोगी शरीरवाला मनुष्य ही मानव-जीवनके पुरुषार्थको सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। भारतीय दर्शनमें जीवनके चार पुरुषार्थ बताये गये हैं, जिनमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिके लिये मनुष्यका स्वास्थ्य उत्तम एवं दीर्घायु होना आवश्यक माना गया है। अर्थात् हम किसीके आश्रित न रहकर **'जीवेम शरदः शतम्'** सौ वर्षतक जिन्दा रहकर शुभ कर्म करते रहें, क्योंकि व्याधियोंसे ग्रस्त रहनेवाला मन ही मानवका शत्रु और इसके विपरीत यानी इसके वशमें न होकर स्वस्थ रहनेवाला मन ही मानवका मित्र है, जैसा गीतामें कहा गया है—

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥
(६।६)

आगे गीताके १५।४ में कहा गया है कि ऐसे मित्ररूप मनका सहारा लेकर परमपदकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहना ही मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। यथा—

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥

मानव-शरीरकी प्राप्ति बहुत दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद मानव-शरीर मिलता है। ऐसे कीमती दुर्लभ योनिको पाकर इन्द्रियोंके भोगोंको सुख मानकर बीमार होकर आयुको गँवाना बुद्धिमानी नहीं है। इसलिये हमें दीर्घ आयु प्राप्त करनेके लिये सदाचारयुक्त जीवन जीना चाहिये, क्योंकि सदाचारयुक्त जीवनका लम्बी आयुसे गहरा सम्बन्ध है। सत्य बोलने, क्रोध न करने, मद्यपान और विषय-भोगोंसे दूर रहने, प्रिय बोलने, शान्त रहने, पवित्रतासे रहने, हिंसा न करने, तपस्वी जीवन व्यतीत करने, पूज्योंकी सेवा करने, गरीबोंकी सेवा करनेसे व्यक्ति दीर्घायु प्राप्त करता है, इसके अलावा सन्तुलित नींद लेनेवाला, व्यायाम करनेवाला, प्राणायाम करनेवाला, तनावमुक्त हँसमुख जीवन जीनेवाला, दया-भाव रखनेवाला एवं अहंकाररहित व्यक्ति बड़े-बड़े रोगोंसे मुक्त हो जाता है तथा वह दीर्घायु-जीवन प्राप्त करता है। स्वस्थ-शरीरके लिये श्रीगीताजी (६।१६-१७)-में बताये गये नियमोंके अनुसार यथायोग्य आहार-विहारको भी दिनचर्यामें शामिल करना अति आवश्यक है यथा—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

हे अर्जुन! यह योग न तो बहुत खानेवालेका, न बिलकुल न खानेवालेका, न बहुत शयन करनेके स्वभाववालेका और न सदा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है। दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है।

दीर्घायु एवं आरोग्यताके लिये जहाँ सदाचारयुक्त जीवन-प्रणालीपर चलना आवश्यक हो जाता है, वहीं ईश्वरका भजन भी आवश्यक है, क्योंकि ईश्वरका भजन करनेवाले व्यक्तिके जीवनमें विघ्न और दुःख आते तो हैं, परंतु थोड़े ही समयमें चले भी जाते हैं। रोगोंसे छुटकारा पानेके लिये दवा और ईश्वर-आराधना ये दो उपाय हैं, क्योंकि जहाँ दवा नहीं काम करती, वहाँ ईश्वर-आराधना काम करती देखी गयी है।

उपर्युक्त मार्गपर चलकर यदि हमारे ऊपर ईश्वरकी कृपा हो जाय और हम निरोगी हो जायँ तो ईश्वरकी आराधना करते हुए हम अपने लक्ष्यको प्राप्त करनेमें सहज ही सफल हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[गतांक सं० ३ पृ०-सं० ५९२ से आगे]

गोवधके कारण ही तमोगुण बढ़ा है। रजोगुण और भोगवादी प्रवृत्ति बढ़ी है। अधर्म, अन्याय, अत्याचार बढ़ा है, तो यहाँसे जो सुधार होगा तो फिर सब ठीक हो जायगा। हालहीमें एक जगहसे सूचना प्राप्त हुई थी कि उत्तर प्रदेशके ही इलाकेमें करीब एक हजार गोवंश, जिसमें छोटे-छोटे बछड़े, बछिया और बड़ी-बूढ़ी गायें भी थीं, उनको कसाई घेरकर ले जा रहे थे। एक-दो सन्तोंने घेर करके उनको खदेड़ा और गायोंको बचानेका प्रयास किया, तो उस गाँवके लोग उन सन्तोंके साथ अभद्र व्यवहार करने, मारने-पीटने आ गये, 'हमने बेची हैं, तुम क्यों पकड़ रहे हो?' पचास-पचास, सौ-सौ रुपयेमें गाय बेच दी। बछड़े बेच दिये। किसीने तो पालनेका झंझट समझकर ऐसे ही दे दिये। बादमें थानेमें वे सन्त बैठे थे और रातको उनका फोन आया—महाराज! क्या करें। यहाँ कोई आस-पास गोसदन नहीं है। कहाँ ले जायँ? थानेदार कहता है कि बाबा! आप लोगोंने छुड़ाया है, तो हमारे पास कोई व्यवस्था नहीं है, आप ही इनकी व्यवस्था करो।

—यह सुनकर चित्त बहुत व्याकुल हुआ कि भई, गायकी रक्षा तो कैसे भी करना कर्तव्य है। सोचिये यह हालत है हिन्दुओंकी। अपनेको हिन्दू कहनेवाले, किसान और उत्तम जातिके कहनेवाले लोग, वे जानते हैं कि ये कसाई हैं और उनको गाय बेच रहे हैं—ये स्थिति हो गयी है। इसलिये बहुत बड़ी आवश्यकता है कि बड़ी मात्रामें गोसदन खोले जायँ और इस पुनीत कार्यमें सबको लग जाना चाहिये। भगवान्ने कृपा करके जिसको जितनी ऊर्जा प्रदान की है, सामर्थ्य प्रदान की है, उसका उपयोग गोसेवामें करे, गोरक्षामें करे।

कई प्रान्तोंमें गोहत्या-बन्दीका कानून बन गया, किंतु विडम्बना है कि इन्हीं प्रान्तोंसे गोधन कसाइयोंके पास जा रहा है, तो थोथे कानून बनानेसे क्या लाभ? जबतक उसको कठोरतापूर्वक लागू न किया जाय। आज बड़े-बड़े हॉस्पीटल खुल रहे हैं, बड़ी-बड़ी धार्मिक संस्थाएँ खुल रही हैं, बड़े-बड़े मन्दिर और मठ बन रहे हैं। यहाँ किसीका विरोध करनेका कोई प्रयोजन नहीं है, जो जहाँ हो रहा है, प्रभु-कृपासे ठीक ही हो रहा है, लेकिन इस समयकी आवश्यकता है कि गोशालाएँ बनें और उनमें यथार्थरूपमें गोसेवा हो, गोधनकी रक्षा हो, इससे श्रेष्ठ कर्म और कोई दूसरा नहीं है। सबसे श्रेष्ठ शुभ कर्म यही है; क्योंकि सर्वाधिक अत्याचार यदि किसी प्राणीपर हो रहा है तो वह है गाय।

आजकलकी शिक्षा ऐसी बनायी गयी है कि मनुष्यका पूर्वज बन्दर था। उसके पहले पूँछ थी, वह बादमें घिस गयी। भगवान् जाने कैसे पूँछ घिस गयी! आर्य यहाँ नहीं बसते थे। यह तो अनार्योंका देश था, आर्य बाहरसे आये—ऐसी-ऐसी बातें ग्रन्थोंमें पढ़ायी जा रही हैं। लोग पढ़ते हैं। दुर्भाग्य है देशका, ऐसी शिक्षा मिल रही है। आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा। जबतक यह परिवर्तन नहीं होगा, तबतक गायके प्रति महत्त्व-बुद्धि बननेवाली है नहीं। इसलिये बहुत बड़े पैमानेपर प्रयास करनेकी आवश्यकता है और इसके लिये पहली आवश्यकता यह है कि कम-से-कम जितने महात्मा हैं, आध्यात्मिक पथके पथिक महानुभाव हैं, वे चाहे किसी मतके हों, किसी सम्प्रदायके हों—सब कम-से-कम गोरक्षाके विषयमें एकजुट हो जायँ; क्योंकि गायके सम्बन्धमें किसीका कोई मतभेद नहीं हो सकता। गायके बिना कोई वैदिक उपासना सम्भव नहीं है। आज कोई लाखों रुपयोंका मन्दिर बना रहा है, कोई करोड़ों रुपयोंका, इस प्रकार होड़ लगी है तो ऐसी प्रवृत्ति छोड़ करके उन्हें चाहिये कि इन रुपयोंसे गोशालाएँ बनायें। इससे वस्तुतः भारतवर्षकी सच्ची सेवा होगी। सब प्रान्तोंमें दो-दो, तीन-तीन गोशालाएँ बड़ी-बड़ी बन जायँ तो वहाँकी सारी भूमि उर्वराशक्तिसे सम्पन्न हो जायगी, उपजाऊ हो जायगी और बेरोजगारीकी समस्याका कितने बड़े पैमानेपर समाधान हो जायगा। आज इन सबकी आवश्यकता है, इसीमें अपनी ऊर्जाका उपयोग करना चाहिये।

एक बार भगवान् शंकरसे ऋषियोंका कुछ अपराध बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया, तब ऋषियोंके क्रोधसे शंकरभगवान्‌के शरीरमें जलन होने लगी। उस जलनको मिटानेके लिये शंकरजी सुरभिगौकी शरणमें गये और उसकी स्तुति की। पुराणोंमें शंकरभगवान्‌द्वारा की गयी सुरभिगौकी स्तुति प्रसिद्ध है। तब सुरभिगौने अपना मुँह खोला और भगवान् शंकर उसके मुखमें चले गये। अब तो त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया। ब्रह्माजी, इन्द्रादि सभी देवता सुरभिगायके निकट गये और उसकी स्तुति की। बोले—हे माता! अष्टमूर्ति भगवान् शिव आपके उदरमें विराजमान हैं, इन्हें मुक्त कीजिये। तब भगवान् शिवने अवतार ग्रहण किया वृषभरूपमें, यही धर्म है। वृषभ क्या है? चतुष्पाद वृषभ—ये ही धर्म हैं। इनको नन्दी कहा गया। भगवान् शंकरने नीलवृषभका रूप धारण किया। उनकी सबने स्तुति की और उस समय उस नीलवृषभको धर्मका स्वरूप माना गया। इस पौराणिक कथासे यह स्पष्ट है कि धर्म भी गायसे प्रकट है। धर्मकी जननी भी गाय है। यदि गाय नहीं होगी तो धर्म भी नहीं होगा और शंकरजी धर्मपर आरूढ़ हैं अर्थात् शिवतत्त्वको ढोनेका सामर्थ्य धर्ममें ही है, किसी सामान्य प्राणीमें नहीं। भगवान् शंकर अपने श्रीअंगमें विभूति (भस्म) धारण करते हैं, वह गोमयकी ही भस्म है। गाय स्वाभाविक रूपसे चरती हुई गोबर करती है। जंगलमें वह सूर्यकी किरणोंसे सूख जाता है। उन कंडोंको संस्कृतमें आरण्यक कहते हैं। उस कंडेकी अग्निमें हवन करनेकी बहुत बड़ी महिमा है, उस कंडेकी भस्मको भगवान् शंकर धारण करते हैं।

सबको अपने-अपने वर्ण-धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये, पराये धर्मका नहीं। पर विशेष बात यह है कि गायकी सेवा करना चारों वर्णोंका धर्म है। कुछ ऐसे धर्म हैं, जिनका पालन सबको करना चाहिये। गाय सबकी माता है, सबको सुख देनेवाली है, इसलिये अपनी माताकी सेवा करना सबका धर्म है। चारों वर्ण और चारों आश्रमोंका परम धर्म है—गोसेवा करना। भगवान्‌ने कृष्णरूपसे अवतार लेकर गोसेवा करना ही सिखाया। ठाकुरजी सब जानते हैं, उनसे कुछ छिपा थोड़े ही है। सत्ययुग एवं त्रेताके लोगोंको गोसेवा सिखानी नहीं है। द्वापरके लोगोंको भी कुछ सिखानेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि उस समयतक गाय अपने महिमामण्डित रूपसे विराजमान थी। गाय सबके हृदय और प्राणमें बसी हुई थी उस समयतक, इसलिये उनको विशेष समझाने-सिखानेकी आवश्यकता नहीं थी, किंतु कलिकालके लोग प्राणिमात्रकी तथा जगत्‌की जननी गायकी महिमाको नहीं समझेंगे, इसलिये भगवान्‌ने गोचारण करके लोगोंको गोसेवाकी शिक्षा दी।

वास्तवमें सच्चे अर्थोंमें श्रीकृष्णभक्त कहलानेका अधिकारी वही है, जो श्रीकृष्णद्वारा प्रतिष्ठित गोसेवा, गोचारण और गोमहिमाको स्वीकार करे।

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका आश्रय—गाय

कामधेनुके दूधकी खीरसे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—चारों सरकार प्रकट हुए। एक बार प्रभु श्रीरामने जानकीजीसे कहा, देखो देवि! मैं अपने प्राणोंका परित्याग कर सकता हूँ, तुम्हारा परित्याग कर सकता हूँ। लक्ष्मणका भी परित्याग कर सकता हूँ, लेकिन गाय और ब्राह्मणकी रक्षाकी प्रतिज्ञाका परित्याग नहीं कर सकता। गाय और ब्राह्मण धर्मके आधार हैं। *'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'* इन चारोंसे चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। हमारे यहाँ ब्राह्मण धर्म हैं, ब्राह्मण धर्मशास्त्रके ज्ञाता हैं। धर्म शील है, अर्थ है गाय। हमारी अर्थव्यवस्थाका आधार गाय है और जबतक यह बात हमारी समझमें नहीं आयेगी कि हमारी अर्थव्यवस्थाका आधार गाय है तबतक भारतकी गरीबी मिटनेवाली नहीं है। गोमांस-विक्रय-जैसे जघन्य पापके द्वारा इसकी दरिद्रता हटेगी नहीं, बढ़ती चली जायगी। यदि यह पाप होता रहा तो एक दिन ऐसा आयेगा कि एक दाना नहीं मिलेगा खानेको। 'अर्थशास्त्र' के प्रणेता कौटल्य*ने अर्थव्यवस्थाका मूल गायको माना है और हमारे पुराणोंमें भी राजाओंकी समृद्धि गायसे आँकी जाती थी। धर्मराज युधिष्ठिरके सम्बन्धमें कहा जाता है कि दस हजार गोसदन तो उनके इन्द्रप्रस्थके क्षेत्रमें ही थे और उस प्रत्येक गोसदनमें अस्सी हजारसे कम गोवंश नहीं था। राजा और प्रजा दोनोंकी समृद्धि गायकी सम्पत्तिसे ही आँकी जाती थी। गायका आदर होने लग जाय और सनातन धर्मकी मर्यादाको हम सही-सही माननेवाले हो जायँ तो यह धरती बिना जोते-बोये अन्न देनेवाली हो जायगी। इस बातको

* कूटो घटः तं धान्यपूर्णं लान्ति संगृह्णन्ति इति कुटलाः। कुम्भीधान्याः त्यागपरा ब्राह्मणश्रेष्ठाः। तेषां गोत्रापत्यं कौटल्यो विष्णुगुप्तो नाम। (कौटल्य-अर्थशास्त्र)

अर्थात् कूट घटका नाम है। जो लोग एक घटसे अधिक अन्नका संग्रह नहीं करते थे, उन कुम्भीधान्य नामक अत्यन्त श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका गोत्रापत्य कौटल्य कहलाता है। कौटल्यका मुख्य नाम विष्णुगुप्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेशमात्र भी असत्य नहीं मानना चाहिये, पर यह बात तभी साकार हो सकेगी, जब धरतीपर गायका आदर होगा, क्योंकि यह कामधेनु है। एक सन्तने कहा है कि यदि हृदयमें सद्भाव हो तो प्रत्येक तुलसीका पौधा कल्पवृक्ष है, प्रत्येक गाय कामधेनु है और प्रत्येक शालग्राम-शिला चिन्तामणि है। ये तीनों साक्षात् परमात्माके स्वरूप हैं।

परंतु विचार करनेपर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गाय केवल अर्थ ही नहीं है, गाय धर्म भी है, कामधेनु होनेसे काम भी है और मोक्षप्रद होनेसे मोक्ष भी है। धर्मात्मा, श्रद्धावान् तथा आस्तिक पुरुषको गायकी सेवासे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है, लेकिन जो नास्तिक हैं, जो धर्म तथा मोक्ष नहीं मानते हैं, अर्थ तथा कामका महत्त्व तो उनकी दृष्टिमें भी रहता ही है, तो अर्थ तथा कामकी प्राप्तिके लिये उन्हें भी गौकी शरण ही लेनी पड़ती है।

वर्तमान-स्थिति

वर्तमानमें कदम-कदमपर मद्यशालाएँ खुली हैं। राम! राम! यही उन्नति है? जैसे कदम-कदमपर मद्यशालाएँ हैं, वैसे ही कदम-कदमपर गोशालाएँ होंगी, तब भारतवर्षकी उन्नति होगी। गायका दूध पीनेको मिलेगा, तब उन्नति होगी।

उन्नति है जीवनमें सात्त्विकताका विकास। यही उन्नति जीवनको समृद्ध बनाती है। महापुरुषोंसे सुननेको मिला है कि सर्वाधिक सात्त्विकता गायमें निहित है, इसलिये गोसेवा और गव्य पदार्थोंका सेवन—यही एक उपाय है अपनेमें सात्त्विकताके अर्जनका। इस प्रकारसे सात्त्विकताका अर्जन करके ही हमारी वास्तविक उन्नति होगी।

आज गायकी सेवा ठीकसे नहीं हो पा रही है, बहुत-सी गोशालाएँ ऐसी हैं, जहाँ यह व्यवस्था नहीं है कि वे दो समय गायकी भिक्षा ठीकसे करा सकें, अभावग्रस्त हैं। गौएँ सटके खड़ी रहती हैं, उन्हें खुली जगह घूमनेको नहीं है, इसलिये वर्तमानका समय ऐसा है कि गौओंका ध्यान रखा जाय। सच्ची ठाकुरसेवा गोसेवा है और गोसेवा ही सच्ची सन्तसेवा है। गोसेवा ही दीन, दुःखी, दरिद्रकी सेवा है और यदि गोसेवा ठीकसे होगी तो तभी गोसेवापर आधारित ठाकुरसेवा, सन्तसेवा और अतिथिसेवा ठीकसे हो सकेगी।

बड़े-बड़े मन्दिरोंमें बड़े-बड़े उत्सव, महोत्सव मनाये जा रहे हैं, बड़े-बड़े खर्च हो रहे हैं, अच्छी बात है, होने ही चाहिये। उत्सवोंसे मन्दिरकी शोभा है, किंतु वहाँ गव्य पदार्थोंका उपयोग भगवान्‌की सेवामें नहीं किया जा रहा है, इसलिये वह ईमानदारीकी ठाकुरसेवा नहीं है, वह ठाकुरसेवाके नामपर अपना प्रचार-प्रसार है, अतः इससे बचना चाहिये। [**क्रमशः**]

सत्संगति

[कहानी]

(श्री 'चक्र')

'कई बार सोचा अब मन्दिर नहीं जाऊँगा, पुजारीजी बेकार लज्जित करते हैं। अपने तो घरबार छोड़ा, दूसरोंको भी वैसा ही बनाना चाहते हैं। उन्हें क्या पता कि सुरामें कितनी मधुर मादकता है! पर साथी मानते ही नहीं, सन्ध्याके रामायणगानमें कुछ मनोविनोद भी हो जाता है। नगरसे जबसे आये, इस ग्राममें जी बहलानेका और कोई साधन ही नहीं।'

सोचते-सोचते बाबू गिरिधारीसिंह पुजारीको मन-ही-मन भला-बुरा कहने लगे। 'मेरी जमींदारीमें रहता है, पर मेरा तनिक भी दबाव नहीं मानता। सब लोगोंके बीचमें मुझे लज्जित करता है। जाने मेरे पीछे क्यों पड़ा है! यहाँके लोग उसे इतना मानते हैं कि उसे हटाना कठिन ही नहीं, असम्भव है।'

आप यहाँ इस विष्णुपुरके जमींदार हैं, प्रायः जौनपुर रहते हैं और कभी-कभी जमींदारीके कार्यसे ग्राममें आ जाते हैं। वैसे आपका स्वभाव सीधा है, दुःखियोंको देखकर दया भी आ जाती है। रोता हुआ कृषक लगानमेंसे बहुत-कुछ छूट आपसे पा लेता है, पर आप हैं पूरे विलासी। शहरमें तो पता नहीं क्या होता होगा, यहाँ भी विदेशी सुरा साथ आती है। जुआ खेलनेमें बड़े पटु हैं और गाने-बजानेके पक्के शौकीन।

ग्राममें तथा आसपास जितने गाने-बजानेवाले तथा भाँग-गाँजाके प्रेमी हैं, बाबू साहबके समीप दिनभर एकत्र रहते हैं। यहाँ जुआ तो क्या होगा, ताश अवश्य दिनभर चलता है। जो व्यसन ग्रामके रहनेवालोंको ज्ञात न हों, उन्हें कोई आपसे सीख ले। दिनभर निन्दा तथा परचर्चा ही तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती है आपकी मण्डलीमें।

ग्रामके बाहर एक श्रीहनुमान्‌जीका मन्दिर है। मन्दिरके साथ ही एक कुटिया है और सामने पीपलका विशाल वृक्ष है। एक दिन वहाँ एक साधु आये और मन्दिरपर रात्रि-विश्रामके लिये रुक गये। ग्रामके लोगोंने आग्रह किया 'आप यहीं रहकर हनुमान्‌जीकी पूजा करें।' वे वहीं रहने लगे।

ग्रामके लोग नित्य अपने यहाँ थोड़ा आटा, चावल, दाल आदि भोजन बनानेके पूर्व अलग रख देते हैं, वे साधु सप्ताहमें एक दिन सबके यहाँसे उसे ले आते हैं। वही उनकी आजीविका है। लोग उन्हें अब 'पुजारी बाबा' कहते हैं। पुजारी बाबा सौम्यताकी मूर्ति हैं। उन्हें देखते ही हृदय प्रसन्न हो जाता है। छोटे बच्चे सदा उनकी कुटी घेरे रहते हैं। ग्राममें किसीके रुग्ण होनेपर पुजारी बाबा बड़ी लगनसे उसकी सेवा करते हैं। वे सबकी आपत्तिके सहायक हैं।

प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें नित्य क्रियासे निवृत्त होकर वे स्नान करके पूजापर बैठ जाते हैं। आठ बजे पूजा समाप्तकर श्रीरामायणजीकी पुस्तक लेकर पीपलके नीचे आ बैठते हैं। उनका पाठ उच्च स्वरसे चलता है, कोई आ बैठा तो उसे अर्थ भी समझाते जाते हैं। ठीक मध्याह्नमें भोजन बनना प्रारम्भ होता है और दो बजे भोग लगता है। प्रसाद पाकर माला हाथमें ले वे कुटियाके बाहर बैठ जायँगे, जो आयेगा, उसकी बातें भी सुनेंगे और जप भी चलता रहेगा। आवश्यकता हुई तो माला लिये ही ग्राममें चले जायँगे।

ग्राममें लोग पुजारी बाबाका बड़ा सम्मान करते थे। बाबाके ही उद्योगसे नित्य सन्ध्याको पीपलके नीचे रामायणका पाठ सस्वर होता था। अपने गृहकार्योंसे निवृत्त होकर ग्रामके कृषक कुटियापर जाते और वहाँ बड़े प्रेमसे दो-तीन घण्टे रामायणगान होता। इस प्रकार वह मन्दिर ग्राममें एक पवित्र धार्मिक केन्द्र बन गया था।

ग्रामके जमींदार साहब जब पधारते थे तो वे भी प्रायः नित्य कुटीपर रामायणगानमें सम्मिलित होते। उनके आनेसे उनके साथ आस-पासके गाँवोंके गायक भी आते थे। उन दिनों बड़ा आनन्द रहता था। पुजारी बाबाको यह अच्छा नहीं लगता था कि इतने भले आदमी इन दुर्व्यसनोंमें फँसे रहें। वे कभी-कभी दुःखित होकर उनके लिये भगवान्‌से प्रार्थना भी करते थे।

इसे सद्‌गुण कहिये या दुर्गुण, पर पुजारीजी थे बड़े स्पष्टवादी। न तो किसीका संकोच करते थे और न किसीके असन्तुष्ट होनेकी परवा ही करते थे। जो उन्हें उचित लगता था, उसे स्पष्ट शब्दोंमें सबके सम्मुख कह देते थे। उन्होंने गिरिधारीसिंहको कई बार रामायणपाठके पश्चात् सबके सम्मुख ही शराब और जुएके लिये लज्जित किया, फटकारा। स्पष्ट कहते थे 'आप रामायणपाठमें प्रेमसे थोड़े ही आते हैं, आप तो आते हैं कर्णतृप्ति एवं मनोविनोदके लिये।' पर पुजारीजीका वहाँ कुछ ऐसा प्रभाव था कि उनके सम्मुख बाबूसाहब बोल नहीं सकते थे। चुपचाप मस्तक झुकाकर बाबाजीकी फटकारें सुन लेते।

(२)

संयोगकी बात, शहरमें बाबू गिरिधारीसिंहजी अत्यन्त बीमार हो गये। शरीरके प्रत्येक रोमछिद्रसे पीब आने लगा। वैद्य और डॉक्टरोंने बहुत चिकित्सा की, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। अन्तमें जीवनकी आशा छोड़कर वे जलवायु-परिवर्तनके विचारसे ग्राममें आये। वैसे तो ग्राममें उनसे सहानुभूति रखनेवाले सभी आते-जाते रहे, परंतु पुजारी बाबा तो एक प्रकारसे उनके समीप ही रहने लगे।

पुजारी बाबा उन्हें धैर्य देते, रामायणका पाठ सुनाते और भगवान्‌से प्रार्थना करनेको कहते। धीरे-धीरे स्वास्थ्य कुछ सुधरने लगा। रुग्णावस्थामें पुजारी बाबाके उपदेशोंने बड़ा काम किया। गिरिधारीसिंहने प्रतिज्ञा की 'यदि मेरा जीवन बच गया तो आगेसे शराब और जुएके पास नहीं जाऊँगा।' पूर्णतया स्वस्थ तो नहीं हुए, फिर भी चलने-फिरनेयोग्य हो गये। पुजारी बाबाने अब उन्हें महावीरजीको रामायणका पाठ सुनाने और राम-नामका जप करनेको कहा।

शरीरका मोह सब कुछ करा लेता है। बाबूसाहबने अब लोगोंसे मिलना-जुलना बंद कर दिया। वे प्रातः सूर्योदयसे पूर्व ही उठकर स्नानादिसे निवृत्त हो जाते। महावीरजीके मन्दिरमें उनका 'मानस' का नवाह्नपारायण चलने लगा। प्रातः मन्दिरमें जाते तो दोपहरको केवल भोजनके लिये बाहर आते। विश्राम तो छूट ही गया। भोजन करके पुनः मन्दिरमें जा बैठते। पाठसमाप्तिके पश्चात् जप होता रहता। सन्ध्याको रामायणगानमें सम्मिलित होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दिरसे बाहर आते और सबके चले जानेके बाद लगभग दस बजे रात्रिको पुजारी बाबाको प्रणाम करके तब मन्दिरसे जाते।

स्वास्थ्यमें पाठ आरम्भ करनेके दिनसे ही आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगा। नौ पारायण होते-होते रोग जड़से नष्ट हो गया। शरीर पुष्ट, सुगठित और सुन्दर हो गया। इतना अच्छा शरीर उनका कभी नहीं रहा। इधर पाठ और जपमें उन्हें आनन्द आने लगा। मन चाहता ही न था उन्हें छोड़नेको। दूसरी किसी भी चर्चामें उन्हें आनन्द नहीं आता था। इच्छा नहीं होती थी शहर जानेकी।

जमींदारीका कार्य था, शहरमें बहुत-सी उलझनें आ गयी थीं, किसी प्रकार गाँवसे चलनेकी तैयारी हुई। जाते समय वे पुजारी बाबाके चरण पकड़, फूट-फूटकर रोने लगे। इससे पूर्व महावीरजीके सम्मुख भी बहुत रुदन कर चुके थे। पुजारीजीने धीरे-धीरे समझाकर उन्हें सान्त्वना दी। ग्रामसे शहरको विदा हुए।

वही साथी, वही स्थान, वही वायुमण्डल अब जैसे काट खानेको दौड़ते थे। एक भी कार्य रुचिसे नहीं होता था। मन कहीं भाग जानेको उद्यत था। ऐसा प्रतीत होता था कि स्वर्गसे नरकमें फेंक दिये गये हों। अधिकांश समय माला लेकर एकान्त कमरेमें बीतता था। किसी प्रकार शहरके कार्योंको शीघ्रतासे निपटाकर ग्राम आना चाहते थे। इस परिवर्तित दशामें पुराने मित्रोंका आना-जाना सर्वथा बंद हो गया। घरके लोग चिन्तित थे 'ये साधु न हो जायँ।'

कोई नहीं चाहता था, पर अपने हठसे वे केवल दो सप्ताह पश्चात् शहरसे गाँवमें आ गये। यहाँ आनेपर उन्हें कुछ शान्ति मिली। पुजारी बाबाके समीप कुछ घण्टे उनके उपदेशोंको सुननेमें बड़े आनन्दसे बीतते थे। अब वे पुजारी बाबाके सच्चे सेवक बन चुके थे। अधिकांश समय उन्हींकी कुटियापर बीतता था। रामायणजीका पाठ और जप तो चलता ही रहता था।

यहाँ भी जमींदारीका झगड़ा था। शहरसे बार-बार पत्र आते थे 'बहुत आवश्यक कार्य है, आप आ जाइये।' पत्रसे कार्य न हुआ तो सन्देश आने लगे और फिर आदमी। आज भाई आया तो कल लड़का। इस प्रकार बार-बार शहर चलनेका आग्रह होता। ये विघ्न अब असह्य होने लगे। अब तो एकान्तमें बैठकर केवल भजन करनेकी इच्छा शेष रही थी। दूसरे सभी कार्य दुःखद ज्ञात होते थे।

बार-बार बाबू साहब पुजारीजीसे आग्रह करते 'मुझे आज्ञा दीजिये, इस जंजालसे दूर कहीं जाकर प्रभुका स्मरण करूँ। यहाँ तो इन उत्पातोंके मारे अब रहना कठिन हो गया है।' पुजारीजी उन्हें समझाते और इन विघ्नोंका सामना करते हुए भजन करनेका उपदेश देते रहते। पुजारीजीको वे गुरु मानते थे, अतः बिना आज्ञाके कुछ कर भी नहीं सकते थे।

घरवालोंका आना-जाना और आग्रह बढ़ता गया। इधर इनका वैराग्य तीव्रतर हो चला। उपयुक्त समय देखकर पुजारीजीने एक दिन उनसे कहा—यदि भगवान्की ऐसी ही इच्छा है तो आप यहाँसे जा सकते हैं। कहीं एकान्त स्थानमें विरक्त भावसे रहते हुए श्रीकोशलकिशोरका स्मरण कीजिये। श्रीरामदूत आपके सहायक हों।

गद्गद होकर उन्होंने पुजारीजीके चरणोंमें मस्तक रखा। जितने वस्त्र शरीरपर थे, उतने ही पहने हुए बिना किसी पाथेयके अर्धरात्रिमें अपने गुरुदेवको प्रणाम करके उन्होंने इस मायिक जगत्से मुख मोड़ा और विदा हुए किसी उपयुक्त स्थानके लिये। दूसरोंके लिये प्रातः केवल सूना अन्वेषण शेष रह गया।

(३)

चित्रकूटके वनमें सुदूर अनसूयाजीसे थोड़ी दूरपर एक ऊँचा चौरस टीला है, उसपर कुछ खाली झोपड़ियाँ बनी रहती हैं। टीलेसे नीचे एक कुआँ हैं और वहाँ एक संत कुटी बनाकर रहते हैं। उन संतने बतलाया 'कभी-कभी कुछ सिद्ध महात्मा रात्रिमें टीलेकी ऊपरवाली झोंपड़ियोंमें रहा करते हैं।'

उन्होंने बतलाया—'उन झोपड़ियोंमें जो बीचकी झोपड़ी है, उसमें एक बड़े भक्त महापुरुष रहते थे। वे धोती और कुर्ता पहने रहते थे। जंगली बेर और भिण्डियोंपर, जो यहाँ बहुत हैं, निर्वाह करते थे तथा दिन-रात रामायणका पाठ और जप करते रहते थे। अनवरत बहती हुई अश्रुधाराने उनके कपोलोंपर रेखा बना दी थी। अभी पिछले वर्षों जब चित्रकूटमें भगवान्का विमान निकला तो वे दर्शन करने गये थे। वहाँ श्रीचरणोंपर मस्तक रखते ही उन्होंने शरीर छोड़ दिया। विमानके पीछे ही उनके शवका विमान भी निकला था।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताका सन्देश

(पं० श्रीरामनारायणशास्त्रीजी, आयुर्वेदाचार्य)

श्रीमद्भगवद्गीता हमारे सनातनधर्मके महान् ग्रन्थ महाभारतके मध्यभागमें एक अनमोल ज्ञानकोषकी भाँति संचित है। जीवन जीनेकी कला तथा नरसे नारायण बननेका मार्गदर्शन गीतामें विद्यमान है, इसीलिये अनेक महापुरुषोंने इसे कर्तव्यज्ञानका अप्रतिम कोष कहा है। महात्मा गांधी गीताको गीता मैया कहा करते थे। बापू एक स्थलपर लिखते हैं, मेरी माँ तो बचपनमें ही दिवंगत हो गयी थीं। माँके न रहनेपर प्यार-दुलार, संसारका ज्ञान और मार्गदर्शन मुझे मिला है गीता मैयासे। भारतीय मनीषियोंकी मान्यता है कि समस्त भारतीय तत्वज्ञान यदि गायें हैं तो गोपालनन्दन श्रीकृष्ण उनका दूध दुहनेवाले पुरुषोत्तम हैं। गीता भारतीय तत्त्वज्ञानका सार-सर्वस्व उन गायोंका दुग्धामृत है।

गीताका प्रारम्भ होता है युद्धभूमिमें। एक ओर सात अक्षौहिणी और दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना। इनके मध्यमें मोहग्रस्त हो जानेके कारण महावीर अर्जुनके हाथोंसे गाण्डीव शिथिल होने लगा था। विचार करके देखें तो हम सभी जीवनसंग्रामके योद्धा हैं। कई बार ऐसे अवसर आ सकते हैं, जब भावनाओंमें बहकर हम कर्तव्यका सही निर्णय करनेमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायँ और ऐसे अवसरोंपर, कदाचित् हमारा धैर्य छूटे, हम अपनी दुर्बलताको आदर्श-वाक्योंसे ढँककर पीछे चरण रखना चाहें—उस समय गीताकी धीर-गम्भीर ध्वनि मानो हमें सावधान करती हुई-सी हमारे हृदयोंमें इस प्रकार गूँजने लगेगी—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥
(२।३)

हे पृथ्वीके पुत्र! पौरुषको लजानेवाली क्लीबवृत्ति तुझे शोभा नहीं देती। हे पुरुषसिंह! लक्ष्यमें बाधा डालने वाले संकटोंपर विजय पाना तो तेरा स्वभाव ही है। हृदयकी क्षुद्र दुर्बल भावनाओंपर विजयी होकर हे परन्तप! तू कटिबद्ध हो जा।

गीता अनुपम आत्मविश्वास जाग्रत् करके मनुष्यको निर्भय बनानेवाला ग्रन्थ है। यह आत्माकी अमरता और अखण्डताका प्रतिपादनकर देहकी आसक्तिके कारण लक्ष्य प्राप्त करनेमें विचलित होनेवाले जीवन-संघर्षके योद्धाओंको निर्भयताका सन्देश देती है। मैं केवल देह नहीं हूँ। देह तो मेरा आवरण-मात्र है। 'मैं कभी न मरनेवाला अखण्ड और व्यापक आत्मा हूँ। वह आत्मा जिसे शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गीला नहीं कर सकता और न वायु सुखा ही सकता है'—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
(२।२३)

भारतका इतिहास इस उपदेशसे कितना प्रभावित हुआ, यह तो इतिहासके पृष्ठ बताते हैं। हमने देखा है कि हमारे राष्ट्रके क्रान्तिकारी बलिदानी वीर इसी ज्योतिर्मय उपदेशकी मस्तीमें फाँसीकी रस्सीको चूमते रहे और अत्याचारी लाख उत्पीड़नके पश्चात् भी उनके चेहरेकी मुसकानको छीन न सके।

गीता जीवन जीनेकी कला सिखाती है। सांख्य और योग अर्थात् शास्त्र और कला दोनोंका समन्वय करते हुए जीवन-सौन्दर्यका साक्षात् अनुभव करनेके लिये गीता मानो कृतसंकल्प है। विनोबा कहते हैं—कोरा शास्त्र हवाई महल है। संगीतशास्त्रको समझ तो लिया, किंतु कण्ठसे संगीत प्रकट करनेकी कला न साधी तो नाद-ब्रह्मकी सजावट नहीं होगी।

कर्म करते समय प्रायः हमारे मनमें यह विचार रहता है कि हम अपने कर्मके फलका आनन्द अवश्य लेंगे अन्यथा यह व्यर्थ बेगार क्यों करें? यदि कर्मका फल ही नहीं मिलता तो हम कर्म ही नहीं करेंगे। परंतु गीता इससे पृथक् व्यवस्था देती है। वह कहती है—कर्म करना तुम्हारे जीवनका जन्मसिद्ध अधिकार है। हम कदापि इस अनमोल आयुको निष्क्रियताकी भेंट न करें, किंतु परिणाम-फलपर लिप्त रहनेसे तुम्हारी आसक्ति तुम्हें क्षुद्र स्वार्थके वशीभूत कर देगी, फिर परिणामकी अनुकूलता और प्रतिकूलता, सिद्धि और असिद्धि—तुम्हारे अपने ही वशमें तो नहीं है। जीवन-संग्राममें जय है और पराजय भी, लाभ है और हानि भी, सुख है और दुःख भी। तुम इन द्वन्द्वोंसे अनासक्त भावपूर्वक ऊपर उठो। पुरुषोत्तम श्रीरामके विषयमें कहा गया है कि जब उन्हें राज्याभिषेकका सन्देश सुनाया गया तो सदा-सर्वदा विद्यमान मुखश्रीपर कोई विशेषता नहीं आयी और जब चौदह वर्षोंका वनवास दिया गया तो आनन्दपूर्ण मुखकी शोभापर उदासीकी कोई रेखातक न थी। गीता इसी समत्वकी प्रेरणा देती है—

'सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥'
(२।४८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समत्वभाव ही योग कहा जाता है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि मनुष्यमें कर्तापनका अभिमान नहीं पनपने पाता।

गीता कहती है—निष्काम भावसे कर्म करनेका यह अभिप्राय है कि कर्मको सकाम भावसे भी अधिक उत्तमता और नैपुण्यसे करना चाहिये। **'योगः कर्मसु कौशलम्'**—कर्म करनेकी चतुराई ही इसमें है कि वस्तुका सौन्दर्य तो उभरे ही, कर्ताके हृदयका सौन्दर्य भी ईश्वरीय भावसे सुशोभित हो उठे।

गीताका कथन है कि अपने प्रत्येक कर्मको हम ईश्वरोपासना बना लें। पुण्डलीक अपने माता-पिताकी सेवा करता था, वही उसकी प्रभु-अर्चना थी। उसकी सेवासे प्रसन्न हो भगवान् पांडुरंग उससे मिलने आये, किंतु उसने माँ-बापकी सेवा छोड़कर प्रभुसे भेंट करना पसन्द नहीं किया। एक ईंट सरका दी—विट्ठल! तबतक प्रतीक्षा करो, जबतक माता-पिताकी सेवासे निवृत्त हो जाऊँ। मैं तो इस सेवामें भी तुम्हारी ही अर्चना तो कर रहा हूँ! साक्षात् जगत्के स्वामीके समक्ष कितनी निष्ठा है अपने कर्मपर।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

(३।१९)

सदा, सब समय सभी कर्मोंका अनासक्त भावसे कुशलतापूर्वक आचरण करते रहना चाहिये। निश्चय ही निष्काम कर्मयोगी अपने कर्मोंके द्वारा परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

गीता पराधीन नहीं बनाती। गीता आपको अन्धविश्वासके अँधेरेमें नहीं सुलाती। गीता आपको जैसे सद्बुद्धि मिले, वह उपाय बताती है। गीता महान् बुद्धिवादी ग्रन्थ है। वह कहती है—वह व्यक्ति नष्ट हो जाता है, जिसकी बुद्धिका नाश हो जाता है—**'बुद्धिनाशात्प्रणश्यति'** (२।६३)। श्रीकृष्ण कहते हैं—**'बुद्धौ शरणमन्विच्छ'** (२।४९)। अर्जुन! तुम बुद्धिकी शरण ग्रहण करो। **'बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते'** (२।५०)-बुद्धिमान् वह है जो कर्म तो करे, परंतु पाप उसे आक्रान्त न कर सके और पुण्य उसे अभिमानी न बना सके।

गीता सर्वत्र ईश्वर-दर्शन कराती है तथा सम्पूर्ण विश्वको ईश्वरका स्वरूप प्रदर्शित करती है। विश्वके किसी भी भागमें होनेवाले सभी ईश्वरीय पुरुषोंमें वह दिव्य तेजकी घोषणा करती है, वे सभी हमारे पुरुषोत्तम हैं—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

(१०।४१)

समस्त विश्वमें जो-जो भी अपूर्व, ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त एवं शक्तियुक्त महापुरुष अथवा महासत्त्व प्राणी हैं, उन सबको तुम परमात्मतेजसे उत्पन्न मानो।

गीता सार्वभौम धर्म, विज्ञान और दर्शनके समन्वयके आधारपर विश्वधर्मकी व्यवस्था प्रस्तुत करती है। मानवको संसार-संघर्षमें अपूर्व बल और उत्साह प्रदान करते हुए धर्मसे अविरुद्ध समस्त कामनाएँ जगदीश्वरका स्वरूप हैं, यह घोष करनेवाली गीता ही है।

गीताके अध्ययनसे हम अनुभव करते हैं कि ईश्वरपर विश्वास करना मनकी दुर्बलता नहीं है। ईश्वरपर विश्वास आत्मबल है। इससे तुम निकम्मे नहीं बनोगे, बल्कि ऐसा अनुभव करोगे कि यह परिपूर्ण संसार, समस्त ब्रह्माण्ड, ग्रह-नक्षत्र, तारागण—इन सबमें छिपी शक्ति तुमपर बरस रही है। इस समस्त विराट् विश्वमें तुम हो, यह तुम्हारा ही परिवार तो है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की साक्षात् अनुभूति हमें गीताके द्वारा होती है। जब सारी दुनिया मेरा कुटुम्ब है तो मैं किससे द्वेष करूँ?—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(१२।१३-१४)

जो सब प्राणियोंमें द्वेषभावसे रहित है, जो निःस्वार्थरूपसे सबका हित करते हुए सबसे प्रेम करता है और सभीपर करुणाकी वर्षा करता है तथा आसक्तिरहित एवं अहंकारसे रहित होकर सभी सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें समभाव रखता है, जो क्षमावान् है, भूलोंसे भरे जीवोंके अपराधोंका निवारण करनेके लिये उन्हें अभय प्रदान करता है। जो ईश्वराराधनामें संलग्न रहता हुआ योगमें मन लगाये हुए है, जो सांसारिक लाभ-हानिसे उद्विग्न नहीं होता तथा मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है, जो दृढ़संकल्पपूर्वक अपना मन और बुद्धि परमेश्वरके विश्वरूपकी सेवामें समर्पण कर चुका है—वही जगदीश्वरका भक्त है, वही उसका परमप्रिय है।

इस प्रकार गीता समस्त मानव-मात्रको ऐसी दैवी सम्पदासे परिपूर्ण देखना चाहती है, इस पृथ्वीको ही दिव्य लोक बनानेकी मंगल कामना करती है।

[प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्र शास्त्री]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलियुगमें कल्याणका उपाय

(श्रीसत्यस्वरूपजी माथुर)

जिस युगमें जिन कर्मोंके करनेकी आज्ञा हमारे शास्त्रोंने दी है, उन कर्मोंको यदि उन युगोंमें किया जाता है तो अवश्य ही लाभ होता है। यह सिद्धान्त हमारे त्रिकालदर्शी पूज्य ऋषियोंका है, जिसमें सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं।

वर्तमान युगके लोगोंको यह सिद्धान्त इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि जैसे ऋतुएँ अपने प्रभावको सर्दी-गरमी और वर्षाके रूपमें दिखलाती हैं, उसी प्रकार युग भी अपने रूपको प्रकट करते हैं—जाड़ेकी ऋतुमें हम चाहे जितने गरम कपड़े पहनें तथा अग्नि और आधुनिक साधनोंका कितना भी सहारा लें, किंतु जाड़ेकी ऋतु अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रह सकती—इसी प्रकार कलियुगमें अन्य युगोंमें करनेयोग्य कर्मोंको करें तो उतना लाभ नहीं होगा, जितना कि होना चाहिये। जैसे जाड़ेकी ऋतुमें अग्नि इत्यादिकी सहायतासे थोड़ी देरको जाड़ा मिट जायगा, किंतु फिर जाड़ा लगने ही लगेगा।

यह तो ऋतुओंकी पहचानका उदाहरण है, अब युगकी पहचान किस प्रकार की जाय, यह एक प्रश्न है और इसका सरल उत्तर यह है कि युगकी पहचान संसारके मनुष्योंके आचार-विचारसे होती है, जब पृथ्वीके अधिकांश मानव जिन आचार-विचारोंमें रत हों, उन आचार-विचारोंको शास्त्रोंसे मिलान कर लो। बस, समझमें आ जायगा कि यह अमुक युग है।

वर्तमान युगके अधिकांश व्यक्तियोंके आचार-विचार श्रीरामचरितमानसमें वर्णित कलियुगके प्रसंगसे बिलकुल मिलते हैं। यह प्रसंग काकभुशुण्डि-गरुड़-संवादमें है, जो उत्तरकाण्डमें है। रामचरितमानसके प्रेमी सज्जन तो इस संवादसे भली प्रकार परिचित होंगे तथा वर्तमान युगको लगभग सभी भारतवासी कलियुगके नामसे ही पुकारते हैं। अतः श्रीकाकभुशुण्डिजीके आँखों-देखे कलियुगके हालको मैं यहाँ निवेदन नहीं कर रहा हूँ। इस निवेदनमें तो केवल कलियुगसे कल्याणका उपाय ढूँढ़नेका प्रयत्न है, जो इस प्रकार है—

रामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें श्रीकाकभुशुण्डिजीने कलियुगका हाल बताकर इसमें कल्याणका उपाय भी बतानेकी कृपा कर दी अर्थात् अन्तमें श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

(१०३ (ख))

अर्थात् धर्मके चार पद हैं, किंतु कलियुगमें केवल एककी साधना आवश्यक है। वह धर्म है दान। दान जिस किसी भी तरीकेसे दिया जाय, कलियुगमें यह कल्याण ही करेगा, किंतु कलियुगके लोगोंके लिये श्रीकाकभुशुण्डिजीने यह भी कहा है—

'तपसी धनवंत दरिद्र गृही'

तथा—

'बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै'

अर्थात् कलियुगमें गृहस्थ तो दरिद्र होंगे और अन्नाभावमें सब लोग दुखी होंगे तथा मरेंगे। अतः शंका यह उत्पन्न हो जाती है कि 'जब अधिकांश लोग दरिद्र और दुखी होंगे तो वे दान कहाँसे देंगे। दानकी वस्तुओंका विवरण आम तौरपर यह है कि दानमें रुपया, पैसा, सोना-चाँदी, अन्न-वस्त्र तथा ओषधि और हाथी-घोड़े, रथादि दिये जाते हैं। इन वस्तुओंमेंसे किसी एकको भी देनेकी सामर्थ्य वर्तमान युगकी महँगाईसे पीड़ित अधिकांश जनताकी नहीं है। इसका अर्थ यह निकला कि वर्तमान युगके अधिकांश व्यक्ति दान करके अपना कल्याण ही नहीं कर सकते, यह तो काकभुशुण्डिजीकी तरकीब समझमें नहीं आयी।' यह प्रश्न मेरे भी मस्तिष्कमें उत्पन्न हुआ, किंतु मैंने सोचा कि श्रीकाकभुशुण्डिजी तो महान् थे, उनकी वाणी असत्य तो हो ही नहीं सकती, यह तो अपनी विचारशक्तिकी कमीका कारण है। अतः उपर्युक्त दोहेपर पुनः विचार किया और भगवान्‌की कृपासे सही समाधान भी सामने आ गया, जो इस प्रकार है—

उपर्युक्त दोहेमें जुड़े शब्द जेन-केन-बिधिका अर्थ है—जिस किसी भी प्रकार जो दिया जाय, वही दान है और उससे कल्याण अवश्यम्भावी है। दानकी उपर्युक्त वस्तुएँ तो प्रत्येकको उपलब्ध नहीं, किंतु रामचरितमानसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार और भी कुछ है, जिसे दिया जा सकता है और उसका तुरन्त फल भी मिल सकता है। वर्तमान भौतिक विज्ञानके विद्वान् तुरन्त फल मिलनेकी बातपर तो विश्वास करते हैं, शेष किसीपर नहीं। अतः तुरन्त फल देनेवाले दानोंकी परिभाषा इस प्रकार है—अभयदान, विद्यादान, आरोग्यदान, आदरदान, मानदान, जलदान, फलदान, ज्ञानदान तथा श्रमदान आदि। इनमें कुछ उपकरण ऐसे हैं, जिन्हें व्यक्तिविशेष ही दे सकते हैं, जैसे अभयदान देनेके लिये शक्तिमान् होना चाहिये। विद्यादान देनेके लिये पढ़ा-लिखा और आरोग्यदान देनेके लिये वैद्य या डॉक्टर, किंतु अन्य उपकरणोंको सभी प्रयोगमें ला सकते हैं। उदाहरणस्वरूप आदर-दान और मान-दान तथा श्रमदान—ये सभी ऐसे दान हैं कि इनमें कुछ भी नहीं लगता। केवल रसनाको हिलाना पड़ता है। बस, दान हो गया और उसका तुरन्त फल भी मिल गया। आपके सामने कोई भी व्यक्ति आता है और आप उसका आदर कर देते हैं तो वह व्यक्ति आपका भी आदर अवश्य करेगा। यदि आप किसीको मान देते हैं तो उसके द्वारा आपको भी मान मिल जायगा। तात्पर्य यह है कि इन दानोंका फल तुरन्त मिल जाता है और इस प्रकारके दान सभी कलियुगी व्यक्ति कर सकते हैं।

इन दानोंका उल्लेख तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी किया गया है। उदाहरणस्वरूप देखिये निम्न चौपाइयाँ—

दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे॥

यह चौपाई बालकाण्डके दोहा ३३८ के आगे है, जब माता जानकीजी पालकीमें सवार हो गयीं, तब महाराज दशरथने समस्त ब्राह्मणोंको बुलाया। इन ब्राह्मणोंको वस्तुओंका दान तो वे पहले ही कर चुके थे; किंतु वस्तुओंके दानसे स्वाभिमानी ब्राह्मण थोड़े ही तृप्त हो सकता है, उसको तो मान-दान भी चाहिये। अतः दशरथजीने चलते समय सभी ब्राह्मणोंको मान-दान देकर परिपूर्ण कर दिया।

अब दूसरी चौपाई बालकाण्डके दोहा ३२० से आगेकी देखिये—

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥

विनययुक्त सुन्दर वाणीसे मान-दान करके श्रीजनकजीने सभी बरातियोंको सम्मानित किया। तीसरी चौपाई बालकाण्डके ३५१ दोहाके आगेकी है। बरात अयोध्या आ जानेके पश्चात् श्रीवसिष्ठजीके आज्ञानुसार ब्राह्मण-भोजन कराया गया और इसके पश्चात् दशरथजीने ब्राह्मणोंको आदर-दानसे प्रसन्न कर दिया—

आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे॥

जिस समय भगवान् राम सीताजी और लक्ष्मणजीसहित वन जानेको द्वारसे निकलकर खड़े हुए तो प्रजाके सभी लोगोंकी भीड़ देखी; सब लोग दुखी थे। अतः भगवान् रामने अन्य लोगोंको प्रियवचन कहकर समझाया और इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको बुलाया तथा—

गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे॥

ब्राह्मणोंको वरषासन देनेके पश्चात् उन्हें आदर-दान भी दिया। अब उस समाजमें याचक और मित्रवर्ग रह गये तो भगवान्ने याचकोंको दानमानसे सन्तुष्ट किया तथा मित्रवर्गको पवित्र प्रेमसे। देखिये अयोध्याकाण्डके ७९वें दोहेसे आगे—

जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥

उपर्युक्त चौपाइयोंसे आदर और मानदान देनेकी आवश्यकता सिद्ध हो जाती है। ये उपकरण भी दानकी संज्ञामें हैं और इनके अतिरिक्त अन्य आवश्यक खाने-पीनेकी छोटी-छोटी वस्तुएँ भी हैं। इन वस्तुओंके लेन-देनकी आवश्यकता प्रायः समय-असमय पड़ जाती है और दान यदि आवश्यकतापर दिया जाय, तो सोनेमें सुगन्ध है अपितु मैं तो यह कहूँगा, कोई वस्तु किसीको उसकी आवश्यकतापर ही दी जाय, तभी वास्तवमें वह दान कहलायगी अन्यथा अनावश्यक किसीको कुछ भी दे डालो तो उससे कोई विशेष लाभ नहीं और न उसे वस्तुतः दान कहा ही जायगा।

वस्तुओंके दानमें पात्र-कुपात्रका भी बन्धन हमारे शास्त्रोंने रख दिया है; किंतु आदर-मान आदि दानोंमें, जिनमें कि एक भी पैसा खर्च नहीं होता—पात्र-कुपात्रका भी कोई ध्यान रखनेकी आवश्यकता नहीं; कारण कि संसारके सभी स्त्री-पुरुष आदर और मानके याचक ही मिलेंगे; अतः आप इन्हें दिल खोलकर आदर एवं मानदान दीजिये और तुरन्त फल प्राप्त कीजिये। दूसरे शब्दोंमें आप इस घोर कलिकालमें अपना कल्याण इस प्रकार कर सकते हैं। यह नुसखा हमारे महान् पूज्य भक्तशिरोमणि महात्मा श्रीकाकभुशुण्डिजीका अनुभूत है, जो कदापि असत्य सिद्ध नहीं होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात् प्रेम भगवान् है, संसारी प्रेम आसक्ति

(श्रीयज्ञप्रकाशजी बाजपेयी, शास्त्री)

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९। २७)

'अर्थात् हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है, जो तप करता है, वह (सब) मुझ (सच्चिदानन्द)-को समर्पित कर दे।'

यह कैसे सम्भव हो सकता है कि जो किया जाय, जो खाया जाय, जो हवन किया जाय, जो दान दिया जाय, जो तप किया जाय—वह सब वासुदेवको समर्पित हो जाय। एक बार भगवान्में आस्था रखनेवाले एक व्यक्तिने यह निश्चय कर लिया कि मैं जगदाधार हरिसे ऐसी ही भावनाओंके समावेशकी कामना रखूँगा। मेरा हर कर्म उन्हें समर्पित रहेगा। अहो क्या आनन्द था इस भावनाका, इस विचारका! सच कहो तो हृदय गद्गद था, मन एक नयी गति पकड़ने जा रहा था कि अब मुझसे कोई अकर्म न होगा; क्योंकि भावना यही थी कि ***'तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा।'*** सन्तोष और त्यागकी मस्तीमें कितना आनन्द है, इस आनन्दको सब कुछ भगवत्-समर्पण करनेवाला भक्त ही जान सकता है, अधिक वर्णन करनेकी बात ही क्या है। भगवान्की शरणागतिके इस सुखके आगे सारे सुख निष्प्रयोजन—निरर्थक दीखते हैं। वह भक्त वास्तवमें भक्ति-सरितामें नहाने जा रहा था, जिससे और भी शान्ति, सन्तोष तथा भगवत्कृपा प्राप्त हो, जीवन धन्य हो जाय, किन्तु यह क्या एकदम परिवर्तन, क्यों हुआ? अकस्मात् सद्भावोंने अपना रूप दुर्भावोंमें बदल दिया। अरे, मैं कहीं मूर्ख तो नहीं, जो अपना समय भगवान्-भगवान् करता हुआ गुजारता जा रहा हूँ, इतना कीमती समय मैं त्यागी बनकर गुजार रहा हूँ, जो दुबारा नहीं मिलेगा। मुझे युवावस्थाके मौज-मस्तीभरे दिन एक सन्तकी भाँति बितानेसे भला क्या मिलेगा? अरे! मैं तो जान रहा हूँ, यह शरीर मुझे कभी दोबारा नहीं मिलेगा। अहो, मैंने यह अच्छा विचार नहीं बनाया था; क्योंकि पता नहीं इससे लाभ है या हानि।

किसी भी विचारके निर्माणमें जितना समय लगता है, सद्विचारोंके बिगड़नेमें उतने समयकी आवश्यकता नहीं होती। उसका मनरूपी भ्रमर तरह-तरहके गुंजार करने लगा। भगवत्प्रेरणा ही शायद उसे कोई नई सीख देने जा रही थी। शनैः-शनैः सद्विचारोंकी शृंखला टूट गयी, उसने अपने मनरूपी भौंरेको संसारकी नश्वर वस्तुरूपी मकरन्द चूसनेमें जुटा दिया। एक बार वह ऐसे ही एक सुन्दर कमलका मकरन्द चूसनेकी इच्छा कर रहा था, जिसतक पहुँचना उसके वशकी बात नहीं थी अर्थात् वह ऐसी वस्तु पानेकी कामना करने लगा था, जिससे उसका दूरका भी सम्बन्ध नहीं था तथा उसके लिये वह अनुचित भी था, किंतु भ्रमररूपी मनने गुंजारके साथ उड़ान भर दी। वह वहाँतक पहुँच ही गया, आखिर कोशिशमें हिम्मत रखनेवालेकी हार कदाचित् नहीं होती, किंतु वह मकरन्दका पान नहीं कर सका; क्योंकि कभी उसने भगवद्शरण ली थी, अतः उसके सामने पंखुड़ियोंसे ऊपर उठकर पुष्पमें प्रवेश करनेसे पहले निन्दाके, भयके मनरूपी भ्रमरको खा जानेवाले पक्षी अब दिखायी पड़ रहे थे, किंतु भ्रमरका एकमात्र लक्ष्य था कि किसी तरह मैं कमलमें स्थित प्रेमरूपी मकरन्दका पान कर सकता तब क्या ही अच्छा था! किंतु विवशताके आगे किसकी चलती है। अब वह भगवद्भक्तिरूपी सरिताके आनन्दरूपी निर्भय कमलके मकरन्दके अतिरिक्त भयदायक नश्वर कमलकी शोभा देखकर शिव-विरंचि-मोहिनी मायारूपी-मधुसेवी होना चाहता था। वह बेचारा भटका हुआ मन सच्ची शान्ति खोकर नश्वर शान्तिकी ओर अग्रसर था। उसने सोचा कोई बात नहीं, मैं इस कमलका मधुपान नहीं कर सकूँगा, तब भी गुंजारसे अपने भाव इसमें भर दूँगा कि हे सुन्दरकमल! मैं तेरे प्रेमरूपी मकरन्दकी इच्छा रखता हूँ, क्या तू मुझे अपना प्रेमरूपी वह मधु चखाएगा? देख, मैं मुझे खा जानेवाले लोक-निन्दारूपी पक्षियोंसे डरता हूँ, फिर भी यदि तू मुझे प्रेमरसरूपी मधुका दान देनेकी कृपा कर दे तो मैं उन अपने शत्रुओं (पक्षियों)-से युद्ध करके या बचकर किसी तरह तेरे पास आनेका प्रयास करूँ और देख, हे जलज! तू प्रेमरूपी मकरन्दका खजाना है, अतः मुझसे सहमत हो जा, मुझे भय है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं तेरे पंखुड़ीरूपी हाथ काल बनकर विपत्तिरूपी सूर्य ढलनेकी बेला, मेरा सम्मानरूपी जीवन न ले लें। फिर भी मैं तुझसे डरता हुआ भी प्रेम करता हूँ।

वह कमल साक्षात् प्रेमका अवतार या प्रेमका स्वरूप था, वह भी अपनी मुसकानके शब्दोंमें बोला—हे अलि, तुम तो मेरे प्रेमरूप मकरन्दके आस्वादनके लिये तत्पर हो—यह मैं जानता हूँ, किंतु मेरी विवशता देखो, मैं तुम्हें अपना यह रस देनेको तत्पर नहीं हूँ, जबकि तुम इस रसको पानेयोग्य हो। मेरे पास कई आपत्तियाँ उपस्थित हैं, मैं शिव-विरंचि-मोहनी-कमलाका निवास हूँ। इससे हे भ्रमर! यदि तुम मोहित हो तो कोई बड़ी बात नहीं है, इससे कोई बिरले ही बच पाते होंगे। मैं तुम्हारे लिये दुर्लभ नहीं हूँ, किंतु मेरी विवशता यह है कि मेरा निवास ऐसे जलमें है, जहाँ इच्छाओंकी गतिशील जड़ोंको जकड़ लिया जाता है। मेरी इच्छासे मुझे जन्म देनेवाला यह जल एक शुद्ध सुगन्धवाले सरोवरमें जानेकी भला आज्ञा भी क्यों दे देगा और आज्ञा दे भी तो मेरी इच्छारूपी जड़ोंने मुझे जकड़ लिया है।

इतने सद्वचनोंको सुनकर भी उसे सन्तोष न हुआ। उसने कई बार और प्रयास किये, किंतु वह असफल रहा। मनने अपनी चंचलताकी सीमाका उल्लंघन कर डाला था। अन्तमें जब उसने देखा कि जिस फूलकी मैंने इच्छा की थी, वह मेरा हो ही नहीं सकता। प्रेमका रस उसमें मिल ही नहीं सकता; क्योंकि वह भ्रम है, वास्तवमें प्रेम तो कहीं और ही है, वह ईश्वरके अलावा कहीं नहीं मिलेगा। अतः मनने धीरे-धीरे अपनी गति रोकी। हाय, यह क्या था? मनका भटकना। संसाररूपी कमला (लक्ष्मी)-के निवास कमलमें क्या रखा था, किंतु मनकी गति अबाध्य है, किसने मनको वशमें किया है? गज, सिंह, पहलवान्, भूत, प्रेत आदि वशमें हो जाते हैं, किंतु यह चंचल मन वशमें नहीं होता। हे कृष्ण! अब मुझे मनकी गति बाँधनेके लिये अभ्यास एवं वैराग्यकी रस्सी दे दो। कहीं तुम्हारा निर्मल प्रेम त्यागकर मैं फिर न इस संसारके गन्दे भावोंमें गिर पड़ूँ। हे कृष्ण! तुम्हीं चंचल मन हो; क्योंकि तुमने कहा भी है '**इन्द्रियाणां मनश्चास्मि॥**' अर्थात् इन्द्रियोंमें मन मैं ही हूँ, अतः हे मनदेवता! तुम शुभ संकल्पोंवाले बनो। इस प्रकारके विचारोंसे वह व्यक्ति फिर ओत-प्रोत हो गया था। भगवान्ने उसे भटकाया नहीं था, उसे यह दिखाया था कि जिस प्रकार तेरी बुद्धि संसारमें आसक्त होकर उस कमलका प्रेमरूपी मकरन्द पानेको आतुर है, उसी प्रकार तू मेरेमें मनवाला हो अर्थात्—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(गीता १८। ६५)

'ब्रज में ऊधो'

(श्रीमृदुलमोहनजी अवधिया)

ऊधो निर्गुन ब्रह्म बखाने।
चितवन चारु, चन्द्रिका-सी छबि, कछु केशव ही जाने॥
मोर-पंख पर ध्यान न लाये, जान श्याम पतियाने।
हृदय-कमल जिनके हरि राजें, श्याम-सखा जिय माने॥
श्याम हमारे विलग नहीं हैं, कस निर्गुन अनुमाने।
पीताम्बर हरि साँस बसे हैं, ऊधो हुए दिवाने॥
'निर्गुन ब्रह्म' सँदेशा लाये, काहे को अकुलाने।
ब्रज के चन्द्र श्यामसुन्दर लखि, हम खासे पहचाने॥
'ज्ञान गठरिया इहाँ न छोरो' दिये सभी ने ताने।
हरि हैं, प्रेम-स्वरूप न नीरस, ऊधो गरब हिराने॥
आकृति मिली श्यामसुन्दर की, प्रकृति न मिली भुलाने।
ब्रज-मन्दिर में श्याम बसे हैं, निर्गुन नहीं समाने॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनकी सफलताका आधार—अभिवादन

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०, डी०एस-सी०)

भारतीय आर्ष मेधाने अभिवादनकी महत्ताको हृदयंगमकर इसे अभ्युदय एवं निःश्रेयस-विधायक आवश्यक मानवीय कर्तव्य निर्धारित किया है। अभिवादनकर्ता अपनी न्यूनता एवं प्रणम्यकी महत्ताको अपनी जिस शारीरिक क्रिया अथवा चेष्टाद्वारा अभिव्यक्त करता है, उसीको अभिवादन कहते हैं। इस अभिवादन-क्रियाको प्रणति, प्रणाम, साष्टांग दण्डवत्, नमन, नमस्कार आदि विभिन्न शब्दोंद्वारा अभिहित किया जाता है। प्रणम्यके प्रति श्रद्धातिशयकी अवधारणा ही इस क्रियाकी प्रेरिका अथवा सम्पादिका कही जा सकती है।

माता, पिता तथा अन्यान्य गुरुजनोंके दायें चरणको दायें हाथसे तथा बायें चरणको बायें हाथसे स्पर्शकर नतमस्तक हो प्रणाम करनेकी परम्परा चिरन्तनकालीन है। प्रणम्यके सामने हाथ जोड़कर नतमस्तक होना भी इसका अन्य प्रकार है। चलते-चलते वाचिक अभिवादन भी किया जाता है। यह प्रकिया कितनी प्राचीन है, इसका सहज अनुमान वैदिक ऋचाओं तथा रामायणादि ग्रन्थोंमें अनुस्यूत नमनसे किया जा सकता है—

१. नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः।

२. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः।

३. नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः।

(शुक्लयजुर्वेद)

४. (क) जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।

(ख) लक्ष्मणेन कृते देवि शिरसा तेऽभिवादनम्।

(वा०रा० सुन्दरकाण्ड)

५. नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।

(गीता ११। ३१)

किसी विशेषताको परिलक्षितकर ही व्यक्ति उसकी निष्पन्नताकी दिशामें प्रवृत्त होता है। यह परिलक्षित करके भगवान् मनुने इसकी गुण-गरिमा अथवा आनुषांगिक लाभका उल्लेख इस प्रकार किया है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

जो सब प्रणम्यजनोंको प्रणाम करता है, वृद्धोंकी सेवा अथवा संगति करता है; उसकी चार वस्तुओंकी सतत अभिवृद्धि होती है—आयु, विद्या, यश और बल।

अभिवादनद्वारा प्राप्य उपलब्धियोंमें प्रथम स्थान दिया गया है आयुको, क्योंकि आयु (दीर्घ) होनेपर ही व्यक्ति अनेक शुभ कार्य सम्पन्न कर सकता है। विद्या आनेपर अज्ञान (पशुता)-से उबर मनुजत्व और उससे भी एक पग आगे देवत्व-प्राप्तिकी दिशामें गतिशील हो सकता है। मरणके उपरान्त भी यशद्वारा अजरामर बन इतिवृत्तका अंग बन सकता है तथा बल (स्वकीय तथा जनबलद्वारा) उच्चस्थितिका स्वामी बन जीवन सार्थक कर सकता है। अमरकोषके अनुसार अभिवादनके दो रूप हैं—

समे तु पादग्रहणमभिवादनमित्युभे।

(२। ७। ४१)

अर्थात् पादग्रहण तथा अभिवादन नमस्कारके नाम हैं। किसी ज्येष्ठ, श्रेष्ठके आनेपर अपने स्थानपर उठकर खड़ा हो जाना अभ्युत्थानिक अभिवादन है। सीधे और बायें हाथोंसे ज्येष्ठ-श्रेष्ठके दायें-बायें चरणोंका स्पर्श करना पादोपसंग्रह अभिवादन है तथा नाम, गोत्रादिके उच्चारणपूर्वक किसीके चरणोंमें नमित होना अभिवादसंज्ञक अभिवादन है।

वैष्णवसम्प्रदायमें दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लेटकर हाथ जोड़ना ही अभिवादन है। वैष्णवसम्प्रदायकी मर्यादा है—

'वैष्णवः वैष्णवं दृष्ट्वा दण्डवत् प्रणमेद् भुवि।'

इसी मुद्राका अन्य नाम है—साष्टांग प्रणाम। इसमें पाँवसे मस्तकपर्यन्त शरीरके आठ अंगोंसे भूमिका स्पर्श करते हुए नमन-क्रिया निष्पादित होती है।

समवयस्क हाथ मिलाकर या गले मिलकर अथवा वाचिक जयरामजीकी, जय शिव, जय श्रीकृष्णादि कहकर अभिवादन करते हैं।

भारतीय जीवनचर्यामें अभिवादनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। दूसरे शब्दोंमें हमारी दिनचर्याका श्रीगणेश ही अभिवादनसे होता है। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर कर-दर्शनके पश्चात् हम सर्वप्रथम धरित्रीका अभिवादन इन शब्दोंमें करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

शय्यात्याग, नित्य-नैमित्तिक क्रिया-सम्पादनकी दिशामें प्रवृत्त होनेसे पूर्व माता, पिता, आचार्य आदिका अभिवादनकर **'नित्य श्रीर्नित्यमङ्गलम्'** आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। स्वयं भगवान् वेदने—**'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव'** के रूपमें इन सबके अभिवादनद्वारा निज कल्याण-मार्ग प्रशस्त करनेका निर्देश दिया है और इसीका आचरणकर भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णने पूज्यजनोंके अभिवादनद्वारा मनुष्यमात्रको अपना अनुसरण करनेकी प्रेरणा देकर श्रीमद्भगवद्गीताके स्वकीय कथन—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

-को अन्वर्थक बनाया था।

भगवान् श्रीराम प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरुको अभिवादन किया करते थे। गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसमें लिखा है—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा इस अभिवादनकी परम्पराका अनुवर्तन इस प्रकार वर्णित है—

गोविप्रदेवतावृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः।
नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत्॥
(१०।७०।१०)

पूज्य गो, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरुजन एवं सभी प्राणी ही नहीं, सकल ब्रह्माण्ड और उसका प्रत्येक उपादान प्रणम्य तथा अभिवन्दनीय है; क्योंकि भगवान् वेद कहते हैं—**'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** तथा प्राणियोंको **'अमृतस्य पुत्राः'** कहा गया है। यही दृष्टिमें रखकर गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

अर्थात् आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी (पंच-महाभूत), प्रकाशमान् नक्षत्र, सभी प्राणी, दिशाएँ, वृक्षादि, नदियाँ, समुद्र सभी भगवच्छरीररूप हैं, अतः इन्हें अनन्य भावसे प्रणाम करना चाहिये।

नीतिशास्त्र बताता है कि यदि जीवनमें सफलताकी कामना हो तो सज्जन, असज्जन दोनोंका अभिवादन करना चाहिये। सभी विघ्नोंकी शान्तिके लिये जैसे विघ्नराजका प्रथम पूजनकर विघ्नभयसे मुक्ति पा ली जाती है, उसी प्रकार असज्जन या दुष्टको सर्वप्रथम अभिवादन करके अपने अनुकूल बना लेना चाहिये। विद्वानोंने कहा भी है—

दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम्।
मुखप्रक्षालनात् पूर्वं गुदप्रक्षालनं यथा॥

इसलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने भी उन्हें नमन करते हुए लिखा—***'बंदऊँ संत असज्जन चरना।'***

अभिवादनद्वारा अल्पायु मार्कण्डेय किस प्रकार सप्तर्षियों तथा ब्रह्माजीद्वारा **'आयुष्मान् भव'** का आशीर्वाद पाकर चिरजीवी बने, इसे पुराणोंके अध्येता, श्रोता जानते ही हैं। सार्वत्रिक विजयप्राप्तिका भी अभिवादन अमोघ उपाय है। विजय-सिद्धिकी बातको महाभारतके इस प्रसंगसे जाना जा सकता है। महाभारतीय युद्धका डंका बज चुका था। कौरव और पाण्डव दोनों पक्षकी सेनाएँ एक-दूसरेपर आक्रमणके लिये तैयार थीं। अर्जुनके आग्रहपर भगवान् श्रीकृष्णने उनका रथ दोनों सेनाओंके मध्य लाकर खड़ा कर दिया था। अर्जुन स्वजनों, गुरुजनोंको सामने पाकर हतोत्साह हो **'न योत्स्ये'**—नहीं लड़ूँगा—कहकर धनुष-बाण त्याग निढाल होकर रथमें बैठ गये थे और भगवान्‌के लाख समझानेपर भी युद्धके लिये तैयार नहीं हो रहे थे। स्वजनोंके वधसे होनेवाले पाप-भयने उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया था। भगवान्‌ने स्थितिको समझकर जब कहा—**'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥'** चिन्ता न करो, मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तब अर्जुनने आश्वस्त हो उनके आज्ञानुसार युद्ध करना स्वीकार किया—**'करिष्ये वचनं तव'**। युद्धके बाजे बजने लगे। तभी सबने देखा युधिष्ठिर रथसे उतरकर कौरव-सेनाकी ओर जा रहे हैं। चारों पाण्डवों तथा अन्यान्य पाण्डवपक्षी योद्धाओंके मनमें विभिन्न प्रकारकी शंकाएँ होने लगीं। तभी सबने देखा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिरने सर्वप्रथम भीष्म पितामह, तदनन्दर द्रोण, कृप, शल्यादिको प्रणाम किया और उनसे विजयका आशीर्वाद प्राप्त किया। सभीने कहा—यदि तुम बिना हमारा अभिवादन किये युद्ध आरम्भ करते तो हम तुम्हें पराजयका शाप दे देते।

महाभारत साक्षी है, इच्छामृत्युका वर प्राप्त, अपराजेय योद्धा पितामह भीष्मने अपने दस दिनके सेनापतित्वकालमें पाण्डवोंकी आधीसे अधिक सेनाका संहारकर पाण्डवोंकी पराजय सुनिश्चित कर दी थी, परंतु तभी पूछनेपर अपनी मृत्युका उपाय बता अपने आशीर्वादको सार्थक बनाया था। आचार्य द्रोणने भी शस्त्र त्यागकर मरण-वरणकर अपने आशीर्वादको अन्वर्थक बनाया था। शल्यने कर्णको पग-पगपर हतोत्साहकर पाण्डवोंकी विजय सुनिश्चित की थी। ये सभी बातें अभिवादनके प्रतिफलमें ही घटित हुई थीं।

समष्टिरूपमें कहा जा सकता है कि आयु, विद्या, यश, बल, नित्यश्री, नित्यमंगल, प्रत्येक क्षेत्रमें विजय पानेके लिये हमें सबका अभिवादन करते रहना चाहिये; क्योंकि न जाने काल किस क्षणको अन्वर्थक बना दे।

दानविषयक कतिपय शंकाओंका समाधान

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)

[गतांक सं०३ पृ०सं० ६०० से आगे]

दान-पुण्यसे दुःख-दारिद्र्यका नाश

शंका—

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ।
धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

(रा०च०मा० १।२९४।३)

इस चौपाईमें कहा है कि पुण्यशीलके पास सुख-सम्पत्ति बिना बुलाये स्वभावसे ही जाती है। परंतु पुराणोंमें तथा लोकमें इस समय भी अनेकों ऐसे पुण्यशील पुरुष देखने-सुननेमें आते हैं, जो दुःख-दारिद्र्यके कारण वर्षोंसे पीड़ित हैं।

समाधान—न्यायोपार्जित धनका दान ही कल्याणकारी होता है। अन्यायसे प्राप्त द्रव्यसे जो पारलौकिक कर्म करता है, उसको उसका फल प्राप्त नहीं होता। ऐसा वृद्धशातातपस्मृतिके ६२वें श्लोकमें कहा है—

द्रव्येणान्यायलब्धेन यः करोत्यौर्ध्वदैहिकम्।
नासौ फलमवाप्नोति तस्यार्थस्य दुरागमात्॥

न्यायप्राप्त द्रव्यका दान भी श्रद्धापूर्वक प्रयाग आदि पवित्र देशमें, पौर्णमासी आदि शुभ कालमें तथा सदाचारी ब्राह्मण आदि उत्तम पात्रमें दिया सात्त्विक दान ही कल्याणकारी होता है, राजस तथा तामस दान नहीं।

'देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।'

(गीता १७। २०)

प्रयाग तीर्थमें कुम्भ पर्वपर सदाचारी क्षुधापीड़ित ब्राह्मणकी एक दिनकी क्षुधा-निवृत्तिके लिये कोई अति निर्धन न्यायसे प्राप्त अन्नका दान कर देता है, स्वयं भूखा रह जाता है, उसी तीर्थमें उसी पर्वपर उसी ब्राह्मणको एक वर्षकी क्षुधा-निवृत्तिके लिये कोई अतिधनी न्यायसे प्राप्त अन्नका दान कर देता है तो इनमेंसे अति निर्धनका दान अति कल्याणकारी होगा, क्योंकि दानकी मात्रा कम होनेपर भी अति निर्धनको २४ घण्टे भूखका कष्ट सहन करना पड़ा, अतिधनीको एक घण्टे भी नहीं। छान्दोग्य-परिशिष्टमें कहा है कि (शास्त्रविधिसे किये गये दान, तप आदिमें) जहाँ कष्ट अधिक होता है, वहाँ श्रेय (कल्याण) भी अधिक होता है; क्योंकि कष्टसे ही श्रेयकी प्राप्ति होती है। गोभिलस्मृतिमें भी कहा गया है—

यत्र स्यात् कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः।
भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्यते॥

(गोभिलस्मृ० २। १३)

इसी नियमके आधारपर युधिष्ठिर महाराजका यज्ञ, जिसमें लाखों ब्राह्मणोंने भोजन किया था, उस यज्ञकी अपेक्षा बहुत दिन भूखे रहकर एक ब्राह्मणको कराया गया सत्तूका भोजनरूप सत्तू-यज्ञ श्रेष्ठ माना गया। ऐसी कथा महाभारतमें आती है। अतः दान-पुण्यके बारेमें उपर्युक्त बातें भी ध्यानमें रखनेयोग्य हैं।

शंका—जैसा कुछ दान-पुण्यके बारेमें ऊपर विवेचन किया गया है, उसपर पूरा ध्यान रखकर दान-पुण्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाले महान् पुरुषोंके दुःख-दारिद्र्यका वर्षोंतक जब नाश नहीं हुआ तब उन्होंने अपने मुखसे ही दान-पुण्यकी निन्दा करते हुए उसे ढोंगमात्र कहा। अर्वाचीन लोगोंने ही नहीं, किंतु प्राचीन पुराणोंमें भी ऐसी कथाएँ आती हैं। अत: कैसे माना जाय कि दान-पुण्यसे दुःख-दारिद्र्यका नाश होता है?

इसी प्रकार जो माता, पिता और गुरुजनोंकी सच्चे हृदयसे सेवा करते हैं, उन्हें उनके माता-पिता ममत्व होनेके कारण तथा पुत्रके दुःख-दारिद्र्यसे स्वयं अन्न-वस्त्रका अति कष्ट पानेके कारण सच्चे हृदयसे नित्यप्रति सुखी-धनी होनेका आशीर्वाद देते हैं, तो भी वर्षोंतक पुत्रके दुःख-दारिद्र्यका नाश नहीं होता, अत: माता-पिता आदिके आशीर्वादसे दुःख-दारिद्र्यका नाश होता है, यह कैसे माना जाय?

समाधान—जन्मान्तरके पापोंका फल है—दुःख-दारिद्र्य। अत: जितने अधिक या जितने बड़े पापके फलरूपमें दुःख-दारिद्र्य प्राप्त हुआ है, उसको नष्ट करनेके लिये जब उतना अधिक या उतना बड़ा पुण्य उत्पन्न हो जाता है, तभी दुःख-दारिद्र्यका नाश होता है। ऐसा न होनेपर वर्षोंतक या जीवनभर दुःख-दारिद्र्यका नाश नहीं होता। पिछले पापोंके नाशयोग्य पुण्य उत्पन्न होनेके बाद भी यदि दान-पुण्य करता रहे तो सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है। उसमें भी यदि पुण्य उत्कृष्ट हो और शीघ्र ही परिपक्व हो जाय तो उसी समयमें, नहीं तो जन्मान्तरमें सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है। प्राय: पुण्य-पापोंका परिपाक जन्मान्तरमें ही होता है, अत: पुण्यात्मा भी इस जन्ममें दुःख-दारिद्र्यसे पीड़ित तथा पापात्मा भी सुख-सम्पत्तिसे सम्पन्न देखनेमें आते हैं। इस रहस्यको समझ लेनेपर दान-पुण्यसे तथा माता-पितादिकी सेवासे दुःख-दारिद्र्यका नाश होता है—इस शास्त्रीय सिद्धान्तको माननेमें कोई शंका न होगी। [समाप्त]

रक्तदान महादान

(सुश्री अपर्णाजी पाण्डेय)

वैज्ञानिकोंने मानवके रक्तको लाल रक्तकणमें उपस्थित ऐन्टीजनको आधार मानकर चार प्रमुख समूहोंमें विभक्त किया है—'A', 'B', 'AB' और 'O'। इसके अतिरिक्त रीसस (Rh) सिस्टम भी है, जिसके आधारपर उपर्युक्त समूहोंके रक्त पाजिटिव या निगेटिव होते हैं। यहाँ O समूहके व्यक्ति सभी समूहवालेको रक्तका दान दे सकते हैं अर्थात् वे यूनीवर्सल डोनर हैं, वहीं 'AB' समूहवाले अन्य समूहवालोंसे रक्त ले सकते हैं अर्थात् वे यूनीवर्सल एक्सेप्टर हैं।

हमारे देशमें प्राय: एक करोड़ यूनिट रक्तकी आवश्यकता प्रतिवर्ष होती है, जबकि पचहत्तर लाख यूनिट रक्त ही दानसे प्राप्त होता है। इस प्रकार पच्चीस लाख यूनिट रक्तके अभावमें प्रतिवर्ष सैकड़ों लोग मृत्युके गालमें फँस जाते हैं। प्रत्येक दस रोगीमें एकको रक्तकी आवश्यकता होती है।

हर सामान्य व्यक्तिमें ५-६ लीटर रक्त रहता है। रक्तदानके समय मात्र ३०० मिलीलीटर रक्त लिया जाता है। शरीरसे निकले रक्तकी आपूर्ति प्राय: २४ से ४८ घण्टेमें हो जाती है। सामान्य व्यक्तिके शरीरके वजनका ७ प्रतिशत रक्त उसके शरीरमें रहता है। एक यूनिट रक्तसे तीन लोगोंकी जान बचायी जा सकती है। 'O' रक्तसमूह सबसे अधिक पाया जाता है और 'AB' निगेटिव सबसे कम। विश्व-स्वास्थ्य-संगठनके अनुसार खरीदा हुआ रक्त नहीं लेना चाहिये। हमेशा स्वैच्छिक रक्तदाताओंसे रक्त लेना चाहिये।

रक्तदानके अधिकारी—**कोई भी स्वस्थ व्यक्ति, जिसकी आयु १८-६० वर्षके भीतर है, रक्तदान कर सकता है। जिस व्यक्तिका वजन ४५ किलोग्राम हो, जिसके रक्तमें बारह प्रतिशत हिमोग्लोबिन हो, जो उच्च रक्तचाप और मधुमेहका रोगी नहीं हो, जिसे एक सालके भीतर पीलिया रोग नहीं हुआ हो, वह रक्तदानका अधिकारी है। माहवारीके दौरसे गुजर रही महिला, बच्चोंको स्तनपान करानेवाली महिला रक्तदानके लिये अयोग्य है।**

चूँकि रक्तदान जीवनदान है, इस कारण यह श्रेष्ठ दान है। हमलोगोंको यह चाहिये कि हम भी उत्साहपूर्वक रक्तदानकर पुण्यके भागी बनें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुकसानदायक है अण्डा-सेवन

(श्रीरामनिवासजी लखोटिया)

यदि शास्त्रीय विधि-निषेधकी बात न मानी जाय तो हर व्यक्ति इस बातके लिये पूर्ण स्वतन्त्र है कि वह क्या खाये और क्या न खाये, किंतु अच्छे स्वास्थ्यके दृष्टिकोणसे या भयानक बीमारियोंकी रोकथामके लिये कुछ खाद्य-पदार्थोंका सेवन हानिकारक हो तो आपको चाहिये कि आप विवेकपूर्वक ऐसा खाद्य-पदार्थ न लें। आप निम्न तथ्योंसे भलीभाँति जान पायेंगे कि अण्डा जहाँ स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है, वहाँ वह मांसाहार भी है। इसलिये इसका सेवन किसी भी दृष्टिसे उचित नहीं। यहाँ अण्डोंके बारेमें कुछ प्रमुख तथ्योंपर विवरण प्रस्तुत है—

१. अण्डा-सेवन अहिंसा एवं करुणाके विपरीत—यह बहुधा सुननेमें आता है कि अनिषेचित अण्डे शाकाहारी हैं। लेकिन यदि यह मालूम हो जाय कि उनके उत्पादनकी विधि कितनी क्रूरतासे परिपूर्ण है और भारतीय मूल्यों—जैसे अहिंसा और करुणाके विपरीत है तो बहुतसे लोग अण्डा-सेवन बन्द कर देंगे। अमेरिकाके विश्वविख्यात लेखक जॉन राबिन्सने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'डाइट फॉर ए न्यू अमेरिका'में लिखा है कि अण्डोंकी फैक्ट्रियोंमें स्थापित किये हुए पिंजड़ोंमें इतनी अधिक मुर्गियाँ भर दी जाती हैं कि वे पंख भी नहीं फड़फड़ा सकतीं और तंग जगहकी वजहसे वे आपसमें चोंचें मारती हैं, जख्मी होती हैं, गुस्सा करती हैं और कष्ट भोगती हैं। जब मुर्गीको २४ घण्टे लोहेकी सलाखपर बैठना पड़ता है तब एक विशेष मशीनसे एक ही रातमें लगभग हजारों मुर्गियोंकी चोंचें काट दी जाती हैं और गरम-गरम आगसे तपते हुए लाल औजारोंसे उनके पंख भी काट दिये जाते हैं। आप समझ सकते हैं कि जल्दीसे अण्डा उत्पन्न करनेका तरीका कितना हिंसात्मक है।

२. अण्डोंसे कई बीमारियाँ—हालहीमें हुआ बर्ड फ्ल्यू और सालमनोला बीमारीने समस्त विश्वमें यह प्रमाणित कर दिया है कि मुर्गियोंको होनेवाली कई बीमारियोंके कारण अण्डोंसे वह बीमारी उस मनुष्यमें प्रवेश कर जाती है। अण्डा-सेवन करनेवाले व्यक्तियोंको यह भी नहीं मालूम कि इसमें हानिकारक कोलेस्ट्रालकी बहुत अधिक मात्रा होती है। अण्डोंके सेवनसे आँतोंमें सड़न और टी०बी० आदिकी आशंकाएँ बढ़ जाती हैं। अण्डेकी सफेद जर्दीसे पैप्सीन इंजाईमके विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है। कैथराइन निम्मों तथा डॉ० जे० एम० विलिंकजने एक सम्मिलित रिपोर्टमें कहा है कि अण्डा हृदयरोग और लकवे आदिके लिये जिम्मेदार है। यह बात १९८५ ई० के नोबुल पुरस्कार विजेता डॉ० ब्राउन और डॉ० गोल्डस्टीनने कही है कि अण्डोंमें सबसे अधिक कोलेस्ट्रोल होता है, जिससे उत्पन्न हृदयरोगके कारण बहुत अधिक मौतें होती हैं। इग्लैण्डके डॉ० आर० जे० विलियमने कहा है कि जो लोग आज अण्डा खाकर स्वस्थ रहनेकी कल्पना कर रहे हैं, वे कल लकवा, एग्जिमा, इनजाइना-जैसे रोगोंके शिकार होंगे। फिर अण्डेमें फाईबर नहीं होता और कार्बोहाईड्रेट जो शरीरमें स्फूर्ति देता है, वह भी 'शून्य' होता है।

३. अण्डोंमें पौष्टिकता एवं ऊर्जाकी कमी—विज्ञापनोंके माध्यमसे यह भ्रम बड़ी तेजीसे फैलाया जा रहा है कि शाकाहारी खाद्यानोंकी तुलनामें अण्डेमें अधिक प्रोटीन है। लेकिन विश्व-स्वास्थ्य-संगठनके निम्न तुलनात्मक चार्टसे यह ज्ञात होता है कि प्रोटीन, खनिज लवण एवं कैलोरी आदिकी दृष्टिसे कौन-सा आहार हमारे लिये उपयुक्त है—

खाद्यका नाम (प्रत्येक १०० ग्राम)	प्रोटीन	खनिज लवण	कार्बोहाईड्रेट्स	कैलोरी
शाकाहारी खाद्य				
मूँग	२४.०	३.६	५६.६	३३४
सोयाबीन	४३.२	४.६	२०.९	४३२
मूँगफली	३१.५	२.३	१९.३	५४९
स्प्रेट्रा दुग्ध पाउडर	३८.३	६.८	५१.०	३५७
मांसाहारी खाद्य				
अण्डा	१३.३	१.९	शून्य	१७३

४. कोई भी अण्डा शाकाहारी नहीं होता—प्रचार-माध्यमोंके कारण कुछ वर्षोंसे शुद्ध शाकाहारी परिवारके नवयुवक भी अण्डोंका सेवन करने लगे हैं, क्योंकि अनिषेचित अण्डोंको 'शाकाहारी' नामकरण देकर एक भ्रमजाल फैलाया गया है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि अनिषेचित अण्डे किसी भी प्रकारसे शाकाहारी नहीं होते; क्योंकि न तो वे पेड़ोंपर उगते हैं और न किसी पौधेपर, बल्कि वे सब मुर्गीके पेटसे उत्पन्न होते हैं। १९७१ ई० में मिशीगन यूनिवर्सिटी, अमेरिकाके वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिया था कि संसारका कोई भी अण्डा निर्जीव नहीं है, चाहे निषेचित हो या अनिषेचित। अण्डेके ऊपरी भागपर हजारों सूक्ष्म छिद्र होते हैं, जिनसे अनिषेचित अण्डेका जीव श्वास लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान् और भक्तका सम्बन्ध

प्रिय महोदय, सादर सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिला, पढ़कर प्रसन्नता हुई। मेरे पास इतने पत्र आते हैं कि मैं सबका उत्तर तो लिख ही नहीं पाता और इस विवशताके लिये सिवा क्षमा-प्रार्थनाके मेरे पास अन्य कोई उपाय भी नहीं है।

भगवान् और भक्तके सम्बन्धका रहस्य भला मैं कैसे जानूँ। उसे तो भगवान् और भक्त ही जानते हैं। भगवान् श्रीराम और भरतजीके प्रेम-सम्बन्धके जाननेमें विदेहराज जनक भी अपनेको असमर्थ पाते हैं। वे अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहते हैं—

धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥

(रा०च०मा० २। २८८। ४-५)

देबि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की॥

(रा०च०मा० २। २८९। ५-६)

'धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार इन तीन विषयोंमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरा प्रवेश है। अर्थात् मैं धर्मकी व्यवस्था दे सकता हूँ, राजनीतिक उलझनोंको सुलझा सकता हूँ और ब्रह्मज्ञानका भी उपदेश कर सकता हूँ, इन विषयोंमें मेरी बुद्धि काम करती है, परंतु मेरी वही बुद्धि भरतजीकी महिमाका वर्णन तो क्या करे, छलकर उसकी छायातकको नहीं छू पाती। हे देवि! भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम और परस्परका विश्वास अतर्क्य है, वह बुद्धि और विचारकी सीमासे परे है। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी समताकी सीमा हैं तथापि भरतजी प्रेम और ममताकी सीमा हैं।'

भक्तके भावको केवल भगवान् पहचानते हैं और भगवान्के भावको भक्त। इसीसे तो वे एक-दूसरेका स्वाभाविक ही अनुसरण करते हैं। भक्त चाहता है मैं भगवान्की रुचिका अनुसरण करूँ और भगवान् अपने भक्तकी क्रियाके अनुसार ही बर्तते हैं। सीताजी रामजीके लिये रोती हैं तो रामजी सीताजीके लिये। लक्ष्मणजी रामजीका वियोग नहीं सह सकते और रामजी लक्ष्मणजीके मूर्च्छित होनेपर विकल होकर प्राणत्यागतकको तैयार हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण इसीसे कहते हैं—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥
न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १५-१६, २०)

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(श्रीमद्भा० ९। ४। ६६, ६८)

'हे उद्धव! मुझे तुम-जैसे भक्त जितने प्रियतम हैं, अपने पुत्र ब्रह्माजी, साक्षात् मेरे स्वरूप श्रीशंकरजी, भाई बलरामजी, निरन्तर मेरी सेवामें रहनेवाली पत्नी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी मुझे उतने प्रिय नहीं हैं। किसी बातकी चाह न रखनेवाले, मेरा ही मनन करनेवाले, शान्तचित्त, निर्वैर और सर्वत्र मुझको देखनेवाले अपने भक्तोंके पीछे-पीछे मैं नित्य इसलिये फिरता हूँ कि उनकी चरण-धूलिसे अपनेको पवित्र कर सकूँ। बढ़ी हुई (विशुद्ध और अनन्य) मेरी भक्ति जैसे मुझको वशमें करती है, वैसे योग, ज्ञान, धर्म, वेदाध्ययन, तप और त्याग मुझको वशमें नहीं कर सकते।'

'(हे दुर्वासाजी!) जिनका हृदय मेरे साथ बँध गया है और जो सब जगह सबमें सब समय समरूपसे मुझको ही देखते हैं, वे अपनी भक्तिसे मुझे वैसे ही अपने वश कर लेते हैं, जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने श्रेष्ठ पतियोंको वशमें कर लेती हैं। अधिक क्या कहा जाय, ऐसे साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ, वे मेरे सिवा किसीको नहीं जानते और मैं उनके सिवा किसीको नहीं जानता।'

यह तो भगवान्का भाव है—अब भक्तका भाव देखिये और उसको भी भगवान्की ही वाणीमें सुनिये—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम्॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६७)

'जिसने अपना चित्त मुझको दे दिया है, वह मुझको छोड़कर ब्रह्माके आधिपत्य, देवराज इन्द्रके राज्य, सार्वभौम साम्राज्य, पातालके आधिपत्य, योगकी समस्त सिद्धियाँ यहाँतक कि कैवल्यमोक्ष तकको नहीं चाहता।'

मेरे भक्त मेरी सेवासे ही पूर्णमनोरथ होते हैं, वे मेरी सेवाको छोड़कर सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्तियोंको भी नहीं चाहते, फिर कालसे नाश होनेवाली अन्यान्य वस्तुओंकी तो बात ही क्या है?

यह भगवान् और भक्तके उन भावोंका बाह्य दिग्दर्शन है, जो लोकशिक्षाके लिये भक्ति और भक्तका महत्त्व बतलाते हुए भगवान्ने कराया है। वस्तुतः भगवान् और भक्तके पारस्परिक भाव तो हमारे लिये अचिन्त्य ही होते हैं, वे हमारी वाणीमें और हमारे मनोंमें कभी आ नहीं सकते। उनका कैसा क्या नाता होता है, इस बातको तीसरा कोई नहीं बतला सकता। हाँ, उनके पारस्परिक व्यवहारकी बाह्य लीलाको पढ़-सुनकर, गाकर तथा मनन करके हम परम पवित्र हो सकते हैं। वस्तुतः भगवान् और भक्त दो स्वरूपोंमें एक ही परम वस्तु हैं। उनके दो स्वरूप तो लीलानन्दके लिये हैं और वह लीला लोकपावनी होती है। शेष प्रभुकृपा!

(२)

भगवच्चिन्तन

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण! आपके कई पत्र मिल चुके, समयपर उत्तर नहीं लिख सका। आजकल आपका भजन अच्छा होता है तथा चित्तमें विकार भी प्रायः नहीं होते हैं सो बड़े ही आनन्दकी बात है। भजन जितना ही अधिक होगा, उतनी ही विकारोंकी मात्रा कम होती चली जायगी। विकारोंके नाश होनेकी कसौटी है भजनका अनन्य और विशुद्ध होना। जबतक विकार रहेंगे तबतक भजनमें सर्वथा अनन्यता और विशुद्धि नहीं होगी, परंतु इन विकारोंका नाश भी भजनसे ही होगा। अतएव भजन करते रहना चाहिये। अच्छे संगके प्रभावसे तथा भजनकी विशेषतासे विकार दब जाते हैं, परंतु उनका जबतक पूरा नाश नहीं हो जाता, तबतक उनसे सदा सावधान रहना चाहिये। विकारके प्रत्यक्ष कारण प्राप्त होनेपर भी विकार न हों तब मानना चाहिये कि विकार मरने लगे हैं। जिसके मनमें विकार मौकेपर उभड़ आते हैं, वह अपनेको यदि सिद्ध महात्मा मान लेता है तो उसे पछताना ही पड़ता है। अतएव विकारोंसे सदा सावधान रहिये।

श्रीभगवान्का भजन मनसे करनेका अभ्यास कीजिये। यह तो मनकी बदमाशी है जो वह यों समझाना चाहता है कि भगवान्का मनसे चिन्तन करोगे तो कामकाजमें भूल हो जायगी। अब आप दिनभर कामकाज करते हैं तो क्या दिनभर आपका मन किसी एक ही विषयमें एकाग्र रहता है? न मालूम मन कहाँ-कहाँ जाता है और आप अपना अभ्यस्त कार्य किया करते हैं। इसी प्रकार भगवान्का चिन्तन करते रहनेपर भी कामकाज हो सकेगा। बल्कि विषय-चिन्तनसे जो भाँति-भाँतिके विकार चित्तमें जाग उठते हैं, बुरे कर्मोंके लिये कामना या आसक्तिवश प्रेरणा होती है, ये सब बातें न होंगी तो कामकाज और भी अच्छी तरह होगा। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये—कामकाजमें हर्ज ही हुआ और उधर भगवान्का चिन्तन बराबर होता रहा तो विचार कीजिये वास्तवमें आपका क्या हर्ज हुआ? भगवच्चिन्तन ही तो जीवनका प्रधान कार्य है, इसीमें तो जीवनकी सफलता है। सब कुछ जाकर भी यह हो गया तो सब कुछ हो गया। इसलिये मनके धोखेमें न आकर उसे निरन्तर भगवत्स्मरणमें लगाये रखनेकी कोशिश कीजिये। शेष प्रभुकृपा!

(३)

घर या बाहर

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण! मेरी समझसे आपको घर छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहिये। कहाँ जाइयेगा? आज ऐसा कौन-सा क्षेत्र या स्थान है, जहाँ विषयासक्ति नहीं है? घरमें आपको जो सहूलियत प्राप्त है, वह बाहर जानेपर और भी नहीं मिलेगी। मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि आपको साधनकी जितनी सुविधा घरमें है, उतनी बाहर नहीं मिल सकेगी। वहाँ नाना प्रकारकी ऐसी चिन्ताएँ आपको घेर लेंगी, जिनकी यहाँ कल्पना भी नहीं है, अतएव आप घरमें ही रहकर अधिक-से-अधिक समय भगवदाराधनमें लगानेकी चेष्टा कीजिये और ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिसमें सत्संग, भजन और ध्यानके प्रभावसे और भगवत्कृपाके बलसे आपका चित्त श्रीभगवान्में विशेषरूपसे आसक्त हो जाय। आप मनमें निश्चय कीजिये और भगवान्की कृपाके बलपर विश्वास कीजिये, फिर ऐसा होना कुछ भी बड़ी बात नहीं है। भगवान्की कृपासे असम्भव भी सम्भव हो सकता है। फिर यह तो भगवान्की ओर जानेका प्रयत्न है, इस प्रयत्नमें तो भगवत्कृपा सहायता करनेके लिये बाध्य है। शेष प्रभुकृपा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ६।१४ बजेतक	मंगल	स्वाती दिनमें १२।७ बजेतक	१९ अप्रैल	वृश्चिकराशि रात्रिशेष ५।१३ बजेसे।
द्वितीया रात्रिशेष ४।१२ बजेतक				
तृतीया रात्रिमें २।२३ बजेतक	बुध	विशाखा ''१०।५३ बजेतक	२० ''	भद्रा दिनमें ३।१७ बजेसे रात्रिमें २।२३ बजेतक।
चतुर्थी '' १।०० बजेतक	गुरु	अनुराधा '' ९।५९ बजेतक	२१ ''	मूल दिनमें ९।५९ बजेसे, **श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**, चन्द्रोदय रात्रिमें १०।४ बजे।
पंचमी ''१२।०० बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा '' ९।२५ बजेतक	२२ ''	धनूराशि दिनमें ९।२५ बजेसे।
षष्ठी ''११।२८ बजेतक	शनि	मूल '' ९।१६ बजेतक	२३ ''	मूल दिनमें ९।१६ बजेतक, भद्रा रात्रिमें ११।२८ बजेसे।
सप्तमी '' ११।२५ बजेतक	रवि	पू० षा० '' ९।३७ बजेतक	२४ ''	भद्रा दिनमें ११।२६ बजेतक, मकरराशि दिनमें ३।५० बजेसे, गुरु उदय पूर्वमें रात्रि ७।५७ बजे।
अष्टमी '' ११।५६ बजेतक	सोम	उ० षा० '' १०।२८ बजेतक	२५ ''	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत।**
नवमी '' १२।५३ बजेतक	मंगल	श्रवण '' ११।५० बजेतक	२६ ''	कुम्भराशि रात्रिमें १२।४४ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १२।४४ बजेसे।
दशमी '' २।२० बजेतक	बुध	धनिष्ठा '' १।३९ बजेतक	२७ ''	भद्रा दिनमें १।३७ बजेसे रात्रिमें २।२० बजेतक, गुरु बालनिवृत्ति रात्रिमें ८।० बजे।
एकादशी '' ४।५ बजेतक	गुरु	शतभिषा '' ३।५१ बजेतक	२८ ''	**वरूथिनी एकादशीव्रत** (स्मार्त्त) **श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती**, भरणी नक्षत्र में सूर्य प्रातः ६।४८ बजे।
द्वादशी अहोरात्र	शुक्र	पू० भा० सायं ६।१९ बजेतक	२९ ''	मीनराशि दिनमें ११।४२ बजेसे, **वरूथिनी एकादशीव्रत** (वैष्णव)।
'' प्रातः ६।५ बजेतक	शनि	उ० भा० रात्रिमें ८।५७ बजेतक	३० ''	**शनिप्रदोषव्रत**, मूल रात्रिमें ८।५७ बजेसे।
त्रयोदशी दिनमें ८।९ बजेतक	रवि	रेवती ''११।३२ बजेतक	१ मई	मेषराशि रात्रिमें ११।३२ बजेसे, भद्रा दिनमें ८।९ बजेसे रात्रिमें ९।७ बजेतक, **मासशिवरात्रिव्रत, पंचक समाप्त** रात्रिमें ११।३२ बजे।
चतुर्दशी '' १०।६ बजेतक	सोम	अश्विनी ''१।५५ बजेतक	२ ''	मूल रात्रिमें १।५५ बजेतक, **श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या '' ११।४८ बजेतक	मंगल	भरणी '' ३।५९ बजेतक	३ ''	**स्नान दानादिकी पुण्यतमा भौमवती अमावस्या**, दृश्य अगस्त्यास्त सायं ५।१४ बजे।

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११।१ बजेतक	बुध	कृत्तिका अहोरात्र	४ मई	वृषराशि दिनमें १०।२३ बजेसे, **चन्द्रदर्शन।**
द्वितीया '' १।५७ बजेतक	गुरु	कृत्तिका प्रातः ५।३६ बजेतक	५ ''	**श्रीपरशुराम-जयन्ती** (प्रदोषमें)
तृतीया दिनमें २।१७ बजेतक	शुक्र	रोहिणी '' ६।४६ बजेतक	६ ''	भद्रा रात्रिमें २।१२ बजेसे, मिथुनराशि रात्रिमें ७।६, बजेसे, **अक्षयतृतीया।**
चतुर्थी '' २।७ बजेतक	शनि	मृगशिरा '' ७।२५ बजेतक	७ ''	भद्रा दिनमें २।७ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी '' १।२६ बजेतक	रवि	आर्द्रा दिनमें ७।३५ बजेतक	८ ''	कर्कराशि रात्रिमें १।२२ बजेसे, **आद्य जगद्गुरुशङ्कराचार्य-जयन्ती।**
षष्ठी ''१२।१८ बजेतक	सोम	पुनर्वसु प्रातः ७।१६ बजेतक	९ ''	**श्रीरामानुजाचार्य जयन्ती, श्रीगंगासप्तमी** (मध्याह्नमें)
सप्तमी '' १०।४६ बजेतक	मंगल	पुष्य '' ६।३५ बजेतक	१० ''	मूल प्रातः ६।३५ बजेसे, भद्रा दिनमें १०।४६ से रात्रिमें ९।५१ बजेतक।
अष्टमी '' ८।५४ बजेतक	बुध	श्लेषा ''५।३१ बजेतक मघा रात्रिशेष ४।१३ बजेतक	११ ''	मूल रात्रिशेष ४।१३ बजेतक, **सीतानवमी**, सिंहराशि प्रातः ५।३१ बजेसे, कृत्तिका नक्षत्रमें सूर्य रात्रिमें १।४७ बजे।
नवमी प्रातः ६।४७ बजेतक	गुरु	पू०फा० रात्रिमें २।४२बजेतक	१२ ''	× × ×
दशमी रात्रिशेष ४।२९ बजेतक				
एकादशी रात्रिमें २।२ बजेतक	शुक्र	उ०फा० ''१।४ बजेतक	१३ ''	भद्रा दिनमें ३।१५ बजेसे रात्रिमें २।२ बजेतक, कन्याराशि दिनमें ८।१७ बजेसे, **मोहिनी एकादशीव्रत** (स्मार्त्त)।
द्वादशी ''११।३५ बजेतक	शनि	हस्त ''११।२३ बजेतक	१४ ''	**मोहिनी एकादशीव्रत** (वैष्णव), **परशुराम द्वादशी।**
त्रयोदशी '' ९।९ बजेतक	रवि	चित्रा '' ९।४५ बजेतक	१५ ''	तुलाराशि दिनमें १०।३४ बजेसे, **ग्रीष्म-ऋतु प्रारम्भ, प्रदोषव्रत**, वृषराशिमें सूर्य संक्रान्ति दिनमें १२।५६ बजे।
चतुर्दशी रात्रिमें ६।५२ बजेतक	सोम	स्वाती ''८।१७ बजेतक	१६ ''	भद्रा सायं ६।५२ बजेसे, **व्रतपूर्णिमा, श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत, सौर ज्येष्ठमासारम्भ।**
पूर्णिमा सायं ४।४६ बजेतक	मंगल	विशाखा ''७।० बजेतक	१७ ''	भद्रा प्रातः ५।४९ बजेतक, वृश्चिकराशि दिनमें १।१९ बजेसे, **स्नान-दानकी पूर्णिमा, श्रीबुद्ध-जयन्ती, वैशाख-स्नान समाप्त।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

(१)

पक्षाघात ठीक हो गया

कृपामयी पराम्बा जगज्जननी माँ भगवतीकी कृपा निरन्तर अपने भक्तोंपर बरसती रहती है। वे अपने भक्तोंपर कृपाकर उनकी रक्षा करती रहती हैं। दिसम्बर २००७ ई० की बात है—ठण्ड बहुत अधिक थी, रात्रिके तृतीय प्रहरका समय था, मैं लघुशंकासे निवृत होकर शयन करने गया तो सिरदर्द होना प्रारम्भ हो गया, मैंने अपनी धर्मपत्नीको बताया और मैं बाम लगाकर सो गया। प्रात: नित्य-कर्मसे निवृत्त हो जब मैं माँ भगवतीकी पूजा करनेहेतु गया और वहाँसे लौटकर वापस आया तो सिरदर्द फिर होने लगा। यह विचार करके कि अत्यधिक सर्दीके कारण हो रहा होगा, फिरसे बाम लगा ली। शामको पूजाहेतु माँ भगवती काली माताके मन्दिर गया, पूजा-आरती की और जब भक्तोंको चरणामृत वितरणके पश्चात् प्रसाद- वितरण कर रहा था तो शरीर डगमगाने लगा और शरीरमें कम्पन होने लगा, ऐसा लग रहा था कि मानो गिर पड़ूँगा; मैं तुरंत मन्दिरका शटर लगाकर जैसे-तैसे घर आया तो मेरे शरीरका बायाँ भाग शिथिल-सा हो गया। मैं अपने पुत्रके साथ डॉक्टरके पास गया और उन्होंने परामर्श दिया कि किसी न्यूरोसर्जनको दिखायें। उन्होंने कुछ दवा दी, किंतु स्थिति यह थी कि मेरे गलेसे अन्दर पानीतक जाना दूभर हो गया और आवाजमें अन्तर आ गया, चलनेमें कठिनाई होने लगी एवं शरीर बाँयीं दिशामें लड़खड़ाने लगा। दूसरे दिन ईदका अवकाश होनेके कारण उसके अगले दिन अपने पुत्र-पुत्रियों एवं दामाद तथा नाती-नातिनके साथ वाहन किरायेपर लेकर ग्वालियर गया। ग्वालियरमें न्यूरोसर्जनको दिखाया गया, मुझे सिटीस्केनहेतु लैबमें ले जाने एवं लानेमें बच्चोंको अत्यधिक परेशानी हो रही थी, शरीर बाँयीं ओर गिर रहा था, डॉक्टरने बताया कि शरीरके बाँये भागपर (पक्षाघात) फालिश हो गई है, उन्होंने दवाईयाँ लिख दी। शामके लगभग ५ बजेका समय हो गया, मेरे परिवार एवं मैंने विचार किया कि माँ भगवती बगलामुखीके दर्शन करते हुए वापस शिवपुरी लौट जायँगे। ग्वालियरसे दतियाका सफर करीब ढाई घण्टेका है। हम करीब ८ बजे पराम्बा माँ भगवतीके दर्शन करने मन्दिरमें पहुँच गये। सहारा देकर एवं पकड़कर मुझे माँके सामने लाया गया, मैंने दर्शन किये। लगा कि मेरे सब कष्ट माँने हर लिये हैं। मैं बिना किसी सहारेके माँके सामने खड़ा रहा। मैंने सभीसे कहा कि अब आप सभी अन्यत्र मन्दिरोंमें दर्शन कर आयें; क्योंकि माँ भगवती धूमावतीके दर्शन निश्चित अवधितक ही होते हैं। वे सभी लोग दर्शनहेतु चले गये और मैं धीरे-धीरे माँकी कृपासे चलने लगा, शरीरका बाँयी ओर झुकना कुछ कम हो गया। शरीरमें होनेवाला कम्पन भी समाप्त-जैसा हो गया और मैं आरतीके पश्चात् प्रसाद प्राप्त करनेहेतु चला गया। अब मैं माँके प्रसादसे अपनेको स्वस्थ अनुभव कर रहा था। यह विशेष बात कि अभीतक मैंने डॉक्टरद्वारा लिखी गयी किसी भी प्रकारकी दवाका सेवन नहीं किया था। मेरी पत्नी घरपर ही रहकर माँके सामने लगातार प्रार्थना करती रही। माँने मुझे पूर्ण स्वस्थ कर दिया। मेरी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। ममतामयी अखिल ब्रह्माण्डकी सृष्टिका पालन एवं संहार करनेवाली करुणामयी, वात्सल्यमयी, स्नेहमयी माँ भगवती अपने भक्तोंका सदा कल्याण करती हैं, उनकी कृपासे आज भी मैं सामान्य जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। यह सब माँकी कृपाके चमत्कारसे हुआ।

हमारा परिवार धर्मनिष्ठ तथा आस्थावान् रहा है। बाल्यकालमें सुसंस्कारके कारण माँ भगवतीके चरणोंमें विशेष प्रीति हुई और फिर वे ही मेरी एवं मेरे बच्चोंकी आराध्या एवं इष्टदेवी बन गयीं।—**नवलकिशोर शुक्ला**

(२)

'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रके प्रभावसे बिच्छूके दंशका शमन

दिनांक २० अक्टूबर १९७८ ई० बुधवारकी बात है, विद्यालयमें मध्याह्नीय अवकाशके बाद जब बच्चे विद्यालयमें आये तो सामूहिक श्रमदानके सन्दर्भमें उन्हें एक मेंड बाँधनी थी। इसके लिये सभी बच्चे ईंट एवं मिट्टी ढोने लग गये। उसी समय उनमेंसे एक आठवर्षीय बालक विनोदको अकस्मात् एक विषैले बिच्छूने डंक मार दिया। वह रोने-चिल्लाने लगा। निकटमें उपचारहेतु दवाकी कोई व्यवस्था न थी। हमारे एक शिक्षक महोदयको जब कोई और उपाय न सूझा तो उन्होंने 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रसे बच्चेके बिच्छूसे पीड़ित अंगको झाड़ना आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप चिल्लाता हुआ वह बालक बीस मिनटके बाद ही हँसने लगा। भगवान् आशुतोषके नाम-मन्त्र-महौषधिके प्रभावसे उसकी समस्त पीड़ा तथा हम सबका वह आसन्न क्लेश दूर हो गया। सभी उपस्थित-जन यह देखकर आश्चर्य और आनन्दसे भर गये। भावाभिभूत हो हम सभीने कृतज्ञभावसे आशुतोष भगवान् शंकरको श्रद्धासहित मन-ही-मन प्रणामांजलियाँ अर्पित कीं।—**वशिष्ठ मिश्र**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईमानदारीका आनन्द

ईमानदारी हृदयको कितना आनन्द देती है, यह कोई श्रीरस्तोगीजीसे पूछे। घटना सितम्बर २००९ ई० की है। श्रीरस्तोगीजी एक इण्टर कॉलेजके निवर्तमान प्राचार्य हैं। वे सितम्बर २००९ ई० में रोडवेजकी बससे गाजियाबादसे अपने घर मवाना आ रहे थे। मवाना आकर वे अपना बैग उठाकर बससे उतरे और अपने घर आ गये। थोड़ी देरमें उन्होंने बैग खोला तो स्तब्ध रह गये। बैगको बाहरसे देखा। हूबहू वैसा ही था, जैसा उनका था, फिर बैगका सामान देखा। उसमें सोनेका एक हार, एक सुनहरा बोरला (माथेका टीका) तथा सौ-सौ-के नोटोंकी एक गड्डीके अतिरिक्त सौ-सौ-के कुछ खुले नोट थे। एक क्षणमें स्थिति स्पष्ट हो गयी। बैग बदल गया, किसका होगा? कोई कितना दु:खी हुआ होगा? मेरे बैगमें तो रोज पहननेके कपड़े आदि थे। करुणा और उद्वेगसे रस्तोगीजीकी आँखोंमें पानी आ गया। वे सोचमें डूब गये, इस बैगका असली मालिक कहाँ गया होगा? ध्यान आया, बस हस्तिनापुरकी थी। उससे पूर्व बसका कोई स्टापेज नहीं है। अवश्य ही इस बैगका मालिक हस्तिनापुर गया होगा। उसके बाद उसे कहाँ ढूँढ़ा जाय? हस्तिनापुरमें या आस-पासके किसी गाँवमें? जो हो देखा जायगा। इस उधेड़-बुनमें रस्तोगी जैसे बैठे थे, वैसे ही भाग लिये हस्तिनापुरकी ओर। बस नहीं मिली तो थ्रीव्हीलरमें बैठ लिये। दस किलोमीटर ही तो है।

वे हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ कई लोगोंसे पूछा। सफलता नहीं मिली। फिर रिक्शाकर जम्बूद्वीप गये। अनेक लोगोंसे पूछा, पर व्यर्थ। हार-थककर बड़े जैन मन्दिर आये। वहाँ धर्मशालामें पूछते फिरे। कोई नया यात्री आया है क्या? अन्ततः वहाँ उन्हें सफलता मिल ही गयी। *'जिन ढूँढ़ा तिन पाइया।'* धर्मशालेमें एक जैन यात्री सपत्नीक आकर ठहरे थे। बैग उन्हींका था। बैगके बदल जानेसे वे बड़े ही उद्विग्न थे, मैंने देखा कि मेरा बैग वहीं पड़ा था, उसके कपड़े, वगैरह बाहर निकाले हुए थे, मेरे हाथमें अपना बैग देखकर वे दम्पती अवाक् रह गये। पूछनेपर मैंने सारा घटनाक्रम उन्हें बता दिया। दम्पती बैग पाकर बड़े प्रसन्न हुए, खोयी निधि जो मिल गयी थी। उन्होंने महावीर स्वामीको धन्यवाद दिया। भलाई और ईमानदारीका जो आत्मतोष होता है, वह श्रीरस्तोगीजीको प्राप्त हुआ। उन्हें अव्यक्त और असीम आनन्द मिल गया था। आज भी वे उस घटनाको यादकर आनन्दमें डूब जाते हैं।

[प्रे०—चन्द्रपालसिंह]

(२)

पुत्रको आरोग्य-लाभ

श्रीहनुमान्‌जीकी मुझपर अनेक बार कृपा हुई है और मैं मानता हूँ कि आज मैं जो कुछ भी हूँ, यह सब उन्हींकी कृपा है। मेरे जीवनमें घटी एक घटनाका वर्णन इस प्रकार है—

बात वर्ष १९८५ की है, जब मैं हल्द्वानी जिला नैनीतालमें पदस्थ था। तब हल्द्वानी इतना विकसित नहीं था और चिकित्सकीय सुविधा भी यहाँ कम ही थी।

एक दिन शामको हम सभी परिवारके सदस्य, जिसमें मेरी पत्नी, पुत्र एवं दो पुत्रियाँ नैनीतालसे घूमकर लौटे तो अचानक पुत्रको बुखार आ गया। अगले दिन सुबह डॉक्टरको दिखाया तो उन्होंने मलेरिया होनेकी शंकामें खून जाँच करानेको कहा। चूँकि वहाँ अच्छी जाँच-लैब नहीं थी फिर भी जो थी उसीमें जाँच करवानी पड़ी और रिपोर्टमें मलेरिया नहीं होनेकी पुष्टि हुई। जाँचके आधारपर डॉक्टरने वायरल बुखार मानकर इलाज प्रारम्भ कर दिया, परंतु बुखार उतर नहीं रहा था। इस कारण पुत्रको अत्यधिक कमजोरी महसूस होने लगी। कुछ खाना तो दूर, वह पानी भी पीता तो उल्टी कर देता। लाभ न होता देखकर मैंने उसे एक दूसरे डॉक्टरको दिखलाया, उन्होंने भी कई दवाइयाँ, इंजेक्शन, सिरप आदि लिख दिये। उन डॉक्टरका भी इलाज शुरू हुआ। अगले दिन मुझे सरकारी कामसे दिल्ली जाना पड़ा और दूसरे दिन सुबह ही मैं वापस भी आ गया। सुबह मैं अखबार पढ़ रहा था, तभी पुत्रको उल्टियाँ होनी शुरू हो गयीं, जिसका रंग गहरा हरा था। यह देख मैं बहुत घबड़ा गया और तत्काल डॉक्टरको फोन करके बताया तो उन्होंने किसी सर्जनको दिखानेके लिये कहा। मैंने इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि उसकी आँतोंमें कोई रुकावट हो गयी है। हल्द्वानीमें केवल एक सर्जन ही उपलब्ध थे, जो कि जिला अस्पतालमें पदस्थ थे। उस समय वे अस्पतालके मरीजोंको देखनेमें अत्यन्त व्यस्त थे। अतः उस वक्त उनका मेरे यहाँ आना असम्भव था। पुत्रकी हालत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिगड़ती देख हम सभी बहुत घबड़ाने लगे और विचार करने लगे कि पुत्रको अब हल्द्वानीसे बाहर कहीं बड़े शहरमें ले चलना चाहिये, परंतु वहाँ से बरेली लगभग १०० किमी० दूर था। फिर विचार हुआ कि बरेली शहर ले जायँ अथवा दिल्ली ले जाया जाय। इधर पुत्रकी स्थिति देखकर इतनी दूर ले जाना मुश्किल मालूम पड़ता था। मैं घरके मन्दिरमें जाकर हनुमान्‌जीके सामने अश्रुपूरित नेत्रोंसे विनती करने लगा कि हे भगवान्! आपने पुत्र दिया तो आप ही रक्षा करें। इतनेमें हल्द्वानीके निवासी हमारे पारिवारिक मित्र श्रीजायसवालजीसे सम्पर्क किया गया तो उन्होंने बतलाया कि जिला अस्पतालके सर्जन उनके निकटके मित्र हैं और उन्हें लेकर वे तुरन्त आ रहे हैं। कुछ ही देरमें सर्जन साहब मेरे मित्रके साथ आ गये और पुत्रका निरीक्षणकर एवं पुराने उपचारसम्बन्धी पर्चोंको देखनेके बाद मुझसे बोले—थोड़ा तारपीनका तेल हल्का गर्म करके लाओ। हम सब परिवारवाले थोड़ा परेशान होकर सोचने लगे कि पुत्रकी इतनी गम्भीर हालत है, उसमें तारपीनका तेल क्या काम करेगा? फिर भी डॉक्टरके आदेशानुसार तारपीनका तेल गर्म करके उनको दिया गया, जिसे वे स्वयं अपने हाथसे पुत्रके पेटपर हल्का-हल्का मलने लगे। यह प्रक्रिया लगभग १५ मिनटतक करनेके बाद पुत्रमें हल्की-सी चेतना हुई और उसने करवट ली, फिर डॉक्टर साहबने चम्मचसे थोड़ा पानी दिया, जिसे उसने बिना कठिनाईके पी लिया, फिर कुछ देर बाद दूध दिया, उसे भी पी लिया और कोई उल्टी वगैरह नहीं हुई। मैं लगातार मन-ही-मन हनुमान्‌जीसे विनती किये जा रहा था। डॉक्टर साहब लगभग एक घंटेतक उसके पास बैठे रहे और लगातार उसपर निगाह रखे रहे। उन्होंने सारी दवाइयाँ बन्द कर दीं एकाधको छोड़कर। धीरे-धीरे पुत्रके स्वास्थ्यमें सुधार आने लगा। यह देखकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ और अपार हर्ष भी। मुझे तो यही लगा कि हनुमान्‌जीने मेरी विनती सुन ली और उन्होंने ही डॉक्टर साहबको जो कि अत्यन्त व्यस्त और अकेले सर्जन थे, को आदेश देकर पुत्रके इलाजके लिये भेजा और हनुमत्कृपासे ही पुत्रको पूर्ण लाभ भी हो गया। मुझे श्रीहनुमान्‌जीकी महान् कृपाकी अनुभूति हुई।

—**शैलेन्द्रकुमार सक्सेना**

(३)

विश्वास एवं कर्तव्यपरायणता

मेरे माता-पिता धार्मिक संस्कारवाले थे। पिताजी कृष्णभक्त और माताजी राधारानीकी पुजारी थीं। मेरी माताको अनपढ़ होनेपर भी सैकड़ों भजन कण्ठस्थ थे, विशेषकर राधारानीको लेकर। उनका कण्ठ भी सुरीला था। हमलोग अक्सर उनसे भजन सुनते थे। उनकी राधारानीकी भक्ति तथा आस्था-सम्बन्धी एक घटना मुझे आज भी स्मरण हो आती है—

सन् १९५६ में मुजफ्फरनगरके आर्यपुरी मुहल्लेमें मेरे पिता नये मकानका निर्माण करा रहे थे। मकान बहुत बड़ा था, इस कारण बहुत समय लग रहा था। हमारे मकान बनानेवाले मिस्त्री और मजदूर लगातार एक वर्षतक कार्य करते रहनेके कारण बहुत परिचित-से हो गये थे। इन्हींमें एक मजदूर जिसका नाम बारू था, वहीं कहीं पासके ही एक गाँवका निवासी था और साइकिलसे प्रतिदिन कार्यपर आता था। उन दिनों स्कूटरका चलन नहीं था। अधिकतर लोग साइकिलकी सवारी ही किया करते थे। मेरे पिताजीने भी एक नयी साइकिल खरीदी थी; क्योंकि मकान बनानेके सिलसिलेमें कभी ईंटोंके भट्ठोंपर, कभी बाजारसे लोहा तथा सीमेण्ट आदि लाने जाना होता था। मैं उन दिनों आठवीं कक्षामें पढ़ता था। साइकिल चलाना सीखनेकी इच्छा होनेपर मैं पिताजीकी अनुपस्थितिमें उसे चलाता था तो माताजी मना करती थीं; क्योंकि पिताजीको वह (साइकिल) बहुत प्रिय थी। वे नित्य उसकी साफ-सफाई किया करते थे।

एक दिन उक्त मजदूरकी साइकिल एक दुर्घटनामें टूट गयी तो उसने मेरे पिताजीसे कहा कि वे अपनी साइकिल दो-तीन दिनोंके लिये उसे दे दें, वह दूसरी पुरानी साइकिल खरीदनेपर लौटा देगा। मेरे पिताजीने एक बार तो मना कर दिया, परंतु मजदूरकी मजबूरी देख पिताजीने उसे साइकिल दे दी और कहा कि जल्दी लौटानेकी कोशिश करना तथा सँभालकर रखना।

मजदूर साइकिल लेकर चला गया और उसके बाद तीन-चार दिन बीत गये, लेकिन वह लौटकर नहीं आया। पिताजीको चिन्ता होनी स्वाभाविक थी, उन्हें लगा कि कहीं नयी साइकिल देखकर उसकी नीयत तो खराब नहीं हो गयी? हमारे पास उसके घरका पता भी नहीं था। प्रतीक्षा करते-करते दस दिन हो गये तो पिताजीसे नहीं रहा गया और उन्होंने साइकिलकी रसीद लेकर थानेमें रिपोर्ट लिखा दी कि मेरी साइकिल एक मजूदर माँगकर ले गया था और गायब हो गया है। उन दिनों साइकिलकी चोरी भी बड़ी बात समझी जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। अब पिताजीको कामपर जानेके लिये परेशानी होने लगी तो उन्होंने एक पुरानी साइकिल खरीद ली, नयी साइकिलके चोरी होनेका उन्हें बहुत दुःख था। मेरी माताजी उन्हें ढाँढ़स बँधाती रहती, आप चिन्ता मत करो। मेरी राधारानी आपकी साइकिल जरूर वापस दिला देंगी। एक महीनेसे ऊपर हो गया, परंतु साइकिलकी कोई सूचना नहीं मिली। तभी एक दिन एक सिपाही हमारे घरपर आया और पिताजीसे बोला—आपको थानेदार साहबने बुलाया है। पिताजी थाने गये तो थानेदारने कहा—एक साइकिल मिली है, देखिये यह आपकी तो नहीं है। साइकिलका मॉडल तथा गद्दीको देख पिताजी पहचान गये। उन्होंने कहा कि यह साइकिल हमारी ही है, परंतु यह आपको कैसे मिली?

थानेदारने विस्तारसे बताया कि जिस दिन मजदूर आपसे साइकिल माँगकर ले गया था ठीक उसी रातको यह साइकिल उसके घरसे चोरी हो गयी थी। साइकिल चोरी हो जानेके कारण वह भयसे आपके यहाँ कामपर नहीं आया और बहुत परेशान हो गया, साइकिलकी तलाशमें वह गाँव-गाँव खोजता रहा। इसीमें एक माह बीत गया, परंतु उसे साइकिल नहीं मिली। ऐसे ही एक दिन वह भोपाके निकट गंगानहरकी पटरीसे जा रहा था तो उसने वहाँ यह साइकिल पड़ी देखी। वह तुरंत पहचान गया कि यह चोरीवाली साइकिल ही है। उसने भोपा पुलिसको सूचना दी कि यह साइकिल मेरे मालिककी है, उसे यह यहाँ पड़ी मिली है। पुलिसने इसकी सूचना मुजफ्फरनगर थानेमें दी और इस प्रकार यह साइकिल मिल ही गयी। यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। साइकिल घर आ गयी तो माताजीने कहा कि मैंने कहा था कि एक न एक दिन मेरी राधारानी आपकी साइकिल आपको दिला देंगी। माताजीके विश्वासके साथ ही हमें उस मजदूरकी ईमानदारी एवं कर्तव्यपरायणताकी याद आती है, जिसने अभावग्रस्त होते हुए भी साइकिलकी खोजमें अपनी एक महीनेकी पगार भी दाँवपर लगा दी, उसे तो हमने चोर समझ लिया था, किंतु वह सच्चा एवं ईमानदार था, उसने अपने कर्तव्यका पालन बड़ी ही निष्ठासे किया। भगवान् ऐसे जनोंके योगक्षेमका निर्वहण स्वयं करते हैं।—**आनन्दप्रकाश गौतम**

(४)

यह व्यापार

भाव बढ़ने-बढ़नेकी धारणासे खरीदकर इकट्ठीकी हुई मूँगफली अकस्मात् आग लगकर सब भस्मीभूत हो जायगी, ऐसी कल्पना भी किसने की थी? लालाजीकी तो मानो छाती ही बैठ गयी। कैसे न बैठती! दूसरोंसे रकम लेकर, जितनी खरीदी जा सकती थी, उतनी मूँगफली खरीद ली थी। भाईका अन्तकाल हुए अभी थोड़े ही दिन बीते थे कि यह घावको ताजा करनेवाली नयी विपत्ति आ गयी। इस विषादके साथ बड़ा तीखापन था। अपनी इच्छा न होते हुए भी भाईने मूर्खताभरी मूँगफलीकी खरीद की और उसकी व्यवस्था किये बिना ही वह इस दुनियाको छोड़कर चला गया और उसके बाद यह दुर्दशा आ पड़ी।

अग्निके कारण आयी इस विपत्तिके समय कितने ही व्यापारी, सगे-सम्बन्धी आश्वासन देने लालाजीके पास आये, परंतु लालाजीके इस व्यापारमें जिनकी रकम लगी थी, वे बाबू जब आये तब तो लालाजी काँप उठे। बात शुरू होते ही लालाजीने उनसे कहा—'बाबूजी! मैं बिलकुल टूट गया हूँ। मेरा भाई मर गया और मुझे भी मारता गया। मेरी जरा भी इच्छा नहीं थी, परंतु·····' लालाजीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। आश्वासन देने आये हुए बाबूने फोन करके अपना खाता मँगवाया।

खाता आया और बाबू उसे खोलकर उसके पन्ने उलटने लगे। लालाजी लगभग पैरोंमें पड़कर कराह उठे, बोले—'बाबूजी, घावपर नमक! जरा तो विचार कीजिये। मैं इस समय कैसे क्या करूँगा, अभी कुछ दिन ठहरिये, पीछे·····।'

बात यह थी कि खाता मँगवानेवाले बाबूने लालाजीको एक बड़ी रकम व्यापारके लिये ब्याजपर उधार दे रखी थी; परंतु ऐसे बुरे समयमें उन्हें खाता उलटते देखकर उक्त लालाजी घबराकर विनती कर रहे थे।

बाबूने खातेके जिस पन्नेमें उधारकी रकम लिखी थी और इकरारनामा था; उस पन्नेको खातेसे निकाला और फाड़कर दूर फेंक दिया बिना किसी हिचकके। लालाजी तो आँख फाड़कर उनकी ओर देखते रह गये। बाबूने कहा—'लालाजी, आपकी आबरू मेरे हाथमें है और मेरी आबरू आपके हाथमें है। मेरे रुपये और इकरार सब आपके भाईके साथ था। वे जीवित होते तो चाहे जिस दिन रकम वसूल हो जाती। वे गये तो उनके साथ यह उधार और इकरार भी टूट गया। जरूरत पड़े तो दूसरी रकम ले जाइयेगा। यह तो व्यापार है व्यापार।' इतना कहकर बाबूजी उठे और चलते बने।

लालाजी तो इस व्यवहारको देखकर अवाक् रह गये और मुग्ध होकर न जाने कबतक धन्यवाद ही देते रह गये।—**शशीकान्त प्र० दवे**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

मानवता

बहुत पुरानी बात है। मैं मुगलसराय स्टेशनसे कलकत्ते जानेके लिये डाकगाड़ीके मध्यम श्रेणीके डिब्बेमें बैठा। उसी डिब्बेमें एक अंग्रेज सज्जन भी सवार हुए। वे मेरे पास बैठ गये। मैं उस समय झाड़-झाड़कर पगड़ी बाँध रहा था। अंग्रेज सज्जनने कहा—'यह तो बहुत अच्छी लगती है।' मैंने हँसकर कहा—'अच्छी लगती है तो आप क्यों नहीं बाँधते?'

इतना सुनते ही उन्होंने पेटी खोलकर एक फोटो निकाला। फोटो उन्हींका था। उसमें उन्होंने साफा बाँध रखा था (जैसा सेल्वेशन आर्मीवाले बाँधते हैं)। एक दूसरा फोटो और निकाला। उसमें इनके अपने फोटोके साथ मद्रासके गवर्नरका फोटो भी था। गवर्नर महोदयके द्वारा लिखा हुआ था—'ये सज्जन बड़े दानी और आत्मबली पुरुष हैं।' मैंने उनसे इसका रहस्य पूछा। तब उन्होंने अपना कोट उतारा और पतलूनके बटन खोलकर दाहिनी जाँघका वह स्थान दिखाया, जो बहुत मांसल होता है। मैंने देखा वह समूचा स्थान कटा हुआ था और उसमें गड्ढे पड़े थे।

फिर बटन बन्द करके उन्होंने बतलाया कि 'एक बार मेरा स्वास्थ्य खराब था, इसलिये मैं अस्पताल गया था। वहाँ सिविलसर्जनके पास बैठा था कि इतनेमें एक भिखारी एक आठ सालकी लड़कीको लेकर आया। उसकी छाती सड़ गयी थी और वह बहुत ही दुखी थी। सिविलसर्जन महोदयने देखकर बताया कि 'इसके अच्छे होनेका एक ही उपाय है और वह यह कि कोई स्वस्थ मनुष्य अपना ताजा मांस काटकर दे और इसका सड़ा अंश निकालकर वह मांस वहाँ जोड़ दिया जाय। पर ऐसा कौन करेगा?' मैंने कहा—'सिविलसर्जन महोदय! मेरे शरीरका मांस काटकर जोड़ दिया जाय।' सिविलसर्जनने कहा—'आप नशेमें हैं क्या? इसमें कष्ट तो भयानक होगा ही, मृत्युतकको नौबत आ सकती है।' मैंने कहा—'मैं कभी नशा करता ही नहीं।' तब सिविलसर्जन महोदयने मुझे दूसरे दिन आनेको कहा। मैं दूसरे दिन पहुँचा और मांस काटकर उसके लगानेके लिये सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर लेकर मैंने उनको लिख दिया। तदनन्तर डॉक्टरने ५५ टुकड़े मांस काटकर लड़कीके सड़े मांसको निकालकर उस जगह जोड़ दिये। मैं बेहोश हो गया था। दो दिनके बाद मुझे होश आया। लड़की बिलकुल अच्छी हो गयी।'

मैंने उन अंग्रेज सज्जनसे पूछा कि आप क्या काम करते हैं? उन्होंने बताया कि 'मैं हिन्दुस्तान आनेवाले ईरानी लोगोंकी देख-रेख रखता हूँ। मुझे इतना वेतन मिलता है।' वेतन बड़ा था। मुझे उन्होंने बताया कि 'वे अपने लिये बहुत थोड़े पैसे खर्च करके शेष सब अस्पतालोंमें दे देते हैं। इसीसे गवर्नर महोदयने उनको 'दानी' बतलाया है और शरीरका मांस काटकर दिया था, इसलिये 'आत्मबली' कहा है।'

उनकी बातें सुनकर मुझे उनकी मानवताके प्रति बड़ी श्रद्धा हुई। प्राचीन कालमें जो काम दधीचिने किया था, वही इन्होंने किया। तदनन्तर एक खानशामा खानेकी प्लेट लाया तो उन्होंने केवल चाय-बिस्कुट लेकर और चीजें लौटा दीं—कहा कि 'ये निरामिषाहारी' मारवाड़ी मेरे पास बैठे हैं—इन्हें कष्ट होगा।' धन्य!—**हरीबकस नवलगढ़िया**

जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराजका प्रयागमें माघपर्वपर दिया गया पर्वसन्देश

श्रुति-स्मृति-पुराण-रामायण-महाभारतादिमें प्रतिपादित सनातनधर्मपर दृढ़ निष्ठा रखते हुए उनमें वर्णित सदाचारपर चलें और अपनी सन्तानोंको भी उनका संस्कार दें तथा वर्तमानमें प्रचलित भोगवादको संयमसे जीतें।

हस्ताक्षर

[स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उपलब्ध—मँगवानेमें शीघ्रता करें

महाभारत—सटीक [नया संस्करण—अधिक स्पष्ट अक्षरोंमें] (कोड 728) छः खण्डोंमें— यह भारतीय संस्कृति और आर्य सनातन धर्म-दर्शनका विश्वकोष, उपनिषदोंके सार, इतिहास, पुराणोंके उन्मेष-निमेष, आश्रम, वर्ण-धर्म, पुराणोंका आशय, भक्ति-तत्त्वज्ञानका प्रकाशक तथा भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रका विश्लेषण करनेवाला अद्भुत ग्रन्थरत्न है। यह ग्रन्थ भारतीय धर्म-दर्शनके जिज्ञासुओं एवं शोध छात्रोंके लिये अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। सम्पूर्ण सेटका मूल्य रु० १५६०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च रु० २२५ अतिरिक्त। अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध।

महाभारतके विभिन्न खण्डोंका विवरण

कोड	खण्ड	विवरण	मू०रु०	डाकखर्च
32	प्रथम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, आदिपर्वसे सभापर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	२६०	४५
33	द्वितीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, वनपर्वसे विराटपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	२६०	४५
34	तृतीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, उद्योगपर्वसे भीष्मपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	२६०	४५
35	चतुर्थ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, द्रोणपर्वसे स्त्रीपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	२६०	५०
36	पञ्चम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, शान्तिपर्व, सचित्र, सजिल्द।	२६०	४५
37	षष्ठ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, अनुशासनपर्वसे स्वर्गारोहणपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	२६०	४५

संक्षिप्त महाभारत—केवल हिन्दी (दो खण्डोंमें) कोड 39, 511, ग्रन्थाकार—मूल्य रु० ३२०, डाकखर्च रु० ६५

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित ग्यारह उपनिषद्

ईशादि नौ उपनिषद् (कोड 1421)—गीताप्रेससे **शाङ्करभाष्य और भाष्यार्थ**के साथ अलग-अलग पुस्तकरूपमें पूर्व प्रकाशित ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्को इस पुस्तकमें पाठकोंके सुविधार्थ एक साथ प्रकाशित किया गया है। सजिल्द, मू० रु० १२५, डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३५ अतिरिक्त।

छान्दोग्योपनिषद् (कोड 582)—सामवेदीय तलवकार ब्राह्मणके अन्तर्गत वर्णित इस उपनिषद्में क्रमबद्ध और युक्तिपूर्ण ढंगसे कर्म तथा ज्ञानका सजीव वर्णन है। तत्त्वज्ञान और उपासनाकी इसमें विस्तृत चर्चा है। शाङ्करभाष्य, सानुवाद, मूल्य रु० ८५ डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३० अतिरिक्त।

बृहदारण्यकोपनिषद् (कोड 577)—यजुर्वेदके काण्वी शाखामें वर्णित यह उपनिषद् कलेवरके दृष्टिसे बृहत् तथा वनमें अध्ययन किये जानेके कारण आरण्यक कहलाता है। शाङ्करभाष्य, सानुवाद, मूल्य रु० १२० डाक एवं पैकिंगखर्च रु०३५ अतिरिक्त।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

'कल्याण' के ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

'कल्याण' वर्ष ८५ के अप्रैल माहका अङ्क [संख्या ४] आपके समक्ष है। जिन ग्राहकोंका सदस्यता-शुल्क प्राप्त हो गया है, उन सभी महानुभावोंको विशेषाङ्क एवं फरवरी तथा मार्च माहका अङ्क भेज दिया गया है। सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त अभी भी यदि किसी ग्राहकको विशेषाङ्क तथा अन्य अङ्क प्राप्त नहीं हो रहे हैं तो उन्हें डाकघरमें तुरन्त शिकायत कर देनी चाहिये। यदि रकम यहाँ पहुँचनेकी पावती रसीद मिल गयी हो तो उसकी फोटो नकल विवरणसहित यहाँ जाँच-हेतु अविलम्ब भेजनी चाहिये।

मासिक अङ्कोंके न पहुँचनेमें सामान्यतया डाक-विभागकी गड़बड़ी अथवा अपूर्ण (गलत) पता कारण हो सकता है। अतएव अङ्कके रैपरपर चिपकाया गया अपना पता जाँच लें और कोई त्रुटि हो तो पत्र/फैक्स/ई-मेल भेजकर सुधार करा देना चाहिये। पतेमें पिनकोड अवश्य लिखें। व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-३-२०११
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

श्रीमद्भागवतमहापुराण-सटीक—अब विभिन्न भाषाओंमें

हिन्दी [कोड 26,27]
दो खण्डोंमें, मूल्य रु० ३००

बँगला [कोड 1577,1744]
दो खण्डोंमें, मूल्य रु० ३४०

गुजराती [कोड 1552,1553]
दो खण्डोंमें, मूल्य रु०३२०

मराठी [कोड 1678,1735]
दो खण्डोंमें, मूल्य रु० ३००

कन्नड़ [कोड 1739,1740]
दो खण्डोंमें, मूल्य रु० ३००

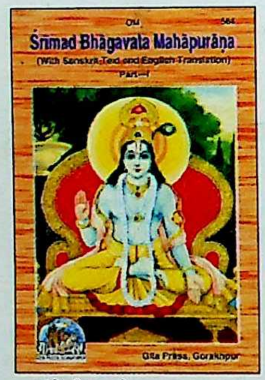

अंग्रेजी [कोड 564,565]
दो खण्डोंमें, मूल्य रु० ३००

ओड़िआ [कोड 1831,1832]
दो खण्डोंमें, मूल्य रु० ३००

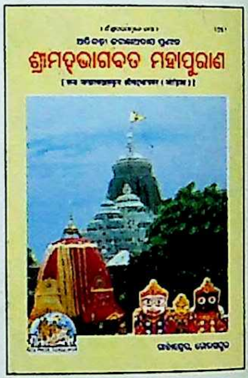

ओड़िआ [कोड 1551]
मूल्य रु० १८०

किसी भी भाषाका एक सेट मँगवानेके लिये डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ६५ मूल्यके अतिरिक्त भिजवायें।

श्रीमद्भागवतके विभिन्न संस्करण—

	रु०		रु०
श्रीमद्भागवत-सुधासागर (कोड 28) ग्रन्थाकार सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, मजबूत जिल्द, सचित्र, लेमिनेटेड आवरणसहित। (कोड 1776) मराठी, (कोड 1608) गुजरातीमें।	१७०	**श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 29)** ग्रन्थाकार—मूल, मोटा टाइप (कोड 1573) तेलुगुमें भी उपलब्ध	१२५
श्रीमद्भागवत-सुधासागर (कोड 1490) ग्रन्थाकार—विशिष्ट संस्करण, सचित्र, सजिल्द	२३०	**श्रीमद्भागवत-महापुराण (कोड 124)** मझला आकार—मूल।	७५
श्रीशुक-सुधासागर (कोड 25) बृहदाकार—भाषानुवाद।	४००	**श्रीमद्भागवत-महापुराण (कोड 1855)** मझला आकार, मूल विशेष पतले कागजपर, विशिष्ट संस्करण	८५

'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण'—[सचित्र, मूल श्लोक, हिन्दी-व्याख्यासहित], (कोड 1897-1898) दो खण्डोंमें—इस महापुराणको (मूल श्लोक भाषा-टीकासहित)-इसके प्रथम खण्डमें १ से ६ स्कन्ध एवं द्वितीय खण्डमें ७ से १२ स्कन्धकी कथाएँ दी गयी हैं। दोनों खण्डोंका मूल्य रु० ३००, **केवल हिन्दी (कोड 1793-1842)** मूल्य रु० २००, **[केवल संस्कृत-मूल] (कोड 1770)** मूल्य रु० १२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

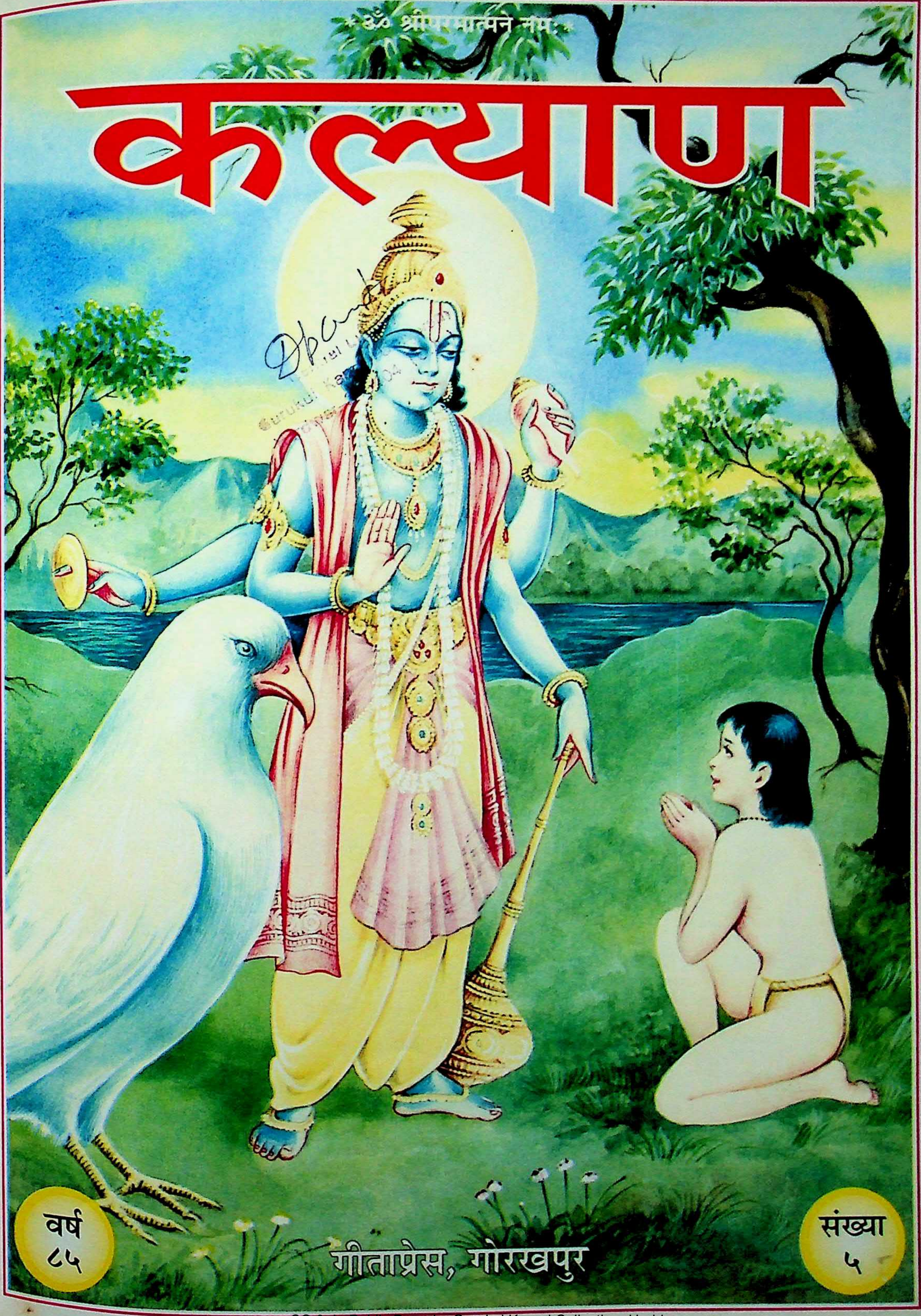

मूल्य ८ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकरवाहिनी भागीरथी गंगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—संसारके भोगोंमें सुख नहीं है। जो वस्तु जहाँ नहीं है, वह वहाँ कैसे मिलेगी। ढूँढ़ते रहो, दर-दर भटकते रहो, सिर पटकते रहो सर्वत्र और सदा; अन्तमें निराशा, निर्वेद और व्यथाके ही थपेड़े लगेंगे। सुख, सच्चा और स्थायी सुख तो है भगवान्‌में; और उन भगवान्‌की प्राप्ति होती है त्यागसे।

जो पुरुष त्यागसे प्राप्त होनेवाले निर्मल सुखका अनुभव करता है, वह भोगोंकी ओर कभी आँख उठाकर देखता ही नहीं। हाँ, भोगोंके प्रचुर प्रलोभन भाँति-भाँतिसे सज-धजकर उसके सामने स्वयमेव आते हैं उसे अपनी ओर खींचनेके लिये; परंतु वह उन्हें उसी प्रकार ठुकरा देता है जैसे बहुमूल्य रत्नोंको पा जानेवाला मनुष्य रंग-बिरंगे काँच-पत्थरोंको।

त्यागीको अपनी सन्तोषमयी वृत्तिसे और त्यागभरी स्थितिसे जो सुख प्राप्त होता है, उसकी तुलनामें भोगोंके धन, मान, यश-आराम, अधिकार आदिके सभी सुख सर्वथा तुच्छ और नगण्य हैं। सच्ची बात तो यह है कि भोग-सुख वस्तुतः सुख ही नहीं है। बुद्धिहीन मनुष्योंको भ्रमके कारण ही उनमें सुखकी प्रतीति होती है। असलमें तो उनसे दुःख ही उत्पन्न होते हैं, इससे बुद्धिमान् लोग भोगोंमें अपने मनको नहीं फँसने देते—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

याद रखो—जो वस्तु अनित्य, परिवर्तनशील और अपूर्ण है, उससे कभी सच्चा और स्थायी सुख नहीं मिल सकता। इसीलिये आज जो किसी भोग-सामग्रीसे—धनसे, मानसे, संतानसे, सत्तासे अपनेको सुखी मानता है, वही कल रोता-विलपता देखा जाता है।

त्यागमें पहले-पहले कुछ कठिनाई-सी लगती है, कुछ कर्कशता-सी प्रतीत होती है, इसीसे मनको उससे भागना पड़ता है; परंतु गहराईसे विचारकर देखनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि जितनी कठिनाइयाँ, जितने क्लेश, जितनी कर्कशता और जितनी पीड़ा भोग-पदार्थोंकी प्राप्तिके साधनमें और प्राप्त होनेपर उनके संरक्षणमें है, उतनी त्यागमें कदापि नहीं है; प्रत्युत त्यागकी कठिनाई और भोगकी कठिनाईमें जातिगत बड़ा भेद है। त्यागकी कठिनाई सात्त्विक है और भोगकी कठिनाईमें राजसिकता तथा तामसिकता है। त्यागकी कठिनाईका परिणाम परम अमृतकी प्राप्ति है और भोगकी कठिनाईका परिणाम विषमयी ज्वाला है, जो लोक-परलोकके जीवनको जलाकर सर्वथा यातनापूर्ण और जर्जरित कर देती है।

याद रखो—भोग भ्रमाते हैं और त्याग निज स्वरूपमें स्थित कराता है। भोगोंसे न पूरी होनेवाली भयानक इच्छा, कामना और वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे सदा दुःख-ही-दुःख मिलते हैं एवं त्यागसे वे सब-की-सब क्षीण होती हैं तथा खुराक न मिलनेसे—ईंधनके अभावमें आग बुझ जानेके समान स्वयमेव बुझ जाती हैं—मर जाती हैं।

त्यागसे जीवनमें शान्ति मिलती है—'**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' और शान्तिसे मनुष्य परमानन्दस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार करता है। भोगसे अशान्ति प्राप्त होती है और वह जीवको जबरदस्ती नरकानलमें दग्ध होनेके लिये ले जाती है।

याद रखो—यदि तुम 'भोगोंमें सुख है'—इस भ्रान्तिको त्यागकर भोगोंका मोह छोड़ दोगे तो शीघ्र ही सुखी हो जाओगे और तुम्हारा यह त्यागका सुखी जीवन तुम्हें भगवान्‌की ओर ले जायगा एवं ऐसा करनेपर तुम्हें निश्चय ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। '**शिव**'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यकी शरणसे मुक्ति

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गतांक सं० ४ पृ०-सं० ६१८ से आगे]

सत्य-आहार

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी क्यों न हो, शास्त्रके द्वारा बतलायी हुई विधिके अनुसार न्यायपूर्वक अपने परिश्रमद्वारा उपार्जित द्रव्यसे वह जो सात्त्विक* आहार करता है, उसका नाम सत्य-आहार है। यद्यपि ब्राह्मणके लिये दान लेकर भी जीविका-निर्वाह करना शास्त्रानुकूल है तथापि दाताका उपकार किये बिना जो याचनावृत्तिसे अपना धर्म समझकर जीविका करता है, वह ब्राह्मणोंमें निन्दनीय समझा जाता है। उससे तपका नाश, आलस्य तथा अकर्मण्यताकी वृद्धि होती है, इसलिये शास्त्रोक्त होनेपर भी इस प्रकारकी जीविकासे किया हुआ सत्य-आहार सत्य-आहार नहीं है। इसलिये ब्राह्मणको दाताका प्रत्युपकार करके अथवा शिलोंछवृत्तिसे जीविका-निर्वाह करना चाहिये। इसी प्रकार क्षत्रियको भी स्वधर्मके अनुसार सत्य और न्यायसे उपार्जित शुद्ध द्रव्यसे जीविका चलानी चाहिये।

यद्यपि वैश्यके लिये ब्याज लेकर जीविका-निर्वाह करना धर्मशास्त्रानुकूल है तथापि क्रय-विक्रय-व्यापारके बिना केवल ब्याजवृत्तिकी शास्त्रकारोंने निन्दा की है। इसलिये भगवान्‌ने गीतामें इसका उल्लेख ही नहीं किया। इससे आलस्य और निरुद्यमताकी वृद्धि होती है। गिरवी (न्यास) रखे हुए आभूषण और जमीन आदिकी कीमतसे भी मूलसहित ब्याजकी रकम जब अधिक हो जाती है तो कर्जदार उसको छुड़ाकर वापस नहीं ले सकता। इससे उसकी आत्माको बड़ा कष्ट पहुँचता है। अतः केवल ब्याजकी जीविका निन्दनीय है। इस प्रकारकी जीविकासे जो वैश्य आहार करता है, वह आहार भी सत्य नहीं है। इसी प्रकार शूद्र आदिके लिये समझ लेना चाहिये।

जो पुरुष शास्त्रविहित अपने वर्णाश्रमके अनुकूल परिश्रम करके न्यायसे प्राप्त हुए सात्त्विक द्रव्यका आहार करता है, उसका वह आहार सत्य-आहार कहलाता है। जैसे कोई वैश्य झूठ और कपटको त्यागकर ईश्वरकी आज्ञासे अपना धर्म समझकर क्रय-विक्रय आदि न्याययुक्त जीविकाद्वारा प्राप्त सात्त्विक पदार्थोंका सेवन करता है तो उसका वह आहार सत्य-आहार है। व्यापार करनेवाले वैश्यको उचित है कि यथासाध्य कम-से-कम मुनाफा लेकर माल बिक्री करे। गिनती, नाप और वजनमें न कम दे और न अधिक ले; ब्याज, मुनाफा, आढ़त और दलाली ठहराकर न किसीको कम दे और न अधिक ले। लेन-देनके विषयमें जैसा सौदा चतुर और समझदार आदमीसे किया जाय, उसी दरसे मूर्ख, भोले और सीधे-सादे आदमीके साथ करे अर्थात् सबके साथ सम बरताव करे। जो कुछ सम्पत्ति हो, उसे ईश्वरकी समझकर लाभ-हानिमें सम रहते हुए दक्षतापूर्वक व्यापार करे और ऐसी चेष्टा की जाय कि जिससे मूल धनका नाश न हो; जहाँतक हो सके किसीकी जीविकाकी हानि न करके विशेष हिंसाका बचाव रखते हुए न्यायसे धनका उपार्जन करे और सादगीसे रहे; जितने कममें अपना और अपने कुटुम्बका निर्वाह हो सके—ऐसी चेष्टा करे; बढ़े हुए धनमें भी अपना स्वत्व न समझकर संसारका हित-चिन्तन करके लोकोपकारके लिये ही व्यय करे; यही सत्य-व्यापार है। इस प्रकारके व्यापारद्वारा उपार्जित द्रव्यसे जो सात्त्विक अन्नादिका आहार किया जाता है, वह वैश्यके लिये सत्य-आहार है, इसी प्रकार अन्य सबके लिये समझ लेना चाहिये।

सद्भाव और सद्व्यवहार

ऊपर लिखा जा चुका है कि 'सत्' परमेश्वरका नाम है। अतः उसे प्राप्त करवानेवाले भाव और व्यवहार ही सद्भाव और सद्व्यवहार हैं। उन्हींको साधुभाव कहा गया है। गीताके तेरहवें अध्यायमें ये ज्ञानके नामसे एवं सोलहवेंमें दैवी-सम्पदाके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनमें जो भाववाचक शब्द हैं, वे सब साधुभाव समझे जाने चाहिये।

*आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ (गीता १७। ८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन पुरुषोंमें उत्तम भाव रहते हैं वे परमात्माकी प्राप्तिके पात्र समझे जाते हैं, अतः प्राप्तिमें हेतु होनेसे इनको सद्भाव कहा गया है।

अमानित्व (मानका न चाहना), क्षमा (अपने साथ किये गये अत्याचारोंका बदला न चाहना), कोमलता, सरलता, पवित्रता, शान्ति, शीतलता, समता, वैराग्य, श्रद्धा, दया, उदारता, सुहृदयता इत्यादि भाव साकार परमेश्वरमें तो स्वाभाविक होते हैं, पर भगवान्‌की शरण होकर उनकी उपासना करनेवाले भक्तोंमें भी उनकी दयासे विकसित हो जाते हैं। ऐसे सद्भावोंसे युक्त भक्त परमात्मदर्शनके अधिकारी होते हैं। अतः हमलोगोंको ऐसे भावोंको प्राप्त करनेके लिये सब प्रकारसे परमेश्वरकी शरण लेनी चाहिये। भगवत्कृपासे जिस मनुष्यमें उपर्युक्त सद्भाव आ जाते हैं, उसके आचरण भी सत्य ही होते हैं; क्योंकि सदाचारमें सद्भाव ही हेतु बतलाये गये हैं। जैसा आन्तरिक भाव होता है, वैसी ही बाहरी चेष्टा होती है। अतः सद्भावसे मुक्ति और असद्भावसे पतन समझना चाहिये। उपर्युक्त सद्‌गुणोंसे सम्पन्न पुरुष यथासाध्य उस जगह नहीं जाता, जहाँ मान, बड़ाई और पूजा मिलनेकी सम्भावना होती है। यदि कोई व्यक्ति उसका अनिष्ट कर देता है तो वह यही समझता है कि मेरे पूर्वकृत कर्मोंके फलसे हुआ है, यह व्यक्ति तो निमित्तमात्र है—ऐसा मानकर वह किसीसे द्वेष या घृणा नहीं करता; बल्कि अवसर पड़नेपर हृदयसे उसके संकोच, ग्लानि, भय और द्वेषको दूर करनेकी ही चेष्टा करता है।

यदि उसके साथ कोई असद्व्यवहार करता है अथवा व्यंग्य और कठोर वाक्योंका प्रयोग करता है तो भी वह विनय और सरलतासे सनी हुई मधुर वाणीसे उसी प्रकार शान्तिपूर्वक उत्तर देता है, जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने कैकेयीको दिया था—

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥
भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥

(रा०च०मा० २।४१।७-८, २।४१, २।४२।१-२)

वास्तवमें ऐसे सद्भावोंसे सम्पन्न पुरुष सारे जगत्‌में अपने परम प्रिय स्वामी परमात्माका स्वरूप देखता है और मन-ही-मन सबको प्रणाम करता हुआ सबके साथ सद्व्यवहार करता है।

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रा०च०मा० १।८।२)

ऐसे पुरुषोंका वैरी अथवा मित्रमें समभाव रहता है और काम पड़नेपर वे वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा श्रीकृष्णने अर्जुन और दुर्योधनके साथ किया था। महाभारत युद्धके आरम्भके पूर्व जब वे दोनों श्रीकृष्णके पास गये तो उन्होंने यही कहा कि मेरे लिये तुम दोनों ही समान हो। मेरे पास जो कुछ है, उसे तुम दोनों इच्छानुसार बाँटकर ले सकते हो। एक ओर तो मेरी एक अक्षौहिणी सेना है और दूसरी ओर मैं स्वयं निःशस्त्र हूँ। तुम्हारे परस्परके युद्धमें मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा। इन दोनोंमेंसे जिसे जो जँचे, वह ले सकता है। इसपर दुर्योधनने अपने पक्षमें सेनाको लिया और अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णको।

ऐसे पुरुषोंको बड़े भारी, विषयभोग भी वैसे ही विचलित नहीं कर सकते, जैसे यमराजका दिया हुआ प्रलोभन नचिकेताको लुब्ध न कर सका। उसने रथ, घोड़े और स्वर्गादिके ऊँचे-से-ऊँचे भोगोंको तत्काल ठुकराकर परमात्मधनको ही पसन्द किया।

'मनुष्य द्रव्यसे तृप्त नहीं होता। धन तो आपके दर्शनसे ही मिल जायगा। जबतक आप (अनुग्रहपूर्वक प्राणियोंपर) शासन करते रहेंगे, तबतक मैं जीवित भी रह सकूँगा, परंतु मैं तो वही वर चाहता हूँ, जो मैंने माँगा है। जरारहित अमृतरूप देवोंके समीप जाकर जरामरणयुक्त तथा पृथिवीरूपी अधःस्थानमें स्थित रहा हुआ कौन पुरुष अनित्य वस्तुको चाहेगा? रूप, क्रीड़ा और उससे उत्पन्न होनेवाले सुखको अनित्य जानकर कौन पुरुष लम्बी आयुसे सन्तुष्ट होगा? हे मृत्यो! परलोकसम्बन्धी आत्मतत्त्वमें जो शंकाकी जाती है, वह आत्मविज्ञान ही मुझसे कहिये;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अत्यन्त गूढ़ वरके अतिरिक्त नचिकेता और कुछ नहीं माँगता।' (कठोपनिषद् १। १। २७—२९)

और ऐसे पुरुषोंका वेद-शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंमें भी प्रत्यक्षवत् विश्वास होता है, जैसे कल्याणकामी सत्यकामका गुरुवचनोंमें बड़ा भारी विश्वास था। वह ब्रह्मज्ञानके उपदेशार्थ उद्दालककी सेवामें उपस्थित होता है। उसे गुरु तत्काल आज्ञा दे देते हैं कि—ये चार सौ गायें वनमें ले जाओ; पूरी हजार हो जानेपर वापस चले आना (छान्दोग्य० ४। ४। ५)। कहना नहीं होगा कि अपनी दृढ़ श्रद्धा और गुरुप्रसादके कारण सत्यकाम वनमें ही आत्मज्ञान प्राप्तकर कृतकृत्य हो गया।

अत्यन्त निष्ठुरता और निर्दयताका व्यवहार करनेवालेके साथ भी उत्तम पुरुष उदारता, दया और सुहृद्ताका ही बरताव करते हैं।

सत्कर्मकी व्याख्या

परम पिता परमेश्वर सत् हैं, इसलिये उनके निमित्त किये जानेवाले कर्म भी सत्कर्म हैं—'**कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥**' (गीता १७। २७)

अतएव मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषद्वारा जो कुछ भी कर्म किया जाता है, वह भगवदर्थ ही होता है।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥

(गीता १७। २५)

इस प्रकार ईश्वरार्थ और ईश्वरार्पण कर्म करनेसे मनुष्य पुण्य और पापोंसे छूटकर सत्स्वरूप परमात्माको प्राप्त कर ही लेता है। ईश्वरार्थ और ईश्वरार्पण—दोनों ही प्रकारके कर्म मुक्तिके देनेवाले हैं। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्थान-स्थानपर इस प्रकार कर्म करनेकी आज्ञा दी है। (अध्याय ३। ९, ९। २७, १२। १०-११ आदि।)

इसलिये यज्ञ, दान, तप, सेवा, पूजा या जीविका आदिके सभी कर्म ईश्वरार्थ ही करने चाहिये। जैसे सच्चा सेवक (मुनीम, गुमाश्ता) प्रत्येक कार्य स्वामीके नामपर, उसीके निमित्त, उसीकी इच्छाके अनुसार करता हुआ किसी कर्म अथवा धनपर अपना अधिकार नहीं समझता है और स्वप्नमें भी किसी वस्तुपर उसके अन्तःकरणमें ममत्वका भाव न आनेसे वह न्याययुक्त की हुई प्रत्येक क्रियामें हर्ष-शोकसे मुक्त रहता है, उसी प्रकार भगवान्के भक्तको उचित है कि वह अपने अधिकार-गत धन, परिवार आदि सामग्रीको ईश्वरकी ही समझकर उसकी आज्ञाके अनुसार उसीके कार्यमें लगानेकी न्याययुक्त चेष्टा करे और वह जो भी नवीन कर्म अथवा क्रिया करे, उसे उसकी प्रसन्नता और आज्ञाके अनुकूल ठीक उसी प्रकार करे, जिस प्रकार बन्दर नटकी इच्छा और उसके आज्ञानुसार करता है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि ईश्वरकी इच्छाका पता किस प्रकार चले? इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि आप इस सम्बन्धमें ईश्वरसे पूछ सकते हैं। वह आपके हृदयमें विराजमान है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता (१५। १५)-में कहते हैं—

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो-
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।

हमारे लिये क्या करना उचित है और क्या अनुचित है—यह बात आप अपने हृदयस्थ परमात्मासे यदि जानना चाहेंगे तो वह न्यायकारी प्रभु आपके हृदयमें सत्प्रेरणा ही करेंगे। जब कोई व्यक्ति सद्भावसे अन्तरात्मासे परामर्श लेता है तो उसे पवित्र आत्माद्वारा सत्परामर्श ही प्राप्त होता है। साधारणतः जैसे कोई अपनी आत्मासे पूछता है कि 'चोरी, व्यभिचार, झूठ और कपट आदि कर्म कैसे हैं?' तो उत्तर मिलता है कि 'त्याज्य हैं-निषिद्ध हैं!' इसी प्रकार ब्रह्मचर्य, अहिंसा और सत्य आदिके विषयमें सम्मति माँगनेपर यही उत्तर मिलता है कि 'अवश्य पालनीय हैं।' किंतु अज्ञान, राग-द्वेष और संशय आदि दोषोंद्वारा हृदयके आच्छादित रहनेपर किसी-किसी विषयमें निश्चित उत्तर नहीं मिलता, अतः ऐसे अवसरपर अपनी दृष्टिमें जो भगवान्के तत्त्वको जाननेवाले महापुरुष हों, उनकेद्वारा बतलाये हुए विधानको ईश्वरकी आज्ञा मानकर तदनुकूल आचरण करना चाहिये। (आप्त पुरुषोंके आप्त वचन ईश्वरकी आज्ञाके समान ही होते हैं।) **[समाप्त]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्पशक्तिकी महानता

(श्रीबाबूलालजी शर्मा)

परब्रह्म परमेश्वर जिससे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है तथा जिससे जगत्की स्थिति और प्रलय होता है **'जन्माद्यस्य यतः'** (वेदान्त सूत्र १।१।२) और जिसने पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा आदि लोकोंतकको धारण कर रखा है, जो सबका प्रकाशक, ज्ञान-विज्ञानमय, चेतन, अविनाशी, निराकार, निर्विकार सर्वसामर्थ्यवान् तथा सर्वव्यापक है, वही परमात्मा जीवात्मा नामसे अनादिकालसे सनातन, अविनाशी चेतन तत्त्वके रूपमें प्रतिष्ठित है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके इस कथन—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'**-के अनुसार संसारमें जीव (आत्मा)-को परमात्माका सनातन अंश माना गया है। जीव ईश्वरका अविनाशी चेतन तत्त्व होनेके कारण ऐसा माना जाता है कि उसमें भी वही 'संकल्प' (इच्छा) शक्ति है, जो ईश्वरमें है। जीवात्मा अल्पज्ञ है और परमात्मा सृष्टिकर्ता एवं नियामक होनेसे सर्वज्ञ है तथा समस्त जीवोंका स्वामी एवं पिता है, उससे बढ़कर अन्य कोई दूसरी शक्ति नहीं।

मनुमहाराज कहते हैं—

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥

(मनुस्मृति २।३)

अर्थात् इच्छाका मूल 'सङ्कल्प' है। इस कार्यके करनेसे मुझे यह फल मिलेगा, यही 'संकल्प' है। इसके पश्चात् मनुष्य कर्ममें प्रवृत्त होता है, कर्म करता है तथा अपनी इच्छासे शुभाशुभ संकल्प, विचार, अपने ज्ञान एवं बुद्धिके अनुसार तदनुरूप कर्ममें प्रवृत्त होकर कर्म करता हुआ, वैसा ही अपना संसार रच लेता है और उसमें विचरण करने लगता है।

छान्दोग्योपनिषद्में शाण्डिल्य ऋषिका यह कथन है—**'क्रतुमयः पुरुषः कृतं लोकं पुरुषो अभिजायते॥'** अर्थात् यह पुरुष अपने संकल्पोंका बना हुआ है। जैसा-जैसा संकल्प, विचार, भावनाएँ अपने मनमें उठाता है, तदनुसार वैसे ही अपने ज्ञान, बुद्धिसे कर्म करता हुआ वैसा ही बनता जाता है और अपना वैसा ही संसार भी रच लेता है तथा शुभाशुभ कर्मके फल सुख-दुःखादिके रूप जो होते हैं, उन्हें भोगता जाता है। संकल्पकी शक्ति महान् है। शिवसंकल्पकी शक्तिसे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी साधना, यज्ञ, व्रत, धार्मिक अनुष्ठान, सत्यवचनाचरण, सत्कर्म, सत् शास्त्रोंका अभ्यास तथा उपासनादिमें प्रवृत्ति होती है। ऋषि, योगी, मुनि, यति, तपस्वीजन आदिने उत्तम संकल्पबलकी निष्ठासे ब्रह्मविद्या प्राप्तकर अपने परम लक्ष्यको प्राप्त किया था। शास्त्र इसके साक्षी हैं। शास्त्रोंमें मनुष्योंके हितके लिये मनको उत्तम संकल्पवान् बनानेको कहा है। मनुष्यका मन चंचल प्रकृतिवाला, अस्थिर, दूर जानेवाला तथा जन्म-जन्मान्तरोंकी मलिन वासनाओं तथा विकारोंसे आच्छादित है, इसीलिये उसकी मलिनताको दूर करनेके लिये कहा गया है; क्योंकि मलिन मनमें शुभ संकल्प उत्पन्न ही नहीं होते। मन्त्रमें कहा गया है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

(यजु० अ० ३४ म० १)

अर्थात् 'हे दयानिधे! आपकी कृपासे जो मेरा मन जागतेमें दूर जाता है, दिव्य गुणयुक्त रहता है और वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्तिको प्राप्त होता है या स्वप्नमें दूर जानेके समान व्यवहार करता है, सब प्रकाशकोंका प्रकाशक वह मेरा मन 'शिवसङ्कल्प' अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियोंके लिये कल्याणका संकल्प करनेवाला हो, किसीकी हानि करनेकी इच्छावाला कभी न हो।' इस प्रकारकी ६ प्रार्थनाएँ मनुष्योंके कल्याणहेतु यजुर्वेदमें दी गयी हैं। वे ही प्रार्थनाएँ शिवसंकल्पसूक्तके नामसे प्रसिद्ध हैं।

शिवका अर्थ है—सबका कल्याण चाहनेवाला और संकल्पका अर्थ है—शुभ विचार, शुभ चिन्तन-मनन मनमें उठाना, दूषित विचार-भाव मनमें न लाना, अपने एवं दूसरोंके कल्याण करनेवाले विचारोंको ही मनमें स्थान देना तथा सत्य व्यवहार करना आदि। भगवान् शिव सदा सत्यपर आरूढ़ रहते हैं, सदा-सर्वदा सबका हित करते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभ संकल्पवाले हैं। वे दयालु हैं और सबकी कामनाओं-इच्छाओंको पूर्ण कर देते हैं। शुद्ध-सात्त्विक संकल्पवाला अपने लक्ष्यकी पूर्तिहेतु तथा उन्नतशील, ज्ञानवान् बननेहेतु जो प्रयत्न, पुरुषार्थ करता है, उसे अवश्य ही सफलता मिलती है; क्योंकि वह पुरुष (जीवात्मा) अपने संकल्पोंसे बना हुआ है। यदि संकल्प 'शिव' हो तथा दृढ़, सत्य, पवित्र एवं कल्याणकारी भाववाला हो तो फिर सर्वत्र शुभ-मंगल ही होता है। क्योंकि 'सङ्कल्प'की शक्ति अजेय है। 'सङ्कल्प' तत्पश्चात् तदनुरूप शुभ कर्ममें प्रवृत्त होकर ज्ञान-बुद्धिसे युक्त हो कर्म करनेसे मानव देवतुल्य हो जाता है अर्थात् महान् बन जाता है। कठिन परिश्रम, संघर्ष, तपस्या, लगन तथा दृढ़ 'सङ्कल्प' के बिना किसी भी लक्ष्यकी सफलता एवं सिद्धि सम्भव नहीं। पुरुषार्थयुक्त युक्तिसहित ज्ञानमयी दृष्टि रखते हुए कर्म करनेसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। पुरुषार्थ, परिश्रम और दृढ़ संकल्प लेकर कर्म करनेवाला मनुष्य महान् बनता है। संसारमें जितने भी महान् आदर्श पुरुष हुए हैं, वे सब अपने पुरुषार्थ, कठिन परिश्रम, संघर्ष, लगन, प्रबल इच्छा शक्ति तथा दृढ़ संकल्प-वृत्तिके कारण हुए।

अतः जीवनको उन्नतशील, सफल बनानेमें शुभ-संकल्पपूर्वक पुरुषार्थ करना मनुष्योंके लिये महत्त्वपूर्ण बात है। लक्ष्यको पूर्ण करनेके लिये पुरुषार्थ करनेमें पूर्वजन्मके संस्कारोंका भी बहुत बड़ा योगदान रहता है। इसके अतिरिक्त ईश्वरकी कृपा—आश्रयमें रहकर ज्ञानमयी दृष्टि रखते हुए सत्कर्ममें प्रवृत्ति सफलता दिलानेमें परम सहायक सिद्ध होती है। ईश्वरका अनुग्रह प्राप्त हुए बिना सब प्रयत्न, प्रयास एवं पुरुषार्थ निष्फल हो जाते हैं। अतः ईश्वरकी कृपा-अनुग्रह प्राप्तिहेतु मनुष्यमें समर्पित भाव परम आवश्यक माना गया है। जो अपने कर्ममें संलग्न है, वही बड़े भारी यशको प्राप्त होता है।

मनसे महान् 'सङ्कल्प' है। 'सङ्कल्प'के फलस्वरूप मनुष्य मनन करता और वाणी बोलनेमें शब्दोंका प्रयोग करती है। संकल्प ही क्रियाका आधार है, संकल्पका वास्तविक अर्थ है—प्रेम, प्रतिज्ञा, व्रत, जो किसी विशेष उद्देश्य एवं शुभ लक्ष्यप्राप्तिहेतु अपने एवं दूसरोंके कल्याणहेतु लिया जाता है। उसपर अटल रहते हुए लक्ष्यको प्राप्त करना अटूट संकल्प कहलाता है। ऐसे अटूट दृढ़ संकल्पवाले पुण्य पवित्र आत्माएँ सत्त्वगुणप्रधान होती हैं; क्योंकि उनके पूर्वजन्मोंके संस्कार, कर्म, गुण और ज्ञान उच्च स्तरके होते हैं, अतः वे आत्माको परमात्माका साक्षी अविनाशी चेतनतत्त्व मानते हुए, लोकहित एवं कल्याणकी भावनाको दृष्टिगत रखते हुए जो संकल्प लेते हैं, वे पूर्ण हो जाते हैं। शास्त्र बताते हैं कि दृढ़ संकल्प वृत्तिवाले ही महान् बनते हैं।

संकल्पमें सारा जगत् विद्यमान रहता है; क्योंकि संकल्पमें ही यह परमात्माका ब्रह्माण्ड भी विद्यमान है। वैदिक साहित्यमें संकल्पकी शक्तिको महान् माना गया है, जो तप और निष्ठाके साथ होता है।

मनुष्यके मनमें सत्य-असत्य, शुभ-अशुभ दोनों प्रकारके भाव होते हैं। सद्भावकी प्रधानता मानते हुए ही असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमरताकी ओर जानेकी प्रार्थना की गयी है—**'असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय।'** हे ईश्वर! हमें असत्यसे छुड़ाकर सत्यकी ओर ले चलो, हे ईश्वर! हमें अन्धकारसे निकालकर प्रकाशकी ओर ले चलो, हे ईश्वर! हमें मृत्युसे छुड़ाकर अमृतकी ओर ले चलो।

इसके अतिरिक्त शुभ संकल्पकी प्रतिष्ठाके लिये इस मन्त्रपाठ और तदनुसार आचरणका भी निर्देश दिया गया है—**ॐ सह नाववतु! सह नौ भुनक्तु! सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!** (सामवेद शान्तिप्रार्थना)

अर्थात् हे ईश्वर! हम गुरु-शिष्य दोनों मिलकर एक-दूसरेकी रक्षा करें। हम दोनों मिलकर सांसारिक, पारलौकिक सुख भोगें। हम दोनों मिलकर बल, श्रद्धा, प्रेम, यश बढ़ायें। हमें त्रिविध शान्ति प्राप्त हो। इस प्रकारकी शुभाकांक्षाओंसे शुभ संकल्प, सत्संकल्प बनते हैं और फिर तदनुसार क्रिया होनेसे जीवनका साफल्य घटित हो जाता है। इस प्रकार सत्संकल्पोंसे जीवनका सुधार हो जाता है। साधनामार्गमें तो मनके संकल्प-विकल्प शून्य हो जानेको ही मुख्यता दी गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमका अनुभव

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गतांक सं० ४ पृ०-सं० ६२४ से आगे]

पहले भावना करनी पड़ती है, कल्पना करनी पड़ती है और निश्चय करना पड़ता है कि प्रेमास्पदका सुख मेरा सुख है। ऐसा निश्चय हो जानेपर एक चीज तो बहुत जल्दी हो जाती है कि स्वसुखकी चाह मिट जाती है और स्वसुखका भान भी नहीं होता। निरन्तर उसकी दृष्टि रहती है कि यह मेरा कर्म मेरे प्रेमास्पदके लिये है कि नहीं?— प्रेमी ऐसा निरन्तर देखता रहता है। प्रेमास्पदकी रुचिका अनुसरण उसके द्वारा ऐसा स्वाभाविक ही होता रहता है। प्रेमास्पद जिस चीजको पसन्द करते हैं, जब जो चाहते हैं, उसी प्रकारकी क्रिया, चेष्टा उस प्रेमीके द्वारा स्वाभाविक होने लगती है। यह प्रेमका स्वभाव है।

प्रेममें मुख्य चीज है स्वसुखकी वाञ्छाका परित्याग। यहाँपर भी यदि हम अपना सुख चाहें और हम अपनेको आपका प्रेमी मानें तो यह प्रेम नहीं, काम है। स्वसुखकी इच्छा ही काम है और प्रेमास्पदके सुखकी इच्छा ही कामका परित्याग है और प्रेम है। यदि आप ईश्वरसे भी अपने सुखकी वाञ्छा करते हैं, चाहे वह सुख मोक्षसुख ही हो, तो वह अपना सुख ही है न! वह भी ऊँचा काम है, परंतु काम है और जहाँ छोटे-से-छोटा काम भी जैसे यदि रसोई बनाना है, झाड़ू देना है और यदि वह भी प्रेमास्पदके सुखके लिये है तो उसका नाम प्रेम है। प्रेम किसी क्रियामें बँधा नहीं है, प्रेम किसी स्थानमें बँधा नहीं है, प्रेम किसी श्लोकमें, छन्दमें, भाषामें बँधा नहीं है। प्रेम किसी व्यक्तिमें, वेशमें बँधा नहीं है। प्रेम निर्मुक्त है और निर्गुण है, गुणरहित है। वह प्रेमस्वरूप है, भगवत्स्वरूप है। भगवान्‌के अतिरिक्त उस प्रेममें किसी औरकी सत्ता नहीं। इसलिये प्रेमके समान पवित्र वस्तु संसारमें कोई है नहीं और इस प्रेमके पवित्र रसका आस्वादन करनेके लिये नित्य तृप्त, नित्य निष्काम, आप्तकाम प्रभु सकाम बन जाते हैं। इस प्रकारका जहाँ विशुद्ध प्रेम-रस है। उसका आस्वादन भगवान्‌को बड़ा प्रिय है।

भगवान्‌में किसी आकांक्षाका लेशाभास नहीं है, परंतु भगवान्‌की आकांक्षा इतनी बलवती होती है, इतनी वेगवती होती है, इतनी तीव्र होती है कि प्रेमरसका जहाँ कहीं उन्हें पता लग जाता है, वहाँ वे किसी दूसरी चीजको न देख करके, न जान करके स्वयं पहुँच जाते हैं। वे चाण्डालके घर भी पहुँच जाते हैं, उनको कोई आपत्ति नहीं है। चाण्डालकी मर्यादा तो हम लोगोंमें है। चाण्डालका आत्मा कौन है? वही तो है। दूसरा कोई थोड़े है वहाँपर। ये जितनी भी मर्यादाके नियम हैं, ये सब आवश्यक हैं। इनको तोड़ना नहीं चाहिये, परंतु उस तीव्र निष्काम त्यागके प्रवाहमें जहाँ सदा प्रेमकी धारा बहती है, वहाँ दोनों किनारे मिटकर केवल प्रेमका रस-ही-रस रह जाता है। प्रेमका समुद्र लहराने लगता है। किनारा दीखता ही नहीं है। जब किनारा न दीखे तो किस किनारेपर आकर ठहरे? कौन-सी मर्यादापर आकर रहे? किनारा तो है ही नहीं। वह तो अटूट सागर है। उसमें तट नहीं है और उस सागरमें डूबा हुआ कभी निकलता ही नहीं है, पर उस सागरमें अन्दर ही महान् रम्य, महान् सुन्दर, महान् सुखमय भगवान्‌का चिन्मय मिलन होता है। प्रेमसागरमें जो डूब गया, उसको उस प्रेमसागरके अन्दर महान् सुरम्य, महान् रमणीय, महान् पवित्र, दिव्य सच्चिदानन्दमय प्रेममय प्रेमास्पद भगवान्‌का मिलन होता है, उससे वह कभी निकलता नहीं है। उस प्रेमसागरके अन्तस्तलमें उस मधुरतम प्रेमराज्यके प्रेम-प्रासादमें प्रेमके रंगमहलमें भगवान् दूसरे बनकर उसके पास रहते हैं। यह अद्वैतमें प्रेमद्वैत है। इस द्वैतका नाश न तो प्रेमी चाहता है और न ही प्रेमास्पद चाहता है। दोनों एक हैं और एक ही दो हैं। नित्य एक और नित्य दो। तत्त्वतः एक और लीलामें दो। बस, यह प्रेमका एक स्वरूप है। यही प्रेमका स्वरूप है **'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्'** (ना०भ०सू० ५१)। प्रेमका जो स्वरूप है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अनिर्वचनीय है और यह प्रेम भगवान्‌में ही होता है। विषयोंमें जो विषयीका प्रेम होता है, वह कभी प्रेम है ही नहीं। उसमें तो कहीं-कहीं कामका कलंक है। 'प्रेम' शब्द वाच्य तो केवल वही प्रेम है, जो केवल भगवान्‌में होता है और उस प्रेममें कहीं—किसी प्रकारकी आकांक्षा, कामना, वासना और ममताका कलंक नहीं होता। इसीलिये उसका नाम विशुद्ध अनुराग है। विशुद्धानुरागमें भगवान्‌का अभाव नहीं है।

प्रेम भगवान्‌में ही होता है और कहीं नहीं होता, परंतु वहाँ प्रेमके ठाकुर—भगवान् भगवत्ताको लिये नहीं बैठे रहते, वे भगवत्ताकी पोशाक उतार देते हैं। जैसे कि रातको कोई राजा अपने शयन-कक्षमें सोता है। क्या वह राजकीय पोशाक पहनकर सोता है? शयनागारमें जब सोयेगा तो उस दरबारी पोशाकको उतारकर सोयेगा। इसीलिये इस प्रेमके प्रासादमें, प्रेमके शयनागारमें, प्रेमके रंगमहलमें भगवत्ताकी पोशाक उतारकर भगवान् रहते हैं। अगर ऐसा न हो तो प्रेमी डर जायँ। कुरुक्षेत्रवाले भगवान् हाथमें चाबुक लेकर कवच पहने हुए कहीं गोपियोंके मण्डलमें प्रकट हो जायँ तो मारे डरके बेचारी वे सब भाग जायँ और कहीं अगर गोपबालकोंके पास मुरली और मयूरपिच्छको अलग करके सुदर्शन लेकर आ जायँ तो वे सब-के-सब भाग जायँ। वे बोलेंगे कि चार हाथवाला यह कैसा जन्तु कोई आ गया। भगवान् वहाँ भगवत्ताकी, ऐश्वर्यकी पोशाक पहनते हैं, जब कोई दैत्य आता है, परंतु तब उन बच्चोंको नहीं दिखाते हैं। उनको अपने ऐश्वर्यकी पोशाक नहीं दिखाते हैं। उनके सामने तो सखा बने रहते हैं।

अर्जुनके पेड़ोंमेंसे नलकूबर और मणिग्रीव प्रकट हुए तो बच्चे सब देख रहे थे। बोले—कन्हैया! यह क्या कर रहा है? और मैया-बाबासे बोले—कन्हैयाने ही यह पेड़ तोड़ दिया। उनके ऐश्वर्यका भान नहीं था। वे बोले—बाबा! इसमें ऊखल फँस गया था और इसने झटका दिया तो ये पेड़ टूट गये। नन्दबाबाने सोचा ये लोग पगले हैं। यह क्या तोड़ेगा! यद्यपि नन्दबाबाने भगवान्‌का माहात्म्य सुना था, परंतु उनके मनमें यह नहीं आया कि इसने पेड़ तोड़ दिया है। पेड़ तोड़नेमें ऐश्वर्य प्रकट हुआ, परंतु नन्दबाबाके मनमें, बच्चोंके मनमें, गोपियोंके मनमें यह कभी आया नहीं कि इसने पेड़ तोड़ा और राक्षसोंको मारा।

भगवान् राम जब राक्षसोंको मारकर अयोध्या आ गये और माँके पास गये तो माँने गोदमें सुला दिया, हाथ फेरने लगीं, उन्हें सहलाने लगीं और बोलीं—लोग बहुत झूठ बोलते हैं। राम! लोग इतनी बात बनाते हैं कि किसके लिये क्या कहा जाय? लोग कहते हैं कि रावणको रामने मारा। भला, यह कोई माननेकी बात है! यह मेरा कोमल-कोमल राम जिसका मक्खन-जैसा कोमल शरीर है, वह उस राक्षसको मार देगा? यह झूठी बात है। श्रीरामने कहा—मैया! तुम सत्य कहती हो। यह तो मुनिमहाराजके आशीर्वादसे वह मर गया और अपने पापसे वह मर गया। देखो, मेरी सहायता इन बन्दरोंने की है। इनके कारण वह मारा गया। यह सच्ची बात है। मैयाके मनमें यह कभी आया ही नहीं कि राम रावणको मार सकता है।

भगवान्‌ने अपनी अँगुलीपर गोवर्धन पर्वत उठा लिया। कूर्मावतारकी तरह नहीं कि अपनी पीठका विस्तार करके उसपर धारण किया, अपितु अँगुलीपर उठा लिया। ग्वाल-बाल आये। उन्होंने कहा—कितना समय हो गया। कन्हैया! तुम्हारी अँगुली दुखने लगी होगी। बहुत देर हो गयी तुम्हें खड़े हुए और अँगुलीपर पर्वत उठा रखा है, इसलिये तुम्हारी अँगुली दुखने लगी होगी। हमने इन्तजाम तो कर रखा है। देखो, अपनी लाठियाँ लगा रखी हैं, इसलिये तुम्हें भार तो कम पड़ता होगा, परंतु अँगुली तो दुखती होगी। हम उठा लेते हैं और दो लोग तुम्हारी अँगुलीको सहला देते हैं, उसे ठीक कर देते हैं। वहाँ मधुरतम भगवान् जो हैं, उन्होंने यह नहीं कहा कि तुम क्या उठाओगे! ऐसेमें तो सारा रस ही भंग हो जाय! यदि वे भगवत्ताको प्रकट कर दें। वे बोले—भैया! तुम्हीं लोग तो लाठीसे उठाये हो, मैंने तो केवल नामके लिये अँगुली लगा रखी है। लाठीके सहारे ही यह टिका है, नहीं तो गिर जाता। यह सच्ची बात झूठ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उनके सारे सखाओं, बच्चोंका जो प्रेम है, वही प्रेम तो यहाँ श्यामसुन्दरके रूप में खड़ा है न!

भगवान्के श्रीविग्रहकी व्याख्या की तो वहाँ कहा— श्रीकृष्णका विग्रह क्या चीज है? कैसे बना है? तो बताया—'**पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानाम्**'। गोपांगनाओंका प्रेम ही इकट्ठा होकर इनका शरीर बन गया है। जैसे महिषासुरविनाशके लिये देवी बनीं। तमाम देवताओंकी शक्ति एक जगह इकट्ठी हो गयी और वह महिषासुरमर्दिनी बन गयी। इसी प्रकार '**पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानाम्**।' गोपांगनाओंका, गोपरमणियोंका प्रेम एक जगह इकट्ठा हो गया और वह श्यामसुन्दर विग्रह बन गया। गोपियोंका प्रेम ही श्यामसुन्दर बना है, इसमें और कुछ नहीं है।

प्रेममें भगवान् अपनी सारी भगवत्ता छिपा लेते हैं। भगवत्ता प्रकट नहीं होती है। प्रेमराज्यमें, प्रेमके रंगमहलमें भगवान् नहीं हैं। भगवान् नहीं हैं इसका अर्थ यही है कि भगवान् तो हैं, परंतु भगवत्ता वहाँपर प्रकट नहीं है। वहाँ तो वे प्रेमास्पद हैं, मित्रोंके मित्र हैं, माता-पिताके पुत्र हैं, गुरुके शिष्य हैं और प्रेयसियोंके प्राणवल्लभ हैं।

इसी प्रकारसे अपनी सारी भगवत्ताको मिटाकर प्रेमराज्यमें निरन्तर भगवान्की प्रेम-क्रीड़ा चलती रहती है। यही नित्य रास है। इस प्रेमराज्यमें प्रवेश करना सबसे बड़ा लक्ष्य होना चाहिये, सबसे बड़ा साध्य होना चाहिये। जिसको मुनिलोग भी चाहते हैं और मुनिलोग भी जब प्रेमीके प्रेमके दिव्य गुणोंको देखते हैं तो बरबस उस ओर खिंचे चले आते हैं। गुण मुनियोंको कहाँ आकर्षित कर सकते हैं? प्रेममें बड़ा जादू है। इन प्रेमके गुणोंमें बड़ा जादू है। जिसने भी देखा, वह खिंच गया। सब खिंच गये। आत्माराम मुनि भी खिंच जाते हैं। उनका सारा आत्मारामत्व लुप्त हो जाता है—

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥

(रा०च०मा० १।२१६।५, ३)

महाराज जनकका सारा-का-सारा ब्रह्मज्ञान उस सौन्दर्यके प्रवाहमें बह गया।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(श्रीमद्भा० १।७।१०)

उस हरिमें इस प्रकारके दिव्य चमत्कारी गुण हैं कि वे आत्माराम, निर्ग्रन्थ मुनियोंके चित्तका हरण करके उनके अन्दर भी अहैतुकी प्रेमाभक्ति प्रकट कर देते हैं। यह जादू है। इसलिये यह प्रेम सर्वश्रेष्ठ ध्येय है, साध्य है। इस प्रेमकी प्राप्ति सभीका लक्ष्य होना चाहिये। प्रेमस्वरूप भगवान् मिल जायँ, फिर और क्या करना है? **[समाप्त]**

'पल-पल जलता है स्मशान'

(श्रीमती इन्दुमतीजी पाण्डेय)

पल-पल जलता है स्मशान।
महारुद्र की यह मखशाला, जग का सत्य विधान॥

लक्षित करता जीवन जगका, नित प्रति क्षरण हो रहा सबका।
शोक, भोग, आसक्ति, मान, निन्दा, शुभ-अशुभ, सभी द्वन्द्वों का
कारण, भोगपरायणता का, जीवन नरक समान॥ पल-पल०॥
सुख संचय में व्यय प्रति पल का, दुरुपयोग अनमोल क्षणों का,
मोहनिशा में सोकर मानव, कंकड़ बदले रत्न लुटाता,
जीवन के बहुमूल्य स्वाँस का, कैसा यह अपमान॥ पल-पल०॥
तन धन जीवन जग आकर्षण, सब हैं नाम रूप के बन्धन,
सब हैं जीवन-जग के संबल, जीव सदा निर्लिप्त निरंजन,
जब जीवन जुड़ जाय 'तत्त्व' से, मन होए निष्काम॥ पल-पल०॥

विश्व सृष्टि सम्पन्न किया प्रभु ने, यह मानव का तन रचकर,
लक्ष्य बनाया भक्ति-मुक्ति, जीवन के सब फंदों से हटकर,
देकर ज्ञान और कर्मेन्द्रिय, करने को उत्थान॥ पल-पल०॥
तन समष्टि को अर्पित करके, मन की दिशा नाम बन जाय,
बदल जायगी दृष्टि, विश्व के कण-कण में प्रभु दर्शन पाये,
शेष हमारे स्वाँसों का, अन्तिम सुखप्रद अभियान॥ पल-पल०॥
प्रतिपल मरण-क्षरण में रहकर, भी निज को हम अमर समझते,
अशुभ कर्म का संग्रह करके, दुःख अशान्ति परिणाम भोगते,
'नर-तन' स्वर्ग-नर्क निर्णायक, प्रभु का यह वरदान॥ पल-पल०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्ची ममता

(सुश्री माला माथुर)

'ममता' एक ऐसा शब्द है, जिसमें अपरिमित स्नेह एवं वात्सल्य समाया हुआ है। यह प्राणियोंके आन्तरिक उद्वेगों को व्यक्त करती है। जहाँ एक ओर स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सभी इससे अभिभूत रहते हैं, वहीं दूसरी ओर पशु-पक्षी भी इससे अछूते नहीं रहते। यह एकमात्र ऐसा भाव है, जो सम्पूर्ण प्रकृतिमें परस्पर परिलक्षित होता है।

'ममता' इस शब्दको सोचनेमात्रसे स्मृति-पटलके सामने एक ऐसा चित्र खिंच जाता है, जिसमें माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन, पति-पत्नी सभीका स्नेह समान रूपसे दिखायी देता है। यदि *'जसोदा हरि पालनैं झुलावैं'* इस पंक्तिमें यशोदा मैयाकी बालक कृष्णके प्रति ममता झलक रही है तो *'ठुमक चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ'* इस पदमें महाराज दशरथकी रानियोंकी ममता दिखायी देती है। श्रीकृष्णके गोकुल छोड़कर मथुरा जाते समय राधा एवं गोपिकाओंकी वेदना उनकी ममताको छलकाती है। कैकेयीद्वारा रामको वनवासका आदेश देनेपर महाराज दशरथकी मनोदशा भी इसी भावको दिखाती है। सीताद्वारा रामके साथ वनगमन पत्नीकी पतिके प्रति ममता है तो लक्ष्मणद्वारा रामके साथ जाना भ्रातृप्रेमका परिचायक है। ये सभी उदाहरण मानव-सम्बन्धोंके पारस्परिक मनोभावोंको व्यक्त करते हैं, जिनके मूलमें उनका 'ममत्व' दृष्टिगोचर होता है।

यदि भाई-दूजका टीका और राखीके धागे भाई-बहनके आपसी प्रेमके प्रतीक हैं, तो होलीके रंग पारस्परिक सौहार्दके द्योतक। जो भाव तथा उत्साह दीपावली और दुर्गापूजामें दिखायी देता है, वही स्नेह तथा प्रेम पोंगल तथा लोहड़ीमें भी दृष्टिगत होता है। इन सभी पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्धोंमें जो आपसी सामंजस्य तथा समन्वयका भाव है, वह इनमें निहित ममत्वका ही रूप है।

जिसके प्रति 'मेरेपन' का भाव या 'मेरेपन' की अनुभूति हो, वही उसके प्रति ममता है। जिसके प्रति हमारा 'स्व' का सम्बन्ध स्थापित हो जाय, उसीके प्रति हमारी ममता जाग्रत् हो जाती है। इसी स्वानुभूतिके फलस्वरूप उत्पन्न हमारी आत्मीयता ही हमारी ममता है। यह ममता व्यक्तिके साथ-साथ वस्तुओंके प्रति भी होती है। जिन वस्तुओंके साथ हमारी बाह्येन्द्रियोंका सुखद सम्पर्क स्थापित होता है, उनके प्रति हमारी ममता जाग्रत् हो जाती है। सरल शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि हमें जो वस्तु देखनेमें अच्छी लगे, जिसका स्पर्श या अनुभव सुखद लगे, जिसकी गन्धमें मुग्धताका अनुभव हो, जिसकी ध्वनि कर्णप्रिय लगे और जिसका स्वाद जिह्वाको लालायित करे, उसके प्रति हमारी सहज आसक्ति उत्पन्न हो जाती है और यही आसक्ति उसके प्रति हमारी ममता है। ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध) प्रिय लगनेवाले पाँच विषय हैं।

वस्तुतः यह ममता हमारी लौकिक ममता है। लोकमें विद्यमान सम्बन्धोंके प्रति ममता हो अथवा भौतिक वस्तुओंके प्रति उत्पन्न ममता—दोनों ही अस्थायी होती हैं। क्योंकि हमारा भौतिक शरीर और सभी भौतिक वस्तुएँ नाशवान् हैं, अतः जबतक ये विद्यमान हैं तबतक ही हमारी इनके प्रति ममता हो सकती है, उसके पश्चात् नये सम्बन्ध बननेपर अथवा नयी वस्तुओंके सम्पर्कमें आनेपर पुरानी ममता प्रायः भूल जाती है और नयी ममता जाग्रत् हो जाती है। यही क्रम चलता रहता है; क्योंकि यही सृष्टिका नियम है। यह ममता एक समयमें जितनी सुखदायी होती है, दूसरे ही समयमें इसकी उतनी ही दुःखद अनुभूति होती है। यह संसार ही जब नश्वर है तो इसमें विद्यमान सभी सम्बन्ध एवं अनुभूतियाँ सदैव कैसे जीवित रह सकती हैं? अतः हमारी यह ममता भी नश्वर है।

हमारी यह ममता चिरस्थायी भी हो सकती है, परंतु तब जबकि वह अविनाशी, चैतन्य, परमपुरुषके प्रति की गयी हो। यदि हम उस परमात्माके साथ अपनेपनका भाव जाग्रत् कर सकें अर्थात् उसके साथ अपनी आत्माको एकाकार कर सकें तो हमारा यह सम्बन्ध सदैव विद्यमान रहेगा। यदि हम अपनी सभी इन्द्रियोंसे उसी परमपुरुषकी सुखद अनुभूति करनेमें समर्थ हो सकें, अपने चंचल मनको सभी विषयोंसे खींचकर उसी चैतन्यसे एकाकार कर सकें और सत्-असत्का विवेक करनेवाली अपनी बुद्धिको उस सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् ईश्वरको समर्पित कर सकें तो यही हमारी उसके प्रति सच्ची ममता होगी और तभी हमारा यह मानव-जीवन भी सफल हो सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

अभी भगवान् विशेष कृपा करके देना चाहते हैं। कारण कि अपने-आप नयी-नयी बातें भीतरमें पैदा होती हैं। इसमें अपना कोई बल, उद्योग नहीं है। कमजोर बालकका माँ विशेष ध्यान रखती है। इसी तरह हम भी कलियुगमें बहुत कमजोर हो गये हैं, अतः भगवान् हमारा विशेष ध्यान रखते हैं—*'निरबल के बल राम'*। ऐसे सत्संग-आयोजनोंमें भी निमित्त तो कई बन जाते हैं, पर वास्तवमें भगवान्की विशेष कृपा है। दूकानदार जब मालकी बिक्री करना चाहता है, तब माल सस्ता और सुगमतासे मिल जाता है। इसी तरह भगवान् अभी माल लुटाना चाहते हैं।

यह शिकायत रहती है कि मन नहीं लगता। इस विषयमें तीन बातें याद रखें। पहली बात, संकल्पका सुख न लें। पुराना चिन्तन आये तो सुख लेनेसे पुराना विषय-चिन्तन नया हो जाता है। दूसरी बात, उसको मिटानेकी चेष्टा न करें। मिटानेकी चेष्टा करना भी उसको पुष्ट करना है। कारण कि पहले उसे कायम करते हैं, तभी तो मिटानेकी चेष्टा करते हैं। तीसरी बात, मूलमें संकल्प अपनेमें है ही नहीं, परंतु ऐसा सीखनेसे वह मिटता नहीं। संकल्पको अपनेमें मिलाये नहीं। संकल्प तो आते-जाते हैं, पर मैं रहता हूँ, फिर ये मेरेमें कैसे?

विध्यात्मक साधनके साथ अहंकार रहता है। वृत्तियोंके साथ विरोध करनेसे उनमें बल आता है। अतः उनसे उपराम हो जायँ—**'शनैः शनैरुपरमेद्०'** (गीता ६। २५)। ऐसा मान लें कि उनसे हमारा मतलब नहीं है। हम ईश्वरके अंश, अविनाशी, चेतन, अमल, सहज सुखराशि हैं—यह बात हर समय याद रखें। पारमार्थिक मार्गमें कभी हार स्वीकार न करें, क्योंकि इस मार्गमें नफा ही होता है, नुकसान होता ही नहीं।

जो अपनी बात न माने, वह अपना कैसे?

× × ×

साधकके लिये खास बात है—निर्दोषताका अनुभव करना। संसारमें जितने भी प्राणी हैं, सबका वर्तमान निर्दोष है। दोषोंकी उत्पत्ति और विनाश होता है। सभी विकार आदि-अन्तवाले हैं, पर हम आदि-अन्तवाले नहीं हैं। हम स्वयं सर्वथा निर्दोष हैं। मेरेमें दोष नहीं है—इसका अभिमान करना भी भूल है और अपनेमें दोष मानना भी भूल है।

जो निवृत्त है, उसीकी निवृत्ति होती है। जो प्राप्त है, उसीकी प्राप्ति होती है। अतः हमारी सत्ता सर्वथा निर्दोष है। दोष दीखनेपर भी अपनेको दोषी न मानें। **'तांस्तितिक्षस्व भारत'** (गीता २। १४) इनको सहनेका तात्पर्य है कि इनको अपनेमें मत मानो।

दोष कर्तामें होता है, करणमें नहीं। कर्ताने ही दोषको पकड़ा है, उसे अपनेमें माना है। वास्तवमें दोष है नहीं। कुत्ता घरमें आ जाय तो वह घरका मालिक नहीं हो जाता। दोष आते-जाते हैं, हम रहते हैं। अतः भूतकालके दोषोंको लेकर अपनेको दोषी मानना बहुत बड़ी भूल है।

× × ×

विकार हमारे साथी नहीं हैं, हम विकारोंके साथी नहीं हैं। इसका अनुभव करना चाहिये। परिवर्तनशीलकी सत्ता विद्यमान नहीं है—**'नासतो विद्यते भावः'** (गीता २। १६)।

हम स्वयं अपरिवर्तनशील हैं। हम सबके भाव-अभाव दोनोंको जानते हैं, पर अपने अभावको नहीं जानते।

सत्संगसे इतना लाभ होता है, जिसका कोई ठिकाना नहीं है। सत्संगसे अपने-आप बेहोशी मिटती है और होश आता है।

सुखमें तो हमारी मरजी भी होती है, पर दुःखमें शुद्ध भगवान्की मरजी (कृपा) होती है। हमारी दृष्टि कड़वी या मीठी दवाकी तरफ न होकर वैद्यकी तरफ होनी चाहिये।

बच्चेकी दृष्टि तीन अंगुल (जीभ)-की होती है। जीभको अच्छी न लगे तो वह दवा थूक देता है। बड़े आदमीकी दृष्टि तीन हाथ (शरीर)-की होती है। साधककी दृष्टि तीन जन्मोंकी होती है। वह यह देखता है कि पिछले जन्ममें किये हुए कर्मोंका फल मैं इस जन्ममें भोग रहा हूँ और इस जन्ममें जो कर्म करूँगा, उनका फल अगले जन्ममें भोगना पड़ेगा, परंतु सिद्ध महापुरुषकी दृष्टि असीम, व्यापक होती है—**'वासुदेवः सर्वम्'**।

× × ×

अपना उद्धार करना नया काम नहीं है। मुक्ति स्वतःसिद्ध तत्त्व है। जीव परमात्माका है—यह स्वतःसिद्ध है। हमें स्वाभाविकतातक पहुँचना है। मुक्ति होनेपर फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धन नहीं होता; क्योंकि मुक्ति स्वतःसिद्ध है। परंतु बन्धन होनेपर मुक्ति होती है। जन्म-मरण अपना बनाया हुआ है, जैसे—बीड़ी-सिगरेट पीनेकी आदत अपनी बनायी हुई है।

सदुपयोग करनेकी अपेक्षा भी दुरुपयोग न करनेकी बहुत महिमा है। अच्छा काम करनेवाले कई आदमी मिलेंगे, पर बुरा काम न करनेवाले कम मिलेंगे। वास्तवमें विहित करनेकी अपेक्षा निषिद्धका त्याग श्रेष्ठ है। त्यागकी बहुत महिमा है—**'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** (गीता १२।१२), **'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'** (कैवल्य० १।३)।

× × ×

मनुष्यमात्र मुक्तिका, परमात्मप्राप्तिका अधिकारी है। हरेक अवस्था, परिस्थितिमें रहनेवाला मनुष्य परमात्माको प्राप्त कर सकता है। भगवान्‌की कृपा इतनी विलक्षण है कि उसकी महिमा कोई कह नहीं सकता। भगवान् जीवन्मुक्तपर भी कृपा करके उसे मुक्तिके आनन्दमें अटकने नहीं देते। उसे अपना प्रेम प्रदान करते हैं।

एक ही परमात्मा इतने रूपोंमें प्रकट हुए हैं कि उनकी गणना नहीं कर सकते। नौ लाख शक्तियाँ पैदा हुईं। प्रेमका रमण ही वास्तवमें रमण है—***'एकाकी न रमते'***। जैसे श्रीजी भगवान्‌से प्रकट हुईं, ऐसे ही आप-हम सब भगवान्‌से प्रकट हुए हैं। खेलमें जो फुटबालको लेता है, वह हार जाता है और जो ठोकर मारता है, वह जीत जाता है। हमने सांसारिक वस्तुओंको ले लिया, इसलिये हार गये।

आप रुपयोंको हाथका मैल भी कहते हो और ज्यादा रुपये (मैल) होनेपर मानते हो कि मैं बड़ा आदमी हो गया।

'हे नाथ! मैं आपका हूँ'—यह सुननेके लिये भगवान् लालायित हैं। वे आपसे हृदयसे स्वीकृति चाहते हैं। भगवान्‌को 'मेरा' कहनेवाला मनुष्य ही हो सकता है। पशु, पक्षी, प्रेत, भूत-पिशाच, देवता आदि कौन भगवान्‌को अपना कहता है? मनुष्य भगवान्‌को अपना न कहे तो भगवान्‌को विचार आता है—**'मामप्राप्यैव'** (गीता १६।२०)। मनुष्य विश्वमात्रकी सेवा कर सकता है। वह भगवान्‌का भी आदरणीय हो सकता है।

गीतामें भगवान्‌ने अर्जुनकी **'शाधि माम्'** (२।७)—इस बातको तो पकड़ लिया, पर **'न योत्स्ये'** (२।९)—इस बातको पकड़ा ही नहीं। भगवान् भक्तके बड़े लोभी हैं।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८।६)

'हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, वह उस (अन्तकालके) भावसे सदा भावित होता हुआ उस-उसको ही प्राप्त होता है अर्थात् उस-उस योनिमें ही चला जाता है।'

मनुष्यको अन्तकालमें कुत्तेका स्मरण होता है तो वह कुत्तेकी योनिको प्राप्त होता है और भगवान्‌का स्मरण होता है तो वह भगवान्‌को प्राप्त होता है। जितने मूल्यमें कुत्तेकी योनि मिले, उतने ही मूल्यमें भगवान् मिल जायँ। कितने सस्ते हैं भगवान्।

भगवान् प्रतीक्षा करते हैं कि कोई कहे 'मैं आपका हूँ'। अतः सच्चे हृदयसे कह दें कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ' तो भगवान् राजी हो जायँ।

× × ×

एक भगवान्‌के शरण हो जाना है और अन्तमें **'वासुदेवः सर्वम्'** में पहुँचना है। ऐसे शरण होनेवाले महात्माको भगवान्‌ने अत्यन्त दुर्लभ बताया है—**'स महात्मा सुदुर्लभः'** (गीता ७।१९)।

हमारे हृदयमें परमात्माके सिवाय दूसरी वस्तुओंकी महत्ता है, इसी कारण परमात्मप्राप्ति दुर्लभ हो रही है। परमात्मा सब जगह हैं, पर प्रकृतिजन्य पदार्थोंकी प्रियता हमें उनसे विमुख करती है।

× × ×

पारमार्थिक तत्त्वकी तरफ चलनेके लिये पारमार्थिक चर्चा करते हैं, पर इससे भी आवश्यक है—व्यवहार शुद्ध करना। कारण कि वास्तवमें परमार्थ नहीं बिगड़ा है, व्यवहार बिगड़ा है। परमात्मतत्त्वको बनाना नहीं है। स्वभावको शुद्ध बनाना है। सूर्यको नहीं बनाना है, प्रत्युत अपने नेत्रोंको शुद्ध, ठीक करना है।

परमात्मासे दूर रहकर परमात्माका असली स्वरूप नहीं जान सकते। कारण कि हम परमात्माके साक्षात् अंश हैं। संसारको महत्त्व देनेसे न परमात्माका ज्ञान होगा, न संसारका। हम परमात्मासे अलग नहीं हुए हैं, प्रत्युत विमुख हुए हैं। विमुख होनेका तात्पर्य विपरीत दिशामें मुख करना नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वसुधैव कुटुम्बकम्'

(महन्त श्रीदीनबन्धुदासजी)

देवभूमि भारतमें एक शाश्वत, मृत्युंजयी, कालनिरपेक्ष, सार्वभौम संस्कृतिका अखण्ड प्रवाह विद्यमान है। इसका स्वल्प भी आचरण मनुष्यके लिये जीवन और जगत्के रहस्योंको खोल देता है, जिससे मनुष्य प्रबुद्ध बन जाता है। ऋषि-महर्षियों, साधु-सन्तोंका यह महान् उपकार है कि उन्होंने लोकशिक्षण-हेतु **'वसुधैव कुटुम्बकम्'**—सम्पूर्ण विश्वको ही अपना परिवार मानकर अत्यन्त उदात्त भावना एवं उत्तम आदर्शका प्रचार-प्रसार किया। जीवन और जगत्के रहस्योंको सुलझानेके लिये भारतीय उपलब्धियाँ आज भी संसारके लिये चिन्तन एवं अन्वेषणका विषय बनी हुई हैं। सुखी, शान्त, समृद्ध एवं सन्तुलित जीवनके लिये आवश्यक निर्दिष्ट सिद्धान्त प्रतिपादितकर मर्यादाओंकी उत्तम व्यवस्था इस भारतदेशमें सनातन कालसे चली आ रही है और इसका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार-प्रसार हुआ।

जीवनको सांगोपांग, समग्र और सन्तुलित परिभाषा देनेमें भारतीय दृष्टिबोध संसारमें अपना सर्वोपरि स्थान रखता है। यही इस मिट्टीकी विशेषता है और महानता है। विश्वकी अन्यान्य जीवन-प्रणालियोंमें अनेक उतार-चढ़ाव आये और उनमें आमूल-चूल परिवर्तन हो गया। आधुनिक सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न एवं समृद्ध कई देश आज भी नयी-नयी प्रणालियोंका अवलम्बन लेते हैं, छोड़ते हैं, किंतु कोई कारगर परिणाम सामने नहीं आये हैं। अशान्ति, अतृप्ति एवं असन्तुलनमें भटकता हुआ जीवन संसार-व्यापी उथल-पुथलके रूपमें व्यक्त होता दिखायी दे रहा है, नित्य नये आयाम गढ़े जाते हैं, फिर शीघ्र ही दूसरी प्रणालियाँ उनपर प्रभावी हो जाती हैं। वर्तमानमें चल रहे सांस्कृतिक उत्थान-पतन, राजनीतिप्रेरित युद्धों-महायुद्धोंने समस्त विश्वको हिलाकर रख दिया है। इससे हम भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे हैं। ऐसे समयमें उत्कृष्ट जीवन-शिल्पी ऋषि-महर्षियोंद्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक दृष्टियाँ ही 'आत्म-दीप' बनकर जीवनको प्रकाशमय कर सकती हैं। जीवनकी समस्वरताके लिये इन प्रणालियोंका अवबोधन प्राप्तकर ही हम अपनी दीनता, मलिनताको धोकर प्रखर, तेजस्वी बनकर जीवनके उच्चतम मानदण्डोंकी उपलब्धि करते हुए अपने समाज एवं राष्ट्र ही नहीं, अपितु मानवताके लिये भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

यद्यपि संसारके बाह्य भौतिक स्वरूपमें, संचार-साधनों, वैज्ञानिक आविष्कारों आदिकी उन्नतिसे बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है, किंतु इनसे आन्तरिक आध्यात्मिक पक्षमें कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ है। क्षुधा एवं अनुरागकी पुरातन शक्तियाँ और हृदयगत निर्दोष उल्लास इत्यादि मानव-प्रकृतिके सनातन गुण हैं। आज मानव-जातिके वास्तविक हितों, धर्मके प्रति गम्भीर आवेगों और दार्शनिक विचारों आदिमें वैसी प्रवृत्ति नहीं दीखती, जैसी कि भौतिक पदार्थोंमें हो रही है।

आजके ब्रह्माण्डीय युगमें जब कि एकके बाद एक नये क्षितिज-पटल मानवके समक्ष खुलते जा रहे हैं, ऐसी चकाचौंधमें वह अध्यात्म-पथका आश्रय न लेनेके कारण असन्तुलित एवं दिशाहीन-सा होता जा रहा है एवं एक संस्कृति दूसरी संस्कृतिको निगलनेके लिये खड़ी हो रही है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको निगलनेकी तैयारी कर रहा है। विश्वमें 'मात्स्य-न्याय' चल पड़ा है। ऐसेमें **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** सूत्र हमें सही दिशा दिखाता है, आशाकी भावनाओंका संचार करता है, विश्वके लिये शान्ति-मन्त्रका कार्य करता है एवं नयी ऊर्जा प्रदान करता है।

मानवीय जीवन और विश्व-जीवनमें निरन्तर पारस्परिक विनिमय होता रहता है। जो व्यक्ति केवल अपने लिये कार्य करता है, वह व्यर्थ ही जीवन बिताता है। संसारमें प्रगति मानवीय और दिव्यके बीच परस्पर सहयोगके कारण होती है। भारतीय शास्त्रोंके अनुसार सभी पुण्य एवं पवित्र कर्म यज्ञके नामसे कहे गये हैं और यज्ञ ही भगवान् विष्णु हैं, जो सम्पूर्ण विश्वमें परिव्याप्त हैं। इसलिये सम्पूर्ण जगत्में विष्णुके रूपमें ही सचराचर प्राणियोंको देखते हुए अन्तर्हृदयसे उनकी सेवा, शुश्रूषा और हितकी चिन्ता करते हुए सबकी कल्याण-कामना ही सर्वोत्तम यज्ञ है और वही सच्ची आराधना भी है।

गीतामें भी वसुधामात्रमें एक कुटुम्बकी दृष्टिको महान् अथवा सर्वोत्तम योग बताया गया है। वहाँ कहा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि सम्पूर्ण जगत्के प्राणियोंमें या सम्पूर्ण जगत्रूप प्राणी-परिवारमें अपनी ही आत्माको देखे और अपनी ही आत्मामें सम्पूर्ण विश्व अथवा प्राणियोंको अनुस्यूत देखे। अपनी ही आत्माके सुख-दुःखकी स्थितिको सम्पूर्ण प्राणियोंमें देखते हुए समान व्यवहार करनेवाला व्यक्ति ही सर्वोत्कृष्ट योगी है और यही सर्वोत्कृष्ट कार्य भी है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(गीता ६। २९,३२)

इसी प्रकार—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(६। ३०)

—जो साधक मुझे सब जगह देखता है और सब वस्तुओंको मुझमें देखता है, उससे मैं कभी तिरोहित नहीं होता और न वह कभी मेरी आँखोंसे दूर होता है। जब सबमें भगवद्दर्शन ही विश्वधर्म है, फिर विभेद कैसा? श्रीतुलसीदासजीने रामायणमें भी इन्हीं भावनाओंको सुलालित्यपूर्ण ढंगसे प्रस्तुत किया है—

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

—हमारा यह आदर्श सदैवसे रहा है। सदियोंसे इस भावको रूप देनेके लिये हम यह सत्प्रयास कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृतिमें पितरों एवं पूर्वजोंको तर्पण करते समय **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की अत्यन्त उदार भावनासे ओत-प्रोत निम्न श्लोक अशेष विश्वके समस्त प्राणियोंकी तृप्ति-हेतु बोले जाते हैं। इसमें ऋषियोंका तीव्र, सूक्ष्म एवं लक्ष्यके प्रति गहन दृष्टिकोणका प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी पड़ता है। विष्णुपुराण (३। ११। ३२—३६)-में कहा गया है—

देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसाः।
पिशाचा गुह्यकास्सिद्धाः कूष्माण्डाः पशवः खगाः॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाहाराश्च जन्तवः।
तृप्तिमेतेन यान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया॥
ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिला यान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्षिणः॥
यत्र क्वचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम्।
इदमाप्यायनायास्तु मया दत्तं तिलोदकम्॥

'देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायुभक्षक आदि सभी प्रकारके जीव मेरे दिये हुए इस जलसे तृप्त हों। जो प्राणी सम्पूर्ण नरकोंमें नाना प्रकारकी यातनाएँ भोग रहे हैं, उनकी तृप्तिके लिये मैं यह जलदान करता हूँ। जो मेरे बन्धु अथवा अबन्धु हैं तथा जो अन्य जन्मोंमें मेरे बन्धु थे एवं और भी जो-जो मुझसे जलकी इच्छा रखनेवाले हैं, वे सब मेरे दिये हुए जलसे परितृप्त हों। क्षुधा और तृष्णासे व्याकुल जीव कहीं भी क्यों न हों, मेरा दिया हुआ यह तिलोदक उनको तृप्ति प्रदान करे।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें जड-चेतन एवं इतर प्राणियोंतकको कौटुम्बिक भावनाओंसे ओतप्रोत हो तर्पणके द्वारा आप्यायित करनेका प्रयत्न किया जाता है। इससे जगदात्मा भगवान् विष्णु एवं अपनी आत्माकी भी निर्व्याज-रूपसे परिपूर्ण तृप्ति हो जाती है।

आजके तेजीसे बढ़ते हुए विज्ञानके युगमें हमें **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावनाओंको अपनाना नितान्त आवश्यक हो गया है। युगधर्मकी माँग है कि इस भावनाका जितना ही व्यापक प्रसारण हो, उतना ही त्राण है।

प्राचीन ऋषिलोग सनातन कालसे सम्पूर्ण विश्वके प्राणियोंके सुखकी कामना मुक्त हृदयसे करते आये हैं। उनका यह निरन्तरका उद्घोष ही था कि विश्वके समस्त प्राणी सदा सुखी और सर्वथा नीरोग रहें और सब लोग निरन्तर उत्तरोत्तर कल्याणकी परम्पराओंको देखते रहें तथा विश्वका कोई भी प्राणी किसी भी प्रकारके क्लेशका भाजन न बने—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका अभाव और अधूरापन

(श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०)

'प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥'

अर्थात् 'ब्रह्माजीका स्वभाव सब गुणोंको एक ही स्थानमें एकत्र करनेके विरुद्ध है—वे कहीं कुछ रचते हैं तो कहीं कुछ।'

आपके जीवनमें अतृप्ति, अभाव एवं असन्तोष उत्पन्न होनेका एक कारण यह है कि आप अपनी स्थिति और जीवनकी, अपने गुण या अभावोंकी दूसरोंसे विशेषतः अपनेसे अच्छी सामाजिक और आर्थिक स्थिति एवं अधिक योग्यतावालोंसे तथा हैसियतमें उच्च पद पानेवालोंसे तुलना करते हैं।

आप दूसरोंके समान उच्च स्थिति, सुन्दर वस्तुएँ और नाना समृद्धियाँ तो ले नहीं पाते, उलटे अपनेको तुच्छ, निर्बल, दीन-हीन समझने लगते हैं। अपनी अपेक्षा उच्च स्थिति, बड़े ओहदे और समृद्धिवालोंसे तुलना करनेपर हममें ईर्ष्याभाव उत्पन्न होता है। हम उनकी सुन्दर वस्तुएँ, उन्नत स्थिति और जीवनकी सुविधाएँ देखकर ईर्ष्याकी अग्निमें निरन्तर दग्ध होते रहते हैं।

आपका मन चुपचाप आपसे कहा करता है, 'हाय! हम न हुए बड़े-बड़े मकानोंके मालिक! जमीनों, जायदादोंके अधिपति, मोटरकार और विलास-सामग्रियोंके स्वामी। हे परमेश्वर! इस दुनियामें एक-से-एक बड़ा आदमी पड़ा है, किंतु क्या हमारे भाग्यमें यही गरीबी, यही बेबसी और अभाव लिखा है। हमारा यह पड़ोसी मजेमें रोज मेवा-मिष्टान्न उड़ाता है, फलोंके ढेर लगे रहते हैं, इसके यहाँ एक-से-एक उत्तम वस्त्र और फैशनेबल वस्तुएँ हैं और इसकी पत्नी कितनी सुन्दर है। हमारे भाग्यमें फूहड़ नारी ही लिखी है। हमारे पास ठीक तरह लज्जा ढकनेतकको वस्त्र नहीं हैं, दूसरा दर्जनों कपड़ोंको सन्दूकोंमें सड़ा-गला रहा है, उफ् हमारी कैसी विषम स्थिति है। हमारे पड़ोसीके दो पुत्र हैं उधर हमारे तीन-तीन पुत्रियाँ हैं और सो भी निम्न मानसिक गुणोंवाली। हमारे चारों ओर वैभवका अमित भण्डार बिखरा दीखता है, किंतु हमारे भाग्यमें टूटा मकान और रूखी-सूखी रोटियाँ ही बदी हैं। काश! हम भी ऐसे ही ऊँचे पद, ऐसे ही समृद्धिके स्वामी, ऐसे ही स्वस्थ, सर्वगुणसम्पन्न, अमीर, प्रतिष्ठित और वैभवशाली होते।'

आपके इन उद्गारोंमें ईर्ष्या बोल रही है। सावधान! आप अपनी निम्न स्थितिको—जो आपके वशकी बात नहीं है—दूसरोंकी अच्छी स्थितिसे मिलाकर हीनत्वकी भावनाका अनुभव कर रहे हैं। सम्भव है, उनकी समृद्धिका कोई ऐसा गुप्त कारण हो, जो आपके वशकी बात नहीं है। अनेक गुप्त कारणोंसे चली आती हुई उस समुन्नत स्थितिसे तुलनामें आप अपनेको साधारण पाकर दुःखी हो रहे हैं। तुलना करनेमें आप उनकी केवल अच्छाई-ही-अच्छाईको तथा अपने जीवनकी बुराई-ही-बुराईको देख रहे हैं। आपका निर्णय एकपक्षीय है।

अभाव, बुराइयाँ और निर्बलताएँ किसमें नहीं होतीं? कौन हर दृष्टिसे पूर्ण है? ये कमजोरियाँ मनुष्यमात्रमें सर्वत्र हैं। किसीमें शारीरिक, किसीमें नैतिक तो किसीमें मानसिक या बौद्धिक निर्बलताएँ हैं। आपने अपनी अच्छाइयों, उत्तमताओं और गुणोंको छोड़ अपने विषयमें तुच्छ तथा उसके मुकाबलेमें दूसरेके साधारण-से गुणोंको बढ़ा-चढ़ाकर देख लिया है।

दूसरेका धन आपको बढ़-चढ़कर दीखता है तो अपनी गरीबीमें अभाव-ही-अभाव नजर आता है। दूसरेके पैसोंमें भी आपको अशर्फियाँ दीखती हैं, तो अपने रुपयोंमें भी पाइयाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं।

दूसरेके साधारण स्वास्थ्यमें भी आपको पहलवान दीखता है। दूसरेके बच्चे आपको बल, पराक्रम और शक्तिसे भरे-पूरे नजर आते हैं तो अपने कुशाग्रबुद्धि बच्चे मन्दबुद्धि दीखते हैं। उनमें कोई बुद्धि, सौन्दर्य अथवा विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

दूसरेकी साधारण-सी पत्नीमें आप उच्चकोटिका सौन्दर्य, नवीनता, अपूर्व आकर्षण देखकर मुग्ध हो उठते हैं, तो अपनी शील-गुणसम्पन्न, सती-साध्वी धर्मपत्नीमें फूहड़पन, अशिक्षा और मूर्खता देखते हैं। उसके द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाये हुए भोजन, सफाई, शिष्टाचार, बोलचालमें आपको कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

अपना पेशा आपको सबसे बुरा, नीरस और श्रमसाध्य प्रतीत होता है; किंतु दूसरोंके कठोर पेशे भी बहुत अच्छे, आमदनीसे परिपूर्ण और आरामदायक लगते हैं। हम चाहते हैं कि दूसरों-जैसे हम भी सुख और सुविधाओंसे पूर्ण रहें। हम संगीतज्ञके मधुर संगीतपर विमुग्ध हो उठते हैं और स्वयं चाहते हैं वैसा ही गाया करें, जबकि उनके द्वारा उठाये हुए श्रम और बलिदानका हमें कोई ज्ञान नहीं होता।

संक्षेपमें यों कहें कि दूसरा व्यक्ति, उसका जीवन, परिवार, साधन, स्वास्थ्य, बाल-बच्चे आदि सभी हमें आकर्षक प्रतीत होते हैं। उसका जीवन हमें बाहरसे सर्वगुणविभूषित, सर्वांग-सुन्दर प्रतीत होता है जबकि हमें अपना सब कुछ अति साधारण, तुच्छ और बेकार-सा प्रतीत होता है। वास्तवमें ऐसा नहीं है। अपने विषयमें, अपने परिवारके प्रति आप कितना बड़ा अत्याचार कर रहे हैं—यह आप नहीं जानते।

हम दूसरोंके जीवनके बाह्य पहलूमात्रको ही देखते हैं। हमारा निर्णय एकपक्षीय होता है। हम केवल ऊपरी निगाहसे कुछ तत्त्वोंको देखकर दूसरोंके विषयमें बहुत ऊँची-ऊँची भ्रमात्मक कल्पनाएँ करने लगते हैं। हमारी आँखें दूसरोंकी खूबियोंमें मस्त हो जाती हैं। हमारी त्रुटि यह है कि हमारी वृत्ति बहिर्मुखी है। हम अपने जीवन और साधनोंको दूसरोंके मापदण्डोंसे नापते और दुःखी होते रहते हैं। अभाव और ईर्ष्याकी अग्नियोंमें निरन्तर दग्ध होते रहते हैं।

तुलनात्मक दृष्टिसे उत्पन्न होनेवाले दुःख तथा चिन्तासे मुक्त होनेका एक उपाय पुराने शास्त्रकारोंने इस प्रकार बतलाया है—

'प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः।'

अर्थात् 'ब्रह्माजीका स्वभाव सब गुणोंको एक ही स्थानमें एकत्र करनेके विरुद्ध है—वे कहीं कुछ रचते हैं तो कहीं कुछ।'

वास्तवमें हर दृष्टिसे पूर्ण संसारमें कोई भी नहीं है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य सभीमें एक सुन्दरता या गुण है तो कई अवगुण भी हैं। मोर कितना सुन्दर पक्षी है। उसके सुन्दर रंगोंको देखकर मन अनायास ही प्रसन्न हो उठता है, किंतु तनिक उसके पाँव देखिये कितने गंदे और कुरूप होते हैं। मुर्गेके सिरकी कलँगी कितनी रंगीन और शानदार प्रतीत होती है, पर कैसा घृणित है उसका भोजन। वह अभक्ष्य पदार्थ खाता है। बारहसिंगेके सींग कितने अच्छे मालूम होते हैं, पर वह कैसा दुर्बल होता है। सिंहका चर्म खूबसूरत, धारियाँ मुलायम देखनेयोग्य होती हैं, पर उसका खूँखारपन हिंसक दुष्प्रवृत्ति भयावह है। हाथीकी चाल शानदार है, पर उसका आलस्य निन्दनीय है। निष्कर्ष यह कि संसारके हर जानवरमें (और इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यमें भी) कोई-न-कोई अभाव है। एक अच्छाई है तो दो बुराइयाँ भी हैं। पूर्णरूपसे सुन्दर और उपयोगी कोई नहीं है। परंतु इन अभावोंके बावजूद अपने विशिष्ट गुणके कारण सब पशु-पक्षी प्रसन्न रहते हैं और अपने गुणप्रदर्शनसे दूसरोंके नैराश्यको दूर करते हैं। खेलते-कूदते, मधुर संगीतका उच्चारण करते और मस्त रहते हैं।

मानव-जगत्में भी प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी अभावसे पूर्ण है। किसीके पास स्वस्थ शरीर है तो सौन्दर्य नहीं है। सौन्दर्य है तो शक्ति नहीं है। शक्ति है तो चरित्र नहीं है। चरित्र है तो खाने-पीनेके लिये पैसा नहीं है। सामाजिक प्रतिष्ठा या उच्च पद नहीं है। कोई शरीरसे स्वस्थ है तो अनेक पारिवारिक अड़चनोंमें डूबा हुआ है। किसीको बच्चोंकी शिक्षा, विवाह आदिकी चिन्ता है तो किसीके बाल-बच्चे हैं ही नहीं। किसीको सौ-सौ बीमारियाँ लगी हुई हैं। कोई समाजमें निम्न वर्णमें पड़ा सवर्णोंसे ईर्ष्या कर रहा है। कोई नौकरीके लिये परेशान है तो किसीका व्यापार नहीं चल रहा है। किसीमें अच्छी स्थिति होते हुए भी बचत नहीं है, समृद्धि नहीं है। कोई मादक द्रव्योंके मादक संसारमें सुखके लिये भटक रहा है। जितने मनुष्य हैं, उतने ही उनके अभाव हैं। प्रत्येक व्यक्तिमें कहीं-न-कहीं अधूरापन है। अपूर्णता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, पारिवारिक या आध्यात्मिक सभी दृष्टियोंसे सर्वगुणसम्पन्न हो, चिन्तामुक्त हो, सर्वोत्तम स्थितिमें हो या हमेशा प्रतिष्ठित रहा हो।

जीवनका पथ समतल भूमि नहीं है। कहीं उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपाट भूमि है तो कहीं कंकड-पत्थर, काँटे बिखरे हुए हैं, कहीं पुष्पोंसे युक्त सुन्दर सुगन्धित हरे-भरे वृक्ष हैं तो कहीं काँटोंसे भरे बीहड़ जंगल भी हैं। कहीं कठिनाइयोंके दुर्वह पर्वत हैं तो कहीं सुख-सुविधा-प्रतिष्ठाके सुन्दर रमणीक दृश्य भी हैं।

अपने अभावोंको ही देखते रहना और अपनी दुर्दशापर रोना-कलपना, गिरी हुई स्थितिपर कुढ़ना, दोष देना अपनी उन्नतिमें बाधा उपस्थित करना है। अपनी दुर्बलता देखनेसे दुर्बलता और दोषोंकी ही वृद्धि होती है। अभाव, दु:ख, कमजोरी, गरीबीके कुविचारोंसे वैसी ही दु:खदायक विषम स्थिति उत्पन्न होती है। अपना सत्-चित्-आनन्दस्वरूप—आत्मरूप ही देखना न्याय है।

ईश्वरको धन्यवाद दीजिये कि आपके पास स्वास्थ्य है, शक्ति है, सामर्थ्य है, रूप और गुण हैं। निश्चय जानिये, आपकी योग्यताएँ बहुत हैं। केवल उनपर आलस्य, कुविचार और अज्ञानका गहरा पर्दा पड़ा हुआ है। आपको ऊँचा उठकर सद्विचार, सद्ग्रन्थावलोकन, शुभचिन्तन और दृढ़ संकल्पद्वारा अपनी गुप्त शक्तियोंको पहचानना है, विकसित करना है। आप अपने सद्गुणों, सत्प्रवृत्तियोंको देखिये और उसी दिशामें अपना विकास कीजिये।

अधूरापन, अभाव तथा अशान्ति दूर करनेके लिये आप अपनेसे नीचेवालोंकी स्थितिसे अपनी तुलना कीजिये। उनसे तुलना करनेपर आपको अपनी शक्तियों, सुविधाओं और अच्छाइयोंका ज्ञान हो सकता है। आपके भाग्यमें उच्चतम शक्तियाँ आयी हैं। इनके लिये परम पिता परमेश्वरको धन्यवाद देते हुए आगे बढ़ने, विकसित होनेके लिये निरन्तर संघर्ष कीजिये।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता॥

अर्थात् 'उन्नति चाहनेवाले मनुष्यको निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता—इन छः दोषोंका त्याग कर देना चाहिये।'

समर्पण भाव

(डॉ० श्री बी०के० शर्मा)

मनुष्य जन्मसे मृत्युपर्यन्त कर्मोंमें संलग्न रहता है, इसलिये उसमें कर्ताभावका होना स्वाभाविक ही है और इसी कारण उसे अहंकार भी हो जाता है कि मैंने ऐसा कर दिया, जो कि अन्यके द्वारा किया जाना सम्भव नहीं था। इसी कर्ताभावके द्वारा हम कर्म-बन्धनमें बँधकर कर्मफलोंकी प्राप्तिहेतु जन्म-जन्मान्तरतक भटकते रहते हैं। भगवान् गीतामें समर्पण भावके महत्त्वके विषयमें बताते हुए कहते हैं कि सब कर्मोंको मुझमें अर्पितकर दो और मेरे परायण होकर मुझमें चित्तको लगा दो—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥

(गीता १८।५७)

अपने मन, इन्द्रिय, शरीरको और उनके द्वारा किये जानेवाले कर्मोंको तथा संसारकी समस्त वस्तुओंको भगवान्‌की समझकर उन सबमें ममता, आसक्ति और कामनाका सर्वथा त्याग कर देना तथा मुझमें कुछ भी करनेका सामर्थ्य नहीं है, भगवान्‌की दी हुई शक्तिके द्वारा भगवान्‌के दिये हुए कार्यको उन्हींकी प्रसन्नताके लिये केवल निमित्तमात्र बनकर हम कर रहे हैं—जब ऐसा समर्पण भाव रखकर हम कार्य करते हैं तब न तो हम कर्मफलमें बँधते हैं, न अहंकारका प्रादुर्भाव होता है और न कर्तापनका भाव आता है, ऐसी स्थितिमें अपने सभी कार्य सुचारु रूपसे करते हुए हम बन्धनमुक्त रहते हैं। यही सब कर्मोंको मनसे भगवान्‌में अर्पण कर देना है। यही नित्य कर्मोंका संन्यास है।

जो कुछ भी होता है, सब भगवान्‌के इशारे और इच्छासे होता है। अतः हानि और लाभमें, सुख और दु:खमें, हर्ष और शोकमें भगवान्‌की इच्छा समझकर समस्त प्राणियोंमें, समस्त वस्तुओंमें और समस्त घटनाओंमें एक समान पूर्ण समर्पण भावसे संसार-यात्राको पूरा करनेका प्रयास करते रहना चाहिये। हमें हर पल सजग रहना चाहिये। अपने चित्तको सदा आत्म-विवेकमें स्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना चाहिये। इसी विवेकके द्वारा हमें अपना आत्मतत्त्व दृष्टिगत होने लगेगा। इस प्रकार शुभाशुभ कर्मोंका अवसान हो जानेपर एकमात्र आत्मतत्त्व ही शेष रह जाता है तथा बुद्धि पूर्ण निष्ठासे उसीमें रमण करती रहती है और चित्त भी सारी चंचलता त्यागकर उसी परमतत्त्वमें लीन रहता है। अतः जैसे जलका प्रवाह पूर्व दिशामें हो और हम पश्चिम दिशाकी ओर तैरकर जानेकी कोशिश करते हों, तब हमें कितनी मेहनत करनी पड़ेगी, कष्ट होगा और समय भी व्यर्थ होगा, लेकिन यदि हम जलके प्रवाहके साथ अपने-आपको छोड़ दें तब कितनी आसानीसे तैर सकेंगे। यह अनुभवकी बात है। इसी प्रकार ईश्वरकी इच्छाके अनुसार पूर्ण समर्पण भावसे, बिना किसी राग-द्वेषसे, समभावमें स्थित रहते हुए यदि इस संसार-यात्राको पूरा करेंगे, तब कितनी आसानीसे यह यात्रा पूरी हो सकेगी, इस विषयमें आप स्वयं विचार कर सकते हैं। भगवान् कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८।६१)

हे अर्जुन! शरीररूपी यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमात्मा अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण कराते हुए सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित हैं।

यन्त्रको चलानेवाला प्रेरक जैसे स्वयं भी उस यन्त्रके सम्पर्कमें रहता है (जैसे गाड़ीका ड्राइवर), उसी प्रकार ईश्वर भी सभी प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित हैं और उनके हृदयमें स्थित रहते हुए ही उनके कर्मानुसार उनको भ्रमण कराते रहते हैं। ईश्वरके किसी भी विधानमें जरा भी भूल नहीं हो सकती; क्योंकि वे सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ परमेश्वर हमारे समस्त कर्मोंको भलीभाँति जानते हैं। जैसे हमें कहाँकी यात्रा करनी है, इसका चुनाव करनेके लिये हम स्वतन्त्र हैं और उसीके मुताबिक टिकट लेकर जब गाड़ीमें चढ़ते हैं तब हमारी गाड़ीका ड्राइवर हमारे द्वारा ही लिये गये टिकटके अनुसार यात्रा करा देता है, उसमें ड्राइवरका कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार हम जैसे कर्म करते रहते हैं, जिसके लिये हमें स्वतन्त्रता मिली हुई है, उसीके अनुसार हमें सुख-दुःख, हानि-लाभ, हर्ष-शोक, जय-पराजय आदि मिलते हैं, उसमें ईश्वरका क्या दोष? हम ही अपने कर्मफलोंको प्राप्त करते रहते हैं।

मनुष्य अपनी आदत एवं स्वभावके अनुसार अधिकतर कार्य करता है, परंतु वह अपने स्वभावका सुधार करनेके लिये यदि वह चाहे तो पूर्णरूपसे स्वतन्त्र है। इसलिये हमें शास्त्रोंकी शरणमें जाना पड़ता है, ताकि हम अपने स्वभावका स्वयं निरीक्षण करके उसमें सुधार कर सकें और राग-द्वेष आदि विकारोंका त्याग करके शास्त्रविधिके अनुसार न्यायपूर्वक अपने स्वाभाविक कर्मोंको निष्कामभावसे करते हुए अपना जीवन-यापन करते हुए अपना उद्धार कर सकें। जैसे जब हम कोई भी उपकरण आदि खरीदकर घरपर लाते हैं, उसके साथ एक पुस्तिका भी मिलती है, जिसको पढ़कर हम उस उपकरणका प्रयोग करना शुरू करते हैं और कुछ समय बाद हमें उस उपकरणका उचित उपयोग करना आसानीसे आ जाता है और जब कभी हमें परेशानी होती है तब हम उस पुस्तिकामें दिये गये दिशा-निर्देश पुनः पढ़ लेते हैं। ठीक उसी प्रकार जो हमें यह मानव-शरीररूपी उपकरण भगवान्ने दिया है, उसीके साथ शास्त्र भी इस मानव-शरीरका उपयोग करनेके लिये उपलब्ध कराये हैं ताकि हम शास्त्रानुसार इस उपकरण का ठीकसे उपयोग कर सकें, लेकिन अधिकांशतः हम बिना शास्त्रोंके ज्ञानसे अथवा उनकी उपेक्षा करके इसका अपने मनमर्जीसे उपयोग करते रहते हैं, इसी कारण अधिकांशतः अशान्त रहते हैं। अभी भी समय है, इस मानवरूपी उपकरणका कार्यकाल पूरा होनेसे पहले हम इसका ठीकसे उपयोग करके अपना यह जन्म सफल कर सकते हैं, अतः हमें आजसे, अभीसे ही स्वाध्याय (अपना स्वयंका अध्ययन) और आत्मनिरीक्षण करना है ताकि हम स्वयं अपने दोषोंको देख सकें और शास्त्रानुसार अपने जीवनके बचे हुए भागको पूर्ण समर्पण भावसे उचित नित्य-कर्म पूरा करते हुए उस परमपिता परमेश्वर और अपने आत्मतत्त्वके साथ सम्बन्ध स्थापित करके हमेशाके लिये एक हो जायँ और इस आवागमनसे मुक्त हो जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी असली चाह—क्या, क्यों, कैसे ?

(डॉ० श्रीसुनीतकुमारजी कुलश्रेष्ठ)

परमात्माकी इस सृष्टिमें एक विचित्र आश्चर्य है कि सर्वत्र भिन्नता एवं विषमता पायी जाती है। भिन्न-भिन्न स्वभावके भिन्न-भिन्न जीव हैं, सबके रूप, रंग तथा स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। स्वभावके अनुसार सबकी चेष्टाएँ, क्रियाएँ तथा विचार भी अलग-अलग हैं। इतनी विषमता एवं भिन्नताके बावजूद भी सब जीवोंकी चाह, भूख केवल एक ही है। बाहरसे तो सबके उद्देश्य अलग-अलग दिखायी देते हैं, किंतु गहराईसे विचार करनेपर समस्त विश्वके समस्त जीवोंका लक्ष्य एक ही सिद्ध होता है और वह है आनन्दकी प्राप्ति। सभी जीवोंकी विभिन्न क्रियाओं यथा—सोना-जागना, उठना-बैठना, चलना-दौड़ना, खाना-पीना या उपवास करना, लिखना-पढ़ना, देखना-सुनना, सत्कर्म करनेका एक मात्र प्रयोजन है—आनन्दप्राप्ति और यह आनन्दकी हमारी चाहना बिना किसीके सिखाये, बताये या पढ़ाये स्वत: सहज स्वाभाविक है। किसीने हमें सिखाया नहीं कि आनन्द या सुख चाहनेकी चेष्टा करो और यह आनन्दकी तलाश अनादिकालसे अबतक जारी है तथा यह तलाश तबतक चलती रहेगी, जबतक हमें सच्चा आनन्द प्राप्त नहीं हो जाता।

आनन्द चाहना हमारा सहज स्वभाव है। इसका एक वैज्ञानिक रहस्य है। वह है—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। (तैत्ति० ३।६।१)

अर्थात् आनन्द ही ब्रह्म है, आनन्दसे ही सभी जीव उत्पन्न होते हैं, आनन्दसे ही जीवोंका पालन होता है और वे आनन्दमें ही लीन हो जाते हैं। आनन्दको ही ब्रह्म कहते हैं।

यह जीव अविनाशी, आनन्दस्वरूप ईश्वरका अंश है। अतएव अपने अंशीके स्वभावसे युक्त होनेके कारण ही हम सब जीव स्वभावसे एकमात्र आनन्द ही चाहते हैं। इतना ही नहीं विश्वका प्रत्येक जीव ईश्वरीय सम्पत्तियों (गुणों)-से भी बिना किसीके सिखाये-पढाये स्वत: प्रेम करता है। चूँकि आनन्दस्वरूप परमात्माके हम अंश हैं, अत: उस परमात्माके दिव्य गुण—सत्य, प्रेम, दया, करुणा, क्षमा, अहिंसा, अक्रोध, शान्ति, ईमानदारी, त्याग-उदारता, शालीनता, शिष्टता, मधुरता, स्वच्छता, सुन्दरता तथा न्याय आदि हमें सहज ही प्रिय लगते हैं और हम दूसरोंसे भी ऐसे ही गुणों तथा आचरणकी अपेक्षा रखते हैं। इसी कारण उपर्युक्त श्रेष्ठ गुणों तथा स्वभाववाले लोग ही हमें प्रिय लगते हैं। यह अलग बात है कि हम अपने अज्ञान, अभिमान तथा प्रमादवश और अपने भोगपरायण स्वभावके कारण इन श्रेष्ठ गुणोंको पूर्णरूपसे धारण न कर सकें हों तथा इनके विपरीत अनेक दुर्गुण, दुर्व्यसन, विषय-विकारोंने हमें घेर लिया हो। यद्यपि आज अधिकांशत: बेईमानी, रिश्वतखोरी, झूठ, छल-कपट, चोरी, हिंसा, अपहरण, आतंकवाद, स्वार्थपरायणता, व्यभिचार, कलह, द्वेष, ईर्ष्या, वर्ग-संघर्ष, अन्याय तथा विलासिता आदिका सर्वत्र बोलबाला है, किंतु यदि हम गहराईसे विचार करें तो मालूम पड़ेगा कि इन दुर्गुणों तथा दुर्व्यसनोंसे घिरे व्यक्ति भी अपने निजी जीवनमें सद्गुणों तथा सदाचरणको ही पसन्द करते हैं, उनके अन्दर भी कोई-न-कोई सद्गुण अवश्य होता है। बड़े-से-बड़े दुराचारी भी कुकृत्योंको अपने मनमें बुरा तथा निन्दनीय मानते हैं।

कहनेका अभिप्राय यही है कि प्रत्येक जीव मूलरूपसे ईश्वरीय सम्पत्तियों (गुणों)-से ही प्रेम करता है तथा उन्हें ही पसन्द भी करता है। उपर्युक्त दुर्गुणों, दुराचारोंको वह अपने मनमें बुरा एवं घृणित तथा निन्दनीय ही समझता है। चाहे अपने अज्ञान तथा स्वार्थवश उसने गलत रास्ता अपना लिया हो। हम सब जीव उसी पूर्णतम, शुद्ध, निर्विकारी, सद्गुणोंके भण्डार आनन्दस्वरूप परमात्माके अंश हैं। अत: हमें स्वाभाविक रूपसे सद्गुण एवं सदाचरण ही प्रिय लगते हैं।

कोई भी जीव एक क्षणको भी अकर्मा नहीं रह सकता। चूँकि हमारी हरेक चेष्टा तथा क्रियाका कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य होता है तथा हम एक पलको भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म किये बिना नहीं रह सकते तथा अविनाशी परमात्माके अंश होनेके कारण हम सभी जीव अविनाशी तथा अनादिकालसे हैं तथा सदा रहेंगे—हमारा विनाश कभी नहीं हो सकता, अस्तु यह सिद्ध हुआ कि आनन्द प्राप्त करनेकी हमारी यह कोशिश तबतक चलती रहनी चाहिये, जबतक हमें वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं हो जाता। यदि आप कहें कि धन, पुत्र, मित्र तथा यशकी प्राप्ति हमारा लक्ष्य है तो यह समझ लेना चाहिये कि धन, पुत्र, यश आदिकी प्राप्ति लक्ष्य नहीं है, अपितु धन, यश आदिके द्वारा भी आनन्द प्राप्तिका ही लक्ष्य है। कुछ लोग ज्ञान प्राप्त करना, सबपर शासन करना, स्वतन्त्रता प्राप्त करना, बन्धनोंसे मुक्त होना, पूर्णता प्राप्त करना लक्ष्य मान सकते हैं, तो यहाँ भी यही समझ लेना चाहिये कि ज्ञान, शासन, स्वतन्त्रता तथा बन्धनमुक्त होनेका लक्ष्य भी आनन्दप्राप्ति ही है।

अब यह विचार करना है कि आनन्दप्राप्तिकी हमारी यह कोशिश जब अनादिकालसे चल रही है, तो हमें आजतक वह आनन्द मिला क्यों नहीं?

वास्तवमें हमें आजतक आनन्द इसीलिये नहीं प्राप्त हुआ; क्योंकि हमने यह नहीं समझा कि हमारा उद्देश्य क्या है? हम चाहते क्या हैं? बिना सोचे-विचारे हम भागे चले जा रहे हैं। वह आनन्द क्या है? कहाँ है? कैसे मिलेगा? अब आइये, इसपर विचार करें। वेदके अनुसार **'यो वै भूमा तत्सुखम्'** अर्थात् आनन्द सदा अनन्त मात्राका होता है—नित्य होता है, अर्थात् एक बार परमानन्द प्राप्त करनेके पश्चात् दुःख नहीं होता है। ऐसा नित्य आनन्द कहाँ है? आनन्दप्राप्तिकी मुख्यतः दो धारणाएँ हैं—भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद। संक्षेपतः भौतिकवाद इस दृश्य जगत्को ही सत्य मानता है—शरीरकी इच्छाओंकी पूर्तिमें ही आनन्द तलाशता है। अभिलषित पदार्थों तथा प्राणियोंकी प्राप्तिमें ही सुख मानता है, किंतु हम सभीका प्रत्यक्ष अनुभव है कि अनेक पदार्थोंका उपयोग करनेके पश्चात् भी हमें तृप्ति तथा शान्ति नहीं मिली। अनेक भोग-सामग्रियों तथा सुख-सुविधाओंका संग्रह तथा भोग करनेके बावजूद भी हमें आजतक तृप्ति नहीं हुई, बल्कि सुख-सुविधाओंके भोगनेसे हमारी चाह (भूख) पहलेसे भी अधिक तीव्र होती गयी है। एक इच्छाकी पूर्तिके पश्चात् दूसरी, तीसरी, इसी प्रकार अन्य इच्छाएँ बलवती होती जाती हैं, जीवनभर हम भोगोंके संग्रहमें ही प्रयत्न करते रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि आनन्दप्राप्तिकी हमारी प्यास इन भौतिक वस्तुओं तथा प्राणियोंसे कदापि नहीं पूरी होगी। यह वैज्ञानिक सत्य है कि आगमें घी डालनेसे आग बुझेगी नहीं, बल्कि और तीव्रतर हो जायगी। ***'बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ बिषय भोग बहु घी ते'।*** खाजको खुजलानेसे वर्तमानमें थोड़ी सुखानुभूति तो होती है, किंतु पुनः इसका कितना भयंकर स्वरूप हो जाता है—यह हमारे अनुभवमें है। अतः यह निर्णीत सिद्धान्त है कि भौतिकवादसे अन्तरंग सुख-शान्तिकी समस्या कदापि हल नहीं हो सकती।

वेद बताते हैं **'रसो वै सः। रसः ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'** अर्थात् ईश्वर ही आनन्द है और उसे प्राप्त करके ही जीव आनन्दमय हो सकता है। **'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'** अर्थात् उसको (ईश्वरको) जानकर ही जीव दुःखसे उत्तीर्ण हो सकता है। इसके अतिरिक्त कल्याणका अन्य कोई मार्ग नहीं है।

अतः हमें अनुभवी महापुरुषों तथा शास्त्रोंकी यह बात सदाके लिये अपने हृदयमें धारण कर लेनी चाहिये कि आनन्दकी प्राप्ति परमात्माकी प्राप्तिसे ही होगी। परमात्माकी प्राप्तिके पश्चात् ही हम सदाके लिये तृप्त तथा विश्रान्त होंगे। आनन्दस्वरूप परमात्माके अंश होनेके कारण हमारी तृप्ति परमात्माकी प्राप्तिसे ही होगी। प्रत्येक अंशका स्वभाव अपने अंशीकी ओर जानेमें होता है। पत्थरका टुकड़ा ऊपर उछालनेपर अपने अंशी पृथ्वीपर ही आता है, दीपककी लौ अपने अंशी सूर्यकी ओर ही ऊर्ध्वगामी होती है, नदियोंकी गति अपने अंशी समुद्रकी ओर ही होती है। इसी प्रकार हम जीवात्मा—अंशोंकी गति तथा नियति भी अपने अंशी—परमात्माकी तरफ होनेसे ही हमें सदाके लिये असली तृप्ति मिलेगी। अतः परमात्माकी प्राप्तिको हमें अपना लक्ष्य बनाना होगा तथा परमात्मप्राप्तिके पथपर चलना होगा। महापुरुषोंको—शास्त्रवचनोंको बड़े श्रद्धा-भावसे अपना पथ-प्रदर्शक मानते हुए उनकी शरण ग्रहण करनी होगी—उनके बताये साधना-पथपर चलते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि-निषेधोंका पालन करते हुए ईश्वर-शरणागति धारण करनी होगी। पूर्ण विश्वासके साथ ज्यों-ज्यों हम बताये गये साधना-पथपर चलेंगे, त्यों-त्यों शरणागति दृढ़ होती जायगी और हमारे अन्दरके दुर्गुण, विषय-वासनाएँ, कमजोरियाँ भी दूर होती चली जायँगी। हमें ईश्वरको सदा-सर्वत्र अपने साथ अनुभव करना होगा। सदा परमात्माका स्मरण करनेका अभ्यास हो जानेपर हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता जायगा। हमें अपने पापोंके लिये शुद्ध हृदयसे क्षमा-याचना करनी होगी तथा प्रायश्चित्त करना होगा। इस साधनसे संसारसे मन उपराम होता जायगा। अन्तःकरणकी पूर्ण शुद्धि होनेपर ईश्वरका विशेष अनुग्रह होगा। भगवान् हमें स्वीकार कर लेंगे तथा आनन्दप्राप्तिका हमारा अनादिकालीन लक्ष्य पूर्ण हो जायगा और हमारा मानव-जीवन सफल होगा। यदि अभिमान तथा भोगासक्तिवश हम सांसारिक विषय-वासनाओंमें इस अमूल्य मानव-जीवनको व्यर्थ बिता देंगे तो अनेक दोष, दुर्गुण हमें घेर लेंगे तथा हम अतृप्त होकर शरीर छोड़ेंगे तो अनेक कीट-पतंगों, पशु-पक्षियोंकी योनियोंमें हमें भटकना पड़ेगा। मानव-जीवनका दुर्लभ संयोग हमारे हाथसे निकल जायगा। इसीलिये श्रीरामचरितमानस हमें सावधान करता है—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

हमें पछताना पड़ेगा, लेकिन फिर पछतानेसे कुछ हासिल नहीं होगा। अतः समझदार एवं सौभाग्यशाली बनकर मानव-जीवनका मूल्य समझकर अभीसे ईश्वर-शरणागतिके रास्तेपर चल पड़ें। ईश्वर और महापुरुष हमारी सहायता अवश्य करेंगे। वे तो करुणासागर हैं ही, हमारी प्रतिक्षण प्रतीक्षा कर रहे हैं। उठो, जागो और लक्ष्यको प्राप्त करो—इस भगवदाज्ञाका पालन हमें प्राणपणसे करना होगा, तभी हम शाश्वत आनन्दको प्राप्त कर सकेंगे।

ईश्वरकी कृपा ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि

(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त, एम० ए०, पी-एच०डी०)

चार चीजें व्यक्तिको बड़े पुण्यसे प्राप्त होती हैं—सौन्दर्य, स्वास्थ्य, सुपद और सम्पत्ति। लेकिन ईश्वरकी कृपाके बिना ये चारों निरर्थक हो जाती हैं। राक्षसराज रावणको ये चारों उपलब्धियाँ अपनी तपस्याके पुण्यप्रतापसे प्राप्त थीं, लेकिन ईश्वरकी कृपा प्राप्त न होनेसे वह विवेक या सद्बुद्धिसे विहीन हुआ, अयशका भागी बना। विवेक-प्राप्तिके लिये सत्संग आवश्यक है और सत्संग ईश्वरकी कृपासे ही प्राप्य है। यथोल्लेख है कि—

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
(रा०च०मा० १।३।७-८)

राजा रावणको तन, मन, धन, जीवन-सम्बन्धी चार सौन्दर्य या चारों ऐश्वर्य प्राप्त हैं, लेकिन वह दुःखी है, चिन्ताग्रस्त है, कामनाओंके पीछे भाग रहा है, इच्छाओंकी अनगिनत मारसे पागल हो रहा है। शक्ति सम्पन्न होनेपर भी श्रीरामकी पत्नी देवी सीताका चोरीसे अपहरण करनेको वह उद्यत है। आश्चर्य है कि संसारके सभी चारों ऐश्वर्योंको पानेवाला, सम्पूर्ण सुखोपलब्धिवाला राजा आज अनुचित रूपसे, अनीतिसे अनुचित वस्तुको पानेके लिये आतुरतासे उद्विग्न है, चोरी करनेको तत्पर है—

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा॥
(रा०च०मा० ३।२८।९-१०)

राजा रावण कुत्ते-जैसा बन रहा है। उसकी चौरवृत्तिने उसके चार ऐश्वर्य—तेज, तन, बुद्धि एवं बल अविलम्ब नष्ट कर दिये। फिर उसके अन्दर शेष क्या रहा?

प्रभुकी कृपासे रहित होनेपर व्यक्तिके सभी ऐश्वर्य उसकी लालसाओंकी वृद्धि एवं उसके अभिमान भावसे नष्ट-विनष्ट होकर व्यर्थ हो जाते हैं। प्रभु-कृपाकी विवेचना श्रीरामचरितमानसमें बड़े सुन्दर ढंगसे अभिव्यक्त है। ईश्वरकी कृपाके बिना आनन्द नहीं मिलता, मुक्ति नहीं मिलती, शाश्वत शान्तिकी उपलब्धि नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि—

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

(रा०च०मा० ७। १२२क)

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा॥

(रा०च०मा० ७। १२२। ५)

भगवत्कृपा-प्राप्तिमें अभिमान एवं काम सबसे बड़े बाधक हैं। मोहका मूल और बहुत प्रकारसे शूलप्रद अभिमान है तथा शोक और दुःखोंका धाम 'काम' है। तुलसीदासजी कहते हैं कि—

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥

(रा०च०मा० ५। २३)

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥

(रा०च०मा० ५। ४६)

'प्रभुकी कृपा' से बहुशूलप्रद अभिमान और शोकके धाम 'काम' विनाशको प्राप्त होते हैं। परमेश्वरकी कृपा ही जीवनोत्कर्ष, जीवन्मुक्ति और जीवनानन्दके लिये अत्यावश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। इसीलिये माता सीताके द्वारा दिये गये शक्ति, शील, अजरता, अमरता, ऋद्धि-सिद्धिरूप गुणोंके आशिषों एवं अपरमित वरदानोंको प्राप्तकर भी हनुमान्‌जी तबतक प्रसन्न एवं सन्तुष्ट नहीं हुए, जबतक कि माता सीताने उन्हें प्रभुकी कृपाप्राप्तिका वरदान नहीं दिया। माँ सीताद्वारा प्रभुकी कृपाका वरदान प्राप्त करनेपर ही हनुमान्‌जीको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। यथोल्लेख है कि—

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

(रा०च०मा० ५। १७। २—४)

प्रश्न उठता है कि परमेश्वरकी कृपा कैसे प्राप्त हो?

प्रभुकी कृपा-प्राप्तिके लिये सुकृत और प्रभुभक्ति ही प्रधान साधन है। राजा जनक और राजा दशरथने अपने सुकृतोंसे ही तो सीता और रामकी कृपा एवं उनका सान्निध्य प्राप्त किया था। यथा—

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही॥

(रा०च०मा० १। ३१०। १)

इसी प्रकार 'प्रभु भक्तिकी साधनासे साधकके उरमें', उसे पावन करते हुए विराजमान हो जाते हैं। यथोल्लेख है कि—

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

(रा०च०मा० ३। १६)

मोह, काम, लोभ, अभिमान, अविद्या, शोक, दुःख उसके पास ही नहीं फटक पाते, जिसके अन्तःस्थलमें रामरूपभक्ति निवास करती है। रामके रहनेपर काम आदिको प्राणीके हृदयमें स्थान ही कहाँ? यथोल्लेख है कि—

राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥

(रा०च०मा० ७। १२०। २—६, ९)

मानवजीवन बड़ा अमूल्य है। यह भगवान्‌का जाग्रत् रूप है। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने स्पष्ट लिखा है कि—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(रा०च०मा० ७। ११७। २)

अस्तु, जीवनकी धन्यताके लिये जीवको या प्राणिमात्रको एवं मनुष्यमात्रको स्वयंको ईश्वरसे जोड़ना होगा। उस परमपिता परमेश्वरका अंश होनेसे व्यक्तिको सर्वप्रथम उस परमात्माके प्रति कृतज्ञता प्रकटकर उसका सत्-चित् और आनन्द रूप अपनेमें उतारना होगा, तभी मनुष्यको मायोत्पन्न द्वन्द्वों, दुःखों एवं मोह तथा अहंकारादिसे मुक्ति मिलेगी। मनुष्यकी सुखशान्तिका मूल आधार उस परमपिताकी कृपा ही है, जिसकी प्राप्तिके लिये सदा सुकृत करते हुए व्यक्तिको उसके स्मरण एवं भक्तिमें अनुरत रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतभूमिकी महिमा और इसका नामकरण

(पं० श्रीशंकरलालजी तिवारी, एम०ए० (हिन्दी, संस्कृत), बी०एड०, साहित्य-शिक्षारत्न)

भारतभूमिकी महिमा अनन्त और अवर्णनीय है। आज भी देवगण भारतभूमिमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं। वे सोचते हैं कि हमलोग कब संचित किये हुए महान्, अक्षय, निर्मल एवं शुभ पुण्यके फलस्वरूप भारतवर्षकी भूमिपर जन्म लेंगे और कब वहाँ महान् पुण्य करके परमपदको प्राप्त होंगे। नारदपुराणमें श्रीसनकजी नारदजीसे कहते हैं नारदजी! जो भारतभूमिमें जन्म लेकर भगवान् विष्णुकी आराधनामें लग जाता है, उसके समान पुण्यात्मा तीनों लोकोंमें नहीं है। विष्णुपुराणमें कहा गया है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

देवगण भारतभूमिकी प्रशंसाके गीत गाकर कहते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य—बड़भागी हैं।

देवता कहते हैं जो इस कर्मभूमिमें जन्म लेकर शुभकर्म करके फलकी इच्छा न रखकर उन्हें विष्णु भगवान्के अर्पण करनेसे निर्मल (पाप-पुण्यरहित) होकर उन अनन्तमें ही लीन हो जाते हैं, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा अधिक धन्य हैं। पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गस्थ और देवत्वको प्राप्त वे पुरुष पुनः मृत्युलोकमें आकर इस कर्मभूमि भारतभूमिको प्राप्त करते हैं।

विष्णुपुराणमें बताया गया है कि भारतवर्ष स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त करनेवालोंकी कर्मभूमि है। इसी देशमें मनुष्य शुभ कर्मोंद्वारा स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं और यहाँसे पापकर्मोंमें प्रवृत्त होनेपर वे नरक अथवा तिर्यक् योनिमें पड़ते हैं। यहींसे कर्मानुसार स्वर्ग, मोक्ष, अन्तरिक्ष अथवा पाताल आदि लोकोंको प्राप्त किया जा सकता है, पृथिवीमें यहाँके सिवा और कहीं भी मनुष्यके लिये कर्मकी विधि नहीं है। इस भारतवर्षमें ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि नामक चार युग हैं, अन्य कहीं नहीं।

विष्णुपुराणमें पराशरजी मैत्रेयजीसे कहते हैं—

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः॥

(विष्णुपु० २। ३। २२)

हे महामुने! इस जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष श्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य देश भोगभूमियाँ हैं। यहाँ मनुष्य जो भी शुभ या अशुभ कर्म करेगा, उसीका फल उसे अन्यत्र (स्वर्गादिलोकमें) भोगना पड़ेगा।

भागवतमें कहा गया है—देवता भी भारतवर्षमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी इस प्रकार महिमा गाते हैं—अहा, जिन जीवोंने भारतवर्षमें भगवान्की सेवाके योग्य मनुष्यजन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है? अथवा इनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं? इस परम सौभाग्यके लिये निरन्तर हम भी तरसते रहते हैं—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥

(श्रीमद्भा० ५। १९। २१)

इस देशका नाम भारतवर्ष कैसे पड़ा, इस सम्बन्धमें पुराणोंमें स्पष्ट उल्लेख है कि स्वायम्भुवके ज्येष्ठ पुत्र थे प्रियव्रत। इन्होंने ज्योतिर्मय रथद्वारा सात बार वसुधातलकी परिक्रमा की, इनसे जो परिखाएँ बनीं, वे सात समुद्र हुए और उनके अन्तर्वर्ती क्षेत्र सात महाद्वीप हुए। ये द्वीप जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर नामसे प्रसिद्ध हुए। महाराज प्रियव्रतके आग्नीध्र आदि सात पुत्र इन द्वीपोंके अधिपति हुए। इनमेंसे महाराज आग्नीध्र जम्बूद्वीपके अधिपति हुए। जम्बूद्वीपाधिपति महाराज आग्नीध्रके नौ पुत्र हुए। महाराज आग्नीध्रने जम्बूद्वीपको इन्हीं नौ पुत्रोंमें नौ बराबर भागोंमें बाँटकर दे दिया। नौ पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमाल। इन पुत्रोंके नामपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंका नाम पड़ा है। खण्डको ही वर्ष भी कहते हैं। आठ वर्षोंके नाम यथा किम्पुरुषवर्ष आदि पड़े, किंतु ज्येष्ठ पुत्रका नाम था नाभि। अतः उस वर्ष (खण्ड)-का नाम पड़ा अजनाभवर्ष। राजा नाभिके यहाँ ऋषभदेवजीने अवतार ग्रहण किया। इनके सौ पुत्र हुए, जिनमें गुणोंमें श्रेष्ठ तथा ज्येष्ठ थे भरत। उनकी अत्यन्त लोकप्रियता तथा सद्‌गुणशालिताके कारण अजनाभवर्षका नाम भारतवर्ष हो गया—**'अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति'** (श्रीमद्भा० ५।७।३), **'येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति'** (श्रीमद्भा० ५।४।९)

इस प्रकार भारतवर्षका प्राचीन नामक अजनाभवर्ष था, जो भगवान् ऋषभदेवके ज्येष्ठ पुत्र भरतजीके नामपर भारतवर्ष हो गया। **'ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते। भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम्॥'** (विष्णुपु० २।१।३२) **'येषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः। विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम्॥'** (श्रीमद्भा० ११।२।१७)

ऋषभदेवजीके पुत्र भरतजीके नामपर ही इस वर्ष (देश)-का नाम भारतवर्ष पड़ा है। वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, अग्निपुराण, मार्कण्डेयपुराण, नरसिंहपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, कूर्मपुराण आदिमें सर्वत्र यही बात कही गयी है। दुष्यन्तपुत्र भरतके नामपर इस देशका नामकरण भारत हुआ, ऐसा अर्वाचीन पाश्चात्यशैलीसे प्रभावित जनोंका मानना है। भरतजीके नामसे क्षत्रियवंशी एक शाखा भरतवंशी ख्यात हुई है, इसी कारण अर्जुन आदिको भी भारत कहा गया है।

यह भारतभूमि अनन्त कालसे सुसंस्कृत, सुजला सुफला, सस्यसम्पन्न रही है। यहाँ ज्ञान और अध्यात्मका प्रकाश चिरकालसे प्रकाशित रहा है। मनुजीने कहा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

इस देशमें उत्पन्न होनेवाले अग्रजन्मा ब्राह्मणोंसे पृथिवीके सभी मानवोंने चरित्रकी शिक्षा प्राप्त की। भारत चारित्र्य और अध्यात्मदर्शनमें विश्वका गुरु और मार्गदर्शक रहा है।

इसी भारतभूमिमें भगवान् राम और भगवान् कृष्णके अवतार हुए हैं। मर्यादापुरुषोत्तम रामकी जन्मभूमि अयोध्या और आशुतोष-शिवस्थल रामेश्वरम्, लीलापुरुषोत्तम और गीताके उपदेशक श्रीकृष्णकी जन्मस्थली मथुरा, लीलाभूमि, वृन्दावन और कर्मभूमि द्वारका भी यहींपर है। भगवान् शिवका निवासस्थल पर्वतराज कैलाश भी इसी भूमिमें है। उद्भव, स्थिति और संहारकारिणी भगवती सीता और विविध रूपोंमें पूज्या परम सती भवानीका जन्मस्थान भी इसी भारतमें है। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि-राजर्षि भी इसी देशमें हुए हैं। अनेक तपस्वी, आराधक, भगवद्भक्त, ज्ञानी, त्यागी, सन्त, महात्मा, सत्यवादी, परोपकारी, वीर, न्यायप्रिय राजागण, सती, साध्वी, तपस्विनी, पतिव्रता नारीरत्न भी इसी भारतमें हुए हैं। भगवती गायत्री, सावित्री और सरस्वतीका प्रादुर्भाव भी इसी भारतमें हुआ। गंगा, यमुना, सरस्वती, सिन्धु, नर्मदा, कृष्णा, कावेरी-जैसी पुण्य नदियाँ इस भारत-भूमिको पवित्र कर रही हैं। गंगोत्री, यमुनोत्री, बदरीनाथ, केदारनाथ, काशी, प्रयाग, पुष्कर, जगन्नाथपुरी-जैसे परम पवित्र तीर्थस्थल इस भारतके गौरव हैं।

यह हमारी मातृभूमि, पितृभूमि, धर्मभूमि, पुण्यभूमि, देवभूमि और सांस्कृतिक भूमि है। ऐसी पवित्र भूमिमें मनुष्ययोनिमें जन्म पाना अत्यन्त सौभाग्यकी बात है और इस सौभाग्यको प्राप्तकर हमें अपने जीवनको सफल बना लेना चाहिये। चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्ययोनि सर्वश्रेष्ठ और परम दुर्लभ है। विवेकचूडामणिमें आद्य शंकराचार्यजीने कहा है—

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

मनुष्यता, मुमुक्षुत्व (मोक्षार्थी होना) और महापुरुषोंका आश्रय प्राप्त होना—ये तीनों दुर्लभ हैं और ये भगवान्‌की कृपासे ही प्राप्त हो सकते हैं।

अतः ऐसी पुण्यभूमि भारतवर्षमें मनुष्यजन्म पाकर जो लोग विषयोंमें मन लगाते हैं, वे मूर्ख मानो अमृतके बदलेमें विषको अंगीकार करते हैं। अतः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह परलोक सुधारनेका यत्न करे—

'तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्नं कुर्याद् विचक्षणः।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी—

दो वृद्धाएँ

(श्रीरमणलालजी सोनी)

गाँवके आखिरी कोनेमें दो वृद्धाएँ रहती थीं, दोनोंके घरकी दीवाल एक थी। घरके सामने छोटे-से टीलेपर साधु-संतोंका एक आश्रम था। दोनों बुढ़िया आश्रममें काम करने जातीं। संतोंकी कृपासे उन्हें कभी अन्न-वस्त्रका अभाव न हुआ।

एक साथ रहतीं, एक साथ काम करतीं, फिर भी दोनोंके स्वभावमें जमीन-आसमानका अन्तर था। एक उदार थी, देनेयोग्य तो उसके पास नहींके बराबर ही था, परंतु अपने-जैसे गरीबोंको समय-समयपर कुछ-न-कुछ जरूर दिया करती थी। दूसरी कंजूस थी, देनेयोग्य उसके पास बहुत कुछ एकत्रित हुआ था, परंतु कभी किसीको कुछ भी नहीं देती थी।

एक सन्ध्याको गगनमें बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी और आँधी आरम्भ हुई। वृक्ष और मनुष्य, पशु और पक्षी, जीव और निर्जीव सभी काँपने लगे। मूसलाधार जल-वृष्टि आरम्भ हुई। दोनों बुढ़िया अपने-अपने घरोंमें घुस चुकी थीं। अचानक कंजूस बुढ़ियाके दरवाजेपर टिकोरे सुनायी दिये। बुढ़िया ब्यालू करने बैठी थी। शायद कोई तूफानमें फँसा हुआ मुसाफिर होगा, जो ब्यालूमें हिस्सा चाहेगा—ऐसा सोचकर बुढ़ियाने जल्दी-जल्दी जितना खा सकती थी, खा लिया। जो बचा उसको ढक दिया और तब निवृत्त होकर दरवाजा खोला। खोलते-खोलते बोली—रात-दिन न जाने कहाँसे ऐसी आफत चली आती है, पलभर भी आरामतक नहीं करने देती।

परंतु ज्यों ही उसने दरवाजा खोला—एक सौम्य शान्त साधुकी मूर्ति उसे दिखायी पड़ी। बुढ़िया स्तब्ध हो गयी। साधुने आँधीसे बचनेके लिये सिरपर एक मोटी बोरी डाल रखी थी। भीगी बोरीसे पानीकी बूँदें टपक रही थीं। रोटीका एक टुकड़ा मिलेगा मैया? साधुने मौन तोड़ा। बुढ़िया जानती थी कि ऐसे साधु-संत जरा-सी सेवाके बदले बहुत कुछ दे जाते हैं, इसलिये उसने तुरंत ही भोजनकी थाली हाजिर की। बदलेमें बहुत मिलनेकी आशा हो, तब थोड़ा-सा दे देनेमें बुढ़िया भला क्यों हिचकिचाने लगी?

साधु भोजन करने बैठे। वृद्धा साधुके मुँहकी ओर देखती रही। साधुके चेहरेपर एक अद्वितीय तेज झलक रहा था। आश्रमके सभी साधुओंको वह पहचानती थी, पर इनको कभी न देखा था। इनके चेहरेपर ऐसी सुकोमल नम्रता और पवित्रता थी कि प्रथम दृष्टिमें ही इनके अन्तस्तलका आर-पार देखा जा सकता था। पर वृद्धाको यह देखनेका अवकाश कहाँ? साधु कौन है? उससे अधिक साधु क्या लाया है? यह जाननेके लिये वह आतुर थी! 'कितना भयंकर तूफान है'—साधु बोले। 'धनवानोंकी तो चिन्ता नहीं, पर बेचारे निरीह निर्धनोंका क्या होगा? अनाथोंका कौन? यदि संसारमें साधु-संतोंकी कृपादृष्टि न होती तो मुझ-जैसी गरीबकी क्या दशा होती भगवन्!' वृद्धाने कहा। 'इसीलिये तो मैया! मैं तेरे दरवाजेपर आया हूँ। जो भूखेको अन्न और वस्त्रहीनको वस्त्र देता है, वह धन्य है, स्वर्गकी सभी सीढ़ियाँ उसके पास हैं' साधुने कहा—उनके मुँहपर दीप्ति दिखी।

'क्या कहते हैं उसके भाग्यको?' साधु उदारतासे कुछ दे जायगा, इस आशामें हर्षित हो बुढ़िया बोली।

'माँ! तेरे भाग्यकी बलिहारी है, तुझसे भी अधिक गरीब और दुःखी लोगोंके लिये मदद माँगने मैं यहाँ आया हूँ। दो अपरिचित महिलाएँ आश्रममें आश्रय-हेतु आयी हैं, बिजली गिरनेसे दोनोंके घर गिरकर ढेर हो गये हैं। घरका सब कुछ स्वाहा हो गया है। बेचारी निष्किंचन और निराधार बुढ़िया ····आश्रमके सभी खण्ड ऐसे ही निराश्रितोंसे भर गये हैं। फिर भी हमने उन्हें आश्रय दिया है, परंतु पहनने-ओढ़नेका हमारे पास कुछ भी तो नहीं है ....तुम यदि आजकी रातभरके लिये कुछ ओढ़ने-बिछानेको दे दो तो सुबह जब कुछ लोग चले जायँगे, हम तुम्हें लौटा देंगे। तुम्हारे तो सुरक्षित घर है, इसलिये कुछ-न-कुछ जरूर दे सकोगी।' साधुने मदद माँगी, बुढ़िया निराश हो गयी, उसकी आवाज मंद हो गयी—'महाराज! कुछ दूर पधारते तो धनवानोंकी कहाँ कमी थी, मुझ गरीबका ही घर आपको मिला, मेरी हालत ही दान लेने-जैसी है, इसका भी तो ख्याल किया होता।'

'एक कम्बल भी नहीं दे सकोगी माई? वे बेचारी ठंडसे काँप रही हैं।' बुढ़िया चौंकी, अभी थोड़े ही दिनों पहले उसे एक सुन्दर गरम कम्बल मिला था, वह कमरेमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी और सोचने लगी। 'नया कम्बल तो कैसे दे दिया जाय।' उसने पुराना कम्बल उठाया और उसे भी तह लगाकर रख दिया। पुराने कम्बलके भी उसे अनेक गुण याद आ रहे थे—'पूरे सात सालसे इसका उपयोग करती हूँ, फिर भी अभी वैसा ही है, वे भटकती बुढ़िया न जाने कहाँसे आयी होंगी, नींदमें लातें मारकर मेरे कम्बलको न जाने कैसा कर डालेंगी?' भटकनेवालोंको क्या भान रहेगा? जिंदगीमें कभी कम्बल देखा हो तब न ····वे तो बोरियोंपर सोनेवाली····।'

ज्यों-ज्यों वह सोचती गयी, त्यों-त्यों उसे अपना अनुमान सच्चा प्रतीत होने लगा। अचानक उसे याद आया कि ऐसे लोगोंमें बहुत-से रोगी होते हैं, उनके लिये कम्बल कैसे दिया जाय? दो साल पहले कुछ रोगी आये थे, उन्होंने जिन वस्तुओंका उपयोग किया था, उन्हें जला डालना पड़ा था। कहीं मेरे कम्बलकी भी वही दशा हो तो! इतना सुन्दर कम्बल कैसे जला डाला जाय, अभी तो यह दस साल और काम दे सकेगा। फिर एक पतली रजाई उठायी, लेकिन तुरंत ही न.... न.... न यह तो मेरे बापके घरकी है, कहकर रख दी। एक पुरानी जीर्ण चद्दरको जो दीवालपर लटक रही थी, लेकर समेटने लगी। परंतु फिर सोचा ऐरे-गैरे दिनोंमें यही चद्दर कम्बलका काम देती है, इसे कैसे दे दूँ? दु:खित हृदयसे एक दूसरी जीर्ण चादर लेकर वह बाहर आयी। 'आज यह ऐसी दीखती है, पर जब खरीदी उस समय बहुत ही सुन्दर थी, आठ आनेसे तो कम नहीं लगे होंगे।'

'इससे अधिक आप कुछ भी नहीं दे सकतीं?' साधुने चादरको कंधेपर डालते हुए पूछा। 'हाय-हाय मेरे घरमें देनेयोग्य क्या है? अब क्या दूँ? सारी रात मुझे भी तो अब ठंडमें ठिठुर-ठिठुरकर काटनी पड़ेगी।'

'बेचारी औरतें ठंडीमें ठिठुरती हैं। तुम्हारी तरह ही वृद्धा हैं। सब कुछ गवाँ बैठी हैं। कुछ तो दे दो।'

किंतु बुढ़ियाके पत्थर-दिलपर कोई प्रभाव न पड़ा। साधु वहाँसे निकलकर पासकी दूसरी बुढ़ियाके घर गया। यहाँ भी उसने वही बात कही। निराधार वृद्धाओंकी हालत सुनकर वृद्धाका हृदय भर आया। ठीक ही है 'घायलकी गति घायल जाने।' वह बोली—'भगवान्‌की दयासे मुझे अभी ही यह नया कम्बल मिला है, लीजिये, ले जाइये' और उसने कम्बल दे दिया। तुरंत ही बोली—'यह पुराना भी लेते जाइये, काम आयेगा, यह रजाई भी और यह चादर भी यहाँ किस काम आयेगी? एक रात तो मैं किसी तरह भी काट लूँगी, बेचारी वे औरतें ठंडसे ठिठुर रही होंगी। मेरे कपड़े भी उनके काम आयँगे, इन्हें भी ले जाइये।'

बुढ़ियाने जितना दिया, उतना साधुने चुपचाप ले लिया। उसके मुखपर उज्ज्वल स्मित लहरा रहा था।

'लीजिये, यह भी ले जाइये और यह भी, रातमें बेचारा और कोई भूला-भटका आ जायगा तो काम आयेगा। मैं तो बोरीपर ही रात काट लूँगी।' बुढ़ियाने करीब-करीब घरका सब कुछ दे दिया।

साधुके जानेके बाद आँधी अधीर हो उठी, नभमें भयंकर गर्जना होने लगी, प्रलयंकारी पवन चलने लगा, वृक्ष धड़ाधड़ गिरने लगे। अचानक एक भयंकर कोड़ेकी तरह बिजली चमकी और उन दोनों वृद्धाओंके मकानोंपर गिरकर जमीनमें उतर गयी। वृद्धाएँ बच गयीं, परंतु दोनोंके घर और घरका सब कुछ स्वाहा हो गया।

दु:खसे बिलखती दोनों वृद्धाएँ तूफानमें ठोकरें खाने लगीं। 'इधर चलिये वहाँ मेरे आश्रममें'—उसी साधुकी सुमधुर वाणी सुन पड़ी। दोनोंका हाथ पकड़कर साधु उनको आश्रममें ले आया। दीवालके पास छप्परके नीचे उदार वृद्धाकी दी हुई सभी वस्तुएँ ज्यों-की-त्यों रखी हुई थीं। 'यह तेरा है और तुझे वापस मिलता है, माई!' साधुने कहा! 'तूने जो दान दिया वह खुदको ही दिया है।' परंतु उन दोनों वृद्धाओंका क्या हुआ? उदार वृद्धाने चिन्तित हो पूछा।

'वे दोनों तुम ही हो, तुमने उदार बनकर निराश्रितोंके लिये जो कुछ बचाया, वही परमात्माने तुम्हारे लिये बचाया है।'—साधु बोले।

फिर दूसरी वृद्धाकी ओर देखकर उन्होंने जीर्ण चादर देते हुए कहा—'तेरा सब कुछ नष्ट हो गया, सिर्फ इतना ही बचा है; क्योंकि इतना ही तूने बचाया था। आज ऐसी दीखती है, जब ली थी तब बहुत सुन्दर थी, आठ आनेसे कम नहीं लगा होगा।' कंजूस बुढ़िया कुछ न बोली। सिर्फ मुँह नीचा किये रही।

साधु सिर्फ धीरेसे हँसे, बिजलीकी एक चमकने रात्रिके अन्धकारमें साधुकी सारी कायाको तेजोमय बना डाला। **[अनु०—श्रीजयशंकर पंड्या]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवमन्दिर जानेके लौकिक एवं पारलौकिक लाभ

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः।
नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरम्॥

इस लोकमें मनुष्यका वही जन्म सफल जन्म है, वे ही कर्म वास्तविक कर्म हैं, वही आयु-आयु है, वही मन-मन है और वही वाणी यथार्थ वाणी है, जिसके द्वारा सर्वसमर्थ विश्वात्मा श्रीहरिका सेवन किया जाता है। श्रीहरिकी सेवाके लिये देवालयगमन और देवदर्शन करना मुख्य साधन है।

देवालय हमारी वैदिक संस्कृतिके आस्थाके केन्द्र हैं। वैदिक संस्कृति विश्वकी सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक, व्यावहारिक और समतामूलक संस्कृति है, जो धर्म और कर्मप्रधान है। भारतीय संस्कृतिमें जितने सदाचार या शौचाचार वर्णित हैं, धार्मिक होनेसे उन सभीका परलोकसे साक्षात् सम्बन्ध तो है ही, लौकिक लाभोंका भी परिदर्शन उनमें होता है। देवमन्दिरमें जाना और देवदर्शन करना एक श्रेष्ठ सदाचार है। इसमें जहाँ देवपूजन लक्ष्य होता है, वहाँ शारीरिक तथा मानसिक लाभ भी इससे प्राप्त होता है। यह एक जीवन्त संस्कार है, जिससे देहशुद्धि तथा अन्त:करणकी शुद्धता बढ़ती है।

आस्थाकी ज्योति सघन अन्धेरेमें भी प्रकाश फैला देती है। प्राचीन कालमें देवालय जाना मानवजीवनके दैनिकचर्याका अभिन्न अंग हुआ करता था। ग्रामीण इलाकोंमें तथा शहरोंमें कुछ विशिष्ट लोग अभी भी नित्य इस तरहकी दिनचर्या जीते हैं और उससे लाभान्वित होते हैं—इस लोक और परलोक दोनोंको सुधारते हैं। ईशभक्ति भगवान्का आभार माननेकी एक प्रक्रिया है। मानवजीवन तथा हवा, पानी और सूर्यप्रकाश, वह भी नि:शुल्क और प्रचुर मात्रामें हमें ईश्वरसे प्राप्त होता रहा है। भगवत्पूजन परमपिता परमेश्वरका धन्यवाद है, अपनी श्रद्धा-भक्तिका उनके चरणोंमें निवेदन है।

देवालय जानेके क्रममें भगवद्दर्शन, पूजा-स्तुति, आरती, चन्दन, तिलक, चरणामृत-प्रसादग्रहण, घण्टाध्वनि-शंखनाद तथा परिक्रमा आदि क्रियाओंका समावेश होता है, जिससे आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक प्रक्रियाओंका लाभ होता है और जीवको पावन मार्गदर्शन प्राप्त होता है। प्रत्येक धार्मिक प्रक्रिया विज्ञानसम्मत है। इन क्रियाओंकी कुछ विशेषताएँ यहाँ दी जा रही हैं—

नैसर्गिक लाभ

अमृतवेलामें उठनेसे चन्द्रमाकी अमृत किरणें प्राप्त होती हैं। देवालय जानेके लिये हम सूर्योदयसे पूर्व ही जागते हैं तथा सूर्योदयसे पूर्व ही स्नान करते हैं, इससे रूप, तेज, आरोग्य, मेधा, आयु आदिकी वृद्धि होती है। देवमन्दिर प्राय: ग्राम तथा शहरसे बाहर होते थे। आज भी कई देवस्थान शहर तथा ग्रामोंसे बाहर हैं। कहीं-कहीं देवस्थानका अपना एक बगीचा भी होता है। देवपूजाके लिये हम वहाँपर फूल चुनते हैं। हमें शुद्ध वायु प्राप्त होती है, जिससे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यमें वृद्धि होकर शक्तिका लाभ मिलता है और तनमें स्फूर्ति तथा मनमें प्रफुल्लता बनी रहती है। कहा गया है—एक हवा, सौ दवा। निर्मल तथा नीरव वातावरण मानवमनमें सृजनात्मक भाव पैदा करता है, प्रकृति तथा संस्कृतिसे जोड़ता है और श्रेष्ठ वृत्तियोंको जन्म देता है।

वैज्ञानिक लाभ

धार्मिक स्थलोंका वैज्ञानिक महत्त्व है। भारतीय संस्कृति ऐसी है कि यदि किसी भी रीति-रिवाज अथवा परम्पराको धर्मसे जोड़ दिया जाय तो लोग उसे सहज स्वीकार कर लेते हैं। यही सोचकर हमारे ऋषि-मुनियोंने मानवकल्याणहेतु जीवनके विविध क्रिया-कलापोंको धर्मसे जोड़ दिया है। धार्मिक स्थलोंका निर्माण भी इसी परम्पराकी एक कड़ी है। धार्मिक स्थलोंके लिये प्राकृतिक सौंदर्य, पर्वत, सागर, नदी अथवा सरोवर, वन आदि मनोरम स्थलोंका चुनाव होता रहा है तथा यह मनोरम दृश्य मानवमनपर अद्भुत प्रभाव छोड़ता है। सांसारिक झंझटोंसे दूर वहाँ मानसिक शान्तिकी विशेष अनुभूति होती है। मानवके मनमें इस प्रकारके वातावरणका गहरा प्रभाव पड़ता है। साथ ही धार्मिक स्थलोंतक आने-जानेमें जो शारीरिक-श्रम व्यक्तिको करना पड़ता है, उसका भी स्वास्थ्यपर उत्तम प्रभाव पड़ता है। यहाँके मनोरम और रमणीय वातावरणमें मानसिक तनाव दूर होता है। ऐसे वातावरणमें जीवन विकासोन्मुख होता है। दरअसल हमारे पूर्वजोंने स्वास्थ्यके लिये उपयोगी अनेक वैज्ञानिक तथ्योंको धार्मिक रूप दे दिया है। धार्मिक स्थलोंपर सत्कर्म होते हैं, कल्याणकी सदा प्रवृत्ति होती है। वहाँका वातावरण एक विशेष ऊर्जासे सम्पन्न रहता है, जो मनको प्रसन्न करता है। भावका रोगसे सीधा सम्बन्ध है, सकारात्मक भाव रोगकी प्रतिरोध-क्षमता बढ़ाते हैं।

पूजाके लाभ

पूजा-आराधनाके धार्मिक लाभोंका प्रत्यक्ष प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखायी ही देता है, वैज्ञानिक तरीकेसे यह किस प्रकार लाभदायी है, इसके सम्बन्धमें कुछ विवरण प्रस्तुत है—पूजा एक रासायनिक क्रिया है। इससे मन्दिरके भीतरी वातावरणकी पी०एच०वैल्यू (तरल पदार्थको मापनेकी ईकाई) कम हो जाती है। इससे व्यक्तिकी पी०एच०वेल्यूपर असर पड़ता है। यह रासायनिक प्रक्रिया है, जो शारीरिक रसायनशास्त्रको बदल देती है। यह क्रिया बीमारियोंको ठीक करनेके लिये प्रभाव डालती है। दवाओंसे भी यह क्रिया करवायी जाती है, मन्दिरमें यह स्वत: ही होता है। मन्दिरमें शिखर होते हैं, शिखरके भीतरी सतहसे टकराकर ऊर्जा-तरंगें तथा ध्वनि-तरंगें व्यक्तिके ऊपर पड़ती हैं। ये परावर्तित तरंगें मानवशरीरकी प्राकृतिक आवृत्ति बनाये रखनेमें भी सहायक होती हैं। व्यक्तिका शरीर एक तरहसे धीरे-धीरे मन्दिरके भीतरी वातावरणसे सामंजस्य कर लेता है और इस तरह व्यक्ति नवीन ऊर्जा एवं स्फूर्तिका अनुभव करता है और उसे विशेष आत्मबल प्राप्त होता है।

आरती लेनेके लाभ

पूजाके अन्तमें आरती की जाती है। पूजनमें अज्ञानतावश यदि कोई कमी रह जाय तो आरतीसे उसकी पूर्ति होती है। स्कन्दपुराणमें वर्णन है—**मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यत्कृतं पूजनं हरेः। सर्वं सम्पूर्णतामेति कृते नीराजने शिवे॥** अर्थात् मन्त्रहीन और क्रियाहीन होनेपर भी नीराजन (आरती) कर लेनेसे पूजनमें पूर्णता आ जाती है। आरतीकी महिमाका वर्णन विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें निम्न प्रकार आया है—**धूपं चारात्रिकं पश्येत् कराभ्यां च प्रवन्दते। कुलकोटिं समुद्धृत्य याति विष्णोः परं पदम्॥** जो प्राणी धूप-आरतीको देखता है और दोनों हाथोंसे आरती लेता है, वह अपनी करोड़ पीढ़ियोंका उद्धार कर लेता है और भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। साधारणत: पाँच बत्तियोंसे आरती की जाती है, इसे पंचप्रदीप कहा जाता है, कपूरसे भी आरती होती है।

घण्टा बजाते हुए आरती करनी चाहिये। आरती करते समय सर्वप्रथम भगवान्की प्रतिमाके चरणोंमें उसे चार बार घुमायें तथा दो बार नाभिदेशमें, एक बार मुखमण्डलपर और सात बार समस्त अंगोंपर घुमायें। आरती इष्ट देवताकी प्रसन्नताके लिये की जाती है।

जैसे दीपककी लौ नित्य ऊपरको जाती है, इसी प्रकार दीपदान—आरती करनेवाले भक्तको भी ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है। भगवान्की ज्योति—आरती जिस भक्तके गात्रको स्पर्श करती है, उसे सहस्रों यज्ञान्त अवभृथ स्नानोंका फल मिलता है। भावनावाद सिद्धान्तके अनुसार भक्तजन ज्योतिकी निरन्तर ऊँची उठती हुई लौको देखकर यह भावना दृढ़ करता है कि जैसे यह ज्योतिकी शिखा चारों ओर बराबर रिक्तस्थान होते हुए भी इधर-उधर न जाकर केवल ऊपरको ही जाती है, इसी प्रकार मुझ नरको भी अपने उद्गमकेन्द्र नारायण प्रभुकी शरणमें ही जाना चाहिये। अग्निके उत्पादक मूल स्रोत सूर्यभगवान् ऊपरसे द्युलोकमें ही विराजमान हैं, अत: यह अग्नि सूर्यका अंश होनेके कारण अपने अंशी सूर्यकी ओर ही सदैव अभिमुख होती है। इसके अतिरिक्त देवप्रतिमाके सान्निध्यसे तथा बीज-मन्त्रके अभिमन्त्रणसे प्रवाहित विद्युत्ज्योतिका हाथोंद्वारा ग्रहण करके ज्ञानेन्द्रियोंके केन्द्रस्थान अपने मस्तिष्कमें आधान करना एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी है, जिससे भक्तोंके ज्ञानतन्तुओंमें एक विलक्षण अदृष्ट स्फुरणा उत्पन्न होती है।

परिक्रमाके लाभ

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे॥ अर्थात् अभीके और जन्म-जन्मान्तरके समस्त संचित पाप भगवान्की परिक्रमा करते समय पद-पदपर चलते हुए नष्ट हो जाते हैं। हिन्दूधर्ममें ईश्वरकी परिक्रमाकी सुदीर्घ परम्परा है। शंकर भगवान्की आधी परिक्रमा की जाती है। व्रज आदि तीर्थोंकी परिक्रमा ८४ कोस तथा पाँच कोसकी होती है। इस परिक्रमाको नंगे पैर करनेसे एक्यूप्रेशरके लाभ मिलते हैं, शारीरिक क्षमतामें भी वृद्धि होती है।

चरणस्पर्श तथा आशीर्वादके लाभ

मनु आदि महर्षियोंने इसके चार लाभ प्रकट किये हैं। यथा—आयुवृद्धि, विद्यावृद्धि, यशवृद्धि और बलवृद्धि। ये चार पदार्थ कैसे मिलेंगे? इसका वैज्ञानिकहेतु हमारे प्रणाम करनेकी विधिमें सुरक्षित है। प्रत्येक मानवपिण्डमें वैचित्रवादके अनुसार विभिन्न प्रकारकी शक्तियोंका समावेश रहता है। यह विद्युच्छक्ति ऋणात्मक और धनात्मक अर्थात् निगेटिव और पॉजिटिव नामसे दो प्रकारकी है। मानवपिण्डके बायें अंगोंमें निगेटिवका आधिक्य और दायें अंगोंमें पॉजिटिवका बाहुल्य पाया जाता है। मानवशरीरमें बीचोंबीच दो धाराएँ विद्यमान हैं। जब हम किन्हीं गुरुजनोंको प्रणाम करने चलते हैं तो स्वभावत: सामनेवाले व्यक्तिके दायें और बायें अंग हमारे दायें और बायेंके ठीक विपरीत होंगे। ऐसी स्थितिमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियोंने हाथ घुमाकर दायें हाथसे दायें पाँवका और बायें हाथसे बायें पाँवका स्पर्श करनेका विधान किया है, जिससे प्रणामकर्ता और प्रणम्य—दोनों पिण्डोंकी निगेटिव और पॉजिटिव दोनों धाराएँ सामान्य रूपसे सम्मिलित हो सकें। जैसे विद्युत्-उत्पादक यन्त्रमें संचित विद्युत् अपने सम्पर्कमें आनेवाले सुस्पष्ट दूसरे यन्त्रमें प्रवाहित हो उठता है अथवा पावर हाउससे स्विच मिला देनेपर बत्ती जल उठती है, पंखा चलने लगता है, ठीक उसी प्रकार प्रणम्य गुरुजनमें जो भी विशिष्ट गुण होंगे, चरणस्पर्शके कारण प्रणाम करनेवालेके मस्तकपर दाहिना हाथ रखकर आशीर्वाद देनेसे वे गुण एक विद्युत्प्रवाहके रूपमें संचालित हो उठेंगे।

तिलकके लाभ

पूजनके कर्मोंमें तिलकको विशेष महत्त्व दिया गया है। वैष्णवसम्प्रदायका मानना है कि तिलक भगवान् विष्णुका चरणचिह्न है। तिलक भक्ति, श्रद्धा तथा श्रीवृद्धिका प्रतीक है। तिलक चंचल मनको संयत करनेमें सहायक है। आध्यात्मिक चिकित्सामें भी तिलकका बहुत महत्त्व है। चन्दन, केसर, हल्दी आदिके तिलक सिर्फ मनकी शान्तिके लिये ही नहीं, बल्कि शरीरको रोगोंसे बचानेमें भी सहायक होते हैं। इनसे हमें विशेष शीतलताका अनुभव होता है। चन्दन लगानेसे मस्तिष्क तथा नेत्रोंकी शक्ति बढ़ती है। प्रात: माथेपर गुणकारी चन्दनका तिलक लगानेसे न केवल दिनभरमें ठंडक तथा शान्तिका अनुभव होता है, बल्कि मोतियाबिन्द रोगमें तो चन्दनका टीका विशेष रूपसे प्रभावकारी है। शरीरके खासतौरसे नाभिपर चन्दनका लेप ब्रोंकाइटिस, दमा, मानसिक तनाव, नर्वस सिस्टम आदि जैसे रोगोंपर अपना विशेष प्रभाव दिखाता है। मांगलिक उत्सव, विवाह, पूजन आदिमें तिलक लगाया जाता है। तिलक लगानेवाला अपनी मंगल भावनाओंको प्रवाहित करता है। यौगिक दृष्टिसे ललाटमें जहाँ तिलक लगाया जाता है, वह स्थान भ्रूमध्यमें द्विदलकमलरूप आज्ञाचक्रका होता है, जो तिलकसे स्पर्श होनेसे अदृष्ट शक्ति ग्रहणकर तेजोमय हो जाता है। देवपूजन देवस्वरूप होकर ही किया जाता है। भगवान् सदा तिलकसे सुशोभित रहते हैं, अत: पूजकको भी तिलक अवश्य लगाना चाहिये। भगवान् शिवके पूजनमें भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाया जाता है।

घण्टा, शंखनाद तथा नगारेके लाभ

'आगमनार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम्। घण्टानादं प्रकुर्वीत पश्चात् घण्टां प्रपूजयेत्॥' भगवान्की पूजामें घण्टानादका विशेष महत्त्व है। आरती, भोग आदि भगवान्के सामने बिना घण्टा बजाये अपूर्ण रहते हैं। अत: भगवान्की पूजासे पूर्व शंख, घण्टा और दीपक-पूजाका विशेष महत्त्व है। मन्दिरमें शंखनाद भी होता है। घण्टा एवं शंखनादकी ध्वनिसे फेफड़ोंकी शुद्धि तथा वक्ष:स्थलकी विशालता सम्पन्न होती है। कीटाणुओंका नाश होता है और फेफड़े मजबूत होते हैं। शंख उद्‌बोधनवाद्य भी कहलाता है। इसीलिये महाभारतयुद्धसे पूर्व भगवान्ने तथा पाण्डवोंने शंखघोष किया था।

चरणामृत एवं प्रसादग्रहणके लाभ

जैसे भगवान्के चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके जल तीर्थ—चरणामृत बन जाता है, वैसे ही भगवान्को निवेदित किया गया पदार्थ नैवेद्य—प्रसाद बन जाता है और उस चरणामृत तथा प्रसादको ग्रहण करनेसे उपासक पवित्र हो जाता है। भगवत्प्रतिमा एवं शालग्रामके अभिषेकके जल अर्थात् चरणामृत और सामान्य जलके अन्तरको इन चर्मचक्षुओंसे नहीं पहचाना जा सकता। इस अन्तरको तो दिव्य दृष्टि एवं सूक्ष्म बुद्धिसे ही देखा जा सकता है। भगवान्के चरणामृतको एक क्षणभरको जो कोई अपने मस्तकपर धारण करता है, उसे तत्काल सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है और वह भगवान्का प्रिय हो जाता है।

मन्दिरमें प्राप्त होनेवाले चरणामृत, पंचामृत, तुलसी आदि सभी पदार्थ न केवल आध्यात्मिक दृष्टिसे, अपितु लौकिक दृष्टिसे भी बड़े ही गुणकारी एवं लाभप्रद हैं। चरणामृतके बारेमें कहा भी है—**अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्। विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥** यह चरणामृत अकालमृत्युको दूर करता है। सम्पूर्ण व्याधियोंका नाशक है। शालग्रामशिलाके स्नान किये जलका पान करनेसे तो पुनर्जन्म ही नहीं होता।

पाप-व्याधियोंको दूर करनेके लिये भगवान् विष्णुके चरणोंका अमृतरूप जल सर्वोत्तम औषधि है। इसमें तुलसीदलका सम्मिश्रण रहता है। जैस विषघ्न-औषधिके सेवनसे शरीरका विष नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार चरणामृतका पान समस्त पातकोंका नाश करता है, अकालमृत्यु दूर करता है, सब रोगोंको नष्ट करता है और सब पापोंका भी क्षय कर देता है। तुलसीकी गन्धसे सुवासित वायु जहाँतक फैलती है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँतक दिशा और विदिशाओंको पवित्र करती है और सभी प्राणियोंका प्रीणन करती है। नित्य भगवान्‌का चरणामृत ग्रहण करना चाहिये और भगवत्प्रसाद लेना चाहिये। तुलसीके स्पर्शमात्रसे मनुष्योंकी व्याधि नष्ट हो जाती है।

प्रभुका प्रसाद एक अनमोल निधि है। प्रसादको पूर्ण श्रद्धासहित दोनों हाथोंसे ग्रहण करना चाहिये। प्रसादमें प्रभुका आशीर्वाद, आनन्द एवं अनुग्रह व्याप्त रहता है। अत: प्रसादका एक कण भी धरतीपर नहीं गिरने दे। प्रसादको जूठे हाथोंसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। पूजनके अतिरिक्त भी भोजन आदि जो ग्रहण करे, उसे प्रभुको निवेदित करके ही ग्रहण करना चाहिये। यह वैदिक अनुशासन है।

अर्घ्यदानके लाभ

इस पृथ्वीमण्डलपर रहनेवाले जीवोंका सूर्यके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्यदेवताकी कृपासे आँखोंमें ज्योति आती है, बुद्धिमें प्रकाश होता है। बिना सूर्यकी शक्तिके आँखें कुछ कर ही नहीं सकतीं। अत: अपने अन्त:करण और शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना बहुत ही आवश्यक है। इससे भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं और उनका अनुग्रह प्राप्त होता है।

सूर्यको जल देना नेत्रतेजवर्धक

प्रात:कालकी वेलामें सूर्यके प्रतिबिम्बको झीलों तथा नदियोंमें देखना पश्चिम देशोंमें भी लाभप्रद माना गया है। वहाँके वैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसा करनेसे नेत्रोंको मोतियाबिन्द आदि अनेक रोगोंसे बचाया जा सकता है। भारतीय ग्रन्थोंमें इसके लिये सूर्यको जल देनेका विधान अनादिकालसे चला आ रहा है। सूर्योदयके समय लोटेको जलसे भरकर उसमें रक्तचन्दन एवं पुष्प छोड़कर सूर्यकी ओर मुख करके खड़े हो जायँ। लोटेकी स्थिति छातीके बीचमें रहनी चाहिये। अब धीरे-धीरे जलकी धारा छोड़नी प्रारम्भ करे। लोटेके उभरे किनारेपर दृष्टिपात करनेसे आप सूर्यके प्रतिबिम्बको बिन्दुरूपमें देखेंगे। उस बिन्दुरूप प्रतिबिम्बमें ध्यानपूर्वक देखनेसे आपको भगवान् सूर्यका सप्तवर्ण-वलय देखनेको मिलेगा। इसका दर्शन बड़ा ही पुण्यप्रद और लाभदायक है। सूर्यकी रश्मियाँ जलसे छनकर शरीरपर पड़ती हैं, जो शरीरके विकारको दूर करती हैं। सूर्यको अर्घ्य देनेवाला रोगी तथा दरिद्र नहीं होता, वह उत्तम ज्योतिसे सम्पन्न रहता है।

[श्रीमती शान्तीदेवी विश्वनाथ टेकड़ेवाल फाउन्डेशन]

ब्रह्मनिष्ठ वीतराग ऋषि श्रीआनन्दसरस्वतीजी महाराजका उपदेशामृत

- मिथ्या अभिमान ही सब दु:खोंका मूल है।
- मृत्युको मारनेवाला केवल आत्मज्ञान है।
- किसी भी प्रकारसे सत्‌का संग होना सत्संग है, चाहे वह संतोंके उपदेशोंसे हो अथवा परमात्माके गुणोंके चिन्तनसे।
- जिसमें सत्‌की तरफ जानेका उपदेश हो, वह सत्संग है।
- सत्-पुरुषोंका संग निष्फल नहीं जाता। आरम्भमें सत्संगमें व्यावहारिक हानि होनेका आभास होता है, परंतु परिणाममें सत्संग महान् लाभदायक है।
- चाहे कितना भी विद्वान् हो, सत्संगविमुख व्यक्ति सद्‌गतिको प्राप्त नहीं होता।
- सत्संगरहित ऐश्वर्य तुच्छ एवं दु:खरूप है।
- सत्संगसे आत्मपदकी प्राप्ति होती है।
- मृत्युका निवारण करनेका एकमात्र उपाय सत्संग ही है।
- जिसने सत्संगरूपी गंगामें स्नान किया है, समझो कि उसने समस्त शुभ कर्मोंको सम्पादित कर लिया।
- सत्संग संसाररूपी प्रपंचकी क्षणभंगुरताको प्रकट करनेवाला तथा मोहरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला है।

[प्रे०—श्रीजगदीशचन्द्रजी पालीवाल]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान एक साधना है

(श्रीसर्वज्ञशेखरजी गुप्ता, एम०ए०)

दान व्यावहारिक जीवनमें एक ऐसी साधना-पद्धति है, जिसके माध्यमसे हम अपने अन्तःकरणमें चारित्रिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गुण तथा विशेषताओंका समावेश कर सकते हैं। दूसरोंको दान देकर जिस आत्मसन्तोष, आन्तरिक सुख तथा हर्षकी अनुभूति होती है, वह सारे तनाव दूर कर देती है। यह आत्मसन्तुष्टि तथा प्रसन्नता किसी भी अन्य साधनासे इतने सहज भावसे प्राप्त नहीं होती। इस साधनासे सच्चाई तथा ईमानदारी-जैसे चारित्रिक गुणोंका विकास होता है, क्योंकि दान उसी धन या वस्तुका ही किया जा सकता है, जो सत्यता तथा ईमानदारीसे कमायी गयी हो या प्राप्त की गयी हो। शास्त्रोंमें दानके छः अंग बताये गये हैं—

दाता प्रतिग्रहीता च शुद्धिर्देयं च धर्मयुक्।
देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड् विदुः॥

अर्थात् दाता, ग्रहण करनेवाला, द्रव्यशुद्धि, धर्मयुक्त देय (उचित ढंगसे हासिल किया हुआ) धन, उचित काल (पुण्यपर्व, योग या संस्कारका समय) और उचित देश (तीर्थस्थान आदि)।

दान-साधनासे मनुष्यमें त्यागकी भावनाका विकास होता है। महाभारतके अनुसार दानी वही है, जो अपने सबसे अधिक मूल्यवान् एवं प्रिय पदार्थका दान करता है एवं दान करनेके पश्चात् किसी प्रकारका पश्चात्ताप नहीं करता।

तिरस्कार, देनेमें विलम्ब (सोच-विचार करना), मुँह फेरना, निष्ठुर वचन और देनेके बाद पश्चात्ताप करना—ये पाँच दानके दूषण हैं।

आनन्दाश्रु, रोमांच, लेनेवालेके प्रति आदर, प्रिय वचन तथा सुपात्रको दान—ये पाँच दानके भूषण हैं—

आनन्दाश्रूणि रोमाञ्चो बहुमानः प्रियं वचः।
तथानुमोदता पात्रे दानभूषणपञ्चकम्॥

दान-साधनाका सामाजिक पक्ष भी अत्यन्त प्रभावशाली है। इससे सभी लोग अपने प्रिय एवं अनुकूल हो जाते हैं, समाजमें मित्रताकी भावना उत्पन्न होती है, विरोधी भी मित्र बन जाते हैं और बुराइयाँ दूर हो जाती हैं—

दानेन भूतानि वशी भवन्ति
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-
र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

ऐसे दानसाधक मिलना अत्यन्त मुश्किल है, जबकि कलियुगमें दानकी महती आवश्यकता है। पौराणिक मान्यताओंके अनुसार चारों युगोंके धार्मिक कृत्य प्रमुख रूपसे अलग-अलग कहे गये हैं—

सत्ययुग—तप, त्रेतायुग—ज्ञान, द्वापरयुग—यज्ञ एवं कलियुग—दान।

इस समय कलियुग चल रहा है। अतः दानका अत्यन्त महत्त्व है। इस युगमें दान लेनेवालोंकी संख्या अधिक तथा देनेवालोंकी बहुत कम है। महर्षि व्यासजीके अनुसार—सौ में एक शूर मिल सकता है। सहस्रों में एक विद्वान् मिल जाता है। सौ-हजारों में एक कुशल वक्ता मिल सकता है, परंतु इतनों में एक दानदाता ढूँढ़ना बहुत मुश्किल होता है; क्योंकि एक दातामें जो गुण, विशेषताएँ होनी चाहिये, वह एक व्यक्तिमें सामान्यतः नहीं मिलतीं। अथर्ववेदमें कहा गया है कि सैंकड़ों हाथोंसे कमाओ और हजारों हाथोंसे बाँटो। जो व्यक्ति सम्पन्न होते हुए भी अपनी सम्पत्तिका भोग बिना दानके करता है, वह निन्दनीय है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि दो प्रकारके लोगोंको गलेमें पत्थर बाँधकर जलमें डुबो देना चाहिये, एक वह जो धनवान् होते हुए भी दान नहीं करता तथा दूसरा वह जो दरिद्र है और तप नहीं करता। अतः यथासम्भव 'और यथाशक्ति देश, काल एवं पात्रका विचार करते हुए अपने न्यायोपार्जित द्रव्यमेंसे कुछ अंश अवश्य दान करना चाहिये। ऐसा दान एक साधनाके रूपमें परिवर्तित होकर लक्ष्यकी ओर उन्मुख बना देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते'

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम०एस-सी०, पी-एच०डी०)

भारतीय सांस्कृतिक वाङ्मयमें अन्नकी बड़ी महिमा बतलायी गयी है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका कथन है कि सम्पूर्ण प्राणी अन्नसे उत्पन्न हुए हैं और अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे होती है—'**अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।**' (गीता ३। १४) अन्नकी महत्ताके प्रतिपादनमें श्रीमत्स्यमहापुराणमें उल्लिखित है कि अन्न ब्रह्मस्वरूप है, क्योंकि अन्नमें प्राणियोंके प्राण प्रतिष्ठित रहते हैं और अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, अतः अन्न स्वयं भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मीका स्वरूप है—

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते॥
अन्नमेव ततो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः॥

(मत्स्यपुराण ८३। ४२-४३)

पराशरस्मृतिके अनुसार सत्ययुगमें प्राण अस्थिगत, त्रेतामें मांसगत, द्वापरमें रुधिरगत, किंतु कलियुगमें तो प्राण अन्नादिमें ही स्थित रहते हैं, अन्न न मिलनेपर प्राण नष्ट हो जाता है—

कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां माँससंस्थिताः।
द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः॥

(१। ३०)

औपनिषदिक साहित्यमें भी अन्नको ब्रह्मका स्वरूप बतलाया गया है—'**अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्।**' (तैत्तिरीय० ३। २)। दूसरी तरफ कहा गया है कि अन्नकी कभी निन्दा न करें '**अन्नं न निन्द्यात्।**' (तैत्तिरीय० ३। ७), '**अन्नं न परिचक्षीत।**' (तैत्तिरीय० ३। ८)—मन्त्रसे अन्नकी अवहेलनाका निषेध है तथा '**अन्नं बहु कुर्वीत।**' (तैत्तिरीय० ३। ९)—मन्त्रसे कृषिद्वारा अन्न बढ़ानेकी आज्ञा प्रदान की गयी है। तैत्तिरीयोपनिषद्में अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन और वाणी—इन सबको ब्रह्मकी प्राप्तिका द्वार बतलाया गया है।

अध्यात्मरामायणमें चन्द्रमाका कथन है कि जन्मसे पूर्व प्राणीकी आत्मा वनस्पतियों तथा अन्नमें प्रविष्ट रहती है, जिसके सत्त्वरूपी तेजसे जीवके शरीरकी गर्भमें रचना होती है। (मत्स्यपुराण १२६। ३८)-में कहा गया है कि मनुष्य सूर्यकी किरणोंद्वारा पोषित, जलद्वारा परिवर्धित एवं सिंचित, ओषधि तथा अन्नोंसे अपनी भूख शान्त करता है और अन्नरूपी अमृतसे ही जीवन धारण करता है। अन्नकी महत्ताके विषयमें मत्स्यपुराण (९३। १११)-में यहाँतक कहा गया है कि अन्नदानरहित यज्ञ दुर्भिक्ष प्रदान करनेवाला हो जाता है और अन्नहीन राष्ट्र शीघ्र नष्ट हो जाता है।

शिवपुराण रुद्रसंहिता अध्याय १४ में उल्लिखित है कि महादेवजीके ऊपर चावल चढ़ानेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, शिवसमर्पित तिलकी एक लाख आहुति महापातकका नाश करनेवाली, जौसे की गयी शिवपूजा स्वर्गीय सुख तथा मूँगसे की गयी पूजा सुख और प्रियंगु (कंगनी)-से पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति होती है। शिवपुराण कोटिरुद्रसंहिता अध्याय १५ में तो भगवान् श्रीविष्णुने शिवके सहस्रनामोंमें एकनाम '**अन्नमयः**' अर्थात् अन्नरूप बतलाया है। इसी प्रकार श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्र (११८)-में पितामह भीष्मने '**अन्नमन्नादेव च**' कहकर भगवान्‌को स्वयं अन्नरूप तथा समस्त अन्नोंका उपभोक्ता बतलाया है।

वैदिक साहित्यमें अन्नके विषयमें विशद वर्णन प्राप्त होता है, ऋग्वेदमें '**यव**' के रूपमें जौका, यजुर्वेदमें 'व्रीहि' के रूपमें धानका, '**गोधूम**' के नामसे गेहूँका और '**श्यामाक**' से सावाँ एवं '**प्रियंगु**' (टागुन)-का स्पष्ट उल्लेख है। विभिन्न पुरातात्त्विक खुदाइयों तथा वनस्पतिशास्त्रियोंके वैज्ञानिक विश्लेषणोंसे भी यह प्रमाणित है कि अधिकांश अन्न या फसलें मूलरूपमें भारतमें उत्पन्न हुई हैं तथा विश्वमें यहींसे सर्वप्रथम इनका प्रयोग प्रारम्भ हुआ। विन्ध्य तथा गंगाघाटीकी खुदाइयोंमें ईसासे दस हजार वर्ष पूर्वका चावल महादहा-प्रतापगढ़ (उ०प्र०)-में मिला है। इसी प्रकार चनीभन्दा इलाहाबादस्थित गंगाघाटीकी खुदाईमें भी पन्द्रह हजारसे सात हजार वर्ष ईसापूर्वका चावल मिलनेका वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विन्ध्यपर्वतस्थित बेलान नदीघाटीकी खुदाईमें भी अति प्राचीन चावल (धान)-के अवशेष प्राप्त हुए हैं। वैज्ञानिकोंके मतमें विश्वमें चावलका उत्पादन तथा उपयोग इन्हीं क्षेत्रोंसे प्रारम्भ हुआ है। हड़प्पाकी खुदाईमें भी गेहूँ, धान, जौ, ज्वार, बाजरा इत्यादिके मिलनेके प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि भारतभूमि ही अधिकांश अन्नोंकी जननी है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (३।१०।१८-१९)-में पृथ्वीकी समस्त वनस्पतियोंका छः वर्गोंमें वैज्ञानिक वर्गीकरण दिया गया है, वहाँ अन्नको **'ओषध'** नामक द्वितीय वर्गमें रखा है। भागवतमें उल्लिखित है कि समस्त अन्नादिको भगवान् विष्णुने मानवकल्याणार्थ बनाया है, जो समस्त प्राणियोंके जीवनका आधार है। भागवत (८।२।२८ तथा ३।६।१८)-के अनुसार अन्नादिकी उत्पत्ति विराट् पुरुषके रोमोंसे हुई। मत्स्यपुराण (६०।८-९)-में अन्नकी गणना सौभाग्याष्टकके रूपमें की गयी है। मत्स्यपुराणमें रावीतटपर महर्षि अत्रिद्वारा पृथ्वीकी समस्त ओषधि तथा अन्नोंके अद्वितीय संकलन (Germ plasm collection)-का उल्लेख है, जो पुराकालसे हमारे अन्न-सम्पदाकी पूर्णताका स्पष्ट प्रमाण है।

धर्मशास्त्रोंमें अन्नदानको सर्वोपरि माना गया है—**'सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते।'** बृहस्पतिस्मृतिके अनुसार जो अन्नदान नहीं करता, उसे मृत्यूपरान्त परलोकमें भोजनके अभावमें भूख-प्याससे व्याकुल होकर अपने मृत शरीरको ही खाना पड़ता है, एतद् विषयक आख्यान पौराणिक साहित्यमें मिलते हैं। पद्मपुराण सृष्टिखण्ड तथा वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्डके अध्याय ७७ तथा ७८ में विदर्भनरेश श्वेतकी मार्मिक कथाका उल्लेख है—राजा श्वेतने पूरे एक हजार वर्षोंतक धर्मपूर्वक शासन किया। मृत्यूपरान्त इन्हें ब्रह्मलोकमें निवास तथा सभी सुख-साधन प्राप्त हुए, परंतु भूख-प्यास मिटानेका कोई साधन नहीं मिला। क्षुधापीड़ित राजाने जब ब्रह्माजीसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने बतलाया कि पृथ्वीपर तुमने सत्कर्म तो बहुत किये, परंतु अन्नदान नहीं किया, अन्नसे केवल अपने शरीरका पोषण किया, अतः भूख मिटानेके लिये तुम्हें अपने मृत शरीरको खाना पड़ेगा। वही हुआ भी।

ऐसी ही कथा राजा विनिताश्वकी भी है। मृत्यूपरान्त जब इन्होंने भी क्षुधापीड़ित होकर अन्न न मिलनेका कारण पूछा तो उत्तर मिला—

'नान्नं दत्तं तेन किञ्चित् स्वल्पं मत्वा यथा त्वया।'

अर्थात् तुमने स्वर्ण, रत्न, भूमि आदि विपुल मात्रामें दान किये, परंतु तुच्छ मानकर अन्नदान नहीं किया। अन्नसे केवल अपने शरीरका पोषण किया है, अतः तुम्हें उसी शवका भक्षण करना पड़ेगा।

महाभारत-अनुशासनपर्वके अध्याय १३, स्कन्दपुराण-नागरखण्डके अध्याय ३२ और पद्मपुराण-सृष्टिखण्डके अध्याय ७ में अन्नदानकी महिमाका विस्तृत उल्लेख है।

महर्षि अत्रिका कथन है कि अन्नदान करनेवालेको अक्षयतृप्ति और सनातन स्थितिकी प्राप्ति होती है। विविध प्रकारके दान अन्नदानके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हैं। व्यासस्मृतिके अनुसार मनुष्यके सोलह संस्कारोंमें 'अन्नप्राशन-संस्कार' की गणना अन्नकी महत्ताका ही द्योतक है।

पौराणिक साहित्यमें अन्नके विषयमें विस्तृत उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराणके अध्याय ११८, २७६।७, २७७।११, २१७।३६ तथा २१७।८७ में; याज्ञवल्क्यस्मृति (१।२१८)-की अपरार्क व्याख्या, व्याकरण महाभाष्य (५।२।४), वाजसनेयि संहिता (१८।१२), दानमयूख और विधानपारिजात इत्यादि ग्रन्थोंमें अनेक प्रकारके अन्नोंका उल्लेख है, ये हैं—सावाँ, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु (कंगनी), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढकी (अरहर), मयुष्ट (सफेद मटर), प्रियंगु (सरसों या राई), अतसी और मसूर।

स्पष्ट है कि भारतीय सांस्कृतिक ग्रन्थोंमें अन्न व्यापक अर्थमें प्रयुक्त होता है। आज आवश्यकता इस बातकी है कि हम अन्नकी महत्ताको समझें, इनका विविध प्रकारसे उत्पादन बढ़ायें, इन्हें नष्ट होनेसे बचायें तथा जिन्हें इनकी महती आवश्यकता है, उन्हें दानकर मानव-जीवन सार्थक करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्‌भगवद्‌गीतामें 'अविकम्प योग'

(पं० श्रीशंकरदेवजी उपाध्याय शास्त्री)

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी अमृतमयी वाणी है, ब्रह्मविद्या है और व्यावहारिक योगशास्त्र है। ब्रह्मविद्याका प्रकाश ही जीवनमें व्याप्त अविद्याके अन्धकारको नष्ट कर सकता है। वेदान्तका सिद्धान्त है—**'कस्मिन् विज्ञाते सर्व विज्ञातं भवति'** अर्थात् किसके जान लेनेके बाद सब कुछ जाना हुआ हो जाता है। व्यावहारिक जीवनमें सोनेको (स्वर्णको) जान लेनेके बाद सोनेसे निर्मित कंकण-कुण्डलादि आभूषणोंका ज्ञान हो जाता है। व्यावहारिक भेद होते हुए भी सब सोना (स्वर्ण) ही है। उसी प्रकार मिट्टीके ज्ञानके बाद मिट्टीसे बने पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है। उपादान कारणका ज्ञान है उस वस्तुका ज्ञान, जिससे जो वस्तु बनी हुई होती है। ब्रह्म ही इस दृश्यमान जगत्‌का निमित्त और उपादान—दोनों कारण है, बनानेवाला निमित्त कारण और स्वयं संसार बन गया है—यह उपादान कारण है। स्पष्ट है कि जब चेतन तत्त्व ही अपनेको अनेक रूपोंमें प्रकट करना चाहता है, तब वही निमित्त और उपादान दोनों रहेगा। वेदान्त दर्शनके सभी आचार्योंने ब्रह्मको ही प्रपंचका अभिन्न निमित्त-उपादान कारण माना है। **'तत् तु समन्वयात्'** ब्रह्म ही सबमें अनुगत है। इस सिद्धान्तमें कोई मतभेद नहीं है।

श्रीमद्‌भागवत पारमहंसी संहितामें आर्त भक्त गजेन्द्रने निर्विशेष ब्रह्मकी स्तुति की। वह निर्विशेष ब्रह्मके शरणागत हो गया। **'यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्। योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥'** यह संसार जिसमें स्थित है, जिसकी सत्तासे प्रतीत हो रहा है, जिसके द्वारा यह व्याप्त है और जो स्वयं संसार बना दिख रहा है। इसके बाद भी वह निर्विशेष ब्रह्म इस संसार और कारणभूत मूल प्रकृतिसे परे है। मैं (गजेन्द्र) उस स्वयंसिद्ध विश्वात्मक ब्रह्मकी शरण ग्रहण करता हूँ। यहाँपर निमित्त-उपादान कारणभूत निर्विशेष ब्रह्मकी वन्दना की गयी है।

जबतक निर्विशेष ब्रह्मका ज्ञान नहीं हो पाता, तबतक सभी योगोंमें अविचल स्थिति नहीं हो पाती। जीवनमें मायाजनित प्रबल झंझावात आता रहता है और वह मोह, भ्रम, सन्देह पैदा कर देता है। अत: योगेश्वर श्रीकृष्ण कह रहे हैं—'मेरे योग और इस विभूतिको जो तत्त्वसे जानता है, वह अविकम्प योगमें स्थित हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है—

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वत:।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशय:॥

भगवान्‌के योग और विभूति दोनोंका ज्ञान अविकम्प योगकी प्राप्ति है अर्थात् जीवनके सभी झंझावातोंमें भगवान्‌का नित्य सांनिध्य, ज्ञानशिखाकी अविचल स्थिति अथवा ब्रह्ममें निरन्तर प्रतिष्ठा अविकम्प योग है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीतामें योगेश्वर श्रीकृष्णने वेदान्तके प्रमुख चार महावाक्योंमेंसे केवल **'अहं ब्रह्मास्मि'** के माध्यमसे ब्रह्मविद्याका उपदेश किया है। एक **'अहम्'** (मैं) अस्मद् शब्दसे पूरा उपदेश। 'अहम्' (मैं) उत्तम पुरुष एकवचन व्यष्टि और समष्टि दोनोंके लिये प्रयुक्त होता है। व्यष्टि समष्टिका अंश होता है। 'अष्टि' बीजको कहते हैं। व्यष्टि सोपाधिक विकारात्मक अंश (वि+अष्टि) समष्टि समतामूलक महत् ब्रह्म (सम्+अष्टि) प्रत्यक् चैतन्याभिन्न 'अहम्' ही आत्मा है। **न हन्यते इति अ+हम् अहम् आत्मा।** अस्मद् शब्दके सभी कारकोंमें एक वचनका प्रयोग, एक ब्रह्म ही सबमें अनुगत है। **'एकम्' इण् गतौ** जो सबमें अन्वित है और पृथक् भी है उसे एक कहते हैं। 'तत्त्वत:' तत् वह ब्रह्म 'त्वम्' तुम (असि) हो। तत्+तत्त्वम्‌से तत्त्व बना है। सब 'मैं' का विस्तार है। व्यवहारमें 'मैं' ही तुम (त्वम्) हो जाता है। उत्तम पुरुष ही मध्यम और अन्य हो जाता है। संसार सत्-चित्-आनन्दमय ब्रह्मका चिद्-विलास है, शरीरमें प्रकृतिके संसर्गसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ अन्वय-व्यतिरेकसे चलती रहती हैं। जाग्रत्‌में सम्भूति, स्वप्नमें विभूति, द्रष्टा ही दृश्य बन गया। एक विलक्षण रचना, आत्मदेव अपनी महिमा **'स्वप्ने देव: स्वमहिमानमनुभवति'** स्वप्नमें आत्मदेव अपनी महिमाका अनुभव करते हैं। सुषुप्तिमें असम्भूति, सबका लय, नैमित्तिक प्रलय। **'पिता अपिता भवति। वेदा: अवेदा: भवन्ति।'** ईशावास्योपनिषद्‌में कारणावस्थाको असम्भूति कहा है, तुरीय सबमें अनुगत फिर भी सबसे पृथक्। तुरीयको समझना और साधना आत्मबोधकी स्थितिका प्रथम सोपान है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता योगशास्त्र है। श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादके रूपमें प्रकट हुआ है। उसमें वर्ण्य विषयके आधारपर अध्यायोंका योगपरक नामकरण किया गया है, प्रसंगानुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति-पुरुष, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, अक्षरब्रह्म इसमें भगवान्‌की अपरा और परा प्रकृतिकी विशद चर्चा हुई है। सांख्ययोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग आदिकी व्यावहारिक उपयोगिता है। भगवान्‌के योग और विभूति दोनोंके ज्ञानका यह फल है। विचारणीय है कि '**अविकम्प**' योगको बतलानेकी आवश्यकता क्यों आ पड़ी? प्रसिद्ध है कि माया ब्रह्मकी अनिर्वचनीय शक्ति है, बहुत प्रबल है। भगवान् स्वयं कहते हैं। '**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**' श्रीमद्भागवत (६।५।१६)-में मायाको एक नदीकी संज्ञा दी गयी है।

सृष्ट्यप्ययकरीं मायां वेलाकूलान्तवेगिताम्।
मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत्॥

ऐसी नदी जो सृष्टि और प्रलय दोनों करती है। सभी नदियोंकी धार बीचमें तेज रहती है, किंतु माया रूपी नदीकी धार पार होनेवाले अन्तिम किनारेपर तेज बहती है, कोई भरोसा नहीं साधक पार ही कर ले। पार होनेकी स्थितिमें डूब जाते हैं, तपस्या नष्ट कर देती है। मायारूपी नदी कूलान्तवेगवती रहती है, बहुतोंको डुबा देती है। भगवान् अपने भक्तोंके लिये नाव लेकर आ जाते हैं। नदी पार करा देते हैं। गीताके १२वें अध्याय भक्तियोगमें भगवान्‌की स्पष्ट घोषणा है—'**तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥**' (१२।७) संसार भवसागर है। भगवान्‌की कृपा का सहारा रहता है। सभी योगोंमें अन्तराय आनेकी सम्भावना रहती है। अविकम्प योगकी स्थितिमें विघ्न समाप्त हो जाते हैं।

योग—भगवान् श्रीकृष्णने अपना योग ९वें अध्यायमें बतलाया है। '**पश्य मे योगमैश्वरम्।**' मेरे ईश्वरी सामर्थ्यको देखो—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥

(९।४-५)

वेदान्तका मूल-सार सिद्धान्त यही है। ब्रह्मकी वास्तविक स्थिति, अव्यक्त रूपमें, फिर भी मूर्तिमान्। सर्वत्र परिव्याप्त निराकार-साकार—दोनों रूपोंमें, सभी प्राणी ब्रह्ममें, किंतु वह स्वयं किसीमें नहीं, सांसारिक विकारोंसे रहित निर्लिप्त। सभी प्राणियोंको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला फिर भी सबसे पृथक्। वही एकमात्र सत्। अधिष्ठानके अज्ञानसे पृथक्‌ताकी प्रतीति। अन्धकार है रस्सीरूप अधिष्ठानमें सर्प दिख रहा है, किसीको माला, किसीको भूछिद्र, भिन्न-भिन्न प्रतीतियाँ। अज्ञानान्धकारके कारण किसीको कुछ भी दिखे, उससे रस्सीको क्या लेना-देना। वेदान्तकी भाषामें अधिष्ठानमें अध्यस्त (जो कुछ दिखाई देता है)-की पृथक् सत्ता नहीं होती। प्रकृतिरूपी माया पृथक्‌ता दिखाती है। '**रज्जौ यथाहेर्भ्रमः**' रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति वेदान्तका प्रसिद्ध दृष्टान्त है। अधिष्ठानका ज्ञान नहीं है प्रतीतियाँ होती हैं। सत्यके समान दिखती हैं। '***जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥***' वास्तवमें सांसारिक व्यवहार अध्यासमूलक होता है। '**अतस्मिन् तद्बुद्धिः**' अध्यास है। अनात्म जड़तापर आत्मचैन्तयका आरोप। संसार इसी व्यवहारमें चलता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—नित्यबोधरूप भगवान्‌के अनन्त शरीरमें ही यह सान्त मनोरम विश्व दिख रहा है। मायासे उत्पन्न होकर सत्यके समान। यही भगवान्‌का ऐश्वर्य योग है। धर्म-अधर्म, आस्तिक-नास्तिक, जड़-चेतनमय विश्व भगवान्‌के विराट् शरीरमें उल्लसित हो रहा है। मायाके माध्यमसे एकमें अनेकता दिखायी दे रही है। व्यावहारिक है संसार द्वैतमें चलता है। '**इतरः इतरं पश्यति**….।' द्वैत उपयोगी है, ब्रह्मका चिद्विलास अनुशयी जीवोंकी जाग्रत् अवस्था प्रकृतिस्थ पुरुषका विलास। जीव पुरंजनकी रचना। भोगायतन शरीरकी प्राप्ति। '**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।**' जीव प्रकृतिकी कमाई खाता है और उसीके वशमें रहता है। बोध जड़तासे पृथक्‌ताकी अनुभूति है। सहजावस्था, चित्ताकाशसे पृथक् चिदाकाशमें प्रतिष्ठा। '**चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं**' के स्वरूपका बोध। द्रष्टामात्र, अविकम्प योग स्मार्तप्रस्थान श्रीमद्भगवद्गीताकी देन है। सांसारिक क्रियाकलापोंमें वर्तते हुए अविचल स्थिति, समाधि-विक्षेप दोनोंमें समान, युद्धमें भी शान्ति। '**मामनुस्मर युद्ध्य च**' भगवान् कहते हैं मेरा स्मरण करो और युद्ध करो। दोनों कार्य तभी सम्भव हैं जब योद्धा कर्मयोगी अविकम्प योगमें पूर्णतः स्थित हो, यह एक अनुभूति है। सभी योगोंकी परिणति अविकम्प योगमें, द्वैतमें अद्वैत, कर्ममें अकर्म, कर्तृत्वमें अकर्तृत्वका बोध, निमित्तमात्र। प्रवृत्ति, निवृत्ति दोनोंमें समान, अविकम्प योगके बिना जीवनमें भगवान्‌की अनन्य भक्तिकी प्राप्ति नहीं हो पाती।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

हरिः ॐ तत् सत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[गतांक सं० ४ पृ०-सं० ६३९ से आगे]

यदि हम सच्चे अर्थोंमें ठाकुरसेवा करना चाहते हैं तो इसके लिये हमें पहले गोसेवा करनी होगी। भारतके जितने बड़े-बड़े मन्दिर हैं, तीर्थ हैं, इनके संचालक, सभी सनातनधर्मी, धर्माचार्य एक साथ बैठकर यह निर्णय करें कि हम गव्य-पदार्थोंका ही उपयोग भगवान्‌की सेवामें करेंगे। ऐसा निर्णय कर लें तो गोवध स्वत: बन्ध हो जायगा। आज ठाकुरजी बकरी या भैंसके दूधसे नहा रहे हैं। गव्य पदार्थोंसे निर्मित्त पंचामृत उन्हें उपलब्ध नहीं है। हमारी ठाकुर-सेवा केवल दम्भ है, इसलिये ठाकुर-सेवाका भी मूल आधार गाय है।

आप विचार करें हम-आप तो अल्पज्ञ जीव हैं। घीमें चर्बी है, यह हम नहीं जानते, लेकिन गोपालजी, जिनकी उपास्य देवता गोमाता हैं, वे तो सर्वज्ञ हैं। घीमें चर्बी है, उसकी मिठाइयाँ बनीं, पूड़ी, पकवान् बने—हम तो नहीं जानते, इसलिये खा लेंगे, लेकिन गोपालजी चर्बीयुक्त घी, तेलसे बने पदार्थ क्या स्वीकार करेंगे? और जब भगवान् उस पदार्थको ग्रहण नहीं करेंगे तो वह प्रसाद कैसे होगा?

आज बड़े-बड़े यज्ञ हो रहे हैं, लेकिन चर्बीयुक्त घी आहुतिके नामपर डाली जायगी तो देवताओंका बल बढ़ेगा कि राक्षसोंका? आप एक गाय पालते हैं अपने घरमें और दूध औटाया है, बढ़िया जामन देकर उसको जमाया है। भले ही छोटी कमोरीमें, छोटी मथानीसे मथकर सुन्दर माखन थोड़ा-सा निकाल लिया और एक बूँद घी गायके कण्डेकी अग्निपर डाल दी तो हविको ग्रहण करने भगवान् वैकुण्ठ छोड़कर आ जायँगे और दूषित द्रव्योंसे मिश्रित पीपेका घी आप आगमें उड़ेल देंगे, उससे भगवान्‌को प्रसन्नता नहीं होगी।

इसलिये जितने मठ-मन्दिर हैं, हमारे हिन्दू धर्मके जितने प्रतिष्ठान हैं, सभीमें यह निश्चय कर लिया जाय कि गायके दूध, दही, घृत और गायके दूधसे बने खोवेकी मिठाइयोंका ही मन्दिरमें भोग लगेगा तो स्वाभाविक है कि प्रत्येक मन्दिरकी बड़ी-से-बड़ी अपनी गोशाला होगी और जो मिष्टान्नकी दूकान खोलकर बैठे हैं, वे गोशालाएँ खोलेंगे और वहाँसे गव्य-पदार्थ मिलेंगे, इससे पुन: समृद्धि लौट करके आ जायगी। मन्दिरकी अपनी निजी दूकानें होंगी तो लोग शुद्ध वस्तु वहाँसे खरीदकर ले जायँगे, जिससे उनके अन्त:करणकी शुद्धि होगी और भगवान् भी प्रसन्न होंगे, उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा।

जब हम शुद्ध गव्य पदार्थोंका उपयोग करेंगे तो हमारा स्वास्थ्य भी उत्तम होगा, रोग भी नहीं होंगे, कम होंगे और जो ये हॉस्पीटल जगह-जगह खुले हैं, वे बन्द हो जायँगे, कम हो जायँगे।

एक गोमाताकी सेवाको हम सावधानीपूर्वक साध लें तो एक गायके पुष्ट होनेसे सारा समाज पुष्ट हो जायगा, कहीं कोई कुपोषण-अपोषण नहीं रह जायगा, पर दु:ख एवं दुर्भाग्यकी बात है कि कैसी बुद्धि हो गयी है, कैसे विचार हो गये लोगोंके कि इन बातोंको कहनेपर वे तो ध्यान ही नहीं देते, स्वीकार ही नहीं करते।

प्रयाग कुम्भकी बात है, वहाँ जानेसे पूर्व गिरिराजजीवाले बाबाने कहा कि आप जा रहे हैं तो महामण्डलेश्वरोंको, जगद्गुरुओंको, उन सभीको जहाँ-जहाँ आप मिलें लोगोंसे, आप प्रेरित करना कि कुम्भमें बड़े-बड़े भण्डारे हो रहे हैं, उनमें कोई एक लाखका, कोई पाँच लाखका—कितनी-कितनी बड़ी राशिसे भण्डारे हो रहे हैं तो प्रत्येक स्थानसे कुछ गायका अंश निकाला जाय तो इतना बड़ा समाज वहाँ उपस्थित हुआ है, कितनी बड़ी राशि गोसेवाके लिये जमा हो जायगी, उससे कितनी गायोंका पोषण होगा।

यह सब वहाँ कहा भी गया, किंतु उसका कोई लाभ नहीं हुआ। हमने आकरके महाराजजीको बताया तो बाबा बोले—क्या करें, वायुमण्डलमें गोवधके परमाणु व्याप्त हो गये हैं, इसलिये वे बुद्धिको उतना पवित्र नहीं होने दे रहे हैं।

अर्थका सच्चा सदुपयोग है—गोसेवा। सौ वेदज्ञ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा देनेका जो फल प्राप्त होता है, वही पुण्यफल केवल एक गायको चारा खिलानेसे हो जाता है। गायके गोष्ठमें की जानेवाली प्रत्येक शुभ क्रिया सौ-गुनी पुण्यदायी हो जाती है।

गोसेवासे चारित्रिक गुणोंका विकास

तितिक्षा यानी सहनशीलता। यह तितिक्षा साधुका पहला गुण है और साक्षात् तितिक्षाकी मूर्ति है—गाय। इसलिये गायका एक नाम है—सर्वसहा; क्योंकि यह सब कुछ अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर सहन कर लेती है। गाय भगवान्‌की मूर्ति है। भगवान्‌की प्रतिमा है। यदि गायकी रक्षा नहीं हुई तो मन्दिर और मूर्तियाँ नहीं बचेंगी, इसलिये गायकी रक्षा करना मुख्य कर्तव्य है, क्योंकि गाय धर्मकी जननी है।

भगवान्‌की अनन्य भक्ति करनेसे शीलगुण आ जाता है और भगवान्‌की प्रतीक है—गाय, इसलिये गायकी सेवा करनेसे भी शीलगुण आ जाता है।

गुरुदेव श्रीभक्तमालीजीके पास एक कोई महानुभाव आये और बोले—महाराज! गुस्सा बहुत आता है, यह न रहे, इसका कोई उपाय? तो महाराजने कहा कि पहले तो हमारे भीतर क्रोध सर्वथा न रहे तब हम आपको उपाय बतायें। गुस्सा तो हमें भी आता है। जो भाई सर्वथा निर्विकार हो चुका हो उससे पूछो, ऐसी स्थिति हमारी तो है नहीं। इस पर वे बोले—नहीं महाराज! कुछ तो उपाय बताइये। कथा-वार्ता बहुत सुनते हैं, क्रोध नहीं करना चाहिये। क्रोध करनेसे अपनी ही हानि है, लेकिन क्या करें, भीतरकी कठोरता कम नहीं हो रही है, क्रोध कम नहीं हो रहा है।

महाराजजी बोले—क्या कुछ करनेके लिये तत्पर हैं आप? 'हाँ महाराज! जो आप कहेंगे सो हम करेंगे।' महाराजजीने कहा—'प्रातःकाल रोज गोशालामें जाया करो और वहाँ मौन रहकर गायोंकी सेवा किया करो। गायका जो गलकम्बलवाला भाग है, उसको सहलाओ। गायकी पीठपर खूब बढ़ियासे हाथ फेरो, गाय सुखी हो जाय, ऐसा करो। प्रेमपूर्वक गायको देखो और गायके छोटे-छोटे बच्चे हैं ना दूध पीनेवाले—उनसे खूब खेलो, उनको खूब प्यार-दुलार करो। थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारा क्रोध ही नहीं, सारे विकार नष्ट हो जायँगे और शीलगुणका प्रकाश हो जायगा; क्योंकि गायकी सेवा करनेवाला व्यक्ति शीलवान् हो जाता है।' तो हृदयमें प्रेम और दया आदि भाव समृद्ध हों, इसका उपाय गायकी सेवा है।

गो-तत्त्वका निर्माण कुछ ऐसा किया है भगवान्‌ने कि यह बहुत कृतज्ञ है। इनमें बहुत कृतज्ञता होती है। गायका स्वयंका कोई अपमान करे तो गाय सहन कर लेगी, लेकिन गायकी कोई निष्ठापूर्वक सेवा करे और उसका कोई तिरस्कार करे तो गायसे सहन नहीं होता। श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र' के जीवनचरित्रमें है कि उनके पिताजीने अपने छोटे भाई अर्थात् चक्रजीके चाचाजीको एक तमाचा उस समय मार दिया जब वे गोशालामें थे। अब जितनी गायें थीं, सबने रस्सा तोड़ लिया और वे दौड़ी क्रोधमें भरकर उन्हें मारने। निश्चित ही वे उन्हें मार ही देतीं उस दिन यदि वे अपने बड़े भाईको बचानेके लिये उनके ऊपर न गिर गये होते और उनको घसीटकर भूसा-घरमें न ले गये होते। भाईने बाहरसे कुण्डी लगाकर उन्हें अन्दर बन्द कर दिया, गायें क्रोधसे काँप रही थीं और सींगसे दरवाजा पीटने लगीं। उन्होंने गायोंको सहलाया। जैसे-तैसे गायें शान्त हुई, फिर भी वे बार-बार उस कमरेकी ओर देखती थीं कि इनको मारनेवाला कमरेके भीतर घुसा है। बादमें जैसे-तैसे उनको वहाँसे निकाला गया। उनके चरित्रमें लिखा है कि उन्होंने कहा अपने बड़े भाईसे कि भाईसाहब! आप मेरे बड़े भाई हैं, पिताके तुल्य हैं। आप हमको गोशालासे बाहर बुलाकर दस-पाँच लाठी भी मार लेते तो भी कोई बात नहीं थी, लेकिन आपने मुझे गोशालामें मारा, यह ठीक नहीं किया। मैं गायोंकी सेवा करता हूँ। आज यदि मैं सावधान नहीं होता तो गायें आपको छोड़ती नहीं, अतः गाय बहुत ही कृतज्ञ प्राणी है।

जो व्यक्ति गायकी सेवा नहीं करता, जिसका गायके प्रति आदर नहीं है, वह व्यक्ति कृतघ्न है और कृतघ्नका कल्याण कभी नहीं हो सकता; क्योंकि समग्र सृष्टिपर गायका जितना उपकार है, उतना उपकार अन्य किसी भी प्राणीका नहीं है।

भगवान् कृपा करे, ऐसी सद्बुद्धि हम सबको प्रदान करे कि जितने लोग हैं—जितने साधु, सन्त, महात्मा वे सब एक साथ, एकजुट हो करके गोरक्षाके सम्बन्धमें विचार-विमर्श करें। गाँव-गाँव, घर-घरमें इस प्रकारके भावोंका प्रचार-प्रसार किया जाय कि जबतक पूरे भारतमें गोवध पूर्ण प्रतिबन्धित न हो, तबतक हमलोग चैन नहीं लेंगे।

वास्तवमें जबतक पूरे भारतवर्षमें गोवधपर पूर्ण प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायगा, तबतक इस समस्याका समाधान सुलभ नहीं दिखायी पड़ रहा है। गोवधपर पूर्ण प्रतिबन्ध हो और फिरसे हमारी गोभक्ति जाग्रत् हो। गाय दीन-दुःखी हो तो हम उसे चारा-भूसा और आश्रय दें।

गोरक्षामें ही राष्ट्रका विकास है, राष्ट्रका हित है एवं राष्ट्रकी वास्तविक उन्नति है, समृद्धि और सम्पन्नता है। ग्राम-पंचायत, नगरपालिका, नगर-परिषद् आदि स्तरपर सरकारकी ओरसे गोसदन खोले जायँ तो इस प्रकारसे लाखों लोगोंको तो रोजगार मिल जायगा और बहुत बड़े-बड़े जंगल एवं पहाड़ आज भी हैं, उनका उपयोग गोचारणके लिये किया जा सकता है। इस तरहसे बहुत बड़ा कार्य हो सकता है। भगवान्‌से यह प्रार्थना करें कि हे प्रभो! ऐसी सात्त्विकता समाजमें आये कि गोवध बन्द हो। गोरक्षार्थ कम-से-कम एक माला जप भी किया जाय। इतनेसे ही बहुत बड़ा कार्य हो जायगा। [क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्का विधान

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण। आपके कुछ समयपूर्व आये हुए पत्रका उत्तर आज दिया जा रहा है। कार्यकी अधिकताके कारण अबतक इधर ध्यान न दिया जा सका, कृपया क्षमा करेंगे।

आप पूछते हैं—'देशमें मँहगाई और हिंसा फैल रही है, साथ ही मनुष्य भी नरहत्याका ताण्डव नृत्य कर रहे हैं। वे पशुसे भी आगे बढ़ गये हैं। हिंसक-से-हिंसक पशु भी ऐसी खून-खराबी नहीं कर सकते, इसमें भगवान्का कहाँतक हाथ है…।'

इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें जो कुछ हो रहा है, वह भगवान्की इच्छासे ही होता है, उनकी इच्छाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। साथ ही यह भी सत्य है कि भगवान् परम दयालु हैं, वे सम्पूर्ण जगत्का कल्याण ही चाहते हैं, वे कभी ऐसी इच्छा नहीं कर सकते कि जगत्में प्राणी कष्ट भोगें, उनकी निर्दयतापूर्वक हत्या होती रहे।

ये बातें ऊपरसे देखनेपर परस्पर विरुद्ध-सी प्रतीत होती हैं, किंतु हैं दोनों ही सत्य। इस रहस्यको समझना आवश्यक है। भगवान्में स्वतः कोई इच्छा नहीं होती। वे स्वरूपतः पूर्णकाम और कृतकृत्य हैं। जिसे कुछ पाना या करना शेष हो, वही इच्छा करता है अथवा उसीके मनमें इच्छा या कामनाका उदय होता है। भगवान्के लिये तो '**नानवाप्तमवाप्तव्यम्**' है, उन्हें न कोई वस्तु अप्राप्त है और न पानेयोग्य है, फिर उनमें इच्छा कैसे रहे ? ऐसे इच्छारहित भगवान्में इच्छा पैदा करते हैं, हमारे अपने कर्म। हमारे द्वारा जो नाना प्रकारके कर्म होते रहते हैं, उनमें शुभ और अशुभ सभी तरहकी क्रियाएँ होती हैं। शुभ कर्मोंका फल सुख और अशुभ कर्मोंका फल दुःख है। जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल मिले—यह भगवान्का ही बनाया हुआ नियम है। अशुभका दण्ड इसलिये है कि हम अशुभसे दूर रहें। शुभका पुरस्कार इसलिये है कि हम शुभकर्म ही करें। दण्ड देनेमें भगवान्का न तो जीवके प्रति कोई द्वेष है और न पुरस्कार देनेमें किसी जीवके प्रति उनका राग ही है। वे तो कर्मफलोंकी व्यवस्थामात्र कर देते हैं। इसलिये उनमें निर्दयता और विषमताका दोष नहीं दिया जा सकता।

जब अधिक जीवोंके बुरे प्रारब्ध-कर्म एक साथ फल देनेको उन्मुख हो जाते हैं तब अकाल, मँहगाई तथा पारस्परिक संघर्ष और हिंसा आदिके द्वारा उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है। आप कहेंगे, इसमें भगवान्की दया कहाँ रही। वे तो न्यायाधीशकी भाँति फैसलामात्र सुना देते हैं। नहीं—ऐसी बात नहीं है। भगवान्का प्रत्येक कार्य दयासे भरा रहता है। ये भाँति-भाँतिके कर्म जीवको अपने पाशमें बाँधकर भगवान्से पृथक् किये हुए हैं। भगवान् उन कर्मोंके फल भुगताकर यह चाहते हैं कि ये इनके बन्धनसे छूट जायँ। ये मुझसे पृथक् हो अस्वस्थ या अपदस्थ हो गये हैं, पुनः इन्हें अपने स्वास्थ्य अथवा पदकी प्राप्ति हो—यही उन दयामय प्रभुकी इच्छा है।

जैसे डॉक्टर बहुत-से रोगियोंको बेहोश करके उनके घावोंको छुरेसे चीरता है, उनके सड़े-गले मांस और रक्तको निकालता है, आवश्यकता होनेपर हड्डियों तथा किसी अंगतकको काट डालता है, उसी प्रकार भगवान् भी करते हैं। डॉक्टरके उस ऑपरेशनको एक छोटा बालक निर्दयताका ही काम कह सकता है, किंतु समझदार यह जानते हैं कि डॉक्टरका सारा प्रयत्न रोगीको जीवनदान देनेके ही लिये है। इसी प्रकार जब जगत्में सामूहिक संहारकी लीला देखनेमें आती है तो साधारण मनुष्य भगवान्को निष्ठुर, निर्दय तथा और भी न जाने क्या-क्या कहने लगते हैं, किंतु ज्ञानी पुरुष जानते हैं कि भगवान्का प्रत्येक कार्य जगत्के कल्याणके लिये ही हो रहा है। उसमें जो कष्ट या दुःखकी प्राप्ति कुछ कालके लिये होती है, वह हमारे अपने ही कर्मोंका, अपथ्य-सेवनमें बढ़ाये हुए रोगोंका या घावोंका ही कटु परिणाम है। भगवान् तो उससे भी छुड़ानेके लिये ही यत्नशील हैं।

इतना होनेपर भी जो मानव स्वयं असुर बनकर दूसरे नर-नारियोंका रक्त बहा रहे हैं, उन्हें इसका कठोर दण्ड भोगना पड़ेगा। जो लोग इस अत्याचारके शिकार हो रहे हैं, उनको तो किसी पूर्व-कर्मका भोग मिलता है, परंतु जो धर्म और ईश्वरको भूलकर, विवेक और विचारको खोकर तुच्छ स्वार्थके लिये या काम, क्रोध, द्वेष, वैर और हिंसावृत्तिके वशमें होकर प्राणियोंके जीवनको संकटमें डाल रहे हैं, वे गीताकी वाणीमें 'असुर-स्वभाव' वाले हैं। उन्हें भगवान्का कठोर दण्ड अवश्य मिलता है।

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

कष्टके लिये क्षमा करें। शेष भगवत्कृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

भविष्यके लिये शुभ विचार कीजिये

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी पारिवारिक स्थितिसे आपको असन्तोष है, पिताजीके व्यवहारसे आपको क्षोभ होता है और आप आवेशमें आकर गृह-त्यागका और कभी-कभी देह-त्यागका विचार करते हैं, सो मेरी समझसे आपको ऐसा विचार भूलकर भी नहीं करना चाहिये। संसारमें ऐसा कोई भी नहीं है, जिसके मनकी ही सब बातें होती हों। भगवान्का मंगल-विधान मानकर प्रतिकूलतामें अनुकूलताका अनुभव करनेसे ही चित्तमें शान्ति हो सकती है। जहाँ आप भगवान्के मंगल-विधानमें विश्वास करने लगेंगे, वहीं लौकिक परिस्थिति भी बदलने लगेगी। प्रतिकूल भी अनुकूल होने लगेंगे। पर वे न भी होंगे, तो भी आपका क्षोभ तो मिट ही जायगा। भावी जीवनको संकटमय न देखकर सुखमय देखनेका संकल्प कीजिये। जो मनुष्य रात-दिन दुःख, क्लेश, संकट और असफलताका चिन्तन करता है, वह क्रमशः दुःखी, क्लेशित, संकटापन्न और असफल ही होता है। मनुष्यकी अपनी जैसी दृढ़ भावना होगी, वैसी ही परिस्थितिका निर्माण होगा और अन्तमें वह वैसा ही बन जायगा। आपके भगवान् सर्वसमर्थ हैं, आपके परम सुहृद् हैं, उनकी कृपापर विश्वास करके भविष्यको अत्यन्त उज्ज्वल तथा सुखमय देखनेका अभ्यास कीजिये। ध्रुव, प्रह्लाद, भरत आदिके इतिहासको याद कीजिये। भगवान्की कृपासे क्या नहीं हो सकता और उनकी कृपा आपपर अपार है। इस बातपर विश्वास कीजिये। भगवान्ने अपनेको स्वयं समस्त प्राणियोंका सुहृद् बतलाया है। आप घबराइये नहीं। मनमें जो देहत्याग आदिके असत् विचार आते हैं, इनको निकालकर मनमें बार-बार ऐसे विचार लाइये कि आप सर्वशक्तिमान् सर्वलोकमहेश्वर अकारण-प्रेमी भगवान्के परम प्यारे हैं। उनकी कृपा-सुधाधारा निरन्तर आपपर बरस रही है। आप उनके लाड़ले पुत्र हैं। उनकी कृपासे आपकी सारी विपदाएँ, सारी अड़चनें स्वतः ही दूर हो जायँगी। उनकी घोषणा है—'तुम मुझमें चित्त लगा दो, मेरी कृपासे सारी कठिनाइयोंसे तर जाओगे।' आपकी प्रत्येक स्थितिसे वे परिचित हैं और सदा आपके कल्याण-साधनमें लगे हैं। उनकी कृपाशक्तिके सामने आपपर विपत्ति डालनेवाली कोई भी शक्ति कुछ भी नहीं कर सकेगी। आपकी वे सब प्रकारसे वैसे ही रक्षा करेंगे, जैसे स्नेहमयी माता बच्चेकी रक्षा करती है। आप किसी प्रकार भी निराश, उदास और विषादग्रस्त मत होइये। भविष्यको संकटापन्न और अन्धकारमय देखनेका अर्थ है—भगवान्की कृपापर विश्वास न करना। आप जप-कीर्तन तथा भजन करते हैं सो बड़ी अच्छी बात है, पर जप-कीर्तन और भजनका प्राण तो भगवान्पर विश्वास है। विश्वासहीन भजन निष्प्राण होता है। घरवाले यदि आपके भजन-कीर्तनसे अप्रसन्न हैं तो मन-ही-मन भजन कीजिये। मन-ही-मन करनेको कोई भी नहीं रोक सकता। शेष भगवत्कृपा।

(३)

विचित्र प्रश्न

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। धन्यवाद! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१. भगवान्को किसने उत्पन्न किया? आपका यह प्रश्न बड़ा विचित्र है। शास्त्रोंमें भगवान् अजन्मा, अविनाशी, नित्य, सनातन एवं सबके मूल तथा सर्वाधार होनेसे स्वयं निर्मूल, आत्ममूल, निराधार, आत्माधार एवं परात्पर कहे गये हैं—'**स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः।**' उन्हींसे सबकी उत्पत्ति होती है। उनकी कभी किसीसे उत्पत्ति नहीं होती। जो वस्तु सदा रहनेवाली है, उसकी उत्पत्ति किससे हो सकती है? जिससे सबकी उत्पत्ति, पालन और संहार-कार्य होते हैं तथा जो किसी दूसरेसे उत्पन्न न होकर सदा विद्यमान रहता है, वही भगवान् है—'**मूले मूलाभावादमूलं मूलम्**' (सांख्यदर्शन)।

२. सृष्टिरचना भगवान्का एक खेल है। अनन्त महासागरके वक्षःस्थलपर युग-युगसे जो अनन्त तरंग-मालिकाएँ उठती और विलीन होती रहती हैं, उनमें वायुदेवके विभ्रम-विलासके सिवा और क्या कारण हो सकता है? इन उत्ताल तरंगोंके उत्थान और लयका क्या उद्देश्य है? कौन कह सकता है? यदि कहें भगवान्की वह लीला किस कामकी, जिसमें असंख्य जीव कष्ट भोगते रहते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य अपने ही काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणोंसे प्रेरित होकर जो शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके फलस्वरूप सुख-दुःख भोगता है। जो इन दुर्गुणोंसे बचकर राग-द्वेष, दर्प-अहंकार आदिसे दूर रहता है, वह दुःखका भागी नहीं होता। दुःख भी अज्ञानवश ही है, वास्तवमें नहीं। शेष प्रभुकृपा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।५९ बजेतक	बुध	अनुराधा सायं ६। २ बजेतक	१८ मई	मूल सायं ६। २ बजेसे।
द्वितीया '' १।३१ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ''५।२२ बजेतक	१९ ''	भद्रा रात्रिमें १२।५९ बजेसे, धनूराशि सायं ५।२२ बजेसे।
तृतीया '' १२।२८ बजेतक	शुक्र	मूल '' ५।८ बजेतक	२० ''	भद्रा दिनमें १२। २८ बजेतक, **श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। ३८ बजे। मूल सायं ५। ८ बजेतक।
चतुर्थी '' ११।५३ बजेतक	शनि	पू० षा० '' ५।२३ बजेतक	२१ ''	मकरराशि रात्रिमें ११। ३४ बजेसे।
पंचमी '' ११।४८ बजेतक	रवि	उ० षा० '' ६।८ बजेतक	२२ ''	**राष्ट्रिय ज्येष्ठमासारम्भ, पौराणिक-अगस्त्यास्त** रात्रिमें ८।९ बजे।
षष्ठी '' १२।१५ बजेतक	सोम	श्रवण रात्रिमें ७।२३ बजेतक	२३ ''	भद्रा दिनमें १२। १५ से रात्रिमें १२। ४३ बजेतक।
सप्तमी '' १।११ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा'' ९।५ बजेतक	२४ ''	कुम्भराशि दिनमें ८।१४ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ८।१४ बजेसे, **कालाष्टमी व्रत** (सायंकालव्यापिनी)।
अष्टमी '' २।३४ बजेतक	बुध	शतभिषा'' ११।१३ बजेतक	२५ ''	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत, त्रिलोचनाष्टमी** (बंगाल) बुधाष्टमी, रोहिणीमें सूर्य रात्रिमें ११।१० बजे।
नवमी सायं ४।१९ बजेतक	गुरु	पू० भा० '' १।३९ बजेतक	२६ ''	मीनराशि रात्रिमें ७। २ बजेसे।
दशमी '' ६।१७ बजेतक	शुक्र	उ० भा० रात्रिशेष ४।१५ बजेतक	२७ ''	भद्रा प्रातः ५। १७ से सायं ६। १७ बजेतक, मूल रात्रिशेष ४। १५ बजेसे।
एकादशी रात्रिमें ८।२० बजेतक	शनि	रेवती अहोरात्र	२८ ''	**अचला एकादशीव्रत (सबका)**
द्वादशी ''१०।१६ बजेतक	रवि	रेवती प्रातः ६।५२ बजेतक	२९ ''	**पंचक** समाप्त प्रातः ६।५२ बजे, **मेषराशि** प्रातः ६।५२ बजेसे।
त्रयोदशी'' ११।५६ बजेतक	सोम	आश्विनी दिनमें ९।१८ बजेतक	३० ''	मूल दिनमें ९।१८ बजेतक, **सोम प्रदोषव्रत**, भद्रा रात्रिमें ११।५६ बजेसे।
चतुर्दशी ''१।१४ बजेतक	मंगल	भरणी '' ११।२८ बजेतक	३१ ''	भद्रा दिनमें १२। ३५ बजेतक, **मास शिवरात्रिव्रत**, वृषराशि सायं ५।५४ बजेसे।
अमावस्या ''२।५ बजेतक	बुध	कृत्तिका '' १।१२ बजेतक	१ जून	**स्नान-दान-श्राद्धादिकी अमावस्या, वटसावित्रीव्रत।**

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें २।२५ बजेतक	गुरु	रोहिणी दिनमें २।२८ बजेतक	२ जून	मिथुनराशि रात्रिमें २।५२ बजेतक।
द्वितीया '' २।१४ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा '' ३।१५ बजेतक	३ ''	**चन्द्रदर्शन।**
तृतीया '' १।३३ बजेतक	शनि	आर्द्रा '' ३।३० बजेतक	४ ''	**रम्भातृतीयाव्रत।**
चतुर्थी '' १२। २५ बजेतक	रवि	पुनर्वसु '' ३।१८ बजेतक	५ ''	भद्रा दिनमें १२।५८ बजेसे रात्रिमें १२। २५ बजेतक, कर्कराशि दिनमें ९।२१ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी '' १०।५२ बजेतक	सोम	पुष्य '' २।४० बजेतक	६ ''	मूल दिनमें २।४० बजेसे।
षष्ठी '' ९।०० बजेतक	मंगल	आश्लेषा '' १।४३ बजेतक	७ ''	सिंहराशि दिनमें १।४३ बजेसे, **श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत।**
सप्तमी '' ६।५२ बजेतक	बुध	मघा '' १२।२७ बजेतक	८ ''	भद्रा रात्रिमें ६।४२ बजेसे, **मृगशिरा नक्षत्रमें** सूर्य रात्रिमें १०।३० बजेसे, मूल दिनमें १२।२७ बजेतक।
अष्टमी दिनमें ४।३२ बजेतक	गुरु	पू०फा० '' १०।५८बजेतक	९ ''	भद्रा प्रातः ५।४२ बजेतक, कन्याराशि दिनमें ४।३४ बजेसे।
नवमी '' २।६ बजेतक	शुक्र	उ०फा० ''९।२१ बजेतक	१० ''	× × × ×
दशमी ''११। ३७ बजेतक	शनि	हस्त '' ७।४० बजेतक	११ ''	भद्रा रात्रिमें १०। २४ बजेसे, **श्रीगंगादशहरा**, तुलाराशि रात्रिमें ६।५२ बजेसे।
एकादशी '' ९।१० बजेतक	रवि	चित्रा प्रातः ६।१ बजेतक स्वाती रात्रिशेष ४।३० बजेतक	१२ ''	भद्रा दिनमें ९।१० बजेतक, **भीमसेनी-निर्जला एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी प्रातः ६।५१ बजेतक त्रयोदशी रात्रिशेष ४।४५ बजेतक	सोम	विशाखा रात्रिमें ३।१० बजेतक	१३ ''	वृश्चिकराशि रात्रिमें ९। ३० बजेसे, **एकादशीव्रतका पारण** प्रातः ६।५१ बजेतक, **सोमप्रदोषव्रत, गौतमेश्वर दर्शन, कूर्म-जयन्ती।**
चतुर्दशी रात्रिमें २।५५ बजेतक	मंगल	अनुराधा '' २।६ बजेतक	१४ ''	मूल रात्रिमें २।६ बजेसे, भद्रा रात्रिमें २।५५ बजेसे।
पूर्णिमा '' १।२५ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा '' १।२३ बजेतक	१५ ''	भद्रा दिनमें २।१० बजेतक, धनूराशि रात्रिमें १।२३ बजेसे, **स्नान-दान-व्रतादिकी पूर्णिमा, दाक्षिणात्य वटसावित्रीव्रत, संतकबीर जयन्ती, मिथुनसंक्रान्ति**-रात्रिमें १०।४४ बजे, खग्रास चन्द्रग्रहण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

भगवान्‌को भूल जाना ही विपत्ति है

हमलोग लोहेके बाट कई दशकोंसे बनाते हैं एवं कई देशोंमें इसका निर्यात भी करते हैं। निर्यातके सिलसिलेमें मुझे प्रत्येक साल-दो-सालमें विदेश भी जाना पड़ता है।

बात सन् १९७८ ई०की है। मैं अफ्रीकाके कई देश एवं इटली होते हुए साइप्रस गया हुआ था। साइप्रसमें मुझे दो दिन रहकर जॉर्डन जाना था। लेकिन साइप्रससे अम्मान (जॉर्डन)-के लिये सीधी वायुसेवा नहीं होनेके कारण मुझे साइप्रससे डामासकस (सीरिया)-तक प्लेनमें जाना पड़ा एवं डामासकससे अम्मानतक टैक्सी या बससे जानेका प्रोग्राम बनाना पड़ा। मैंने अपना टिकट उसी हिसाबसे बुक कराया। साइप्रससे प्लेन खुलनेका समय दोपहर बारह बजे था, किंतु तकनीकी खराबीकी वजहसे प्लेन उस दिन छः घण्टे विलम्बसे खुला, जिसके चलते प्लेन डामासकस सन्ध्या ७ बजे पहुँचा। फिर एयरपोर्टपर कस्टम एवं इम्मीग्रेसन चेक करवाकर बाहर निकलनेमें शामके ८ बज गये।

उस समय लेबनानमें भीषण युद्ध चल रहा था, जिसकी वहजसे डामासकससे अम्मानके लिये टैक्सी एवं बसका चलना रातमें बंद हो गया था। सो मेरे पास एकमात्र विकल्प यह था कि मैं एयरपोर्टसे शहरमें जाकर किसी होटलमें रात गुजारूँ और सुबह टैक्सीसे अम्मान चला जाऊँ। एयरपोर्टसे शहरकी दूरी करीब ३० किलोमीटर थी।

उस समय वहाँ टैक्सीकी कमी थी। इसकी वजहसे जो भी टैक्सी आये, उसपर वहाँके स्थानीय लोग टूट पड़ते थे एवं अरबी भाषामें बात करके शेयरके हिसाबसे चले जाते थे। उस भीड़में मैं उनसे न तो बात ही कर पा रहा था और न ही वे मेरी अँग्रेजी भाषा समझते थे। इस तरह एक-एक करके सभी यात्री चले गये और मैं अकेला रह गया। उसी समय वहाँका एयरपोर्ट-मैनेजर भी एयरपोर्ट बन्द करके जाने लगा तो मैंने पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं तो उसने कहा—अब रातमें तो कोई प्लेन आयेगा नहीं, इसलिये मैं एयरपोर्ट बंद करके अपने घर जा रहा हूँ।

यह सुनकर मुझे दिसम्बरकी उस कड़कड़ाती ठंडवाली रातमें भी भयसे कँपकँपी छूट गयी और शरीरमें पसीना हो आया था। एक भी आदमी नहीं, कोई गाड़ी नहीं, वहाँकी स्थानीय भाषा न तो मैं समझ सकता था और न ही कोई मेरी। रातके दस बजे थे, चारों ओर सुनसान था। अनजानी जगह और अकेला मैं। चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, दूर-दूरतक मुझे कोई भी दिखायी नहीं दिया। सो मैं तो रोने लगा। मुझे कोई भी सहारा नहीं दिखायी दिया। अब क्या होगा? इसी घबराहटमें बहुत व्याकुल हो गया था। अब तो मुझे अपने इष्टदेव शंकरजीका ही आसरा था, मैं रोते हुए ही '**ॐ नमः शिवाय**' का जप करने लगा और अपने प्रभुको पुकार रहा था कि आकर वे मेरी मदद करें।

इतनेमें एक चमत्कार-सा हुआ। एक कोनेसे एक पुरुष एवं एक महिला—दो जने चलकर मेरे पास आये। उनके हाथमें एक बैग था, उन्होंने मुझसे पूछा—क्या बात है? क्यों रो रहे हो? मैंने अपनी समस्या बतायी तो उन्होंने मुझे तसल्ली दी एवं बताया कि रातमें यहाँसे अम्मान जाना सम्भव नहीं है और युद्धके कारण डामासकसमें सभी होटल रात १० बजे बन्द हो जाते हैं, लेकिन फिर भी देखते हैं, क्या हो सकता है, हमें भी इजराइल जाना है।

इतनेमें जैसे भगवान्‌की भेजी हुई एक टैक्सी न जाने कहाँसे वहाँ आयी। उन्होंने स्थानीय भाषामें उससे बात की और हम सभी उस टैक्सीमें बैठकर चले। दो होटलोंमें जगह नहीं मिली, लेकिन तीसरे होटलमें हमें दो कमरे मिल गये। एकमें मैं और दूसरेमें वे दोनों रुक गये। उस समय रातके बारह बज चुके थे। मेरे पास एक पेड़ा बचा हुआ था, उसीको खाकर और पानी पीकर मैं सो गया। पहले तो नींद नहीं आयी। अनेक विचार दिमागमें घूम रहे थे। थका भी बहुत था। देर रातको थोड़ी आँखें लगी, सुबह ५ बजे ही मैं उठ गया। फिर काउण्टरपर जाकर उन दोनोंके बारेमें पता किया तो मालूम हुआ कि वे दोनों तो मुझसे पहले ही चले गये।

मैं तबसे आजतक यही सोच रहा हूँ कि वे दोनों कौन थे? फिर यही लगा कि मेरे इष्टदेवके भेजे हुए देवदूत थे। भगवान् किसी-न-किसी रूपमें कृपाकर संकटोंसे उबार ही देते हैं, मुझे उस समय भगवत्कृपाकी सच्ची अनुभूति हुई थी। वास्तवमें हमलोग भगवान्‌को भूलकर कष्टोंकी अनुभूति करने लगते हैं। सचमुच यदि भगवान् बराबर याद रहें तो प्रतिकूलतामें भी अनुकूलताका आभास होने लगता है। भगवान्‌को भूलना ही महान् कष्ट है, महान् विपत्ति है और उनको याद रखना ही सच्ची सम्पत्ति है, सच्चा आनन्द है—

'विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः।'

—नन्दकिशोर सिंघानिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भलाईका अवसर

बात पिछले लगभग पाँच वर्ष पहलेकी है, मेरा पुत्र दिवाकर उन दिनों गुड़गाँवमें जिलेट कम्पनीमें सेवारत था। एक सप्ताहके लिये वह इलाहाबाद आया हुआ था। उसने अपने एक रोमांचक वृत्तान्तको बताते हुए कहा कि आज मैं यहाँ हनुमत्-निकेतन-मन्दिर, जो सिविल लाइन्समें स्थित है, दर्शनकर और प्रसाद लेकर जब मन्दिरके बाहर आया तो गेटके पास बैठे एक वृद्ध व्यक्तिने मुझे आवाज दी—*'यंग मैन विल यू हेल्प मी'* नौजवान! क्या तुम मेरी सहायता करोगे? तो मैंने कहा—*'यस ह्वाई नॉट'* हाँ क्यों नहीं, अवश्य करूँगा। उस व्यक्तिने बड़े दुःखी मनसे आपबीती सुनाते हुए कहा—'मैं बंगलौरमें अपनी बेटीके साथ रहता था, किंतु उससे कुछ विवाद हो जानेके कारण मैं घर छोड़कर तीर्थयात्रापर चला आया। वाराणसी, अयोध्या होकर प्रयाग आ गया। यहाँ संगम-स्नानके समय कोई व्यक्ति मेरे कपड़े, बैग, रुपये—सब कुछ लेकर भाग गया। मैं जब नहाकर लौटा तो देखा सब कुछ गायब है। मैं दो दिनसे भूखा हूँ। मेरे पास बदलनेके लिये कपड़े भी नहीं हैं। जिन वस्त्रोंमें स्नान किया, वे ही सूख गये हैं, उन्हींको पहना हुआ हूँ। मैं यहाँ न किसीको जानता हूँ और न ठीकसे भाषा ही जानता हूँ। मैंने कई लोगोंसे मददकी गुहार की, किंतु दैवयोगसे किसीने मेरी मदद नहीं की, किसी तरह दो-एक दिन गुजार दिये हैं और अब बड़ी उम्मीद लेकर मन्दिरमें भगवान्‌की शरणमें आया हूँ।' इतना कहकर वह रुँआसा हो गया, आगे कुछ बोल न सका। उसकी बातें सुनकर पहले तो मैंने सोचा कि आजकल भीख माँगनेके कई तरीके अपनाये जाते हैं, हो सकता है, यह भी इसकी चाल हो, किंतु फिर मैंने गौरसे उसकी ओर देखा तो मुझे सच्चाई प्रतीत हुई। मेरा हृदय करुणासे पूरित हो उठा। मैंने उसे प्रसादका दोना दिया और गाड़ीसे निकालकर पानीकी बॉटल दी। प्रसाद खाकर, पानी पीकर वह आश्वस्त हुआ, तब उसने कहा—'मुझे रेलवे स्टेशनका रास्ता बता दें तो बड़ी कृपा होगी।' तब मैंने पूछा कि आपकी बेटीका कोई फोन नम्बर हो तो बतायें। उसके बतानेके अनुसार मैंने उसकी बेटीका मोबाइल नम्बर मिलाया और बताया कि आपके पिता इलाहाबादमें मेरे पास हैं। यह सुनकर वह खुशीसे बोली 'कृपया उनसे बात करा दें।' दोनों बाप-बेटी देरतक रोये, फिर उन्होंने कन्नड़में बातें कीं। मैंने फोनपर उससे कहा—'मैं इन्हें टिकटका पैसा देकर स्टेशन छोड़ दूँगा। घबरानेकी कोई बात नहीं है' फिर मैंने वृद्धको पाँच सौका नोट दिया तथा ५० रुपयेके फुटकर भी दिये। रिक्शेवालेसे कहा—स्टेशन पहुँचा दो। उसे भी १० रुपये दिये। वह वृद्ध बहुत प्रसन्न हो गया। उसकी आँखोंमें कृतज्ञताके आँसू छलक आये। स्नेहभरी दृष्टिसे वह रिक्शेसे बराबर ताकते जा रहा था। यह सब करके मुझे भी आज अनोखा सन्तोष हो रहा था। समय यूँ ही बीत गया। उस घटनाको मैं भी भूल-सा ही गया था, किंतु वह बात फिर मुझे याद आयी, जब एक महीने बाद मेरे ऑफिसमें एक हजार रुपयेका एक मनीआर्डर आया। तब जिलेट कम्पनीके कर्मचारियोंने मुझसे पूछा—यह मनीआर्डर कैसा? इसपर मैंने पूरी घटना विस्तारसे बतायी। लोगोंने मुझे बधायी दी और प्रबन्धकने प्रशंसा-पत्र भी दिया। वास्तवमें जरूरत पड़नेपर दूसरेकी मदद करनेका प्रभु जब अवसर दें तो चूकना नहीं चाहिये।

[प्रे०—आचार्य हरिशंकर द्विवेदी]

(२)

भगवान् सब जगह हैं

घटना काफी समय पहलेकी है, तब मेरे पति जीवित थे। उन्हें गुजरे काफी समय हो गया। उनके दोस्त थे शर्माजी, जो लखनऊमें काफी समयसे रह रहे थे। वहाँ एक दुर्घटना घट गयी, सो हम दोनों भी वहाँपर गये। हम सहारनपुरसे गाड़ीसे लखनऊ गये, साथमें हमारी एक बेटी भी थी। हम स्टेशनसे आटोके द्वारा उनके घर पहुँच गये, मेरे पति तो काफी कुछ जानते थे लखनऊके विषयमें, लेकिन मुझे ज्यादा कुछ पता नहीं था। मैं स्वभावकी भी सीधी थी, अपने पास पैसे भी कम ही रखती थी, हम तीन-चार दिन वहाँपर रहे और फिर वापस चलनेको तैयार हो गये। तब भी मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पास पैसे नहीं रखे। उनके साथ ऐसे ही चल पड़ी। हम स्टेशनपर आ गये और प्लेटफॉर्मपर एक बेंचपर बैठ गये। थोड़ी ही देरमें गाड़ी आ गयी। गाड़ी काफी लेट थी। उन्होंने लड़कीको गोदमें लिया और दौड़कर एक डिब्बेमें चढ़ गये। उन्होंने सोचा कि शायद मैं भी पीछे-पीछे आ रही हूँ। उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। भीड़ बहुत थी। मैं प्रयत्न करनेपर भी गाड़ीमें चढ़ न सकी, मेरा मन बहुत घबराने लगा। वे नजर नहीं आ रहे थे, इतनेमें गाड़ीने सीटी दे दी और धीरे-धीरे चलने भी लगी। भीड़में मैं कभी आगे भागती, कभी पीछे, बदहवास-सी उन्हें खोजते हुए और लड़कीको आवाज देते हुए ट्रेनकी खिड़कीसे अन्दर झाँक रही थी। भीड़ इतनी थी कि ट्रेनमें चढ़नेवालोंका ताँता लगा हुआ था, फिर मेरी आवाजको कौन सुनता? थोड़ी ही देरमें प्लेटफॉर्म लगभग खाली-सा हो गया। मैं फटी-फटी निगाहोंसे इधर-उधर देख रही थी। तभी क्या देखती हूँ कि एक आदमी भागा हुआ मेरी ओर आ रहा है। वह पास आकर पूछने लगा—आप कहाँ जायँगी। मैंने कहा—सहारनपुर जाना है। मैंने जल्दी-जल्दी सब बातें उसे बता दीं। वह आदमी बहुत भला नजर आ रहा था। बोला—गाड़ी काफी लम्बी है, आप चढ़ जाइये; क्योंकि गाड़ीकी स्पीड अब तेज होनेवाली है, आपके पतिको ढूँढ़नेमें मैं आपकी पूरी मदद करूँगा, किसी तरह साहसकर मैं गाड़ीमें चढ़ गयी। वह आदमी बोला—आप निश्चिन्त होकर यहीं बैठी रहें, मैं उन्हें ढूँढ़ता हूँ। मैंने उनके बारेमें पहचानसम्बन्धी बातें उसे बता दीं। थोड़ी ही देरमें आकर वह बोला—दूसरे डिब्बेमें आपके पति एक बच्चीके साथ बैठे हैं। उसकी बात सुनकर घबराहटके मारे मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था, वह बोला—घबराइये नहीं, चलिये मेरे साथ। किंकर्तव्यविमूढ़ मैं उसके साथ चल पड़ी। उसने मुझे वहाँतक पहुँचा दिया। हमलोग आसानीसे वहाँ पहुँच गये, क्योंकि डिब्बे एक दूसरेसे मिले हुए थे। मेरी खुशीका ठिकाना नहीं था। मुझसे मिलकर मेरी लड़की बहुत रोयी, वे लोग भी बहुत चिन्तित थे; क्योंकि काफी समय बीत गया था। मैंने उस आदमीको अनेक धन्यवाद दिये। वह आदमी सचमुच भगवान्‌के रूपमें मेरी मदद करने आया था, अगर भगवान् उसे न भेजते तो न जाने उस वक्त क्या होता, क्योंकि मेरे पास रुपये भी नहीं थे, जो वापस शर्माजीके घर चली जाती। जब मैं अकेली थी, तब मैं हनुमान्‌चालीसाका पाठ लगातार करती रही, क्योंकि मुझे विश्वास था कि हनुमान्‌जी ही मेरी मदद करेंगे। भगवान्‌ने मेरी फरियाद सुनकर उस आदमीको मेरी मददके लिये भेज दिया। तबसे मुझे यह विश्वास हो गया कि भगवान् सब जगह हैं, वे किसी भी रूपमें हमारी सहायताके लिये आ जाते हैं। अतः उनको कभी भी भूलना नहीं चाहिये।—**सरला गोयल**

(३)

रामनामका प्रभाव

२२ सितम्बर २०१०ई० रात्रि ९.३० बजेकी बात है, मैं अपने कमरेमेंसे हॉलमें आ रहा था। हालमें पहुँचते-पहुँचते ही एकाएक बायें हाथमें पक्षाघातका असर हुआ, मैंने वहीं खड़े रहनेकी चेष्टा की, परंतु इतनेमें ही बायें पैरमें भी पक्षाघातका असर हो गया। मैं फर्शपर गिर पड़ा, लेकिन प्रभुकृपासे मेरा दाहिना हाथ टिक गया और मुझे चोट नहीं लगी। मैं फर्शपर लेट-सा गया और अपने पुत्रको आवाज दी, जो पासवाले कमरेमें था, उसका नाम 'दामोदर' उच्चारण करना चाहता था, परंतु जीभसे धीमी एवं मोटी आवाजमें सिर्फ दा-दा-दा-दा शब्द ही निकले। मेरी वैसी आवाज सुनकर दोनों पौत्री एवं पौत्रने उन्हें आवाज दी, तब मेरे पुत्र, पुत्रवधू एवं धर्मपत्नी घबराकर वहाँ आ पहुँचे। मुझे ऐसा लगा कि मेरा अन्तकाल आ गया है। मेरे पुत्रने मुझे ब्रह्मलीन श्रद्धेय सद्गुरुदेव श्रीकृष्णानन्दजी महाराजके कमण्डलुका जल पिलाया, जल पीते ही मेरी वाणी अचानक सहज प्राकृतिक अवस्थामें आ गयी। घरके सभी सदस्य, यहाँतक कि ९ वर्षीय पौत्र भी अनवरत रामनामका जप करने लगा। मैं स्वयं भी राम-राम करने लगा, उसी रामनामका ऐसा तात्कालिक प्रभाव हुआ कि मेरे बायें हाथ-पैर ९५ प्रतिशत यथावत् हो गये एवं अति शीघ्र अस्पताल पहुँचानेकी व्यवस्था भी सरलतासे हो गयी। जहाँसे मात्र चार-पाँच दिनोंमें ही मैं वापस घर आ गया। मेरी उम्र ८० वर्षसे ऊपर है। इस अवस्थामें इतना शीघ्र पुनः स्वस्थ होना रामनामके जपका ही प्रभाव है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।—**ईश्वरचन्द करवा [प्रे०—कन्हैयालाल लाहोटी]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

एक मिसाल ईमानदारीकी

सफरमें ऐसा अक्सर होता है कि कोई घटना या दुर्घटना होती रहती है, पर कुछ घटनाएँ ऐसी चमत्कृत ढंगसे घटती हैं कि वे हमारी आस्था एवं विश्वासको और अधिक दृढ़ बना देती हैं।

ऐसी ही एक सत्य घटना दिनांक ३१-०८-२०१० को घटी। हमारा पुत्र पुरीसे हावड़ा (कोलकाता) स्टेशनपर आ रहा था। वह अपने मित्रों एवं अध्यापकोंके साथ था। अगले दिन एक सितम्बरको सुबह सात बजे जब हमारा पुत्र अपने मित्रों और अध्यापकोंके साथ हावड़ा स्टेशन पहुँचा, तब सभी लोग अपना-अपना सामान लेकर निकलने लगे। उस समय मेरा पुत्र अपना सूटकेस खोज रहा था। काफी कोशिशके बाद जब सूटकेस नहीं मिला तो उसने वहाँ मौजूद टिकट-चेकर और कुलियोंकी सहायता ली, परंतु गुम हुए सूटकेसकी कहीं आस-पासतक खबर नहीं मिली। बड़े उदास मनसे मेरा लड़का घर आया। उसे उसकी लापरवाहीके लिये काफी डाँट पड़ी, किंतु मैं ईश्वरपर अटूट विश्वास रखती हूँ। मैंने अनुकूल या प्रतिकूल हर परिस्थितिको लाभप्रद बताकर उससे सबक लेकर भविष्यमें सावधानी बरतनेके लिये उसे बार-बार समझाया, किंतु मेरा पुत्र उसमें रखे कीमती सामान और प्रिय वस्तुओंके गुम हो जानेसे काफी दुःखी था। अचानक उसी दिन दोपहर १ बजे उसके एक मित्रने फोन करके बताया कि उसका खोया हुआ सूटकेस कोचके अटेण्डेण्टको मिल गया है। उसके मित्रने उसे कोचके अटेण्डेण्टसे मोबाइलपर सम्पर्क करनेको कहा, जो कि कोचने उसे दिया था। मेरे पुत्रने तुरन्त उनसे सम्पर्क किया और कॉलेजसे फोन करके मुझे बताया कि माँ मुझे सूटकेस मिल गया। स्टेशन पहुँचकर बेटेने अटेण्डेण्ट महोदयसे पूछा कि आपको फोन-नम्बर कैसे मिला, तो अटेण्डेण्टने बताया कि उसे सूटकेस बर्थके नीचे कोनेमें मिला, पर आपसे सम्पर्क करनेके लिये कोई साधन नहीं था। अचानक पास पड़े एक कागजपर मेरी नजर पड़ी, जिसमें कई विद्यार्थियोंके नाम, बर्थ-नम्बर एवं सम्पर्क-नम्बर लिखे थे, तो मैंने बर्थ नम्बरके हिसाबसे फोन करके जानकारी ली और जिस लड़केसे सम्पर्क हुआ, उसीने हमें आपकी जानकारी दी।

मैंने उसकी ईमानदारी और सूझबूझकी प्रशंसा की और आभार प्रकट किया। सत्य और ईमानदारीकी जीती-जागती मिसाल मेरे सामने थी, जिससे ईश्वरके प्रति मेरा विश्वास और दृढ़ हुआ। इस विश्वमें अच्छे लोगोंकी, सत्यपर चलनेवाले ईमानदार लोगोंकी कमी नहीं है। दुनिया ऐसे ही चरित्रवान् लोगोंपर आज भी टिकी है। मैं हार्दिक मनसे उन कोच अटेण्डेण्ट महाशयकी शुक्रगुजार हूँ कि उन्होंने मेरे पुत्रकी दुःखी आत्माको फिरसे एक नयी राह दी।—**वीणा केडिया**

(५)

स्वप्नद्वारा पूर्वाभास या दैवी चेतावनी

मैं करीब २५ सालसे कलकत्तेमें रहता हूँ। घटना १९७४ ई० की है, जब मैं एक बैंकका कर्मचारी था। बैंकने मुझे एक गोदामपर काम करनेके लिये भेजा था। गोदामपर ही मेरे रहनेका भी प्रबन्ध था। मैं जलानेके लिये एक बोरेमें कुछ कोयला रख दिया करता था और हमेशा उसमें हाथ डालकर उसमेंसे कोयला निकाल लिया करता था। एक रात मुझे स्वप्न हुआ कि कोई व्यक्ति मुझसे कह रहा है कि तुम सब कोयला बोरेमेंसे बाहर गिरा दो, अन्यथा तुम्हारा जीवन नहीं बचेगा। मैंने सुबह उठकर स्वप्नपर विश्वास करके बोरा खाली कर दिया। जैसे ही बोरा उलटा किया, उसमेंसे एक बहुत बड़ा जंगली बिच्छू निकल पड़ा, जिसे देखकर ही मैं आतंकित हो गया। ऊपरके कमरेमें एक बंगाली डॉक्टर सज्जन रहते थे। मैंने उन्हें आवाज देकर उस बिच्छूको दिखाया। उन्होंने कहा कि यदि इस अत्यन्त विषैले बिच्छूने कहीं आपको डंक मार दिया होता तो दस मिनटके अन्दर ही आपका प्राणान्त हो सकता था, परंतु बचानेवाला जब तैयार है तो कौन किसको मार सकता है! उसी दिन मुझे ईश्वर तथा ईश्वरीय शक्तिपर पूर्ण विश्वास हो गया। इस घटनाके बादसे मैंने भगवद्भक्ति तथा गीता-रामायणका पाठ आदि करना आरम्भ कर दिया। भगवद्विश्वासमय जीवन बन जानेसे सब आनन्द है।—**प्रसिद्धनारायण पाण्डेय**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

नामनिष्ठा और क्षमा

भक्त हरिदास हरिनामके मतवाले थे। ये जन्मसे मुसलमान थे, पर इनको भगवान्‌का नाम लिये बिना चैन नहीं पड़ता था। फुलिया गाँवमें गोराई काजी नामक एक कट्टर मुसलमान था। उसने हरिदासकी शिकायत मुलुकपतिसे की और कहा—'इस काफिरको ऐसी सजा देनी चाहिये, जिससे सब डर जायँ और आगेसे कोई भी ऐसा नापाक काम करनेकी हिम्मत न करे। इसे सीधी चालसे नहीं मारना चाहिये। इसकी पीठपर बेंत मारते हुए इसे बाईस बाजारोंमें घुमाया जाय और बेंत मारते-मारते इसको इतनी पीड़ा हो कि उसीसे यह तड़प-तड़पकर मर जाय।' मुलुकपतिने आदेश दे दिया।

बेंत मारनेवाले जल्लादोंने भक्त हरिदासजीको बाँध लिया और उनकी पीठपर बेंत मारते-मारते उन्हें बाजारोंमें घुमाने लगे, पर हरिदासजीके मुँहसे हरिनामकी ध्वनि बन्द नहीं हुई। जल्लाद कहते—'हरिनाम बन्द करो।' हरिदासजी कहते—'भैया! मुझे एक बेंत और मारो, पर तुम हरिनाम लेते रहो। इसी बहाने तुम्हारे मुँहसे हरिका नाम तो निकलेगा।' बेंतोंकी मारसे हरिदासकी चमड़ी उधड़ गयी। खूनकी धारा बहने लगी, पर निर्दयी जल्लादोंके हाथ बन्द नहीं हुए। इधर हरिदासकी नाम-धुन भी बन्द नहीं हुई।

अन्तमें हरिदासजी बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़े। जल्लादोंने उन्हें मरा समझकर गंगाजीमें बहा दिया। गंगाजीके शीतल जलस्पर्शसे उन्हें चेतना प्राप्त हो गयी और वे बहते-बहते फुलिया गाँवके समीप घाटपर आ पहुँचे। लोगोंने बड़ा हर्ष प्रकट किया। मुलुकपतिको भी अपने कृत्यपर पश्चात्ताप हुआ, पर लोगोंमें मुलुकपतिके विरुद्ध बड़ा जोश आ गया। इसपर हरिदासजीने कहा—'इसमें इनका क्या अपराध था। मनुष्य अपने कर्मोंका ही फल भोगता है। दूसरे तो उसमें निमित्त बनते हैं। फिर यहाँ तो इनको निमित्त बनाकर मेरे भगवान्‌ने मेरी परीक्षा ली है। नाममें मेरी रुचि है या मैं ढोंग ही करता हूँ—यह जानना चाहा है। मैं तो कुछ था नहीं, उन्हींकी कृपाशक्तिने मुझे अपनी चेतनाके अन्तिम श्वासतक नामकीर्तनमें दृढ़ रखा। उनका कोई अपराध हो तो भगवान् उन्हें क्षमा करें।'

सन्तकी वाणी सुनकर सभी गद्‌गद होकर धन्य-धन्य पुकार उठे। मुलुकपति तथा गोराई काजीपर भी बड़ा प्रभाव पड़ा और वे भी नामकीर्तनके प्रेमी बन गये।

(२)

बीमारीमें भी भगवत्कृपाका अनुभव

श्रीअश्विनीकुमारदत्तके गुरुका नाम राजनारायण वसु था। ये बड़े भगवद्विश्वासी भक्त थे। जीवनके पिछले दिनोंमें इनको लकुआ मार गया था और ये राजगृहमें रहते थे। अश्विनीकुमारजी इनके दर्शनार्थ गये और गुरुकी बीमारीके कारण गम्भीर तथा उदास मुखसे वे कमरेमें प्रविष्ट हुए। उनको प्रणाम करते देख राजनारायणजी बड़े प्रसन्न हुए और 'भैया अश्विनी! अरे तुम बहुत दिनोंपर आये हो, आओ, आओ' कहकर उन्होंने एक ही हाथसे उनका आलिंगन किया। दूसरे हाथमें तो लकुआ मारा था। तदनन्तर राजनारायणजी महात्माओंकी वाणी, गीता तथा उपनिषदोंके मन्त्र सुनाने लगे। दुःखका कहीं नाम-निशान भी नहीं था। बड़ा आनन्द छाया था। यों पूरा एक पहर बीत गया। समयका पता ही नहीं लगा। तदनन्तर अश्विनीबाबूने विदा माँगते हुए कहा—'आपका स्वास्थ्य खराब सुनकर मैं पूछने आया था। मेरे मनमें बड़ी उदासी छायी थी; परंतु यहाँ तो मैंने दूसरा ही रंग देखा। कहीं दुःख मानो है ही नहीं। आप तीन महीनेसे बिछौनेपर पड़े हैं। क्या आपको कुछ भी दुःखका अनुभव नहीं होता?' अश्विनीबाबूकी बात सुनकर राजनारायणजीने हँसते हुए कहा—'भैया अश्विनी! देखो, मैं बूढ़ा हो गया। भगवान्‌की कृपासे अबतक कितने सुन्दर-सुन्दर दृश्य देखे, कितने सुन्दर सुख-आराम भोगे, अब उन्हींकी कृपासे मुझे कुछ दिन रोगशय्यापर सोनेमें क्या प्रसन्न नहीं होना चाहिये? भगवत्कृपा किसी रूपमें आये—दोनों ही स्वरूप हैं तो उसीके न!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महान् सन्तका अन्तिम सन्देश

[१९वीं शताब्दीमें एक महान् सन्त दण्डीस्वामी श्रीवासुदेवानन्दजी सरस्वती (१८५४-१९१४ ई०)-के नामसे प्रख्यात हुए। भक्तोंके बीच आप 'टेम्बे स्वामी'के नामसे जाने जाते थे। भगवान् दत्तात्रेय आपके इष्टदेव थे। आप न केवल वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन आदिके उद्भट विद्वान् थे, अपितु सिद्ध-साधक भी थे। आपका सम्पूर्ण साहित्य बारह जिल्दोंमें प्रकाशित हो चुका है। कल्याणके सन्त-अंकमें आपका जीवन-परिचय प्रकाशित है। आपने अपने जीवन-कालमें स्वाध्याय एवं प्रगाढ़ साधनाके निष्कर्षरूपमें जो अन्तिम सन्देश भक्तोंको दिया, वह सभी आत्मकल्याणके इच्छुक पाठकोंके लिये परम हितकारी है। यह सन्देश गुजरातमें गरुडेश्वरस्थित श्रीदत्तमन्दिरके प्रस्तरपर उत्कीर्णरूपमें प्राप्त है, जिसे यहाँ पाठकोंके हितार्थ प्रकाशित किया जा रहा है। —सम्पादक]

महाराजश्रीने कहा—आजतक मैं आपलोगोंको उपदेश देता रहा हूँ तथा ग्रन्थोंद्वारा लिखित उपदेश देता रहा हूँ। मैं आज आपको उसीका सारतत्त्व कहना चाहता हूँ।

'मनुष्य-जीवनका प्रमुख हेतु मुक्तिका लाभ प्राप्त करना है। इस हेतुके लिये सर्वप्रथम मनको स्थिर करना होगा। इसी कारण वर्णाश्रमविहित धर्मका शास्त्रानुसार आचरण करना आवश्यक है। इस हेतुकी प्राप्तिके लिये वेदान्तोंका श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन नियमित रूपसे प्रतिदिन करना चाहिये। प्रमुखरूपसे श्रवणकी ओर अधिक लक्ष्य केन्द्रित करना चाहिये, ताकि मन आसक्तिमुक्त हो सके। सात्त्विक प्रवृत्तियोंके कारण ही मनुष्यकी उन्नति होती है। सात्त्विक प्रवृत्तिमें रत होनेके लिये तथा सात्त्विकता प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक मनुष्यको आहारकी ओर लक्ष्य देना चाहिये। आहार हित, मित, मेध्य अर्थात् पवित्र हो, इसका ध्यान रखना चाहिये।

हमारी निजी प्रकृति सात्त्विक हुई या नहीं, इसकी कसौटियाँ इस प्रकार हैं—स्वधर्ममें दृढ़ श्रद्धा रखना, स्नान, सन्ध्या, देवपूजा, पंचमहायज्ञ आदि नियमित रूपसे करना, अतिथि-सत्कार, गोसेवा, कीर्तन-भजन, पुराणोंका श्रवण आदि करना, सभी मनुष्योंसे मीठी वाणी बोलना तथा अन्य व्यक्तिको हानि न हो—ऐसा व्यवहार करना, माता-पिताकी सेवा करना। स्त्रियोंको भी ससुरालमें रहकर सास-ससुर तथा वयस्कोंकी सेवा करना और दृढ़ श्रद्धासहित पतिकी सेवा करना इत्यादि। यदि इन सद्गुणोंको हम ग्रहण कर सकेंगे तो हमारी प्रकृति सात्त्विक होनेकी सम्भावना रहती है।

उदर-निर्वाहके हेतु हम भले ही व्यापार, खेती-बारी, नौकरी अथवा अन्य कोई उद्योग करते रहें, किंतु वेदविहित कर्म तथा गुरुकी आज्ञाका पालन करना कभी नहीं भूलना चाहिये।

सात्त्विक कर्म करनेसे हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होनेपर उपासना स्थिर होती है। स्थिर उपासनाके फलस्वरूप मनको शान्ति प्राप्त होती है। मनःशान्तिके कारण आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिसके द्वारा मोक्षलाभ होता है।'

स्वामीजीने इस प्रकार अत्यन्त सारगर्भित एवं अमृत-तुल्य उपदेश दिया। ज्ञानकी भूमिकाओंका विवरण करके उन्होंने सभी श्रोताओंसे भावपूर्ण वाणीमें निवेदन किया—

'मैंने आपको अत्यन्त संक्षेपमें सब कुछ कहा है। जो व्यक्ति तदनुसार आचरण करेगा, वह सचमुच पूर्ण सुखको प्राप्त करेगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालोपयोगी पुस्तकें (ग्रन्थाकार) रंगीन चित्रोंके साथ

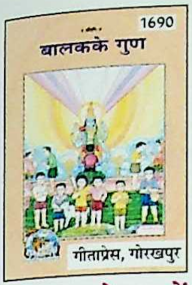

बालकके गुण (कोड 1690)—इस पुस्तकमें १९ पाठ हैं। इसमें बच्चोंको सत्य, दया, क्षमा, सहनशीलता, नम्रता, सादगी, पवित्रता, श्रद्धा, सच्चा सुख आदि अनेक सद्‌गुणोंसे कथात्मक शैली तथा सरल भाषामें परिचित कराया गया है। पुस्तकके अन्तमें कुछ पालन करनेयोग्य वेद-वचनोंका भी संग्रह किया गया है। बालकोंको संस्कारवान् बनाने एवं उनके उच्च चरित्र-गठनकी दृष्टिसे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य रु० २५ [पूर्वप्रकाशित सामान्य संस्करण (कोड 214) मूल्य रु० ५ भी उपलब्ध]।

आओ बच्चों तुम्हें बतायें (कोड 1689)—इस पुस्तकमें सूरज, धरती, हिमालय आदिके सरल भाषामें परिचयके साथ बालकोंको विभिन्न पक्षियों एवं वस्तुओंके विषयमें जानकारी दी गयी है। मूल्य रु० २० [पूर्वप्रकाशित सामान्य संस्करण (कोड 215) मूल्य रु० ४ भी उपलब्ध]।

बालककी दिनचर्या (कोड 1692)—इस पुस्तकमें बालकोंको दैनिक व्यवहारसे परिचित कराया गया है। १८ पाठोंमें विभक्त इस पुस्तकमें प्रातः जागरणसे लेकर सायंकालतकके नियमित क्रिया-कलापकी सुन्दर रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। इसके अतिरिक्त इसमें स्वास्थ्यके नियमोंके ज्ञानके साथ उनके अनुसार जीवन बनानेकी प्रेरणा दी गयी है। मूल्य रु० २० [पूर्वप्रकाशित सामान्य संस्करण (कोड 216) मूल्य रु० ४ भी उपलब्ध]।

बालकोंकी सीख (कोड 1693)—इस पुस्तकमें बालकोंके मनपर उत्तम संस्कार डालनेवाली छोटे-छोटे वाक्योंमें अत्यन्त सुन्दर शिक्षा दी गयी है। इसमें कृतज्ञ रहो, प्रतिज्ञा करो, आदर, प्रणाम करो, आज्ञापालन, घमण्ड मत करो आदि १६ पाठ हैं। इस पुस्तकका स्वाध्याय बालकके चरित्र-निर्माणमें विशेष सहायक है। मूल्य रु० २० [पूर्वप्रकाशित सामान्य संस्करण (कोड 217) मूल्य रु० ४ भी उपलब्ध]।

बालकके आचरण (कोड 1694)—यह पुस्तक १६ पाठोंमें विभाजित है। इसमें देशकी लाज, धर्मका पालन, त्यागनेयोग्य काम, स्मरण रखो, अच्छे पुरुष, बुरे पुरुष, धन, बल, बुद्धि आदिका सदुपयोग आदि विभिन्न विषयोंपर बालकोंको सुन्दर एवं व्यावहारिक शिक्षा दी गयी है। मूल्य रु० २० [पूर्वप्रकाशित सामान्य संस्करण (कोड 219) मूल्य रु० ४ भी उपलब्ध]।

बालोपयोगी पुस्तकें (पुस्तकाकार) रंगीन चित्रोंके साथ

बालकोंकी बातें (कोड 1691)—इस पुस्तकमें बातचीतके रूपमें बालकोंके लिये बहुत उत्तम उपदेश दिये गये हैं। इसमें ईश्वर-भक्ति, बालकोंके अच्छे काम, बाँटकर खाना, स्वदेशप्रेम, बालकोंका निश्चय आदि विषयोंपर सरल भाषामें अत्यन्त सुन्दर प्रकाश डाला गया है। मूल्य रु० १२

वीर बालक (कोड 1437)—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीरामके पुत्र लव-कुश, वीर अभिमन्यु, वीर बालक भरत, बालक शिवाजी आदि १९ पुराण एवं इतिहासप्रसिद्ध बालकोंके चरित्रका सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य रु० १२

गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (कोड 1451)—गुरु और माता-पिताकी भक्ति भारतीय संस्कृतिका प्रधान अंग है। इस पुस्तकमें बालक आरुणि, बालक उपमन्यु, श्रीगणेशजी, श्रवणकुमार, बालक भीष्म आदि १९ बालकोंका सुन्दर चरित्र संगृहीत है। मूल्य रु० १०

सच्चे और ईमानदार बालक (कोड 1450)—इस पुस्तकमें सुकरात, नेपोलियन, गोपालकृष्ण गोखले, महारानी विक्टोरिया आदिके बाल्यजीवनके प्रेरक प्रसंगोंका अनुपम संग्रह है। मूल्य रु० १०

दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (कोड 1449)—इस पुस्तकमें उत्कृष्ट आदर्शोंके प्रेरणास्त्रोत २३ दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाओंके छोटे-छोटे सचित्र चरित्र प्रकाशित किये गये हैं। विभिन्न सद्‌गुणोंके प्रेरक ये चरित्र बालक-बालिकाओंके लिये पठनीय तथा उपयोगी हैं। मूल्य रु० १०

वीर बालिकाएँ (कोड 1448)—इस पुस्तकमें १६ वीर बालिकाओंके सुन्दर तथा आदर्श चरित्र प्रकाशित किये गये हैं। ये चरित्र अपूर्व त्याग तथा बलिदानके सजीव चित्र हैं। इनका स्वाध्याय बालक-बालिकाओंके मस्तिष्कपर उत्कृष्ट आदर्शोंकी अमिट छाप अंकित कर देता है। मूल्य रु० १०

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् श्रीद्वारकानाथजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—होता है वही और होगा वही, जो भाग्यचक्रका निर्माण करनेवाले नित्य निर्भ्रान्त, सदा सावधान, परम न्यायशील, दयासागर प्रभुने रच रखा है। तुम अपने किसी भी बलसे न उसे बदल सकते हो और न उससे बच सकते हो।

तुम कितना भी रोओगे, चिल्लाओगे, झल्लाओगे, कोसोगे, बकोगे, झकोगे—होगा कुछ नहीं। तुम्हारे लिये जो विधान बन चुका है, उसे तुमको भोगना ही पड़ेगा—कराहकर भोगो या सराहकर भोगो।

प्रभु नित्य मंगलमय हैं, उनका कोई भी विधान अमंगलरूप तो हो ही नहीं सकता; मंगलसे रहित भी नहीं हो सकता। भले ही वह तुम्हें अपनी सीमित तथा अदूरदर्शिनी दृष्टिसे या विपरीत दृष्टिसे प्रतिकूल अथवा अमंगलरूप दिखायी दे। प्रतिकूल या अमंगलरूप दीखनेपर भी उसे भोगना तो पड़ेगा ही, पर उसमें तुम्हें दुःख होगा, पीड़ा होगी और बड़ी मनोवेदना होगी।

याद रखो—प्रभु नित्य मंगलमय होनेके साथ ही सर्वज्ञ हैं—तुम्हारा वास्तविक हित किस बातमें है, तुम्हारी यथार्थ आवश्यकता क्या है, इसको प्रत्यक्ष जानते हैं; वे सर्वशक्तिमान् हैं—तुम्हारी प्रत्येक आवश्यकताको पूर्ण करनेमें सहज समर्थ हैं, सदा निर्भ्रान्त हैं—उनसे कभी कोई प्रमाद या भूल नहीं होती और वे सहज ही तुम्हारे परम सुहृद् हैं—बिना किसी हेतुके नित्य-निरन्तर तुम्हारा हित ही चाहते हैं; इसलिये उनका कोई भी विधान चाहे तुम्हें वह कैसा भी लगे—सर्वथा तुम्हारे लिये हितकारक ही है। इसपर विश्वास कर लोगे तो तुम समस्त भयोंसे तथा समस्त शोकोंसे सर्वदा—सर्वथा मुक्त रहकर परम आनन्द और शाश्वत शान्तिका अनुभव कर सकोगे।

याद रखो—जगत्में प्रत्येक मनुष्य भयग्रस्त है और शोकसंतप्त है; क्योंकि यहाँके सभी प्राणिपदार्थ विनाशशील हैं। विनाशकी आशंकासे मनुष्य सदा भयभीत रहता है और विनाश हो जानेपर शोकसंतप्त हो जाता है। अपनी मानी हुई कोई भी चीज—सम्बन्धी, मनुष्य, प्राणी, वस्तु, स्थिति, मान, मर्यादा, शरीर, स्वास्थ्य आदिका नाश न हो जाय—यह 'भय' सबको लगा है और किसी भी अपनी मानी हुई वस्तुका विनाश हो जानेपर 'शोक' होता है। इस भय और शोकसे कोई भी मुक्त नहीं है। यदि तुम मंगलमय प्रभुके मंगलविधानमें विश्वास कर लोगे तो इस भय और शोकसे सर्वथा मुक्त हो जाओगे; क्योंकि फिर तुम्हारी न तो किसी वस्तुविशेषमें ममता रह जायगी और न तुम्हें वस्तुविनाशमें किसी प्रकारके अमंगलकी आशंका ही रहेगी।

अभिनिवेशके ये दो ही रूप हैं, जिनसे सब त्रस्त हैं—वस्तुके विनाश होनेसे पूर्व 'विनाशका भय' और वस्तुके विनाश होनेके बाद 'विनाश हो जानेका शोक।' प्रभुपर विश्वास करनेवालेके लिये भय (मोह) और शोक दोनों ही मर जाते हैं—**'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।'**

तुम्हें फलरूपमें जो कुछ प्राप्त होता है, सब मंगलमय प्रभुके मंगलविधानसे प्राप्त होता है। अतएव जो कुछ भी अनिच्छा या परेच्छासे प्राप्त हो, उसे मंगलमय प्रभुकी मंगलमयी इच्छासे निर्मित मंगलविधान समझकर उसमें अपने परम मंगलका विश्वास करो और सदा मंगलमय प्रभुके कृतज्ञ रहकर उनका मंगलमय स्मरण करते रहो। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिकूलताका नाश

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रतिकूलतामें ही दुःख है, अतएव दुःखोंके आत्यन्तिक अभावके लिये प्रतिकूलताका परित्याग करना चाहिये। इसके लिये भक्ति और ज्ञान—ये दो उपाय हैं और ये दोनों ही उत्तम हैं। भगवान्‌ने (गीता अध्याय ३ श्लोक ३ में) अधिकारी-भेदके अनुसार ज्ञानियोंके लिये ज्ञानयोग और भक्तोंके लिये कर्मयोग—ये दो मार्ग बतलाये हैं; तथापि सर्वसाधारणके लिये भक्तिका उपाय सुगम है। ईश्वर-भक्तिके प्रतापसे सम्पूर्ण दुःखोंकी मूल प्रतिकूलताका अत्यन्त अभाव हो जाता है। ईश्वर-भक्तकी किसी भी जीवमें और किसी भी पदार्थमें प्रतिकूलता नहीं रहती; क्योंकि वह समझता है कि ईश्वर ही सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके हृदयमें जीवरूपसे विराजमान हो रहे हैं, अतएव किसीसे भी द्वेष करना परमेश्वरसे ही द्वेष करना है—

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन्।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति॥

(श्रीमद्भा० ३। २९। ३४)

इसके अतिरिक्त वह सम्पूर्ण पदार्थोंकी उत्पत्ति और विनाशमें भी ईश्वरकी अनुकूलताका ही दर्शन करता है। इस स्थितिमें वह किससे कैसे द्वेष करे? जीवोंके कर्मोंके अनुसार ही उनके सुख-दुःख-भोगके लिये परमेश्वर सम्पूर्ण पदार्थोंको रचते हैं। जो पुरुष इस प्रकार समझता है, वह ईश्वरके किये हुए प्रत्येक विधानमें वैसे ही प्रसन्नचित्त रहता है, जैसे मित्रके किये हुए विधानमें मित्र और पतिके विधानमें उत्तम स्त्री रहती है। उत्तम पतिव्रता स्त्री पतिकी अनुकूलतामें ही अपनी अनुकूलता जानती है अर्थात् पतिकी अनुकूलता ही उसके लिये अपनी अनुकूलता है। पति जो भी कुछ भली-बुरी चीज लाता है अथवा जो कुछ भी चेष्टा करता है, वह उसीमें प्रसन्न रहती है। इसी प्रकार भगवान्‌का भक्त भी 'भगवान् जो भी कुछ करते हैं, हमारे अच्छेके लिये करते हैं' यह समझकर उनकी की हुई प्रत्येक चेष्टामें एवं पदार्थोंकी उत्पत्ति और विनाशमें सदा प्रसन्नचित्त रहता है, यानी परेच्छा या अनिच्छासे जैसे भी अच्छे-बुरे पदार्थोंकी एवं सुख-दुःखोंकी प्राप्ति होती है, वह सब ईश्वरकी इच्छासे होनेके कारण ईश्वरकी लीला है, इस प्रकार समझकर वह हर समय आनन्दमें मग्न रहता है। वस्तुतः पतिव्रता स्त्रीका उदाहरण भी ईश्वरके साथ लागू नहीं हो सकता; क्योंकि मनुष्यमें स्वार्थ रहता है एवं ज्ञानकी कमी होनेके कारण उससे भूल भी हो सकती है, किंतु ईश्वर निर्भ्रान्त है, इसलिये उसकी लीला न्याय और ज्ञानसे पूर्ण है तथा उसमें जीवोंका हित भरा हुआ है।

विचार-दृष्टिसे देखा जाय तो सांसारिक पदार्थोंमें होनेवाली अनुकूलता भी त्याज्य है; क्योंकि सांसारिक सुख क्षणिक, नाशवान् एवं परिणाममें दुःखरूप होनेके कारण सांसारिक अनुकूलतामें होनेवाला सुख भी वस्तुतः दुःख ही है। जहाँ संसारके पदार्थोंमें अनुकूलता होती है, वहीं उनके प्रतिपक्षमें प्रतिकूलता रहती है और जहाँ अनुकूलता-प्रतिकूलता है, वहीं राग-द्वेष भी पैदा हो जाते हैं। राग-द्वेषसे काम-क्रोधादि अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न होकर महान् दुःखोंकी उत्पत्ति होती है अतएव सांसारिक अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनोंको ही अनन्त दुःखोंका कारण समझकर त्याग करना चाहिये। इसीलिये भगवान्‌ने गीता (अ० १३ श्लोक ९)-में कहा है कि इष्ट और अनिष्टकी प्राप्तिमें सदा-सर्वदा समचित्त रहना चाहिये।

इस प्रकारकी समता ईश्वरकी शरण होनेसे अनायास ही प्राप्त हो जाती है। 'ईश्वर सुहृद् हैं, दयालु हैं, प्रेमी हैं और ज्ञानस्वरूप हैं'—इस प्रकार समझनेवाला पुरुष ईश्वरको कभी नहीं भूलता तथा अपनी इच्छाका सर्वथा त्याग करके केवल एक ईश्वरकी इच्छाके ही परायण हो जाता है। वह अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको ईश्वरको अर्पण कर देता है, ईश्वरकी कठपुतली बन जाता है। ईश्वर जब जैसा कराता है, तब वैसा ही करता है, अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता। वह ईश्वरीय-विधानमें सदा-सर्वदा प्रसन्नचित्त रहता है। इसीका नाम शरण है।

सुखकारक पदार्थमें अनुकूलता और दुःखकारक पदार्थमें प्रतिकूलता स्वभावसिद्ध है। विचार करनेसे संसारका कोई भी पदार्थ वास्तवमें सुखकारक नहीं है। पूर्ण आनन्दस्वरूप एवं परम आनन्ददायक, परम हितकारी केवल एक परमात्मा ही है, इसलिये वास्तवमें परमात्मामें ही अनुकूलता होनी चाहिये। जो इस रहस्यको समझता है, वह परमात्माके अनुकूल बन जाता है और उसकी सम्पूर्ण क्रियाएँ परमात्माके अनुकूल हो जाती हैं। वह उन लीलामयकी प्रत्येक लीलामें उन लीलामयका ही दर्शन करता रहता है, इससे उसके लिये प्रतिकूलताका एवं सम्पूर्ण दुःखोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। वह उन प्रेमास्पद परमात्माको और उन लीलामयकी लीलाको अपने परम अनुकूल देखकर प्रतिक्षण मुग्ध होता रहता है।

ज्ञानकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो सांसारिक अनुकूलता और प्रतिकूलता वास्तवमें कोई वस्तु ही नहीं ठहरती; क्योंकि संसार स्वप्नवत् है और स्वप्नके पदार्थ सब मायामय हैं, इसलिये उससे उत्पन्न होनेवाली अनुकूलता और प्रतिकूलता भी मायामयी ही हैं। जब मनुष्य स्वप्नसे जागता है, तब स्वप्नके किसी पदार्थको भी नहीं देखता और स्वप्नमें प्रतीत होनेवाले पदार्थोंको मायामय समझता है, इसी प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुष संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंको स्वप्नसदृश मायामय समझ लेता है, तब अनुकूलता और प्रतिकूलताकी कुछ भी सत्ता नहीं रह जाती। फिर एक चेतन विज्ञानानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त किसी भी वस्तुकी उसको प्रतीति नहीं होती। उसकी दृष्टिमें एक सर्वव्यापी नित्य विज्ञानानन्दघन ही रहता है और वह विज्ञानानन्दघन (परमात्मा) निर्दोष और सम है। इसलिये जिसकी स्थिति उस विज्ञानानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे हो जाती है, उसकी दृष्टि भी सम्पूर्ण संसारमें सम हो जाती है और सांसारिक अनुकूलता तथा प्रतिकूलताकी दृष्टिका अत्यन्त अभाव हो जाता है। जब अनुकूलताका और प्रतिकूलताका अत्यन्त अभाव हो जाता है तथा राग-द्वेषादि सम्पूर्ण अनर्थोंका एवं सम्पूर्ण दुःखोंका भी अत्यन्त अभाव हो जाता है तथा उसे परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। वास्तवमें वह परम आनन्द ब्रह्म ही परम अनुकूल है एवं मछलियोंके जीवनाधार—जलकी तरह वही सबका आत्मा होनेसे अपना आत्मा है—**'हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम्।'** (श्रीमद्भा० ५।१८।१३) जब इस प्रकारका ज्ञान हो जाता है, तब फिर कहीं उसकी प्रतिकूल बुद्धि हो ही नहीं सकती; क्योंकि अपने-आपमें प्रतिकूलता नहीं होती। इस प्रकारके ज्ञानके द्वारा या उपर्युक्त ईश्वर-भक्तिद्वारा सम्पूर्ण दुःखोंकी मूलभूत प्रतिकूलताका सर्वथा नाश करना चाहिये।

'ऐसी मूढ़ता या मनकी'

ऐसी मूढ़ता या मनकी।
परिहरि राम-भगति-सुरसरिता, आस करत ओसकनकी॥ १॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घनकी।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचनकी॥ २॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तनकी।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आननकी॥ ३॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि! जानत हौ गति जनकी।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पनकी॥ ४॥

[विनय-पत्रिका]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मकल्याण और विश्वकल्याण

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

शास्त्रोंका यथार्थ अभिप्राय समझकर धर्माधर्म-व्यवस्था जानकर आचरण करनेसे लौकिक-पारलौकिक सुख होता है। बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र, अमलात्मा, परमहंस, वीतरागादि महात्माओंका स्वभाव ही भगवान्का भजन करना हो जाता है **'स्वभावो भजनं हरेः'** , किंतु इनमें भी कुछ आप्तकाम होते हुए भी धर्मानुष्ठानमें लगे रहते हैं। विश्वकी कल्याणकी कामनासे प्रेरित होकर वे दुनियाँके बखेड़ेमें पड़ते हैं। ऐसे लोगोंको विशेष भगवद्भजन अपेक्षित होता है। आखिर यह दुनियाँका बखेड़ा है न! इसका सम्बन्ध भयानक एवं उत्तेजक है। कुछ ऐसे परमात्मनिष्ठ होते हैं, जिन्हें किसीसे कुछ सरोकार नहीं रहता। वे दुनियाँकी चिन्ता नहीं करते, क्योंकि वे समझते हैं कि दुनियाँ कुत्तेकी पूँछके समान है, उसमें कितना ही तेल लगाया जाय, घी लगाया जाय, बाँसकी नलीमें डालकर सीधा किया जाय, पर रहेगी वह टेढ़ीकी टेढ़ी। महानुभावोंका प्रयत्न निष्फल नहीं हुआ, बहुतोंको लाभ हुआ, पर दुनियाँकी रफ्तार नहीं बदली। प्रह्लादजीने भगवान्से कहा—प्रभो! मैं इन संसारके प्राणियोंको दुःखी देखकर अकेला मुक्त नहीं होना चाहता; इसपर भगवान्ने कहा—प्रह्लाद! सबका दुःख छूट जाय, सबकी मुक्ति हो जाय, यह बड़ा कठिन है। एक श्रोत्रिय, जो आज धर्माधर्मको जाननेवाला है, वही कल नीच-से-नीच कर्ममें प्रवृत्त हो सकता है—***'पाइ सुरदुर्लभ पदादपि गिरत हम देखे हरी।'*** ऊँचे-से-ऊँचे पदपरसे लोग गिर जाते हैं। जब एक जीवकी मुक्तिमें इतना झंझट है, तब फिर सब जीव मुक्त हो जायँ, यह कैसे हो सकता है? अतः वेदान्त कहता है कि आँख खोले, स्वप्नका संसार मिटे तो मुक्ति हो, किंतु यह निद्रा भंग नहीं होती, स्वप्न नहीं मिटता और आँख नहीं खुलती, तो सबकी मुक्ति कैसे होगी?

योगवासिष्ठमें वसिष्ठजीने रामसे कहा—हे राम! एक रजकणमें मुझे अनेक ब्रह्माण्ड परिलक्षित होते हैं। एक बरगदके वृक्षमें बीज है, उस बीजमें वृक्ष और वृक्षमें पुनः बीज, पुनः वृक्ष, यानी एक बीजमें करोड़ों वृक्ष हैं। इस प्रकार अनन्तानन्त ब्रह्माण्डमें अनन्तानन्त जीव हैं, इन सबकी मुक्ति कैसे होगी? इसलिये महात्मा लोग ऐसा विचारकर विजन वनमें निवास करते हुए मौन धारण कर लेते हैं। ठीक ही है दूसरेका कल्याण भी तभी कर सकते हैं, जब अपना कल्याण कर लें। नहीं तो **'एकहिं एक सिखावत तुलसी जपहिं न राम॥'** **'स्वयं तीर्णः परान्तारयति, स्वयं भ्रष्टः परान् भ्रंशयति, स्वयं नष्टः परान्नाशयति।'** अतः दुनियाँके कल्याणको छोड़ भगवत्परायण होकर पहले अपना आत्मकल्याण प्राप्त करे, फिर दुनियाँके कल्याणकी चिन्तामें पड़े। प्रह्लादजी स्वयं तीर्ण हुए, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक प्रभुको प्राप्त कर लिया, कृतकृत्य हो गये, तब आये विश्वकल्याणके क्षेत्रमें। **'कामानां हृद्यसंरोहः भवेदेष वरो मम॥'** ऐसे परमनिष्काम होते हुए भी वे अपनी नित्यकी उपासनामें कहा करते थे—'विश्वका कल्याण हो, खल भी प्रसन्न हो जाय, सबका मन भद्र वस्तुकी ओर प्रवृत्त हो, हम सबकी अहैतुकी मति भगवान् अच्युतमें प्रविष्ट हो—**'स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि मिथः शिवं धिया। मनश्च भद्रं भजतामधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥'** पर यह कामना नहीं है। जब भक्तराज जैसे निष्काम लोग भी इस भावनाको निष्कामताका बाधक नहीं मानते, तब और कोई इस विषयमें क्या कह सकता है! जैसे भगवान्में राग वैराग्यका बाधक नहीं, किंतु वैराग्यका भी परम फल है, वैसे ही निष्काम कर्मोंका यह परम फल है कि प्राणी संकीर्णतासे मुक्त होकर विश्वकल्याण एवं धर्मरक्षणका शुभानुसन्धान करने लगे। विषयेन्द्रियजनित सम्प्रयोग क्षुल्ल सुखकणोंकी कामना ही निन्द्य है। अचिन्त्य अनन्त परमानन्दसिन्धु भगवान्के सम्मिलनकी कामना तो अत्यन्त निष्काम होनेका परम फल है। अनन्त, अखण्ड निःसीम बोधस्वरूप आत्माको कार्यकारणसंघात लक्षण-उपाधिके भीतर सीमित करके विविध व्यष्टि हितोंकी कामना स्वार्थ-परायणता कहलाती है। स्थूल देहको स्व मानकर उसके प्रयोजन खाने-पीने, पहनने आदिको साधारण रूपसे प्राणी स्वार्थ समझता है। सूक्ष्मशरीरको स्व मानकर उसके प्रयोजनको देखने, सुनने, सूँघने आदिको स्वार्थ समझा जाता है। कारणशरीर या आनन्दमयको स्व मानकर उसके प्रयोजन सोने, आनन्द लेने, प्रिय, मोद, प्रमोद आदिको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वार्थ कहा जाता है। अर्थात् जाग्रत्के सभी आनन्द और उसके साधन, स्वप्नके आनन्द और तत्साधन सुषुप्ति सभी अनात्मा या व्यष्टि या परिच्छिन्न आत्माको स्व जानकर उसीके अर्थको स्वार्थ मानकर प्राणी फँसता है। व्यष्टि-समष्टि सर्वोपाधिविमुक्त अखण्ड बोध ही आत्मस्वरूप है और वही असली स्व है, उसका प्रयोजन अध्यारोपित सकल अनर्थका निबर्हण और स्वरूपभूत परमानन्दकी प्राप्ति ही है। अत: वही असली स्वार्थ है। उसके लिये अपेक्षा है पहले व्यष्टि अभिमानको मिटाया जाय। व्यष्टि अभिमान मृत्यु है, समष्टि अभिमान अमृत है। राग, द्वेष, हिंसा आदि अनेकों अनर्थोंका मूल व्यष्टि अभिमान ही है। जिसने समष्टि विश्वको आत्मा या आत्मीय मानना सीख लिया, वह जीते-जी ही मृत्युसे मुक्त हो अमृत हो जाता है। द्वेष, दम्भ, कपट आदि उसके न जाने कहाँ चले जाते हैं। जैसे व्यष्टि देहादिमें अभिमान रखनेवाला व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितके लिये सचेष्ट होता है, वैसे ही समष्टि अभिमानवाला व्यक्ति विश्वके हितके लिये सचेष्ट होने लगता है। इसके अतिरिक्त वह विश्वको केवल जड़ समझकर ही उसकी सेवामें नहीं लगता, किंतु भगवान्‌का ही स्थूलशरीर मानकर विश्वकी सेवा करता है। इसलिये अहंकार-ममकारसे शून्य होकर, सफल-निष्फल होनेकी परवाह न करके, सुयश-दुर्यश, अपमान-सम्मानका ध्यान न रखकर ही वह सेवामें प्रवृत्त होता है। साथ ही विश्वको उसके हितधर्ममें प्रवृत्त कराना चाहता है। इस दृष्टिसे अथवा किसी भी दृष्टिसे धर्मकी जय या विश्वके कल्याणकी कामना-वैसे ही कामना नहीं कही जा सकती, जैसे प्रभुचरणारविन्द-मकरन्दकी तृष्णा तृष्णाकोटिमें परिगणित नहीं होती। कहनेका अभिप्राय यह कि कोई भी वस्तु विषय, आधार एवं स्वरूपसे ही उत्कृष्ट-अपकृष्ट समझी जाती है। जैसे अग्निहोत्रादि स्वरूपसे, गोपियोंका काम विषयकी महिमासे एवं श्रीकृष्णकी चोरी आधारकी महिमासे उत्कृष्ट है। एक भक्त कहता है—'हे श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन! जो लोग आपकी नवनीतचोरता इत्यादिका वर्णन करते हैं, आप उन्हें शीघ्र ही अपना रूप दे देते हैं; क्योंकि वह यदि अलग रहेगा, तो निन्दा करेगा।' अत: प्रह्लादादि पूर्णकाम होनेपर भी जो लोककल्याण कर रहे हैं, वह इसलिये कि परमप्रियतम प्रेमास्पद प्राणधन प्रभुको जो अच्छा लगे, वह करना हमारा धर्म है। भगवान् निर्गुण, निराकारसे सगुण साकार होते हैं किसलिये? इसलिये कि धर्मकी स्थापना हो, साधुओंकी रक्षा हो, दुष्टोंका नाश हो इत्यादि।

कुछ लोग पाना सब कुछ चाहते हैं, पर साधन एक भी नहीं करना चाहते, फिर भी यदि भगवत्-शरणागति हो तो सब काम बन सकता है और यदि साधन सब हो, भगवत्-शरणागति न हो तो सब व्यर्थ है। केवल विश्वासपूर्वक प्रभुका सहारा लेनेसे भुक्ति, मुक्ति सब कुछ मिल सकता है। विभीषणको राज्य मिला। जिसे दस मस्तक काटनेपर शिवजीने रावणको दिया था, उसी राज्यको प्रभुने सकुचाते हुए विभीषणको दिया, जैसे किसी अतिथिको संकोचपूर्वक कुशासन दिया जाता है। आते ही प्रभुने विभीषणको 'लंकेश' शब्दसे सम्बोधित किया। कल कारखानेवाले कपड़ेको बड़ी सावधानीसे रखते हैं; क्योंकि यदि कपड़ेकी एक कोर भी छू गयी, तो कल सम्पूर्ण कपड़ेको खींच लेती है, इसी प्रकार भगवान् भी जरा सम्बन्ध हुआ कि आत्मसात् कर लेते हैं।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो पाना तो सबकुछ चाहते हैं, पर साधन एक भी नहीं करना चाहते और भगवान् पर विश्वास भी नहीं करते। उनके लिये **'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।'** किसी भी प्रकारसे भगवान्‌का पवित्र मंगलमय नाम ही कल्याणकर होता है। तभी तो भक्तलोग भगवान्‌से कहते हैं—प्रभो! मैं अपनेको नहीं जानता, आपको नहीं जानता, अपने और आपके सम्बन्धको नहीं जानता। मैं अल्पज्ञ हूँ, अज्ञानी हूँ। यदि पागल अपने हाथों तलवारसे अपना सिर काटे, तो वह दयाका पात्र है क्रोधका नहीं। वैसे ही हम यदि आपको नहीं मानते, धर्मका विरोध करनेमें प्रसन्न होते हैं, अपनेको धन्य-धन्य समझते हैं, तो यह हमारा पागलपन है। यदि हम आपको भूलें, तो हमारी कोई बड़ी गलती नहीं, पर यदि आप हमें भूलते हैं, तो वह आपकी बहुत बड़ी गलती है। आप जीवोंके मित्र हैं। श्रुतियोंने बतलाया है—जीवात्मा और परमात्मा—दोनों ही सुपर्ण—शोभन पंखवाले एक जातिके पक्षी हैं, इसलिये भी उन दोनोंका परस्पर पूर्ण मैत्री है। परमात्मा पालक सखा है, जीवात्मा बालक सखा है, दोनोंकी ही ***'चेतन अमल सहज सुखरासी'*** रूपसे ख्याति है। कहीं साजात्य, सख्य होनेपर भी दूर-दूर देशोंमें रहनेके कारण सम्बन्ध कमजोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है, परंतु यहाँ तो एक ही शरीररूप वृक्षपर जीवात्मा-परमात्मा दोनों ही पक्षी रहते हैं। अतः साजात्य, सख्य, सादेश्य—तीनों तरहके सम्बन्ध दृढ़ हैं। यद्यपि भगवान् जड़वर्गसे सर्वदा असंस्पृष्ट, निर्लेप रहते हैं तथापि चिद्रूप जीवात्माके साथ तो भगवान्का तादात्म्य या अभेद सम्बन्ध रहता ही है। अतः साजात्य, सख्य, सादेश्यके समान ही सायुज्य भी सर्वदा ही रहता है। जैसे कभी घटाकाश, मठाकाश, महाकाशसे वियुक्त नहीं होता, तरंग जलसे वियुक्त नहीं होती, घट-शरावादि मृत्तिकासे वियुक्त नहीं होते, कटक-मुकुटादि सुवर्णसे पृथक् नहीं होते, वैसे ही जीवात्मा कभी भी भगवान्से अलग नहीं होता। अतः नाथ! हम तो बालक सखा हैं, यदि बालकपन करें तो कोई आश्चर्य नहीं, किंतु यदि आप पालकसखा होकर बालकपन करें, तो यह आपकी बड़ी भारी भूल है। प्रभो! आपको यह स्मरण रखना चाहिये कि ***'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥'*** (रा०च०मा ४।७।१) इत्यादि।

इसलिये हनुमान्जी भी कहते हैं—***'मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥'*** (रा०च०मा० ४।२।८) भगवान् शंकराचार्य भी यही कहते हैं कि **'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।'** तुलसीदासजी भी कहते हैं कि नाथ! मेरा मन मछली है, यह विषयरूप जलसे कभी भी अलग नहीं होता। आप एक दिन शिकार खेलें, अनुकम्पाकी डोर बना लें। इस प्रकार आपका खेल और मेरा परम कल्याण हो जायगा— ***'बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक। ताते सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥ कृपा-डोरि बनसी पद अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो। एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥'*** (विनय-पत्रिका १०२) श्रुतियोंने भगवान्को ही जीवोंका परममित्र और सखा बतलाया है। परमस्नेहीको ही मित्र कहा जाता है, तन्मूलक ही सख्य होता है। नवधाभक्तिमें भी सख्य भक्तिका बड़ा ऊँचा स्थान है। सख्यके पश्चात् केवल आत्मनिवेदन ही अवशिष्ट रह जाता है। श्रीदामा, सुदामा, उद्धव, अर्जुन आदि भगवान् कृष्णके सखा एवं मित्र थे। गोपांगनाएँ भगवान्की सखी थीं, कृष्ण उनके सखा थे, इनकी अपार प्रीति अत्यन्त ही सुप्रसिद्ध है। सख्य भावमें कितनी स्निग्धता है? अर्जुनने कहा है—प्रभो! मेरी अपकृतियोंको आप वैसे ही क्षमा करें, जैसे सखा अपने सखाके अपराधको क्षमा करता है—

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।

(गीता ११।४४)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

यह श्रुति बतलाती है कि जीव और ईश्वर दोनों सुपर्ण, एक दूसरेके सखा हैं। वे सदा एक ही स्थानपर मिले हुए रहते हैं। उनमेंसे एक जीवरूप सुपर्ण कर्मफलका भोक्ता बनता है, दूसरा ईश्वररूपी सुपर्ण केवल साक्षी बना रहता है। ईश्वर परमनिरपेक्ष होता हुआ भी जीवका परमहितैषी और सच्चा साथी है। स्वर्ग-नरक, गर्भवासादि किसी भी समय जीवका साथ परमेश्वर नहीं छोड़ता, प्रत्युपकारनिरपेक्ष उपकार करनेवाले एक भगवान् ही हैं। ***'नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥'*** रामके समान कोई भी नीति, प्रीति, परमारथ, स्वारथको नहीं जानता। सुग्रीवसे बात करते हुए श्रीरामचन्द्रने मित्रके स्वरूप और कर्तव्योंका इस प्रकारसे निर्देश किया है—सुग्रीव! जो लोग मित्रके दुःखमें दुःखी नहीं होते, उनको देखनेसे भी पाप लगता है। मित्र वही होता है, जो अपने पहाड़-जैसे दुःखको भी रजके समान जानता है और मित्रके रजसमान दुःखको भी पर्वतके समान जानता है। जिनके सहज भाव इस तरहके नहीं होते, उनसे मैत्री करना व्यर्थ है। मित्रका कर्तव्य होता है कि वह अपने मित्रको कुपथसे हटाकर सुपथमें लगाये, मित्रके गुणोंको प्रकट करे और दोषोंको छिपाये, किसी वस्तुके लेने-देनेमें शंका न करे, अपने बलके अनुसार सदा मित्रका हिताचरण करे, विपत्तिकालमें सौगुना अधिक स्नेह करे—श्रुति एवं सन्त मित्रका यह गुण बतलाते हैं। बहुत लोग सामने तो बहुत मीठी-मीठी बात बनाया करते हैं, पीछे मनमें कुटिलता और अहितकी भावना बनी रहती है। जिसका चित्त साँपकी गतिके समान कुटिल होता है, ऐसे कुमित्रको छोड़ देनेसे ही कल्याण होता है। सेवक शठ हो, राजा कृपण हो, नारी कुत्सित हो, मित्र कपटी हो तो इन्हें शूलके समान ही समझना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

मानव-जीवनके सम्पूर्ण क्षेत्रमें व्याप्त अनादिकालीन सनातन परम्परासे प्रचलित नित्य, सर्वभूतमयी, धर्ममयी सुसंस्कृत 'विचार और आचारप्रणाली' का नाम भारतीय संस्कृति या आर्यसंस्कृति है। यही सर्वांगपूर्ण तथा चिरजीवी आद्य मानव-संस्कृति है।*

इस संस्कृतिके परम कल्याणकारी मुख्य लक्षण हैं—अनन्त विभिन्न विचित्र जगत्के समस्त प्राणि-पदार्थोंमें एक नित्यसत्य परमात्माको देखना, समस्त विषमताओंमें नित्य सर्वत्र परिपूर्ण सत्यके दर्शन करना, सतत मृत्युके प्रवाहमें बहते हुए विश्वमें नित्य अमर-अविनाशी सच्चिदानन्द-तत्त्वकी उपलब्धि करना, व्यावहारिक जगत्की व्यवहार-भिन्नताका स्वीकार तथा तदनुरूप विषम आचरण करते हुए भी समस्त चराचरमें समरूपसे स्थित एक आत्मामें नित्य एकत्वकी अनुभूति करना, सहज ही सबके हितमें रत रहते हुए संयमित जीवनके द्वारा जीवनके चरम और परम लक्ष्य परमात्माकी ओर—पूर्णत्वकी ओर अविराम गतिसे अग्रसर होते रहना एवं अपने निर्दोष तथा निष्कामभावसे आचरित सम्पूर्ण कर्मोंके द्वारा भगवान्को पूजकर मोक्ष, परम शान्ति अथवा भगवत्साक्षात्कार प्राप्त कर लेना।

इसीसे भारतीय संस्कृतिमें मानव यथायोग्य अधिकारानुसार प्रचुर सुख-समृद्धि, सौभाग्य-सम्पत्ति, अधिकार-ऐश्वर्य, शक्ति-सामर्थ्य, विद्या-बुद्धि, कला-कौशल, यश-मान आदि भौतिक पदार्थोंका अर्जन करता है, पर वह उनका न तो संग्रह करता है और न अपने व्यक्तिगत भोग-विलासमें ही उनका उपयोग करता है, वरन् वह उन समस्त पदार्थोंको प्राणिमात्रमें स्थित परमात्माकी सेवामें देश, जाति, जनमानव या प्राणिमात्रके माध्यमसे समर्पित कर देता है। उसका समस्त अर्जन उत्सर्ग के लिये ही होता है। इसीलिये 'अर्थ' एवं 'काम' की अवहेलना न करके उन्हें धर्मनियन्त्रित रखकर मोक्षकी ओर अग्रसर होते रहनेकी साधन-पद्धति स्वीकृत की गयी है। भारतीय संस्कृतिमें अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्षको 'पुरुषार्थ-चतुष्टय' कहा गया है। 'धर्म' सम्मत 'अर्थ-काम' हों और लक्ष्य हो 'मोक्ष'। मनु महाराज कहते हैं कि ऐसे अर्थ और कामको, जो धर्मके विरोधी हों, परित्याग कर देना चाहिये—

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।

(मनुस्मृति ४। १७६)

धर्म वस्तुतः वही है, जो मनुष्यकी जीवनधाराका मुख भोग-जगत्से मोड़कर भगवान्की ओर कर दे एवं जिससे जीवन-प्रवाह सतत अविराम अविच्छिन्न गतिसे निरन्तर समुद्रकी ओर बहनेवाली गंगाजीकी धाराके सदृश भगवान्की ओर ही बहता रहे—

भारतीय संस्कृति मनुष्यको धर्महीन, जडवादी, कामोपभोगपरायण, संकुचित स्वार्थपरक, देहात्मवादी और नास्तिक नहीं देखना चाहती। भारतीय संस्कृति चाहती है—मनुष्य धर्मपरायण हो, परार्थ त्याग करनेवाला हो। व्यक्तिगत जीवनके स्वार्थ, भोग-विलासकी अभिलाषा, किसी भी प्रकारसे यश-मान-प्रतिष्ठाकी चाह, दूसरेके विनाशमें अपना विकास देखना, दूसरेके दुःखको अपना सुख समझना, द्वेष, द्रोह, वैर, घृणा, हिंसा, मदान्धता, परापकारप्रियता, असहिष्णुता आदि दोषोंका सर्वथा त्याग करके अद्वेष्टापन, मैत्री, करुणा, अहिंसा, सत्य, सेवा, क्षमा, दया, तितिक्षा, तप, परम-सहिष्णुता, इन्द्रियसंयम, चित्तसंशुद्धि आदि सद्‌गुण तथा सद्‌विचारोंका सेवन करते हुए समस्त द्वन्द्वोंसे ऊपर उठकर भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करके सबमें सुख वितरण कर भगवान्को प्राप्त करे। मनुष्यमें

* ऐसा होनेपर भी भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनतामें और उसकी नित्य महत्तामें अनास्था उत्पन्न करनेवाले तीन भ्रम बहुत कुछ कारण बने हैं—१-आर्यलोग बाहरसे आये, २-क्रमविकासवाद या उत्क्रान्तिवादका सिद्धान्त और ३-चार हजार वर्ष पहलेका इतिहास नहीं मिलता। ये तीनों सत्यसे सर्वथा दूर अतएव भ्रममात्र हैं, जो भारतको अपने गौरवसे गिरानेकी दुरभिसन्धिसे या अज्ञानसे प्रचारित किये गये हैं। इन तीन महाभ्रमोंसे सर्वथा बचनेकी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसुरीभाव, पाशविक भावका सर्वथा अभाव हो। वह सचमुच मनुष्य बनकर देवत्व और अन्तमें ईश्वरत्वको प्राप्त कर ले। यही भारतीय संस्कृतिका महान् उद्देश्य है।

भारतीय संस्कृतिमें धनकी उपेक्षा नहीं है, पर वह धनको जीवनका उद्देश्य नहीं स्वीकार करती। धनकी ही प्रधानता देनेवाला पूँजीवाद, भोगवाद या भोगप्रधान साम्यवाद भारतीय संस्कृतिको स्वीकार नहीं है। उसमें अर्थकी प्रधानता नहीं है, प्रधानता है अध्यात्मकी। इसीसे उसमें धनसंचय और धन-भोगकी अपेक्षा धनके त्यागकी विशेष महत्ता है। अधिक धन उपार्जन करनेकी अपेक्षा यथासाध्य आवश्यकताओंको कमकर सादी सरल पवित्र जीवनपद्धति समाज तथा व्यक्ति सभीके लिये सुखप्रद तथा वांछनीय है। 'जीवनका स्तर उच्च' करनेके नामपर भोगविलासके लिये अर्थकी आवश्यकताको अत्यन्त बढ़ा लेना और चोरी, ठगी, डकैती, विश्वासघात, परस्वापहरण, मिलावट, रिश्वत आदिके द्वारा धनोपार्जनका प्रयास करते रहना—भारतीय संस्कृतिको स्वीकार नहीं है।

भारतीय संस्कृति अर्थोपार्जनके लिये कहती है, पर केवल अपने लिये नहीं। गीतामें भगवान्‌के वाक्य हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(३।१३)

देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य एवं इतर—पशु-पक्षी, वृक्ष-लता-ओषधि आदि समस्त प्राणियोंका हमारे उपार्जनमें भाग है, इन सभीका हमपर ऋण है; क्योंकि हम इन सभीसे यथायोग्य सहयोग-सहायता प्राप्त करके ही जीवन-यापन और अर्थोपार्जन कर सकते हैं। अतएव इनका भाग इन्हें यथायोग्य दे देना यज्ञ है—पंचमहायज्ञ हमारी नित्यकी दिनचर्यामें हैं। अतः जो मनुष्य इस यज्ञसे अवशिष्ट—इन सबका भाग दे देनेके बाद बचे हुए अन्नको खाता है, वह अमृत खाता है, पर जो कमाईका प्राप्य उचित भाग इन्हें न देकर—इनका ऋण न चुकाकर सब अकेला हड़प जाता है, वह पाप खाता है। श्रीमद्भागवत (७।१४।८)-में तो अपना पेट जितनेसे भरे, उससे अधिकपर अपना अधिकार माननेवालेको चोर तथा दण्डका पात्र कहा गया है—'**स स्तेनो दण्डमर्हति।**' गीता (३।१२)-में भी देवताओंको न देकर स्वयं भोगनेवालेको चोर कहा गया है—'**यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।**'

भारतीय संस्कृति केवल मनुष्यमें ही अपने आत्माको देखकर—उसके सेवा-संरक्षण करके सन्तुष्ट नहीं है। वह प्राणिमात्रमें आत्माको देखकर भगवान्‌को देखकर सबके प्रति प्रेम करनेकी, सबकी सेवा करनेकी आज्ञा देती है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(६।२९)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(६।३०)

'योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शी पुरुष सबमें—समस्त प्राणियोंमें आत्माको देखता है और समस्त प्राणियोंको आत्मामें देखता है।'

'जो पुरुष सर्वत्र (सब प्राणि-पदार्थ-परिस्थितियोंमें) मुझ (भगवान्)-को देखता है और सबको मुझ (भगवान्)-में देखता है, उसके लिये मैं कभी ओझल नहीं होता और वह मुझसे कभी ओझल नहीं होता।'

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(६।३२)

'अर्जुन! आत्माकी उपमासे अर्थात् अपने ही सदृश सम्पूर्ण प्राणियोंको जो समभावसे देखता है और उनके सुख या दुःखमें भी जो अपने ही समान समभाव रखता है, मेरे मतमें वही योगी सर्वश्रेष्ठ है।' श्रीमद्भागवत (७।१४।९)-में कहा गया है—

मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत्॥

'हरिन, ऊँट, गधा, बन्दर, चूहा, साँप, पक्षी और मक्खी आदिको अपने निज पुत्रके समान समझे। उनमें और पुत्रमें अन्तर ही कितना है।' यह भी कहा गया है—

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम्।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः॥
ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः॥
नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पर्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि॥
विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥

(श्रीमद्भा० ११।२९।१२, १४—१६)

'शुद्ध हृदय पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके और अपने हृदयमें आकाशके समान बाहर और भीतर परिपूर्ण आवरणशून्य मुझ भगवान्‌को ही स्थित देखे। जो पुरुष ब्राह्मण और चाण्डालमें, चोर और ब्रह्मण्यमें, सूर्य और चिनगारीमें, कृपालु और निर्दयमें समान दृष्टि रखता है, वही वस्तुतः पण्डित है। सभी नर-नारियोंमें जब मेरी (भगवान्‌की) भावना की जाती है, तब थोड़े ही समयमें मनुष्यके मनसे स्पर्धा, तिरस्कार और अहंकार आदि दोष दूर हो जाते हैं। लोक-निन्दा, उपहास आदिकी परवा न करके तथा देहदृष्टि एवं लोकलज्जाको छोड़कर कुत्ते, चाण्डाल, गौ एवं गधेको भी (उनमें भगवान् समझकर) पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम करे।'

केवल चेतन प्राणी ही नहीं, जड पदार्थोंमें भी भगवान्‌को ही देखे—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११।२।४१)

'ऐसा पुरुष आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदी-समुद्र—सभी भगवान्‌के शरीर हैं, यों सबमें भगवान् समझकर अनन्यभावसे सबको प्रणाम करता है' यथा—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रा०च०मा० १।८।२)

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(रा०च०मा० ४।३)

मनु महाराजने मनुष्यमात्रके दस धर्म बतलाये हैं, जो भारतीय मानव-संस्कृतिके स्वरूपको स्पष्ट करते हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(६।९२)

'धृति, क्षमा, दम (मनका संयम), अस्तेय (किसीकी भी वस्तु या हकको किसी प्रकार भी लेनेका विचार तथा प्रयत्न न करना), शौच (बाहर और भीतरकी शुद्धि), धी (बुद्धि), विद्या, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।'

कहाँ तो भारतीय संस्कृतिके ये पवित्र उदार सर्वभूतहितमय भाव और कहाँ आजका कलह-हिंसामय जीवन! आज अपने नीच स्वार्थके लिये एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके तथा बन्दर, हरिण और अन्यान्य पशु-पक्षियोंके प्राणहरण करनेमें हिचकता नहीं। इतनी ही बात नहीं है, वह अपने स्वार्थके लिये न मालूम प्राणिहिंसाके कितने-कितने आयोजन करता है, जिनके द्वारा लाखों-करोड़ों जीवोंकी हत्या होती रहती है और वह इसे अपना कर्तव्य तथा इसमें गौरव मानता है।

व्यवहारमें व्यावहारिक जगत्‌के नियमानुसार असमता रखना अनिवार्य है। माता और पत्नी दोनों समान अवयववाली स्त्री है, परंतु भाव और व्यवहारमें अनिवार्य सहज भेद है। हाथी, गौ, कुत्तेमें एक ही आत्मा है, पर उनके आकार-प्रकार, मूल्य तथा उपयोगमें अनिवार्य भेद है। हाथ, पैर, मस्तक, मुख, गुदा आदि सबमें एक ही आत्मा है तथा सबके सुख-दुःखमें समान अनुभूति है, परंतु व्यवहारमें अनिवार्य भेद है। पर यह सब होनेपर भी उनमें किसीमें न परस्पर द्वेष है, न किसीका अहित करनेकी चेष्टा है। इसी प्रकार समस्त प्राणियोंमें समभावसे आत्मा या भगवान्‌का दर्शन करनेवाली भारतीय संस्कृति विविध साधनोंसे सबकी सेवा—व्यष्टिके द्वारा समष्टिकी सेवा, सबका सहज हित करनेका आदेश देती है।

वीर सावरकर 'हिन्दू' शब्दकी परिभाषा इस प्रकार करते थे—

यो वर्णाश्रमनिष्ठावान् गोभक्तः श्रुतिमातृकः।
मूर्तिं च नावजानाति सर्वधर्मसमादरः॥
उत्प्रेक्षते पुनर्जन्म तस्मान्मोक्षणमीहते।
भूतानुकूल्यं भजते स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥
हिंसया दूयते चित्तं स वै हिन्दुरितीरितः॥

'जो वर्ण और आश्रमकी व्यवस्थामें निष्ठा रखनेवाला, गोसेवक, श्रुतियोंको माताकी भाँति पूज्य माननेवाला तथा सब धर्मोंका आदर करनेवाला है, देवमूर्तिकी जो अवज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करता, पुनर्जन्मको मानता है और उससे मुक्त होनेकी चेष्टा करता है तथा जो सदा सब जीवोंके अनुकूल बर्तावको अपनाता है, वही हिन्दू माना गया है। हिंसासे उसका चित्त दुःखी होता है, इसलिये उसे 'हिन्दू' कहा गया है।'

इस हिन्दूने जिस जीवन-पद्धतिको—जिस आचार-विचार-पद्धतिको अपना रखा है, वही हिन्दू-संस्कृति, भारतीय संस्कृति या मानव-संस्कृति है।

इस भारतीय संस्कृतिकी अपनी कुछ विशेषताएँ ये हैं—

(१) सबमें एक आत्मा होनेका विश्वास, (२) कर्मफलमें विश्वास, (३) पुनर्जन्ममें विश्वास, (४) मोक्ष या भगवत्प्राप्तिमें विश्वास, (५) रागद्वेषरहित जीवन-धारणोपयोगी वर्णधर्म तथा आश्रम-धर्मकी व्यवस्था, (६) विवाह-संस्कार, (७) बड़ोंकी सेवा तथा गो-सेवा, (८) संसारके विभिन्न मतवादों तथा उपासना-पद्धतियोंके प्रति उदारता, सहिष्णुता तथा उन्हें अपनेमें समा लेनेकी चेष्टा और (९) 'अर्थ' तथा 'अधिकार' को प्रधानता न देकर 'त्याग' और 'कर्तव्य'को प्रधानता देना।

उपनिषदें कहती हैं—

न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेन चैके अमृतत्वमानशुः॥

(कैवल्योप० ८।३, महानारायणोप० ८।१४, अवधूतोप० ५)

'कर्मसे नहीं, प्रजासे नहीं, धनसे नहीं, केवल त्यागसे ही कुछ एक श्रेष्ठ लोगोंने अमृतत्वको प्राप्त किया था।'

भारतीय संस्कृतिमें विवाह कोई समझौता या 'कंट्राक्ट' नहीं है। वह भोग-विलासके लिये एक-दूसरेका स्वीकार नहीं है। नारी पुरुषकी सहधर्मचारिणी सेविका है और पुरुष नारीका स्वामी होनेपर भी उसका सेवक है। दोनों अभिन्नात्मा हैं, एक दूसरेके पूरक हैं। इसीसे उनका परस्पर मिलन—विवाह एक पवित्र 'धार्मिक संस्कार' है, परस्पर आत्मदान है।

भारतीय संस्कृतिमें देहकी स्वतन्त्रता सर्वथा मान्य है, परंतु उससे भी अधिक आवश्यकता है मस्तिष्कके स्वातन्त्र्यकी।

आज हमारा देश विदेशी दासतासे मुक्त है, स्वतन्त्र है, पर यह राजनीतिक स्वतन्त्रता आध्यात्मिक स्वतन्त्रताके बिना सर्वथा अपूर्ण है। आध्यात्मिक दासत्वसे हम मुक्त नहीं हुए हैं। इसीसे आज विदेशी वेशभूषा, आचार-विचार, नियम-कानून, विदेशी जीवनचर्याका प्रभाव हमारे जीवनमें सर्वत्र छाया है। हम शरीरसे मुक्त होते हुए भी मस्तिष्कसे गुलाम हैं। अपनी भारतीय संस्कृतिके प्रति अनास्था ही इसका कारण है!

सबसे अधिक गम्भीरताके साथ विचार करने योग्य बात तो यह है कि हमारी भारतीय संस्कृतिपर एक नवीन आधुनिक सर्वथा विपरीत आसुरी-संस्कृतिका आक्रमण हो रहा है और वह देशकी राजनीतिक मुक्ति होनेके बाद तो और भी प्रबल हो गया है। इस आसुरी संस्कृतिका लक्ष्य है—केवल भौतिक सुखोपभोग। घृणा, असहिष्णुता, प्रमाद, हिंसा इसके आधार हैं और इन्हींके परायण हुई यह संस्कृति अपना विस्तार कर रही है—'**कामक्रोधपरायणाः**' (गीता १६।१२)। अपनी संस्कृतिपर अनास्था उत्पन्न करनेवाली शिक्षा, बाह्यविज्ञानका चमत्कार हमारे देशकी दरिद्रता एवं राजनीतिक कारणोंसे उत्पन्न कलह-विद्वेष इस विषवृक्षको सींच रहे हैं। इसीसे आज देश सर्वत्र दलबन्दी, कलह, ध्वंस, अराजकता और अनैतिकताकी ओर अग्रसर हो रहा है। दैवी सम्पत्तिका विनाश करके आसुरी सम्पत्तिका विकास और फलतः चिरकालीन पवित्र आध्यात्मिक जीवनका सर्वनाश ही इस रूपमें उदित आसुरी संस्कृतिका उद्देश्य है। दुःखकी बात है कि हमारा मस्तिष्क आज इस आसुरी भावनाका आश्रय करके सच्चे कल्याण-पथसे पराङ्मुख होता जा रहा है।

ऐसे विकट समयमें यह परमावश्यक हो गया है कि हमारे देशके शीर्षस्थानीय नेताओंका और जनताका ध्यान भारतीय संस्कृतिकी महत्ता, उपादेयता और कल्याणकारिताकी ओर खींचा जाय।

यह स्मरण रखना चाहिये कि एकमात्र अध्यात्म-प्रधान भारतीय संस्कृतिकी रक्षा, प्रचार और स्वीकार ही सम्पूर्ण विश्वजगत्को भीषण विध्वंससमूहसे बचाकर, उसके समस्त दुःख-क्लेशोंका निवारणकर, उसे नित्य शाश्वत सुख-शान्ति देनेमें समर्थ है—

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभयदान और आश्रयदानके अधिष्ठाता—भगवान् श्रीराम

(डॉ० श्रीराधानन्दजी सिंह, एम०ए०, पी-एच०डी०, एल-एल०बी०, बी०एड०)

सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा श्रीराम अभयदान और आश्रयदानके अधिष्ठाता हैं। भगवान् श्रीराम प्रेम, करुणा और दान-शीलके सहज स्वरूप हैं। अहैतुक करुणावरुणालय भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् श्रीराघवेन्द्रके आश्रयमें आकर पतितसे पतित जीव भी उनके अभयदानसे कृतार्थ हो जाता है। शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामके अवतरणके दो आधारभूत तत्त्व हैं—अभयदान और आश्रयदान।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानसमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके महत् चरितके अनुशीलनमें अभयदान और आश्रयदानको सम्यक् रूपमें प्रतिष्ठापित किया गया है। मानसमें श्रीराम स्पष्ट घोषणा करते हैं—*'मम पन सरनागत भयहारी।'* (रा०च०मा० ५।४३।८) यहाँ *'सरनागत'* आश्रयदानका तथा *'भयहारी'* अभयदानका पर्याय है। मानसके दृढ़व्रती श्रीरामका अभयदान और आश्रयदान ही सर्वोपरि भगवत्ता है। एतदर्थ मानसके अधोलिखित प्रसंग द्रष्टव्य हैं।

भगवान् श्रीरामका अवतरण तब होता है, जब मुनि, सिद्ध और सारे देवता भयातुर होकर परमात्माके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करते हैं—

मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥

(रा०च०मा० १।१८६ छं० ४)

देवता और पृथ्वीको भयभीत जानकर गम्भीर आकाशवाणी हुई—

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥

(रा०च०मा० १।१८७।७)

मैं पृथ्वीका सब भार हर लूँगा। हे देववृन्द! तुम निर्भय हो जाओ। मानसमें आद्योपान्त 'अभयदान' की इस आकाशवाणीका सम्यक् निर्वहण हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि भयभीतको आश्रयदान देकर उसे अभयदान देना यही रामत्व है।

भगवान् श्रीरामके अवतरणकालमें लोक-जीवन आसुरी आतंकसे संत्रस्त था और मुनि भयभीत थे। अतः त्रस्त मुनि विश्वामित्रके साथ जाते हुए श्रीराम और श्रीलक्ष्मणके प्रसन्न स्वरूपका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन॥

(रा०च०मा० १।२०८ ख)

यहाँ भगवान् श्रीरामकी प्रथम यात्रा मुनिभय-हरणके लिये होती है। मानसमें भगवान् श्रीरामके हर्षित होनेके अनेक प्रसंग हैं, परंतु यहाँ मुनिभय हरनेके लिये हर्षित हो रहे हैं। तात्पर्य यह कि अभयदान उनकी आनन्दवृत्ति है। एतदर्थ ताड़काको एक ही बाणसे मारकर मुनिसे कहा—*'निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई'* (रा०च०मा० १।२१०।१)

इसी प्रकार अपनी वनयात्रामें मुनियोंके अस्थिसमूहको देखकर भगवान् श्रीरामकी आँखोंमें करुणाके आँसू भर आये। वहाँ उन्होंने भुजा उठाकर अभय-प्रदानकी मुद्रामें यह प्रतिज्ञा की—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

(रा०च०मा० ३।९ दोहा)

खरदूषणसे युद्ध करते समय देवता और मुनियोंको भयभीत देखकर *'सुर मुनि सभय प्रभु देखि'* मायाके स्वामी प्रभु श्रीरामने एक कौतुकसे जब सारे शत्रुओंका संहार कर दिया तो मानसकार कहते हैं—

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥

(रा०च०मा० ३।२१।१)

अर्थात् दुष्ट असुरोंका विनाशकर भगवान् श्रीरामने देवता, मनुष्य और मुनियोंको अभयदान दिया।

श्रीहनुमान्‌जीने जब सुग्रीवके बारेमें प्रभु श्रीरामसे कहा—

नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥

(रा०च०मा० ४।४।२-३)

—तो श्रीरामने सुग्रीवको अभयदान देते हुए कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

(रा०च०मा० ४।७।१०)

और भगवान् श्रीरामने बालिसे भयमुक्तकर सखा सुग्रीवको अभयदान देकर कृतार्थ कर दिया।

विश्वदुःखदायी रावणके पादप्रहारसे संत्रस्त विभीषण जब त्राहि-त्राहि करता हुआ 'आरतिहरन' भगवान् श्रीरामके शरणागत हुआ तो 'भगतभयहारी' के 'पदकमल' के दर्शनमात्रसे निहाल हो गया और आह्लादित होकर बोला—

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥

(रा०च०मा० ५।४७।५)

वाल्मीकीय रामायणमें इस प्रसंगका अनुपम वर्णन किया गया है। सुग्रीवके यह कहनेपर कि क्रूर रावणके भाई विभीषणको आश्रय देना निरापद नहीं है। सत्यपराक्रम श्रीरामने स्पष्ट शब्दोंमें अपना दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हुए कहा—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० ६।१८।३३)

अर्थात् जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा सदाके लिये व्रत है। अतः आश्रयदान और अभयदान श्रीरामका जीवन-सिद्धान्त है, व्रत है—यही श्लोकार्थ है।

अभयका वचन देकर श्रीराम सुग्रीवसे कहते हैं—

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥

(वा०रा० ६।१८।३४)

अतः कपिश्रेष्ठ सुग्रीव! वह विभीषण हो या स्वयं रावण आ गया हो। तुम उसे ले आओ। मैंने उसे अभयदान दे दिया।

यह दृढ़व्रती श्रीरामकी लोकोत्तर व्यक्तित्व चेतनाका प्रमाण है कि उन्होंने रावणतकको अभयदान देनेकी बात कही। श्रीहनुमान्‌जीने भी रावणसे 'भगत भयहारी' को भ्रम तजकर भजने तथा 'रामचरणपंकज' को 'उर' में धारण करनेको कहा था, परंतु बीस आँखोंवाले रावणकी दृष्टि नहीं खुली। उन्होंने रावणसे कहा अभयदानी राम साधारण नहीं हैं, जिनके भयसे वह काल भी भयभीत होता है जो देवता, राक्षस और समस्त चराचरको खा जाता है। हे रावण! सुनो, हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी श्रीरामजीके साथ द्रोह करनेवाले तुमको नहीं बचा सकते।

समुद्रकी अगाधता सर्वविदित है। उस जड़ समुद्रने जब प्रभु श्रीरामकी विनयको अनसुनी कर दिया तो कालरूपी धनुष-बाण ***'काल जासु कोदंड'*** को धारण करते ही समुद्र भयभीत होकर प्रभु चरणोंके शरणागत हुआ—

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥

(रा०च०मा० ५।५९।१)

समुद्रके विनीत वचन सुनकर कृपालु श्रीरामने मुसकराकर उसे आश्रयदान दिया तथा समुद्रको दण्डित करनेके लिये धनुषपर चढ़ाये बाणकी दिशा बदल दी और अभयदान दिया।

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामकी शरणमें जो जिस किसी रूपमें, जिस परिस्थितिमें आया, प्रभु श्रीरामने तत्क्षण उसे आश्रयदान देकर अभयदान दिया। गोस्वामी तुलसीदासने कवितावलीमें इस प्रसंगको अत्यन्त भक्त्यात्मक रूपमें प्रस्तुत किया है—

तीय सिरोमनि सीय तजी जेहिं पावककी कलुषाई दही है।
धर्मधुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनिकी बिधि बोलि कही है॥
कीस निसाचरकी करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागतकी अनखौंहीं, अनैसी सुभायँ सही है॥

(कविता०उत्तर० ६)

इस घोर कलिकालमें अनेक प्रकारके दुःखोंसे भयाक्रान्त जीवनको सुन्दर, सुखद और आनन्दपूर्ण बनानेके लिये भगतभयहारी कृपानिधान भगवान् श्रीरामकी चरण-शरण ही एकमात्र अवलम्ब है। गोस्वामी तुलसीदासजी मानसमें कहते हैं—

अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥

(रा०च०मा० ७।९०(ख))

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

इन्द्रियों और मनसे होनेवाले सुखको छोड़े बिना आप जी नहीं सकते। नींद न आये तो मनुष्य पागल हो जाय। मन और इन्द्रियोंके सुखके बिना हम जी सकते हैं। सुख मन-इन्द्रियोंसे ही होता है—यह धारणा गलत है। गाढ़ नींद (सुषुप्ति)-में मन-इन्द्रियोंके बिना भी सुख होता है—इसका अनुभव पशु, पक्षी, वृक्षको भी होता है। वास्तवमें मन-इन्द्रियोंके बिना जो सुख होता है, वह मन-इन्द्रियोंसे होता ही नहीं। कारण कि मन-इन्द्रियोंके सुखसे थकावट आती है। निद्रासे शरीर-मन-इन्द्रियोंमें ताजगी आ जाती है।

श्रोता—सुषुप्ति और समाधिमें क्या फर्क है?

स्वामीजी—सुषुप्तिमें मूर्च्छा होती है, समाधिमें जागृति होती है। सुषुप्तिमें सिर नीचे हो जायगा, समाधिमें नहीं। सुषुप्तिमें इतनी ताकत नहीं कि सिरका भार उठा सके। सुषुप्तिसे जगनेपर 'मैं सुखसे सोया' यह भाव रहता है, पर मूर्च्छासे जगनेपर 'कुछ पता नहीं था' यह भाव रहता है।

उपर्युक्त बातोंसे सिद्ध हुआ कि संसारके सुखकी अपेक्षा त्यागका सुख विशेष है। त्यागके सुखके बिना आप जी नहीं सकते। संसारको तो भगवान्ने दुःखालय कहा है—**'दुःखालयम्'** (गीता ८। १५)। मन-इन्द्रियोंका सुख ही सम्पूर्ण दुःखोंका कारण है। मन-इन्द्रियोंसे सुख लेनेवालेको दुःख भोगना ही पड़ेगा। संसारका सुख भोगते हुए दुःखसे बच सकते ही नहीं।

× × ×

हरेक प्राणी सुख चाहता है। कई बातें ऐसी हैं, जिन्हें न जाननेसे दुःख भोगना पड़ता है। सुख-दुःखका भोक्ता मन नहीं है, प्रत्युत स्वयं है। मन तो करण है। कर्ता-भोक्ता स्वयं है, मन नहीं।

एक ही परिस्थिति सबके लिये सुखदायी या दुःखदायी नहीं होती। जैसे, वर्षा कुम्हारके लिये दुःखदायी है और किसानके लिये सुखदायी।

भीतरका सुख-दुःख परिस्थितिसे नहीं होता प्रत्युत अज्ञानसे, मूर्खतासे, अविवेकसे होता है। विरक्त सन्तके पास स्त्री, पुत्र, मकान, रुपये, वस्त्र आदि नहीं होते, फिर भी वह सुखी रहता है। इतना ही नहीं, उसका संग करनेसे बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी सुख-शान्तिका अनुभव करते हैं।

जो मिल जाय, उसीसे काम चलाना है, नहीं मिले तो उसकी इच्छा ही नहीं करना है। किसी चीजकी इच्छा ही नहीं हो तो दुःख कैसे होगा? ***'जाही बिधि राखे राम, ताही बिधि रहिये'***—यह बहुत बढ़िया बात है। यदि इसे नहीं मानोगे तो रोनेके सिवाय क्या करोगे?

रुपयोंके द्वारा यदि आप बड़े हो गये तो यह आपकी बड़ाई नहीं है, प्रत्युत रुपयोंकी बड़ाई है। आप तो छोटे ही हुए।

वास्तवमें हम ही मोटरपर चढ़ते हैं। आप मोटरपर नहीं चढ़ते, प्रत्युत मोटर आपपर चढ़ती है। तात्पर्य है कि यदि आपको मोटरकी चिन्ता होती है, तो मोटर आपपर चढ़ गयी और मोटरकी चिन्ता नहीं होती तो आप मोटरपर चढ़ गये।

× × ×

जैसे मनुष्य बढ़िया चीजकी बड़ी निगरानी रखता है, ऐसे ही मनुष्यशरीरकी भी निगरानी रखनी चाहिये। शरीर भगवान्का है, अतः उसकी भी सेवा करनी है। शरीरको भोगोंमें लगाना शरीरपर अत्याचार करना है। जीभ भोजनकी परीक्षा करनेके लिये है, इसलिये नहीं है कि जो चाहे, वही खा ले। जीभ दरबानकी तरह है। दरबान रक्षाके लिये होता है कि हर कोई भीतर न जाय।

× × ×

आजकल जो आत्महत्या आदि दुर्घटनाएँ हो रही हैं, इनका खास कारण है—अपनी संस्कृतिका त्याग। भोग भोगनेकी वृत्ति अधिक होनेसे ही आत्महत्या होती है। भोग और संग्रहकी वृत्ति बढ़नेका परिणाम यही होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरिग्रहवृत्तिसे अहिंसा एवं प्रेमका प्रादुर्भाव

(श्रीसीतारामजी गुप्ता)

जीवनको सम्पूर्णतासे जीनेके लिये यह जरूरी है कि व्यक्ति वस्तुओंका उपयोग करे और मनुष्योंसे प्रेम करे, किंतु आज व्यावहारिक स्तरपर इसका उलटा हो रहा है। मनुष्य भौतिक वस्तुओंसे तो प्रेम करता है, लेकिन मनुष्यसे नहीं। भौतिक वस्तुओंके प्रति आकर्षण अथवा लगाव या प्रेमका प्रमुख कारण है, मनुष्यकी परिग्रहवृत्ति या संग्रह करनेकी आदत। व्यक्ति जिन वस्तुओंका संग्रह करता है, उनके प्रति मोह पैदा होना स्वाभाविक है। इसी मोहके वशीभूत जब वस्तु उसके हाथसे निकलती है तो उसे पीड़ा होती है। पीड़ाका कारण वस्तुसे वंचित होना है। इस भौतिकवादी युगमें पैसा या उससे प्राप्त वस्तु ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी है और जब उससे वंचित होना पड़ता है तो उसे यह बर्दाश्त नहीं होता और इस असहिष्णुताके कारण हिंसा आदि भयंकर परिणाम होते हैं।

अपरिग्रह या असंग्रह वृत्तिको जाननेके लिये योगको जानना जरूरी है। यम-नियमसे लेकर समाधितककी यात्रा अष्टांगयोग है। योगकी शुरुआत होती है यमसे। यमकी परिभाषा है—'**अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः**' अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रहका पालन ही यम है। अपरिग्रह यमका अनिवार्य अंग है।

अपरिग्रहसे तात्पर्य है वस्तुओंका संग्रह या परिग्रह न करना या कम-से-कम, आवश्यकतासे अधिक वस्तुओंका संग्रह न करना। वस्तुएँ नहीं होंगी तो कोई क्लेश नहीं होगा। वस्तुओंके अभावमें न चोरीका भय, न खो जानेकी आशंका तथा न पुरानी होकर बेकार हो जानेकी चिन्ता। जीवनमें जितना अपरिग्रहका पालन किया जा सकेगा, व्यक्ति उतना ही अहिंसक तथा सत्यके निकट हो सकेगा। अहिंसा और अपरिग्रह तो मानो एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। अपरिग्रह है तो हिंसा नहीं। परिग्रहवृत्तिके कारण ही हिंसा और उसके दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं।

जो जितना अधिक संग्रह करता है, वह उतना ही भयभीत भी रहता है। भयभीत व्यक्ति प्रेम नहीं कर सकता और न चीजोंका सही इस्तेमाल ही। अपरिग्रहवृत्ति भयसे मुक्तकर व्यक्तिसे प्रेम करना तथा वस्तुओंका सही इस्तेमाल करना भी सम्भव बनाती है। अपरिग्रहके साथ-साथ एक चीज और है, जो महत्त्वपूर्ण है और वह है उपयोग की जानेवाली वस्तुको महत्त्व न देना। शरीर एवं भौतिक पदार्थोंमें महत्त्वबुद्धि होनेसे ही उनमें ममत्वबुद्धि होती है और उनकी महत्ता आँकनेसे ही परिग्रहकी बुद्धि बनती है।

आज मनुष्यने अपनी आवश्यकताएँ इतनी अधिक बढ़ा ली हैं कि अब उसका संग्रहके बिना काम ही नहीं चल पाता। यद्यपि संग्रहका पूर्ण त्याग अथवा पूर्ण अपरिग्रह बड़ा कठिन है, फिर भी कहीं-न-कहीं तो सीमा-रेखा खींचनी ही होगी। सीमा-रेखाके साथ-साथ भौतिक वस्तुओंके प्रति अपनी सोच अथवा दृष्टिकोणमें परिवर्तन करना भी अनिवार्य है। भौतिक वस्तुओंके प्रति उचित सोचका निर्माण होनेपर ही व्यक्तिके प्रति भी उचित सोचका निर्माण सम्भव है। वस्तुतः हमारी सोच अथवा हमारा दृष्टिकोण ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। हमारा दृष्टिकोण ही हमारी सफलता-असफलता अथवा सुख-दुःखके स्तरका निर्माण और उसका निर्धारण करता है। सकारात्मक सोच ही हर समस्याका समाधान है। वस्तुओं और प्राणियोंके प्रति अपेक्षित उचित दृष्टिकोण अनिवार्य है।

यदि आप संग्रहका त्याग पूर्णतः नहीं कर सकते, परिग्रहसे सर्वथा बच नहीं सकते तो संग्रहीत वस्तुओंके प्रति अपने मनोभावोंमें परिवर्तन अवश्य करें। संसारकी हर वस्तु नश्वर है। नश्वर वस्तुओंसे कैसा मोह?

मनुष्य जिससे सच्चा प्रेम करता है, अपना सर्वस्व उसे सौंप देता है। तन-मन और धनसे उसके प्रति समर्पित हो जाता है। यदि हम मनुष्यसे प्रेम करना सीखें तो अपरिग्रहकी वृत्तिका विकास होगा। अपरिग्रहसे अहिंसाका पालन सम्भव होगा। आज हम पूर्णरूपसे अपरिग्रहका पालन नहीं कर सकते तो भी मनुष्यके प्रति प्रेम तथा वस्तुओंके उपयोगके मध्य सन्तुलन स्थापित करना अनिवार्य है अन्यथा उपभोगकी वस्तुएँ ही हमारे लिये सबसे बड़ी समस्या बन जायँगी। सन्तुलन अथवा उचित दृष्टिके अभावमें जिस आनन्दके लिये हम वस्तुओंका उपयोग करते हैं, उस आनन्दसे ही वंचित रह जायँगे। जीवनको आनन्ददायक बनानेके लिये, उसे सम्पूर्णता प्रदान करनेके लिये जरूरी है कि हम वस्तुओंका सदुपयोग करना सीखें तथा मनुष्यसे प्रेम करना सीखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त उद्‌बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

सत्संग प्रेमी साधक महानुभाव! प्रभु-विश्वासी शरणागत साधकोंसे सुना है कि सर्व-समर्थ परमात्मा अद्वितीय, सदैव, सर्वत्र, सभीके हैं; अतः अपने भी हैं। इस वास्तविकताको अपना लेनेपर साधक सनाथ हो जाता है। किंतु मूल प्रश्न यह है कि प्रभुको अपना मानना किस समस्याका निदान है। इससे पूर्व प्रत्येक साधकको यह भी भलीभाँति अनुभव करना चाहिये कि मेरी अपनी समस्या क्या है? समस्या उसे नहीं कहते, जिसे अपनेद्वारा हल कर सकते हों, अथवा जो स्वतः हल हो जाय; और समस्या उसे भी नहीं कहते, जिससे निराश हो जायँ।

भूतकालकी भूलोंसे हृदय पीड़ित है, उसके परिणामसे बचनेके लिये अपनेमें कोई बल नहीं है और वर्तमानमें नीरसता, अभाव तथा पराधीनता भाती नहीं है। यदि यह समस्या अपनी समस्या है, तो उसका उपाय एकमात्र प्रभु-विश्वासी साधकको यही मालूम होता है कि वह प्रभुकी महिमाको अपनाकर प्रभुका हो जाय और यह स्वीकार करे कि मैं और किसीका नहीं हूँ, कोई और मेरा नहीं है। मैं स्वयं अपनी समस्या हल नहीं कर सका और उसके हल हुए बिना मुझे चैन नहीं है।

अतएव प्यारे प्रभु ही मेरे अपने हैं और मैंने इसी महामन्त्रको अपनाया है। इससे भिन्न और कोई मेरे लिये उपाय नहीं है। सर्वसमर्थ एवं पतितपावनने ही असमर्थ तथा पतितोंको अपनाया है। सद्‌गुरुवाक्य कभी मिथ्या नहीं होता, यह शरणागत साधकोंका अनुभव है।

इस दृष्टिसे शरणागति ही एकमात्र मूल उपाय है। शरणागतको योग, बोध और प्रेमकी प्राप्ति होती है। कारण कि उसमें अन्य विश्वास तथा अन्य सम्बन्धकी गन्ध भी नहीं रहती।

सत्संगमें सर्वतोमुखी विकास निहित है और सत्संगकी मानवमात्रको सुविधा तथा स्वाधीनता है। कारण कि अपनेद्वारा जो करना है, उसके करनेमें पराधीनता नहीं है। यह स्वाधीनता मानवमात्रको मंगलमय विधानसे मिली है। मिली हुई स्वाधीनताका सदुपयोग न करना मानवकी अपनी भूल है। अपनी भूलको मिटानेका दायित्व मानवके रचयिताने मानवपर ही रखा है।

दायित्व पूरा करनेमें स्वाधीनता है। कारण कि दायित्व पूरा करनेके लिये आवश्यक सामर्थ्य, योग्यता आदि सब कुछ स्वतः प्राप्त होता है। पर यह रहस्य वे ही साधक जान पाते हैं, जिन्होंने अपनी वास्तविक माँगका अनुभव किया है। माँग और दायित्वका पुंज ही मानवका अस्तित्व है। माँगकी पूर्ति होती है। दायित्व पूरा करना है।

माँगकी जागृतिमें दायित्व पूरा करनेकी सामर्थ्य स्वतः आती है। ममता, कामना तथा तादात्म्यके कारण माँगकी विस्मृति हो जाती है, माँगका नाश नहीं होता। उस विस्मृतिको मिटानेके लिये ही अभावजनित वेदना उत्पन्न होती है, परंतु प्रमादवश मानव अभावजनित वेदनाको कामनापूर्तिके सुखसे मिटानेका मिथ्या प्रयास करने लगता है; जबकि प्रत्येक कामनापूर्तिका सुख नवीन कामनाको जन्म देता है।

अपनी कामनासे ही मानव आप पराधीन हो गया है। निष्कामताको अपनाये बिना असंगताकी अभिव्यक्ति नहीं होती। असंगताके बिना तादात्म्य नाश नहीं होता, जिसके बिना हुए सत्का संग सम्भव नहीं है। सत्संगके बिना असाधनका नाश तथा साधनकी अभिव्यक्ति नहीं होती, जो वास्तविक जीवन है।

उत्पन्न हुए असाधनके नाशका प्रश्न मानव-जीवनका मौलिक प्रश्न है, जिसका हल एकमात्र सत्संगसे ही है। उत्पन्न हुआ असाधन स्वतः दिखायी देता है। उसे देख उसके कारणकी खोजकर उसका सदाके लिये अन्त करना अनिवार्य है।

असाधनके रहते हुए चैनसे रहना ही असाधनको पोषित करना है। असाधनजनित वेदना साधनकी उत्कट लालसाको पोषित करती है, जो विकासका मूल है। मानवकी माँग साधननिष्ठ होकर साधन-तत्त्वसे अभिन्न होना है, जिसकी पूर्ति अनिवार्य है। ॐ आनन्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगका फल

[एक सच्चा वैदिक आख्यान]

(श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

(१)

वासनाका राज्य अखण्ड है। वासनाका विराम नहीं। फलकी प्राप्ति होनेपर यदि एक वासनाको हम नि:शेष करनेमें समर्थ भी होते हैं, तो न जाने कहाँसे दूसरी और उससे भी प्रबल वासनाएँ पनप जाती हैं। कुछ कालतक प्रबल कारणोंसे कतिपय वासनाएँ सुप्त अवश्य हो जाती हैं, परंतु किसी उत्तेजक कारणके आते ही वे जग पड़ती हैं। भला, कोई स्वप्नमें भी सोच सकता था कि महर्षि सोभरि काण्वका दृढ़ वैराग्य मीनराजके सुखद गार्हस्थ्यजीवनके दर्शनरूप वायुके एक हल्के-से झकोरेसे ही जड़से उखड़कर भूतलशायी बन जायगा।

महर्षि सोभरि कण्व-वंशके अवतंस थे; उन्होंने वेद-वेदांगका गुरुमुखसे अध्ययनकर धर्मका रहस्य भलीभाँति जान लिया था। उनका शास्त्रानुचिन्तन गहरा था, परंतु उससे भी गहरा था उनका जगत्के प्रपंचोंसे वैराग्य। जगत्के समग्र विषय-सुख क्षणिक हैं। चित्तको उनसे वास्तविक शान्ति नहीं मिल सकती। तब कोई विवेकी पुरुष अपने अनमोल जीवनको इन कौड़ीके तीन विषयोंकी ओर क्यों लगायेगा। आजका विशाल सुख कल ही अतीतकी स्मृति बन जाता है, पलभरमें सुखकी सरिता सूखकर मरुभूमिकी विशाल बालुकाराशिके रूपमें परिणत हो जाती है; तब कौन विज्ञ पुरुष इस सरिताके सहारे अपनी जीवन-वाटिकाको हरी-भरी रखनेका उद्योग करेगा। सोभरिका चित्त इन भावनाओंकी रगड़से इतना चिकना बन गया था कि माता-पिताका विवाहविषयक प्रस्ताव चिकने घड़ेपर जलकी बूँदके समान उसपर टिक न सका। उन्होंने बहुत समझाया—'अभी भरी जवानी है, अभिलाषाएँ उभरी हुई हैं; तुम्हारे जीवनका यह नया वसन्त है, कामनामंजरीके विकसित होनेका उपयुक्त समय है, रस-लोलुप चित्त-भ्रमरको इधर-उधरसे हटाकर सरस माधवीके रसपानमें लगाना है। अभी वैराग्यका बाना धारण करनेका अवसर नहीं।' परंतु सोभरिने किसीके शब्दोंपर कान न दिया, उनका कान तो वैराग्यसे भरे अध्यात्म-सुखसे सराबोर मंजुल गीतोंको सुननेमें न जाने कबसे लगा हुआ था। पिता-माताका अपने पुत्रको गार्हस्थ्यजीवनमें लानेका उद्योग सफल न हो सका। पुत्रके हृदयमें भी देरतक द्वन्द्व मचा रहा। एक बार चित्त कहता—'माता-पिताके वचनोंका अनादर करना पुत्रके लिये अत्यन्त अहितकर है', परंतु दूसरी बार एक विरोधी वृत्ति धक्का देकर सुझाती—**'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।'** आत्मकल्याण ही सबसे बड़ी चीज ठहरी, गुरुजनोंके वचनों और कल्याण-भावनामें विरोध होनेपर हमें आत्म-कल्याणसे पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। सोभरि इस अन्तर्युद्धको बहुत देरतक अपने हृदयके कोनेमें छिपा न सके और घरसे सदाके लिये नाता तोड़कर उन्होंने इस युद्धको भी विराम दिया। महर्षिके असामयिक वैराग्य और आकस्मिक गृहत्यागसे मनुष्योंके हृदय विस्मित हो उठे।

(२)

पवित्र नदीतट। कल्लोलिनी कालिन्दी कलकल करती हुई बह रही थी। किनारेपर उगे हुए तमाल-वृक्षोंकी सघन छायामें रंग-बिरंगी चिड़ियोंका चहकना कानोंमें अमृत उँड़ेल रहा था। घने जंगलके भीतर पशु स्वच्छन्द विचरण करते थे और नाना प्रकारके विघ्नोंसे अलग रहकर विशेष सुखका अनुभव करते थे। सायंकाल गोधूलिकी भव्य वेलामें गायें दूधसे भरे थनोंके भारसे किंचित् झुकी हुईं जब मन्द गतिसे दूरके गाँवोंकी ओर जाती थीं, उस समय यह दृश्य अनुपम आनन्दकी सृष्टि करता था। यमुनाकी सतहपर शीतल पवनके हल्के झकोरोंसे छोटी-छोटी लहरियाँ उठती थीं और भीतर मछलियोंके झुण्ड-के-झुण्ड इधर-से-उधर फुदकते हुए स्वच्छन्दताके सुखका अनुभव कर रहे थे। यहाँ था शान्तिका अखण्ड राज्य। इसी एकान्त स्थानको सोभरिने अपनी तपस्याके लिये पसन्द किया।

सोभरिके हृदयमें तपस्याके प्रति महान् अनुराग तो था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही, स्थानकी पवित्रता तथा एकान्तताने उनके चित्तको हठात् अपनी ओर खींच लिया। यमुनाके जलके भीतर वे लगे तपस्या करने। भादोंमें भयंकर बाढ़के कारण यमुना-जल बड़े ही वेगसे बढ़ने और बहने लगता; परंतु ऋषिके चित्तमें न तो किसी प्रकारका बढ़ाव था और न किसी प्रकारका बहाव। पूस-माघकी रातोंमें पानी इतना अधिक ठंडा होता कि जल-जन्तु भी ठंडके कारण काँपते; परंतु मुनिके शरीरमें जल-शयन करनेपर भी किसी प्रकारकी जड़ता न आती। वर्षाके साथ-साथ ऐसी ठंडी हवा चलती कि प्राणीमात्रके शरीर सिकुड़ जाते; परंतु ऋषिके शरीरमें तनिक भी सिकुड़न न आती। ऐसी विकट तपस्याका क्रम बहुत वर्षोंतक चलता रहा। सोभरिको वह दिन याद था, जब उन्होंने तपस्याके निमित्त अपने पिताका आश्रम छोड़कर यमुनाका आश्रय लिया। उस समय उनकी भरी जवानी थी, परंतु अब? लम्बी दाढ़ी और मुलायम मूँछोंपर हाथ फेरते समय उन्हें प्रतीत होने लगता कि उनकी उम्र ढलने लगी है। जो उन्हें देखता, आश्चर्यसे चकित हो जाता। इतनी विकट तपस्या! शरीरपर इतना अधिकार!! सर्दी-गर्मी सह लेनेकी इतनी अधिक शक्ति!!! दर्शकोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहता। परंतु महर्षिके चित्तकी विचित्र दशा थी। वे नित्य यमुनाके श्यामल जलमें मत्स्यराजकी अपनी प्रियतमाके साथ रतिक्रीड़ा देखते-देखते आनन्दसे विभोर हो जाते। कभी पति अपनी मानवती प्रेयसीके मानभंजनके लिये हजारों उपाय करते-करते थक जानेपर आत्म-समर्पणके मोहन-मन्त्रके सहारे सफलमनोरथ होता और कभी वह मत्स्य-सुन्दरी अठिलाती नाना प्रकारसे अपना प्रेम जताती अपने प्रियतमकी गोदीका आश्रय लेकर अपनेको कृतकृत्य मानती। झुण्ड-के-झुण्ड बच्चे मत्स्य-दम्पतीके चारों ओर अपनी ललित लीलाएँ किया करते और उनके हृदयमें प्रमोद-सरिता बहाया करते। ऋषिने देखा, गार्हस्थ्य-जीवनमें बड़ा रस है। पति-पत्नीके विविध रसमय प्रेम-कल्लोल! बाल-बच्चोंका स्वाभाविक सरल सुखद हास्य! परंतु उनके जीवनमें रस कहाँ? रस (जल)-का आश्रय लेनेपर भी चित्तमें रसका नितान्त अभाव था। उनकी जीवन-लताको प्रफुल्लित करनेके लिये कभी वसन्त नहीं आया। उनके हृदयकी कलीको खिलानेके लिये मलयानिल कभी नहीं बहा। भला, यह भी कोई जीवन है! दिन-रात शरीरको सुखानेका उद्योग, चित्तवृत्तियोंको दबानेका विफल प्रयास। उन्हें जान पड़ता मछलियोंके छोटे-छोटे बच्चे उनके नीरस जीवनकी खिल्ली उड़ा रहे हैं।

संगतिने सुप्त सांसारिक वासनाको जोरोंसे झकझोरकर जगा दिया। वह अपनेको प्रकट करनेके लिये मार्ग खोजने लगी।

तपका उद्देश्य केवल शरीरको नाना प्रकारके साधनोंसे तप्त करना नहीं है, प्रत्युत मनको तप्त करना है। सच्चा तप मनमें जमे हुए कामके कूड़े-करकटको जलाकर राख बना देता है। आगमें तपाये हुए सोनेकी भाँति तपस्यामें तपाया गया चित्त खरा उतरता है। तप स्वयं अग्निरूप है। उसकी साधना करनेपर भला, कभी चित्तमें अज्ञानका अन्धकार अपना घर बना सकता है? उसकी ज्वाला दुर्वासनाओंको भस्म कर देती है और उसका प्रकाश समग्र पदार्थोंको प्रकाशित कर देता है। शरीरको पीड़ा पहुँचाना तपस्याका स्वाँगमात्र है। नहीं तो, क्या इतने दिनोंकी घोर तपस्याके बाद भी सोभरिके चित्तमें प्रपंचसे विरति और भगवान्के चरणोंमें सच्ची रति न होती?

(३)

वैराग्यसे वैराग्य ग्रहणकर तथा तपस्याको तिलांजलि देकर महर्षि सोभरि प्रपंचकी ओर मुड़े और अपनी गृहस्थी जमानेमें जुट गये। विवाहकी चिन्ताने उन्हें कुछ बेचैन कर डाला। गृहिणी घरकी दीपिका है; धर्मकी सहचारिणी है। पत्नीकी खोजमें उन्हें दूर-दूरकी सैर करनी पड़ी। रत्न खोज करनेपर ही प्राप्त होता है, घरके कोनेमें अथवा दरवाजेपर वह बिखरा हुआ थोड़े ही मिलता है। उस समय महाराज त्रसदस्युके प्रबल प्रतापके सामने सप्तसिन्धुके समस्त नरेश नतमस्तक थे। वे पुरुवंशके मणि थे; पुरुकुत्सके पुत्र थे। उनका 'त्रसदस्यु' नाम नितान्त सार्थक था। आर्योंकी सभ्यतासे सदा द्वेष रखनेवाले दस्युओंके हृदयमें इनके नाममात्रसे कम्प उत्पन्न हो जाता था। वे सप्तसिन्धुके पश्चिमी भागपर शासन करते थे। महर्षिको यमुनातटसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवास्तु (सिन्धुनदकी सहायक स्वात नदी)-के तीरपर राजसभामें सहसा उपस्थित देखकर उन्हें उतना आश्चर्य नहीं हुआ, जितना उनके राजकुमारीसे विवाह-विषयक प्रस्तावपर। इस अवस्थामें इतनी कामुकता! इनके तो अब दूसरे लोकमें जानेके दिन समीप आ रहे हैं; परंतु आज भी इस लोकमें गृहस्थी जमानेका यह आग्रह!! परंतु सोभरिकी इच्छाका विघात करनेसे भी उन्हें भय मालूम होता था। उनके हृदयमें एक विचित्र द्वन्द्वयुद्ध मच गया। एक ओर तो वे अभ्यागत तपस्वीकी कामना पूर्ण करना चाहते थे, परंतु दूसरी ओर उनका पितृत्व चित्तपर आघात देकर कह रहा था—इस वृद्ध जरद्गवके गलेमें अपनी सुमन-सुकुमार सुताको मत बाँधो। राजाने इन विरोधी वृत्तियोंको बड़ी कुशलतासे अपने चित्तके कोनेमें दबाकर सोभरिके सामने स्वयंवरका प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा—'क्षत्रिय-कुलकी कन्याएँ गुणवान् पतिको स्वयं वरण किया करती हैं। अत: आप मेरे साथ अन्त:पुरमें चलिये। जो कन्या आपको अपना पति बनाना स्वीकार करेगी, उसे मैं आपके साथ विधिवत् विवाह दूँगा।' राजा वृद्धको अपने साथ लेकर अन्त:पुरमें चले, परंतु उनके कौतुककी सीमा न रही, जब वह वृद्ध अनुपम सर्वांगशोभन युवकके रूपमें महलमें दीख पड़ा। रास्तेमें ही सोभरिने तपस्याके बलसे यह रूप-परिवर्तन कर डाला था। जो देखता वही मुग्ध हो जाता। स्निग्ध श्यामल शरीर, ब्रह्मवर्चस्से चमकता हुआ चेहरा, उन्नत ललाट, अंगोंमें यौवनसुलभ स्फूर्ति, नेत्रोंमें विचित्र दीप्ति; जान पड़ता था मानो स्वयं अनंग अंग धारणकर रतिकी खोजमें सजे हुए महलोंके भीतर प्रवेश कर रहा हो। सुकुमारी राजकन्याओंकी दृष्टि इस युवक तापसपर पड़ी। चार आँखें होते ही उनका चित्त-भ्रमर मुनिके रूप-कुसुमकी माधुरी चखनेके लिये विकल हो उठा। पिताका प्रस्ताव सुनना था कि सबने मिलकर मुनिको घेर लिया और एक स्वरसे मुनिको वरण कर लिया। राजाने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

सुवास्तुके सुन्दर तटपर विवाह-मण्डप रचा गया। महाराज त्रसद्दस्युने अपनी पचास पुत्रियोंका विवाह महर्षि सोभरि काण्वके साथ पुलकितवदन होकर सम्पन्न कर दिया और विपुल सम्पत्ति भेंट की—सत्तर-सत्तर गायोंके तीन झुंड, श्यामवर्ण वृषभ—जो इन सबोंके आगे-आगे चलता था, अनेक घोड़े, नाना प्रकारके रंग-बिरंगे कपड़े, अनमोल रत्न। गार्हस्थ्य-जीवनको रसमय बनानेवाली समस्त वस्तुओंको एक साथ, एक ही जगह पाकर मुनिकी कामना-वल्ली लहलहा उठी। इन चीजोंसे सज-धजकर रथपर सवार हो मुनि जब यमुना-तटकी ओर आ रहे थे, उस समय रास्तेमें वज्रपाणि भगवान् इन्द्रका देवदुर्लभ दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ। ऋषि आनन्दसे गद्गद स्वरमें स्तुति करने लगे—

वयं हि त्वा बन्धुमन्तम-
बन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा
गहि विश्वेभिः सोमपीतये॥
नकी रेवन्तं सख्याय
विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं
समूहस्यादित् पितेव हूयसे॥

(ऋ० ८। २१। ४, १४)

'स्तोत्रं कस्य न तुष्टये।' इस स्तुतिको सुनकर देवराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और ऋषिसे आग्रह करने लगे कि 'वर माँगो।' सोभरिने अपने मस्तकको झुकाकर विनयभरे शब्दोंमें कहना आरम्भ किया—'प्रभो! मेरा यौवन सदा बना रहे; मुझमें इच्छानुसार नाना रूप धारण करनेकी शक्ति हो, अक्षय रति हो और इन पचास पत्नियोंके साथ एक ही समय रमण करनेकी सामर्थ्य मुझमें हो जाय। वे विश्वकर्मा मेरे लिये सोनेके महल बना दें, जिनके चारों ओर हों कल्पवृक्षसे युक्त पुष्प-वाटिकाएँ। मेरी पत्नियोंमें किसी प्रकारकी स्पर्धा, परस्पर कलह कभी न हो। आपकी दयासे मैं गार्हस्थ्य-जीवनका पूरा-पूरा सुख उठा सकूँ।'

इन्द्रने गम्भीर स्वरमें कहा—'तथास्तु!' देवताने भक्तकी प्रार्थना स्वीकार कर ली—भक्तका हृदय आनन्दसे गद्गद हो उठा।

(४)

वस्तुकी प्राप्तिकी आशामें जो आनन्द आता है, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी प्राप्तिमें नहीं। मनुष्य उसे पानेके लिये बेचैन बना रहता है, लाखों कोशिशें करता है; उसकी कल्पनासे ही उसके मुँहसे लार टपकने लगती है, परंतु वस्तुके करतलगत होते ही उसमें विरसता आ जाती है, उसका स्वाद फीका पड़ जाता है, उसकी चमक-दमक जाती रहती है और दिन-प्रतिदिनकी गले पड़ी वस्तुओंके ढोनेके समान उसका भी ढोना दूभर हो जाता है। गार्हस्थ्यमें दूरसे आनन्द अवश्य आता है, परंतु गले पड़नेपर उसका आनन्द उड़ जाता है, केवल तलछट बाकी रह जाता है।

महर्षि सोभरिके लिये गार्हस्थ्य-जीवनकी लता हरी-भरी सिद्ध नहीं हुई। बड़ी-बड़ी कामनाओंको हृदयमें लेकर वे इस घाट उतरे थे, परंतु यहाँ विपदाके जल-जन्तुओंके कोलाहलसे सुखपूर्वक खड़ा होना भी असम्भव हो गया। विचारशील तो वे थे ही। विषय-सुखोंको भोगते-भोगते निर्वेद—और अब सच्चा निर्वेद—उत्पन्न हो गया। सोचने लगे—"क्या यही सुखद जीवन है जिसके लिये मैंने वर्षोंकी साधनाका तिरस्कार किया है? मुझे धन-धान्यकी कमी नहीं है; गो-सम्पत्ति मेरी अतुलनीय है; भूखकी ज्वाला अनुभव करनेका अशुभ अवसर मुझे कभी नहीं आया; परंतु मेरे चित्तमें चैन नहीं! कलकण्ठ कामिनियोंके कोकिल-विनिन्दित स्वरने मेरे जीवन-वाटिकामें वसन्तके लानेका उद्योग किया; वसन्त आया, पर उसकी सरसता टिक न सकी। बालक-बालिकाओंकी सुमधुर काकलीने मेरे जीवनोद्यानमें पावसको ले आनेका प्रयत्न किया, परंतु मेरा जीवन सदाके लिये हरा-भरा न हो सका। हृदय-वल्ली कुछ कालके लिये जरूर लहलहा उठी, परंतु पतझड़के दिन शीघ्र आ धमके; पत्ते मुरझाकर झड़ गये। क्या यही सुखमय गार्हस्थ्य-जीवन है? बाहरी प्रपंचमें फँसकर मैंने आत्म-कल्याणको भुला दिया। मानव-जीवनकी सफलता इसीमें है कि योगके द्वारा आत्म-दर्शन किया जाय—'**यद्योगेनात्मदर्शनम्**', परंतु भोगके पीछे मैंने योगको भुला दिया; अनात्माके चक्करमें पड़कर मैंने आत्माको बिसार दिया और प्रेयोमार्गका अवलम्बनकर मैंने 'श्रेयः'—आत्यन्तिक सुखकी उपेक्षा कर दी। भोगमय जीवन वह भयावनी भूल-भुलैया है, जिसके चक्करमें पड़ते ही हम अपनी राह छोड़ बेराह चलने लगते हैं और अनेकों जन्म चक्कर काटते ही बीत जाते हैं। कल्याणके मार्गमें जहाँसे चलते हैं, घूम-फिरकर पुनः वहीं आ जाते हैं—एक डग भी आगे नहीं बढ़ पाते।

कच्चा वैराग्य सदा धोखा देता है। मैं समझता था कि इस कच्ची उम्रमें भी मेरी लगन सच्ची है, परंतु मिथुनचारी मत्स्यराजकी संगतिने मुझे इस मार्गमें ला घसीटा। सच्ची विरति हुए बिना भगवान्‌की ओर बढ़ना प्रायः असम्भव-सा ही है। इस विरतिको लानेके लिये साधु-संगति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। बिना आत्मदर्शनके यह जीवन भारभूत है। अब मैं अधिक दिनोंतक इस बोझको नहीं ढो सकता।

× × ×

दूसरे दिन लोगोंने सुना—महर्षि सोभरिकी गृहस्थी उजड़ गयी। महर्षि सच्चे निर्वेदसे यह प्रपंच छोड़ जंगलमें चले गये और सच्ची तपस्या करते हुए भगवान्‌में लीन हो गये। जिस प्रकार अग्निके शान्त होते ही उसकी ज्वालाएँ वहीं शान्त हो जाती हैं, उसी प्रकार पतिकी आध्यात्मिक गतिको देखकर पत्नियोंने भी उनकी संगतिसे सद्‌गति प्राप्त की। संगतिका फल बिना मिले नहीं रहता।

श्रेयका साधन

निवृत्तिः कर्मणः पापात्सततं पुण्यशीलता। सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्॥
मानुष्यमसुखं प्राप्य यः सज्जति स मुह्यति। नालं स दुःखमोक्षाय सङ्गो वै दुःखलक्षणः॥

(ना० पूर्व० ६०। ४४-४५)

पाप-कर्मसे दूर रहना, सदा पुण्यका संचय करते रहना, साधु पुरुषोंके बर्तावको अपनाना और उत्तम सदाचारका पालन करना—यह सर्वोत्तम श्रेयका साधन है। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है, ऐसे मानवशरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है, वह मोहमें डूब जाता है। विषयोंका संयोग दुःखरूप है, वह कभी दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा ही बन्धन है और इच्छाका त्याग ही मुक्ति है

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—रघुनन्दन! शास्त्रज्ञोंका कहना है कि मनका इच्छारहित हो जाना ही समाधि है; क्योंकि मनको जैसी शान्ति इच्छाका त्याग कर देनेसे प्राप्त होती है, वैसी सैकड़ों उपदेशोंसे भी उपलब्ध नहीं होती। इच्छाकी उत्पत्तिसे जैसा दुःख प्राप्त होता है, वैसा दुःख तो नरकमें भी नहीं मिलता; और इच्छाकी शान्तिसे जैसा सुख मिलता है, वैसे सुखका अनुभव तो ब्रह्मलोकमें भी नहीं होता। इच्छामात्रको ही दुःखदायक चित्त कहते हैं और उस इच्छाकी शान्ति ही मोक्ष कहलाता है। प्राणीके हृदयमें जैसी-जैसी और जितनी-जितनी इच्छा उत्पन्न होती है, उतनी-उतनी ही उसके दुःखोंके बीजोंकी मूँठ बढ़ती जाती है तथा विवेक-विचारद्वारा जैसे-जैसे उसकी इच्छा क्षीण होती जाती है, वैसे-वैसे ही उसके दुःखोंकी चिन्तारूपी विषूचिका शान्त होती जाती है। सांसारिक विषयोंकी इच्छा आसक्तिवश ज्यों-ज्यों घनीभूत होती जाती है, त्यों-त्यों दुःखोंकी चिन्तारूपी विषैली तरंगें बढ़ती जाती हैं। यदि अपने पौरुष-प्रयत्नके बलसे इस इच्छारूपी व्याधिकी चिकित्सा न की जा सकी तो मैं यह दृढ़तापूर्वक समझाता हूँ कि इस व्याधिसे छूटनेके लिये दूसरी कोई औषध है ही नहीं। यदि एक ही साथ सम्पूर्ण इच्छाओंका पूर्णतया त्याग न किया जा सके तो धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा करके ही उसका त्याग करना चाहिये। रहना चाहिये इच्छा-त्यागके साधनमें संलग्न ही; क्योंकि सन्मार्गका पथिक दुःखभागी नहीं होता। जो नराधम अपनी इच्छाओंके क्षीण करनेका प्रयत्न नहीं करता, वह मानो दिन-पर-दिन अपने-आपको अन्धकूपमें फेंक रहा है। इच्छा ही दुःखोंको जन्म देनेवाली इस संसृतिरूपी बेलका बीज है। यदि उसे आत्मज्ञानरूपी अग्निसे भलीभाँति जला दिया जाय तो यह पुनः अंकुरित नहीं होती।

रघुकुलभूषण राम! इच्छामात्र ही संसार है और इच्छाका अवेदन—अभाव ही निर्वाण है। इसलिये निरर्थक नाना प्रकारके उलट-फेरमें न पड़कर केवल ऐसा यत्न करना चाहिये कि इच्छा उत्पन्न ही न हो। जिसे अपनी बुद्धिसे इच्छाका विनाश करना दुस्साध्य प्रतीत होता हो, उसके लिये गुरुका उपदेश और शास्त्र आदि निश्चय ही निरर्थक हैं। जैसे अपनी जन्म-भूमि जंगलमें हरिणीकी मृत्यु निश्चित है, वैसे ही नानाविध दुःखोंका विस्तार करनेवाली इच्छारूपी विषके विकारसे युक्त इस जगत्में मनुष्योंकी मृत्यु बिल्कुल निश्चित है। यदि मनुष्य इच्छाद्वारा बालकों-जैसा मूढ़ न बना दिया जाय तो उसे आत्मज्ञानके लिये बहुत थोड़ा ही प्रयत्न करना पड़े। इसलिये सब तरहसे इच्छाको ही शान्त करना चाहिये; क्योंकि उसकी शान्तिसे परम पदकी प्राप्ति होती है। इच्छारहित हो जाना ही निर्वाण है और इच्छायुक्त होना ही बन्धन है; इसलिये यथाशक्ति इच्छाको जीतना चाहिये। भला, इतना करनेमें कौन-सी कठिनाई है? जन्म, जरा और मृत्युरूप करंज और खैरके वृक्ष-समूहोंका बीज इच्छा ही है, अतः उसे शमरूपी अग्निसे सदा भीतर-ही-भीतर जला डालना चाहिये। जहाँ-जहाँ इच्छाका अभाव है, वहाँ-वहाँ मुक्ति निश्चित ही है; अतः विवेक-वैराग्य आदि उपायोंकी प्राप्तिपर्यन्त अपनी शक्तिके अनुसार उत्पन्न हुई इच्छाका सर्वथा विनाश कर डालना चाहिये। इसी तरह जहाँ-जहाँ इच्छाका सम्बन्ध है, वहाँ-वहाँ पुण्य-पापमयी दुःखराशियों तथा विस्तृत पीडाओंसे युक्त बन्धन-पाशोंको उपस्थित ही समझो। ज्यों-ज्यों पुरुषकी आन्तरिक इच्छा शान्त होती जाती है, त्यों-त्यों उसका मोक्षके लिये कल्याणकारक साधन बढ़ता जाता है। विवेकहीन आत्माकी इच्छाको जो भलीभाँति पूर्ण करना है, वही मानो संसाररूपी विष-वृक्षको सींचना है।

यदि आत्माके अतिरिक्त यहाँ कोई दूसरी वस्तु विद्यमान हो, तब तो इच्छापूर्वक उसे प्राप्त करनेकी चेष्टाकी जाय, परंतु जब उसके सिवा दूसरी किसी वस्तुकी सत्ता है ही नहीं, तब आत्मासे भिन्न किस पदार्थकी इच्छा कैसे की जाय?

[योगवासिष्ठ निर्वाण-प्रकरण]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीख

(एक भिखारी)

'नारायण! नारायण!!'

'कौन है?'

'एक भिखारी'

'ठहरो, लाती हूँ'

इतना कहकर नन्दरानीने बहुमूल्य हीरे-मोतियोंका थाल भरा और स्वयं लेकर बाहर आयी। परंतु वह देखते ही सहम गयी। देखा, गलेमें साँप, जटाजूटमें साँप, साँपका कंकण, हाथमें डमरू और सुन्दर गौर शरीरपर बभूत रमाये एक मस्त जोगी खड़ा है। समाधिके नशेमें उसकी आँखें चढ़ी जा रही हैं। नन्दरानीने समझा कि कोई सिद्ध योगेश्वर है। वह बोली—

'नाथजी! यह लो भीख, मेरे लालको असीस दो, जिससे उसके सारे अमंगल टल जायँ।'

'मैया! तेरी यह भीख मुझे नहीं चाहिये। मुझे तो एक बार अपने लालका मुखड़ा दिखला दे। उसे देखते ही मेरे सब अमंगल टल जायँगे।'

'नाथजी! मेरा साँवरा अभी निरा बच्चा है, तुम्हारे भेषको देखकर डर जायगा। भीख थोड़ी हो तो और ला दूँ, देखो, मेरे लालका किसी तरह अमंगल न हो, उसके सारे कुग्रह टल जायँ।'

'अरी मैया! तेरा लाल कालका भी काल है, उसीके डरसे सूर्य, चन्द्र, यमराज सब अपना-अपना कार्य कर रहे हैं, वह किससे डरेगा? साक्षात् मृत्यु देवता भी उसके नामसे डर जाते हैं। मुझे और कोई भीख नहीं चाहिये माता! मुझे तो एक बार अपने उस सलोने साँवरेकी हँसीली, छबीली, निराली, मतवाली काली छविका दर्शन करा दे। बस, एक बार उसकी झाँकी कर लेने दे।'

'ना, ना, नाथजी! मैं अपने लालको बाहर न लाऊँगी। आजकल व्रजमें असुरोंका बड़ा उत्पात है, अभी उस दिन पूतना आयी थी। भगवान्ने रक्षा करी। मैं अभी-अभी उसकी माँग सँवारकर और उसके आँखोंमें काजल डालकर आयी हूँ; कहीं नजर लग जाय तो फिर तुम्हें कहाँ ढूँढ़ती फिरूँ?'

शिवजी हँसकर मन-ही-मन यशोदाके भाग्यकी सराहना करने लगे। बोले—'मेरी मैया! तू धन्य है, जो सर्वाधार त्रिलोकीनाथको अपने गोदमें खिलाती है, अपने हाथों शृंगारके सागरका शृंगार करती है; तेरे समान बड़भागी दूसरा कौन होगा? अरी, जिसके भृकुटिविलाससे सारे विश्वका सृजन और संहार होता है, उसको नजर कैसी?'

'तुम क्या कहते हो, बाबा! मैं यह सब नहीं समझती, तुम्हारे वेदान्तका हम गवाँरी ग्वालिनोंको क्या पता? भीख लेनी हो तो ले लो, मेरे श्यामसुन्दरको भूख लगी होगी, मैं अब और यहाँ नहीं ठहर सकती!'

'मा! मैं तेरे पैरों पड़ता हूँ, एक बार मुझे उस प्राणधनके दर्शन करा दे, तेरा मंगल होगा; नहीं तो मैं यहीं धरना दिये बैठा रहूँगा, बिना दर्शन किये तो यहाँसे हटूँगा नहीं!'

यशोदा साधुबाबाके दुःखसे दुःखी हुई, उसका कोमल हृदय द्रवित हो गया, भगवान्ने मति फेर दी। उसने कहा—

'अच्छा! लाती हूँ, पर अधिक देर न ठहरना भला! देखकर ही चले जाना।'

इतना कहकर वह अन्दर गयी और नजरसे बचानेके लिये माथेपर काजलकी बिन्दी लगाकर लालको गोदमें लिये बाहर लौटी। देवदेव शंकर त्रिभुवन-मोहिनी बालछविको देखकर मुग्ध हो गये। एकटकी लगाकर देखने लगे! यशोदाने कहा—

'लो, अब जाती हूँ, बहुत देर हो गयी।'

अब, महाराजकी प्रेम-समाधि भंग हुई। वे बोले—

'तनिक ठहर जा मैया, मुझे दो बात तो कर लेने दे।' शिवजीने नेत्रोंकी मूक-भाषामें ही मोहन प्यारेसे बातें कीं।' फिर मुग्ध होकर गाने लगे—

सफल मम ईश जीवन आज।
निरखि अगुण अरूपको गुणपूर्ण छबिमय साज॥
सच्चिदानँद अलख, अज, अव्यक्त, अमित, अनन्त।
प्रगट सो शिशुरूप रस-सौन्दर्य-निधि भगवन्त॥
धन्य व्रजके गोप-गोपी, गौ मयूर तृणादि।
सगुण वपु धरि रहत जिनमहँ ब्रह्म अचल अनादि॥
सर्व-शक्ति-समेत पूर्ण प्रभाव-सह परमेश।
करत लीला चित्र मधुर सो धारि बालक भेष॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'

(आचार्य श्रीशशिनाथजी झा)

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' धर्मका प्रथम साधन है शरीरका निरोग रहना। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिका मूल कारण शरीरका निरोग रहना ही है, पर इस निरोगताके अपहरणकर्ता हैं रोग, जो श्रेय और जीवनका भी विनाश करते हैं—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।
(चरक० सू० १।१५-१६)

कहनेका तात्पर्य यह है कि स्वस्थ शरीरके द्वारा ही मनुष्य सभी प्रकारके धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्योंका सम्पादन कर सकता है। शरीरके अस्वस्थ रहनेपर मनुष्य यदि मनसे कुछ सोचता भी है तो वह कुछ कर नहीं सकता। अतएव शास्त्रकारोंने स्वास्थ्यकी रक्षाके प्रयोजनको निर्दिष्ट करते हुए कहा है—

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

अर्थात् अन्यान्य कार्योंको छोड़कर सर्वप्रथम शरीरकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि शरीरका अभाव होनेपर सब कुछका अभाव हो जाता है।

मनुष्यशरीरके तीन आधारस्तम्भ हैं—१-आहार, २-स्वप्न (उचित सोना) तथा ३-ब्रह्मचर्य **'त्रय उपस्तम्भा इति आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।'** (चरक० सू० ११।३५) प्रथम आधार—आहारकी शुद्धि शरीरकी रक्षामें एवं सात्त्विकताकी प्राप्तिके लिये विशेष अपेक्षित है। श्रीमद्देवीभागवत (३।१२।७)-में कहा गया है कि यदि द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन्त्रशुद्धिके साथ कर्म सम्पन्न होता है, तब पूर्णफलकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं होती—

द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मन्त्रशुद्धिश्च भूमिप।
भवेद्यदि तदा पूर्णं फलं भवति नान्यथा॥

यही कारण है कि हमारे यहाँ त्रिकालज्ञ परमज्ञानविज्ञानविशारद ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओंने खान-पानकी, आचार-विचारकी शुद्धिपर विशेष ध्यान दिया; क्योंकि इससे धर्माचरणका प्रधान सम्बन्ध तो है ही, स्वास्थ्यका भी गहरा लगाव है।

विश्ववन्द्य वेदका निर्देश है कि मनुष्योंको प्रातः एवं सायं दो बार भोजन करना चाहिये। इसके बीचमें भोजन नहीं करना चाहिये। यह भोजनकी विधि अग्निहोत्रके समान ही है। मल-मूत्र-त्याग करनेके बाद इन्द्रियोंके निर्मल तथा शरीरके हलके रहनेपर, ठीकसे डकार आने एवं मनके प्रसन्न रहनेपर, वायुका संक्रमण ठीकसे होनेपर, भूख लगनेके बाद, भोजनके प्रति रुचि उत्पन्न होनेपर तथा आमाशयके ढीले पड़ जानेपर भोजन करना चाहिये; क्योंकि यही भोजनका उचित अवसर है—

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिचोदितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥
विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ।
विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वाते च सरति॥
तथान्नश्रद्धायां क्षुदुपगमने कुक्षौ च शिथिले।
प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः॥

भोजन करनेसे पहले हाथ-मुँह और पैर अवश्य धोने चाहिये। **'आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत'** क्योंकि कहा गया है कि **'आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्'** अर्थात् गीले पैर जो भोजन करता है, वह दीर्घायु होता है।

भोजन कब करना चाहिये, इसपर निर्देश है कि—

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत्।
याममध्ये रसोद्वेगो युग्मेऽतीते बलक्षयः॥

याम कहते हैं प्रहरको, यह तीन घण्टेका होता है। सूर्योदयसे तीन घण्टेतक भोजन न करे, दो याम यानी छः घण्टेसे अधिक विलम्ब भी न करे। दो यामोंके बीचमें भोजन करनेसे अन्नरसका परिपाक भलीभाँति होता है। दो याम बिताकर भोजन करनेपर पूर्वसंचित बलका क्षय होता है। अतः सदैव समयपर ही भोजन करना चाहिये।

भोजनके समय क्या करना चाहिये, इस विषयमें बताया गया है—

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥

अर्थात् भोजनका सदैव आदर करे, भोजनकी निन्दा कभी न करे, प्रत्युत प्रशंसा करता हुआ उसे ग्रहण करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे देखकर आनन्दित हो, भाँति-भाँतिसे उसका गुणगान करे; क्योंकि इस प्रकार ग्रहण किया गया भोजन प्रतिदिन बल एवं पराक्रमको देता है। बिना प्रशंसाके किये गये अन्नका भोजन करना तो दोनोंकी क्षति करता है।

भोजनकी मात्रा कितनी हो, उसे बताते हुए कहा गया है—

मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका।
मात्रा द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरूण्यपि लघून्यपि॥
गुरूणामर्धमौचित्यं लघूनां नातितृप्तता।
मात्राप्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद् विजीर्यति॥

नित्य मात्राके अनुसार किया गया आहार जठराग्निको प्रदीप्त करता है। मात्राका निर्धारण गुरु एवं लघु द्रव्योंके आधारपर होता है। तदनुसार गुरुपदार्थ (तेल तथा घीमें तले हुए पदार्थ, दूध, मलाई, रबड़ी आदि)-का सेवन भूखकी मात्रासे आधा ही करना उचित है और लघु (सुपाच्य) पदार्थोंको तृप्तिपर्यन्त करना चाहिये, किंतु तृप्तिसे अधिक नहीं। जितनी मात्रामें भोजन सुखपूर्वक पच जाय, उतनी मात्रामें भोजन करना उचित है।

जो अजितेन्द्रिय पुरुष स्वाद आदिके लोभसे बिना प्रमाणके अज्ञानी पशुओंकी भाँति भोजन करते हैं, वे रोगसमूहकी जड़ अजीर्ण रोगसे पीड़ित होते हैं।

शास्त्रमें भोजन करनेके नियम इस प्रकार बताये गये हैं—उष्ण, स्निग्ध, नियतमात्रामें, भोजनके पच जानेपर, वीर्यविरुद्ध अर्थात् जो आहार परस्परमें विरुद्ध वीर्यवाले न हों, अपने मनके अनुकूल स्थानपर अनुकूल सामग्रियोंके सहित आहारको न अधिक जल्दी, न अधिक देरसे, न बोलते हुए, न हँसते हुए अपने अगल-बगल चारों ओर भलीभाँति परीक्षणकर, आहारद्रव्यमें मन लगा करके भोजन करना चाहिये।

दूसरेकी जूठी कोई चीज खाना या खिलाना सर्वथा हानिकारक है। जूठी चीजोंके सेवनसे विचारोंमें विकृति आती है, बुद्धि दुर्बल हो जाती है और शरीरमें बहुविध रोग उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ—डॉक्टर किसी संक्रामक रोगके रोगीकी नब्ज देखकर अथवा उसका उपचारकर सावधानीसे हाथ धोता है; क्योंकि कीटाणुओंका भय रहता है। जब छूनेमात्रसे कीटाणुओंका संक्रमण होता है, तब थूक लगे जूठे पदार्थोंके भोजनमें कीटाणुओंका भय नहीं है, यह मानना ही मन्दमतिता है। आजकल एक-दूसरेकी जूठन शौकसे खायी जाती है। बफे पार्टी या सिस्टम (Buffet party or system) तो पशुभोजनकी भाँति सबके जूठन खाने-खिलानेकी ही दूषित भोजनप्रणाली है। इससे शारीरिक एवं मानसिक रोग बढ़ते हैं और अन्ततः पतन होता है।

अतएव छान्दोग्योपनिषद् (७। २६। २)-में कहा गया है कि जिसका आहार शुद्ध है, उसकी बुद्धि शुद्ध होती है, सात्त्विकी हो जाती है, बुद्धि सात्त्विकी हो जानेसे स्मृति दृढ़ हो जाती है और स्मृतिके दृढ़ हो जानेपर हृदयकी सब ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, इनके खुल जानेपर वह मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता हुआ भगवान्‌के चरणोंमें पहुँचकर आत्मानुभूति प्राप्त कर लेता है—**'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।'**

बिना नहाये-धोये गन्दे विचारोंवाले सर्वहारा मनुष्यके अथवा कामी, क्रोधी तथा वैरभाव रखनेवाले एवं अस्वस्थ व्यक्तिके हाथका बनाया हुआ भोजन नहीं करना चाहिये। यदि किया गया तो उससे मनमें अपवित्रता, गन्दगी, काम-क्रोधादि कुत्सित विचार अथवा शत्रुता उत्पन्न होगी। अच्छी तरह नहाये-धोये शुद्ध शरीरवाले, सात्त्विकभोजी, सुसंस्कृत भाववाले संयमी स्वस्थ सुहृद् व्यक्तिके हाथका बनाया भोजन हमें करना चाहिये। भोजन बनानेवाले मनुष्यके स्वस्थ या अस्वस्थ शारीरिक और मानसिक विचार तथा विकारका प्रभाव भोजनपर पड़ता है तथा उन पदार्थोंका भोजन करनेवाले व्यक्तिपर भी तदनुसार ही असर होता है—**'यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी'** भोजनमें हिंसाजनित मांस, लहसुन-प्याज आदि तामसी पदार्थों तथा पापाचारसे प्राप्त भोजनके सेवनसे भोजन करनेवालोंके सद्विचार एवं सद्व्यवहार नष्ट होते हैं। इससे उनमें पापमें पुण्यबुद्धि हो जाती है। फलतः मनुष्य पापपथिक बनकर सर्वनाशकी दिशामें पदारूढ़ हो जाता है, परिणाम होता है उसका नाश; क्योंकि **'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति'**, अतः विधिपूर्वक भोजन करनेसे पहले भक्तिभावसे भगवान्‌को भोग लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे वह प्रसाद बन जायगा और प्रसाद प्रसन्नताका पर्याय है—**'प्रसादस्तु प्रसन्नता'**, अतएव उस प्रसादके पानेसे पानेवालेको प्रसन्नता मिलेगी और हमारा सात्त्विक बना मन-बुद्धि-चित्त स्वतः ही भगवन्मार्गका पथिक बन जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माकी भाषा

(प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी झा 'श्याम', एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)

वस्तुतः आत्माकी भाषाके सम्यक् अनुशासनमें ही मानवकी चिन्तनशक्ति एवं वांछनीय कार्यक्षमता सुदृढ़ तथा सुनियन्त्रित रहा करती है और उससे समुचित विकासकी गति कभी अवरुद्ध नहीं होती। मानव अपने जीवनमें पूर्णता चाहता है। इस महदुद्देश्यकी प्राप्ति भगवत्कृपा, आत्मानुभूति और सम्यक् भाषाज्ञानसे ही सम्भव है। ध्यातव्य है कि अध्ययनशीलता, वाग्मिता तथा लेखन-क्षमता आत्मचिन्तन और भाषा-संयोजनपर समाश्रित है। यदि परिशुद्ध चिन्तन नहीं हो, साधना-समन्वित समुचित भाषा-प्रयोग नहीं हो तो सत्यताका आभास नहीं मिल सकता है। जिस प्रकार छिद्रसे सारतत्त्व बाहर हो जाता है, उसी प्रकार मिथ्यावादी व्यक्ति सदा सारहीन वाणी बोला करता है। अस्तु, सत्य एवं ऋत् वाक् जो आत्माकी भाषा है, इसीका प्रयोग करनेके लिये शास्त्रका निर्देश है।

आत्माभिव्यंजनामें अतुलनीय भाषाशक्तिकी विलक्षण महत्ताको वेदने सूक्ष्मतापूर्वक बड़ी स्पष्टतासे दर्शाया है—

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि
तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥

(ऋक्० १।१६४।४५)

अर्थात् वाणीके चारों रूपों—(१) परा, (२) पश्यन्ती, (३) मध्यमा और (४) वैखरीमें क्रमशः तीन रूप सामान्यतः अप्रकट ही रहते हैं। केवल चतुर्थ रूप 'वैखरी' ही अधिक प्रचलित है। 'परा', 'पश्यन्ती' और 'मध्यमा' के लिये कठिन साधना एवं वाक्-संयमकी अपेक्षा रहती है।

भाषा-प्रयोगकी सोपानात्मक स्थिति निम्नांकित रूपोंमें अनुभवगम्य हुआ करती है—

पहली स्थिति—आत्माकी भाषा 'परा'—मूलाधारचक्रसे सम्बद्ध है, वही मूल प्रेरणा है। परमात्मध्यानके बिना उसका स्फुरण नहीं हो सकता। 'ॐ' का सम्यक् उच्चारण परावाणीकी निरन्तर साधनाके बिना सम्भव नहीं। 'अ उ म्'—सृष्टि-स्थिति-प्रलय—ब्रह्मा-विष्णु-महेशको 'स्वराकृति' प्रदान करना भाषाध्वनिके उच्चार-अभ्यासकी सफलताका चरम निदर्शन है। परमात्मसाक्षात्कारके निमित्त आत्माकी भाषाकी अन्यतम अभिव्यक्ति होती है, सत्यान्वेषक महान् ऋषियोंने आत्माकी भाषाकी महती साधनाका अत्युत्कृष्ट परिचय दिया है।

दूसरी स्थिति—परावाणी जब आत्मासे हृदयमें आती है, तब वह 'पश्यन्ती' कहलाती है। इसी स्तरपर वाणी-साक्षात्कार होता है, जिससे परमात्माकी अनुभूति हो जाती है—हृदयमें नादब्रह्मका निर्मल ध्वनि-संचार होने लगता है।

तीसरी स्थिति—हृदयसे कण्ठके निकटतककी वाणीको 'मध्यमा' कहते हैं। अपनी निश्छलताके कारण यह वाणी श्रोताओंको अत्यधिक प्रभावित करती है। इस भाषा-प्रयोगके लिये हृदयकी शुद्धता तथा मनकी निर्मलता परम अपेक्षित है।

चौथी स्थिति—मुख-कुहर—कण्ठसे ओष्ठतक तथा नासिकाका आश्रय लेकर जो निःश्वास प्रयत्नपूर्वक निस्सृत होता है, वह 'वैखरी' है। वाणीके इस रूपके लिये भी शुद्धता तथा सतर्कता नितान्त आवश्यक है, परंतु सामान्यतः यह संस्कारित नहीं रहती। जलप्रदूषण, अन्नप्रदूषण, वायुप्रदूषण, अखाद्य-भक्षण और कुसंगतिके कारण इसकी प्रकृति प्रायः विकृत ही रहा करती है। अपवादके रूपमें कुछ लोग वैखरीका भी सुष्ठु, शिष्ट और सुन्दर प्रयोग किया करते हैं। ज्ञातव्य है कि अमर्यादित, असंयमित, अशुद्ध, अवांछनीय भाषा-व्यवहारके कारण कलह, विवाद, द्वेष, घृणा, हिंसा और भ्रष्टाचारमें वृद्धि होती है। भाषा जब आत्मानुशासित नहीं रह जाती, तब समाजमें शान्ति-सुव्यवस्थाकी आशा भी नहीं की जा सकती। सदाचारका सत्प्रेरक मूलतः भाषा-संचार ही हुआ करता है। अतः भाषा-प्रयोग सुदृढ़ तथा प्रकाशपूर्ण होना चाहिये।

विशुद्ध भाषाध्वनिसे हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो जाता है, मनमें संयमित ओजका उदय होता है और मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचारकी ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार भाषादर्श और आचारादर्शमें समवाय-सम्बन्ध है।

निःसन्देह यह पृथ्वी सत्यपर ही अवलम्बित है—**'सत्येनोत्तभिता भूमिः'** (ऋक्० १०।८५।१)। इसलिये सत्यवचन बोलना और सदाचरणसे जीना मानवजीवनका प्रमुख लक्षण है। आत्माकी भाषा मनुष्यको सम्यक् चेतना प्रदान करती है, जिससे वह अवगुणोंसे दूर रहकर श्रेष्ठ प्राणी बनता है। इसके विपरीत मिथ्यावादी, दुष्ट और प्रपंची हो जाता है—सत्यमार्गपर वह चल ही नहीं सकता—

'ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः।'

(ऋक् ९।७३।६)

झूठ बोलनेवाला वैखरी वाणीके प्रति भी सचेष्ट नहीं रहता। भाषा-चेतनाके अभावमें वह मानसिक सन्तुलन खो देता है और अपशब्दोंका प्रयोग (गाली-गलौज) भी करने लगता है। उसे यह भी पता नहीं रहता कि गाली गाली देनेवालेको ही लगा करती है—**'शपथः शपथीयते'** (अथर्व० १०।१।५)। अस्तु स्पष्ट है कि आत्माकी भाषाके संकेतानुसार ही आचार-विचारका प्रतिमान स्थापित किया जा सकता है। सच तो यह है कि संयमित भाषा-ध्वनिके शुद्ध उच्चरित होनेपर ही आत्मा प्रसन्नता—सुख-दुःखसे परे आनन्दका अनुभव करती है, जो अवसर-विशेषपर सूक्ष्मरूपमें दृष्ट होती है—

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते॥

(कठोपनिषद् १।३।१७)

निष्कर्षतः सर्वोत्तम लौकिक-पारलौकिक व्यवहारोंमें भाषा-व्यवहारका स्थान अन्यतम है। सामाजिक, आर्थिक, सांविधिक, न्यायिक, धार्मिक-सांस्कृतिक सभी प्रकारके क्रिया-कलापमें भाषाप्रयोगकी भूमिका ही प्रमुख हुआ करती है। आचार-शुद्धताको भाषा सबसे अधिक अनुप्राणित करती है। हर देशकी अपनी भाषा-प्रकृति होती है, उसीमें उसकी संस्कृति सुरक्षित रहा करती है, मौलिक चिन्तनसे सर्वतोमुखी विकास होता रहता है। आत्माकी भाषा स्वाभिमानको सदा जाग्रत् रखती है। इसीलिये श्रुति वाणीके सुष्ठुप्रयोगका सन्देश देती हुई सतत सावधान रहने—जाग्रत् रहनेका उद्घोष करती है—

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'

(कठोपनिषद् १।३।१४)

उठो, जागो और श्रेष्ठताको जानकर उसे प्राप्त करो।

बाहरी साधनोंसे नहीं मिलती मनमें शान्ति

(पं० श्रीविजयशंकरजी मेहता)

अभाव किसीको भी नहीं भाता। वस्तु पासमें न हो, स्थिति अनुकूल न रहे तब जो अभाव होता है, वह तो समझमें आता है, परंतु मनचाहा मिल जाय और फिर भी जीवनमें अभाव, असन्तोष बना रहे, खतरा यहाँसे शुरू होता है और आज अनेक लोग इसी खतरनाक स्थितिमें जी रहे हैं। जो लोग ये मानते हैं कि सम्पन्नताके साधनोंसे ही प्रसन्नता आयेगी और प्रगति होगी, वे भूल जाते हैं कि केवल इससे ही कुछ नहीं होगा। इन बाहरी साधनोंके साथ भीतरकी मनोवृत्तिपर भी काम करते रहना होगा। हमारी मनोवृत्तिमें यदि सन्तोष, सहानुभूति, संयम और सदाचार नहीं हैं तो बाहरसे सब कुछ मिल जानेपर भी अभावका भाव बना रहेगा जो अशान्तिका कारण बनेगा। जिनके पास सब कुछ है जरूरी नहीं कि उनके पास शान्ति भी हो। भौतिकता और आध्यात्मिकताका संघर्ष यहींसे शुरू होता है। भौतिकता कहती है पदार्थ ही प्रमाण है, भौतिकवादी रवैया बनाये रखो, भावनाएँ भ्रान्त हैं। आध्यात्मिकताका आग्रह है पदार्थ गौण हैं, संवेदनाओंको साधो, इसी छीना-झपटीमें मनुष्य उलझ जाता है फिर कैसे जीतें इस द्वन्द्वको? गुरुनानक कहते हैं—हे प्रभु! जैसे भी तुझे भाता हो हमें रख, तेरी मर्जी। ये जो दो शब्द हैं 'तेरी मर्जी' ये हमारे पुरुषार्थको पवित्र और प्रभावशाली बना देंगे। हम कर्म तो पूरा करेंगे, पर फलकी प्राप्ति या अप्राप्ति हमें अशान्त नहीं करेगी। व्यावसायिक जीवनमें जो भी कमायें, परंतु आध्यात्मिक जीवनकी इस आमदनीको न भूलें, जिसे नानकने 'नामु अधारू' कहा। नामकी कमाई सारे अभाव दूर कर देती है। [प्रेषक—श्रीश्यामसुन्दरजी पटेल]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभुका खेल

उस समय वासनाएँ शान्त हो जाती हैं, शान्तिमय संस्कारोंकी एकरस धारा बहने लगती है, असीम आनन्दके उद्रेकसे विषमताएँ शिथिल पड़ जाती हैं; दृष्टि और शरीर स्थिर हो जाते हैं, प्राण, नाड़ी और रुधिराभिसरणकी गति धीमी पड़ जाती है, रोम-रोम एक मीठी शीतलतासे भर जाता है; क्योंकि उस समय शुद्ध मन अन्तर्देशमें प्रवेश करता है।

विशेषत: उस सायंकालमें, जब सूर्यकी अनुरागमयी रश्मियोंका मधुर स्पर्श प्राप्त करके वसुन्धराके एक-एक कण अपनी चंचलता खोकर शान्ति-शय्यापर विश्रामका उपक्रम करते हैं, उस निस्तब्ध निशीथमें, जब समस्त प्रकृति प्रभुके उत्संग-सुखका अनुभव करके आत्मविस्मृत रहती है अथवा उस सुनहले प्रात:कालमें जब मलयशीतल मन्द-सुगन्ध वायु प्राणोंमें नवीन जीवन और नवीन स्फूर्ति भरता रहता है। प्रत्येक शुद्ध मनको ऐसा अनुभव होता है कि मुझे कोई अन्तर्देशमें खींच रहा है—मुझे कोई बलात् ऊपर उठाकर आलिंगन करना चाहता है।

यह प्रेमका निमन्त्रण, यह प्रभुका सहज चुम्बन किसी बिरले ही भाग्यवान्‌के अनुभवमें आता है और केवल उसीके अनुभवमें आता है, जिसका चित्त चिन्ताओंके भारसे अभिभूत नहीं हो रहा है। चिन्ताक्रान्त चित्त ऊर्ध्वगामी नहीं, अधोगामी होता है। इसलिये जिस चित्तमें शुभाशुभ कर्मकी एक भी वासना, जो स्थूल शरीर अथवा विचारसे पूर्ण होनेवाली है, रहती है, वह चित्त, ठीक वैसे ही जैसे मलिन लोह चुम्बकसे आकर्षित नहीं होता, उस प्रेमाह्वानको नहीं सुन पाता।

निरन्तर सावधानीकी आवश्यकता है। न जाने कब वह समय आ जाय और हम प्रमादग्रस्त हों। पल-पलमें आनेवाली सूर्यरश्मियोंको गिनते रहें, वायुकी एक भी तरंग आँख बचाकर न निकल सके, न जाने उनके किस सूक्ष्मतम प्रदेशमें वह सन्देश आये और हम बाहरी चकाचौंधमें ही मस्त रह जायँ। पवित्रता, प्रार्थना, कृतज्ञता और शान्तिकी गम्भीरतम स्थितिमें स्वयं प्रभु ही अपने भुजपाशमें बाँध लेते हैं और उनका अपना प्यारा जीव निरावरण होकर सर्वदाके लिये उनके हृदयसे एकमेक हो जाता है।

पवित्र चित्तमें ही कृतज्ञताका उदय होता है। कृतज्ञता अर्थात् मेरे प्रेम न करनेपर भी, सेवा न करनेपर भी और स्मरण न करनेपर भी उन्होंने मुझपर अनन्त प्रेमकी वर्षा की है, परम हितैषीसे भी बढ़कर सेवा की है और निरन्तर मुझपर अपनी आँखें रखी हैं। मेरे 'अस्ति' और 'नास्ति' दोनोंको ही उन्होंने बच्चोंका खिलवाड़ समझा है एवं मेरे 'सु' और 'कु' दोनों प्रकारके आचरणोंको ही अभिनय समझकर वे प्रसन्न हुए हैं। मेरा अभिमान था कि मैं उनसे प्रेम करता हूँ, मैं उनकी प्राप्तिका प्रयत्न करता हूँ। वास्तवमें मैं विषयोंमें इतना उलझा हुआ था कि उनके बार-बार पुकारनेपर भी उनके प्रेमकी अवहेलना करता रहा और उनसे दूर ही रहनेकी चेष्टा करता रहा। अब मुझे मालूम हुआ कि वह मेरी भूल थी। मैं उन्हींके प्रेममें सराबोर हूँ। प्रत्येक परिस्थिति और प्रत्येक घटना ही उनका प्रेमपरिप्लुत वरदान है। अब मेरा हृदय अपनेको 'प्रेमी' नहीं 'प्रियतम' जानकर उस परमशान्तिका अनुभव कर रहा है, जिसमें आनन्दकी पराकाष्ठा अपनी सेविका रहती है।

सृष्टिके सम्बन्धमें बड़े-बड़े विद्वानोंतककी धारणा भी बहुत ही स्थूल है। वे सृष्टिको कर्मचक्रके निविड बन्धनसे विजडित एवं राग-द्वेष और पाप-पुण्यके द्वन्द्वोंसे आक्रान्त ही देखते हैं। इसीसे वे छोटे-मोटे ब्यौरोंमें प्राय: अस्त-व्यस्त रहते हैं। वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। जिसे हम सृष्टिके रूपमें देखते हैं, वह सच्चिदानन्द-स्वरूप है अथवा चिन्मात्रमें ही चिन्मय लीला-विलास है। इसके राग-द्वेष, पाप-पुण्य अभिनयमात्र अथवा प्रतीतिमात्र हैं, इसीसे इस सृष्टिमें कहीं भी चिन्ता करनेका स्थान या अवसर नहीं है। सब ठीक-ठीक हो रहा है—सब-के-सब इस जगन्नाटकमें 'निर्देशक' की इच्छाका अनुसरण कर रहे हैं। भक्तकी दृष्टिमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह चिन्मयी लीला और ज्ञानीकी दृष्टिमें सच्चिदानन्दघन निज स्वरूप ही सब कुछ है। वास्तवमें उन्हींकी दृष्टि सच्ची दृष्टि है। ऐसा निश्चय होते ही संकल्पोंका प्रवाह मन्द और धीरे-धीरे बन्द हो जाता है। बाहर सच्चिदानन्दघनकी एक रसधारा है और भीतर परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप है—इस ज्ञान या भावकी जागृतिमात्रसे विषयसंकल्पकी निवृत्ति और सच्चिदानन्दघनभावकी परिस्फूर्ति या अनुभूति होने लगती है। यही गाढ़ होकर प्रभुका साक्षात्कार कराती है। इसमें सगुण अथवा निर्गुणका कोई भेद नहीं है।

पवित्र चित्त जब कृतज्ञतासे परिप्लुत हो जाता है, तब अन्तर्देशके गम्भीरतम प्रदेशसे प्रार्थनाकी प्रशान्त धारा प्रवाहित होने लगती है। ऐसे भाव स्वयं ही प्रस्फुरित हो उठते हैं—'प्रभो! मैं अनादिकालसे तुम्हारी ही गोदमें हूँ—तुमने कभी एक क्षणके लिये भी मुझे अपनेसे दूर नहीं किया, तुम्हारी मंगलमयी सन्निधिमें रहनेपर भी, तुम्हारा मधुमय स्पर्श प्राप्त करते रहनेपर भी, मैं ऐसा मुग्ध हो गया—ऐसी बेहोशीमें मस्त हो गया कि मैं कहाँ हूँ और किससे खेल रहा हूँ? यह बात मुझे सर्वथा भूल गयी मेरे स्वामी! तुम्हारे सामने ही तुम्हारे करकमलोंकी छत्रछायामें ही तुम्हें भूलकर मैं भटकने लगा और तुम, मेरे लीलानटवर! तुम ज्यों-के-त्यों मुसकराते रहे। ठीक था तुम्हारा मुसकराना भी, परंतु मुझे सावधान तो कर देना था? अच्छी बात, माना कि वह भी एक लीला ही थी। परंतु अब, अब तो अपना पूरा पागलपन मेरी आँखोंके सामने नाच रहा है। कहाँ-कहाँ मैं भटका सुख-शान्तिकी खोजमें, जब कि मैं उनके मूल आश्रयमें ही निवास कर रहा था। अस्तु, अब मैं देख रहा हूँ तुम्हारी सारी खिलवाड़! अब कभी अन्धा नहीं बनाना, नहीं होने देना। मैंने अज्ञान और अहंकारके वश होकर भला क्या-क्या अपराध नहीं किये हैं—उनको याद न करना ही अच्छा है, परंतु कहीं उनकी पुनरावृत्ति न हो जाय इसके लिये वचन तो देना ही पड़ेगा। जो कुछ है सब तुम्हारा ही है, सब तुम्हीं हो फिर भी मैंने अपना मान जो रखा था, इसलिये सब फिरसे सौंपता हूँ—अपना होनेपर भी एक बार स्वीकार करनेकी लीला कर लो—नाथ! लीला करनेमें तो तुम कभी संकोच नहीं करते हो। यह संसार, शरीर और प्राण तुम्हारे हैं, यह इन्द्रिय, मन और बुद्धि तुम्हारे हैं, मेरा जो कुछ ज्ञात या अज्ञात स्वरूप है—स्वयं मैं जो कुछ हूँ तुम्हारा हूँ। मेरे—'मैं' को, मेरे सर्वस्वको अपने प्रेमकी अजस्र बरसती हुई अनन्त धारामें बह-बिला जाने दो। केवल तुम रहो और तुम्हारा यह अनन्त प्रेम रहे। जिसमें यह सारा संसार डूब-उतरा रहा है और जिसकी घनतामें ही इसको स्थान मिला है तथा जिसके अस्तित्वसे ही यह अस्तित्ववाला हो रहा है। मेरा यह समर्पण मेरा समर्पण नहीं है, तुम्हारा स्वीकार ही इस रूपमें अभिव्यक्त हुआ है। ऐसा अनन्त स्वीकार—केवल तुम्हींने कर रखा है और केवल तुम्हींने कर रखा है। तुम्हारे स्वीकारके अतिरिक्त मैं और क्या हूँ? मैं केवल तुम्हारा अन्तहीन स्वीकार हूँ।

जिस समय प्रेम और समर्पणकी भावनासे सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत् आप्लावित और आप्यायित हो जाता है, शान्ति और आनन्दके महान् समुद्रके अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता, उस समय परमात्माका वह दिव्य सन्देश प्राप्त होता है, जो केवल परमात्मा ही दे सकता है—जीवका परिमित ज्ञान जिसका आकलन करनेमें सर्वथा असमर्थ है। परमात्माके शब्दोंमें मेरे प्यारे आत्मा, मेरे प्यारे सर्वस्व, तुम कभी मुझसे बिछुड़े नहीं। तुम मेरे हृदय हो। भला, तुम्हें छोड़कर मैं कैसे रहता, कैसे रह सकता! तुम जैसे अब मेरी गोदमें हो, ठीक वैसे ही तब भी थे। जैसे अब बात कर रहे हो, वैसे ही तब भी कर रहे थे। मैं ही सैकड़ों रूपोंमें तुमसे मिलता था, हजारों रूपोंमें तुम्हारे सामने आता था और मेरे ही लाखों रूपोंकी तुम्हारे मनमें सम्भावनाएँ थीं। था मैं ही, तुम पहचान नहीं रहे थे। मैं तुम्हारे साथ वैसे ही खेलना चाहता था, वैसे ही खेल रहा था—दु:खकी तो कोई बात ही नहीं थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानउँ एक भगति कर नाता'

(पं० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय 'किशन महाराज')

चित्तकी वृत्तियोंकी द्रवता, एकाग्रता और भगवदाकारवृत्तिका नाम भक्ति है। भक्तिमें भगवान्‌की प्रसन्नता तथा श्रीठाकुरके प्रति सर्वस्व-समर्पणके सिवा अन्य किसी भी लौकिक-पारलौकिक द्रव्यादिकी अपेक्षा, आकांक्षा नहीं होती—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(रा०च०मा० २। २०४)

भगवद्भक्तोंकी हार्दिक अभिलाषा यही रहती है कि हम अपने आराध्य श्रीसीताराम तथा राधामाधवके चरणारविन्दमकरन्दका रसास्वादन करते रहें। हमें अहर्निश अपलक चरणारविन्दोंकी सेवा-कैंकर्यका लाभ मिलता रहे, एक जन्म नहीं हजारों-हजार कल्पोंतक यह शुभ अवसर प्राप्त होता ही रहे। नाम, रूप, लीला, धाम—इस साधनचतुष्टयकी प्राप्तिमें ही सर्वतोभावेन जीवन धन्य बनानेवाली अकिंचन मीराबाई तो स्पष्ट कहती हैं—***'पायोजी मैंने राम रतन धन पायो'***। इसी प्रकार सूरको विश्वासकी ही आस है—आप लिखते हैं—***'भरोसो दृढ इन चरनन केरो'***। भक्त अपनेको सदा श्रीठाकुरका नित्यदासानुदास मानते हैं। भक्तहृदय महाभागवतोंका कथन है—***'बिना मोलको चेरो'*** वे अपनेको श्रीठाकुरके चरणारविन्दोंमें आत्मसमर्पणस्वरूप दासोऽहम् ही समझते हैं। श्रीहनुमत्‌लालजी महाराज मर्यादापुरुषोत्तम राघवेन्द्र भगवान् श्रीरामके अनन्यतम प्रिय, वरिष्ठ, बलिष्ठ एवं धर्मिष्ठ होते हुए भी **'दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य'** की भावनाको ही अभिव्यक्त करते हैं। भगवान्‌की प्रसन्नताका हेतु दैन्यभाव ही है। शरणागति अथवा दासानुदासत्व सेवक भाव ही भगवान्‌को वशमें करनेका मूल मन्त्र है। ऐसे अंकिचन जनोंके कारण ही भगवान् कभी वस्त्ररूप धारण कर लेते हैं तो कभी सारथि बनकर रथ हाँकने लगते हैं—***'बसन रूप भये श्याम'*** तथा ***'सारथी बनकर रथ को हाक्यो'***।

भक्तिरूप सेवा एवं समर्पण ही मुख्य है। यहाँ वैदुष्य, पराक्रम, कुल तथा राजन्यादि पदका कोई औचित्य नहीं है, इसलिये श्रीगोविन्दकी कृपावृष्टि चाहनेवालोंके लिये भगवद्भक्ति, उसमें भी महापुरुषोंके संगसे उत्पन्न भक्तिलताकी वृद्धि और फलका अनुभव कुछ और ही होता है। श्रीमद्भागवतपुराणमें भक्ति-निर्णयमें—**'श्रवणं कीर्तनं विष्णो ···पादसेवनम्'** कहकर प्रथम 'श्रवण' भक्तिकी ही मुख्यता बतायी है।

भगवद्‌गुणानुवादका श्रवण करने तथा श्रवणकी हुई कथा और दृश्य-लीलाका अनुकरण करनेसे चित्तका मलापनयन होकर गुणानुसन्धान होता है। चित्तकी द्रवता अविरल अखण्ड भगवदाकारवृत्तिको उत्पन्न करती है और अखण्ड तैलधारावत् हृदयमें बहनेवाली उस धाराका नाम भक्ति है—ऐसा पूर्वाचार्योंने माना है। भगवद्भक्तोंकी अभिलाषामें यही भाव रहता है। श्रीमद्‌जगद्‌गुरु शंकराचार्य लिखते हैं—न मुझे मोक्षकी अभिलाषा है और न सांसारिक ऐश्वर्यकी, मुझे तो केवल हे जगदम्ब! तुम्हारा पावन स्मरण अहर्निश होता रहे—**'मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥'** राधाकृपाकटाक्षस्तोत्रकार लिखते हैं—**'कदा करिष्यसि मां कृपाकटाक्षभाजनम्'**। हे मा! कब आप मुझे अपने कृपाकटाक्षका भाजन बनायेंगी?

श्रीजगन्नाथ भगवान्‌के प्रति निवेदन करते हुए भक्तकी अभिलाषा है—**'जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे'**। स्वामी जगन्नाथ मेरे नेत्रोंके विषय बनें।

वेदान्तके चूडान्त विद्वान् श्रीमधुसूदनसरस्वतीपाद भगवान्‌की सुन्दर छविका वर्णन करते हुए कहते हैं—नीलमणि नीलाम्बरधर श्रीश्यामसुन्दरकी साँवली-सलोनी मनमोहनी चित्तको चुरानेवाली दिव्य छटासे अतिरिक्त मैं किसी अन्य तत्त्वको नहीं जानता—**'कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।'**

ऐसी ही स्थिति अनेक साधन-संसाधनोंको पीछे छोड़ आये परम आस्तिक भगवदनुरागी जनोंकी है, जिनका चित्त ही श्रीराधामाधव, श्रीजानकीजीवनधनने हरण कर लिया है। एक भक्त कहते हैं—

'मेरो मन हर लियो जानकीरमणवा'

अब मेरा अपना कुछ है ही नहीं—***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***। ऐसी भगवदाकार वृत्ति जो अखण्ड, अविरल, अहर्निश बहती है, जिसके हृदयमें जमती है, वह भक्ति सात्त्विक और भगवत्प्रिय होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे भक्तोंके भाव बड़े सरस होते हैं। एक भक्तके भाव हैं—

कदा वा साकेते विमलसरयूतीरपुलिने
चरन्तं श्रीरामं जनकतनयालक्ष्मणयुतम्।
अये राम स्वामिञ्जनकतनयावल्लभ विभो
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

अर्थात् साकेतलोक (अयोध्या)-में सरयूके अति कमनीय कूलपर, श्रीजानकी और लक्ष्मणजीसहित टहलते हुए भगवान् श्रीरामसे 'हे राम! हे स्वामिन्! हे वैदेहीवल्लभ! हे विभो! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहते हुए निमिषकी तरह दिनोंको कब बिताऊँगा?

वृन्दावनकी पावन रमणीय छटा और श्रीराधामाधवके नित्य-निकुंज यमुनापुलिनकी छवि और गोविन्दको वहाँ हलधर-सुदामादिके सहित विचरण करते और मधुर-मुरलीवादनको सुननेकी ही इच्छा रखते हुए एक दूसरे भक्तका कथन है—

कदा वृन्दारण्ये विमलयमुनातीरपुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितम्।
अये कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरलीवादन विभो
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

अर्थात् वृन्दावनमें, यमुनाजीके पावन तटपर भैया बलराम और सुदामादि सखाओंके साथ घूमते हुए गोविन्दसे 'हे कृष्ण! हे स्वामिन्! हे मधुर मुरली बजानेवाले! हे विभो! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहते हुए कब अपने दिनोंको पलक मारनेके समान व्यतीत करूँगा।

श्रीवृन्दावनधाम, जहाँ श्रीहरिका नित्य निवास है, वह साक्षात् भक्तिका स्वरूप है। श्रीवृन्दावनकी महिमासे अभिभूत होकर भक्त कहते हैं—*'रे मन वृन्दा विपिन निहार'*।

ऐसी ही सुन्दर अभिलाषा भगवत्कैंकर्यलक्षणयुत श्रीभागवतोंकी रहती है। श्रीमद्भगवच्चरणारविन्दानुरागरसरसिक भगवद्भक्तिरसाप्लावित अकिंचनजनोंके सर्वस्व श्रीराधा-माधव ही हैं। ऐसे भगवद्भक्तोंकी कृपासे ही भगवदवतार अथवा ऐसे अकिंचनोद्धारके हेतु ही भगवदवतार होता है। ***'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार'***। भगवत्-परायणता, कैंकर्यता, सद्धर्मानुष्ठानरतवैदिकवर्णाश्रमव्यवस्थानु-गामित्वादिसद्गुणसमन्वित आस्तिक जनहेतु भगवद्वाक्य उच्चारित होते हैं—**'अहं भक्तपराधीनो'** और वे भगवान्के अकिंचनजन भगवद्भक्त भी श्रीभगवन्नामरूपलीलाधाम इन चारोंका ही आनन्द लेते हैं। एक भक्तका कथन है—

कदा वाराणस्यां विमलतटिनीतीरपुलिने
चरन्तं भूतेशं गणपतिभवान्यादिसहितम्।
अये शम्भो स्वामिन् मधुरडमरूवादन विभो
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

अर्थात् काशीजीमें श्रीगंगाजीके परम पवित्र तीरपर गौरी और गणेश आदिसहित घूमते हुए भगवान् भूतनाथको 'हे शम्भो! हे स्वामिन! हे मधुर-मधुर डमरू बजानेवाले सर्वव्यापक प्रभो! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहते हुए अपने दिनोंको क्षणके समान कब बिताऊँगा?

इसी प्रकार जिसके जीवनमें श्रीजानकीजीवन' श्रीराधामुकुन्दकी भक्ति नहीं, वह जीवन बेकार है।

यशोदानन्दवर्धन, कौसल्यानन्दवर्धन श्रीरामकृष्णादिके प्रति जिनका अनुराग नहीं, ऐसे धन, वैभव, वैदुष्य, वाग्-विलास तथा अनेकानेक उपाधियों और धरोहरोंको धूल समान कहा गया है। यथा—

शरीरं सुरूपं ततो वै कलत्रं
यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
यशोदाकिशोरे मनो वै न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥
षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
यशोदाकिशोरे मनो वै न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

अर्थात् सुन्दर शरीर हो, सुरूप स्त्री हो, सुन्दर एवं विचित्र यश हो तथा सुमेरु-तुल्य धन हो, किंतु यदि यशोदानन्दनमें मन नहीं लगा तो उन सबोंसे क्या लाभ है?

छहों अंगोंसहित वेद और शास्त्रोंको पढ़ा हो, सुन्दर गद्य और पद्यमय काव्यरचना करता हो, किंतु यदि यशोदानन्दनमें मन नहीं लगा तो उन सभीसे क्या लाभ है?

वस्तुतः श्रीराधामाधवके चरणारविन्दोंमें मन लगना ही परम धन है। जगत्में वास्तविक सार वस्तुएँ तो सत्संग, गंगा, भगवन्नामरूपसेवन ही है। नाम, रूप, लीला एवं धामकी सेवा ही सार है। अतः प्रभुसे भक्तिरूप सेवाका नाता रखना परम श्रेयष्कर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूढ़े माता-पितासे मत छीनिये उनके पोते-पोतियोंका संसार

(श्रीप्रेमनारायणजी गुप्ता)

माता-पिता बहुत खुश थे कि उनका बेटा अच्छेसे सैटल हो गया है। अब तो उसने मुम्बईमें अपना फ्लैट भी ले लिया है और बच्चोंके साथ मजेसे वहीं रह रहा है। माता-पिता अब काफी बूढ़े हो गये हैं और अक्सर बीमार रहते हैं। पेंशनके जिन रुपयोंसे गृहस्थी चल जाती थी अब वे कम पड़ने लगे हैं क्योंकि मँहगाई, दवाएँ और फलोंका खर्च बजट बिगाड़कर रख देता है।

माँने फोन करके बेटेको घर बुलवाया तो वह छुट्टियोंमें पिताकी बीमारीका हाल-चाल जानने चला आया। माता-पिता बेटेको देखकर बहुत खुश हुए और बहू और पोते-पोतीको साथ न लानेपर नाराज भी हुए। आज बरसों बाद रसोईमें कई चीजें एक साथ बनीं और बेटेको खूब खिलाया-पिलाया।

बेटेने पितासे पूछा—'अब तो दिल्लीमें प्रापर्टीके दाम बहुत बढ़ गये हैं। अपना मकान कितनेका चल रहा है?' यह सुनकर पिताको अच्छा नहीं लगा और वे सुना-अनसुना कर गये। अगले दिन जाते हुए बेटा बोला—'टेक केयर पापा।' माँकी आँखें आँसुओंसे भींग गयीं। वे सोचती रहीं कि पापा तो कुछ कर नहीं पाते और मैं भी कुछ नहीं कर पाती, ऐसेमें भला केयर होगी तो कैसे? हू विल टेक केयर?

प्रश्न उठता है कि मात्र टेक केयर कहनेसे ही माता-पिताकी देखभाल हो जाती है? बुढ़ापेमें पैसोंकी ही नहीं, सेवाकी भी जरूरत पड़ती है। कुछ लोगोंकी मजबूरी हो सकती है जिसके कारण वे अपने माता-पिताके पास नहीं रह सकते अथवा उन्हें साथ नहीं रख सकते, लेकिन माता-पिताको तो उनकी जरूरत है। क्या बचपनमें माता-पिता किसी विवशताके कारण अपने बच्चोंको अपनेसे कभी दूर होने देते हैं?

प्राय: सभी माता-पिता बच्चोंके लिये हर प्रकारके समझौते करनेको तैयार रहते हैं फिर उनके बुढ़ापेमें बच्चे क्यों नहीं कोई समझौता करनेका प्रयास करते? कुछ लोग अपने बूढ़े माता-पिताकी सेवा तो नहीं कर पाते, लेकिन उन्हें किसी प्रकारकी आर्थिक तंगी नहीं होने देते। ऐसे लोग उन लोगोंसे बेहतर हैं, जिनके माता-पिता दाने-दानेको मोहताज हो जाते हैं, लेकिन माता-पिताकी सेवा करना भी तो बच्चोंका ही फर्ज है। हम सब अपने फर्जसे कैसे मुँह मोड़ सकते हैं?

आजके आधुनिक शिक्षाप्राप्त तथा पाश्चात्य संस्कृतिके पुजारी वैसे तो अपने बूढ़े माता-पिताको कभी पूछते नहीं, लेकिन मदर्स डे और फादर्स डे पर उपहार भिजवाना नहीं भूलते। बूढ़े माता-पिताको मँहगे उपहार नहीं देखभाल और प्यारकी ज्यादा जरूरत है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्हें देखभालकी भी कोई खास जरूरत नहीं है। वास्तवमें उन्हें जरूरत है अपने बच्चोंके साथकी। बहू और पोते-पोतियोंके साथकी। यदि उनकी बहू और पोते-पोतियाँ साथ होंगे तो उन्हें देखभालकी भी कोई जरूरत नहीं होगी, अपितु वे ही उनके कामोंमें हाथ बँटा देंगे। परिवारका अभाव ही तो उनके दु:ख और बीमारीका कारण है।

एकल परिवारोंकी अपेक्षा संयुक्त परिवारोंमें रहनेवाले माता-पिता और बच्चे सभी अधिक स्वस्थ रहते हैं। साथ रहना सुरक्षा ही नहीं अच्छे स्वास्थ्यका भी मूल है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो माता-पिताके साथ तो रहते हैं और उनका पर्याप्त आदर-सम्मान भी करते हैं, उनके पैर छूते हैं, लेकिन अपने बच्चोंको उनके पासतक फटकने नहीं देते। मात्र दिखावेके लिये आदर-सम्मान भी पर्याप्त नहीं, अपितु पूर्णरूपसे अपनेपनकी जरूरत है।

दादा-दादी अपने पोते-पोतियोंके साथ घुल-मिल कर रहें तभी उन्हें अच्छा लगेगा। दोनों एक-दूसरेके साहचर्यसे परस्पर लाभान्वित भी हो सकेंगे। बच्चे थोड़े बड़े होंगे तो अपने दादा-दादीका काम करेंगे और छोटे होंगे तो उनसे काम करवायेंगे, जिससे दादा-दादी अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यदि सचमुच अपने बूढ़े माता-पिताको स्वस्थ रखना है, उनकी सेवा करनी है तो उनसे उनके पोते-पोतियोंका संसार मत छीनिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तचरित—

सिद्धशिरोमणि सन्त—बाबा श्रीमनोहरदासजी

(श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्त)

प्रातः ब्राह्ममुहूर्तका समय, शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा बह रही थी। शान्तिमय वातावरणमें एक कड़कती हुई आवाज आयी—'ओ मैन, टुम क्या करटा है, ड्यूटी टाइममें स्टडी।' सन्तरीका ध्यान भंग हुआ, देखा, सामने एक गोरा चिट्टा अंग्रेज पुलिस-अधीक्षक खड़ा है, चेहरा क्रोधसे तमतमा रहा है। पूर्व-राजस्थानमें स्थित शहर भरतपुरकी पुलिस लाइनपर पहरा देते हुए सन्तरीने सेल्यूट दी। कानोंमें वही आवाज फिर गूँजी—'क्या पढ़ता है मैन।' 'सर, हमारा धर्म-ग्रन्थ गीता है, उसीका पाठ कर रहा हूँ।' सन्तरीने नम्रभावसे निर्भीक होकर जवाब दिया। वह अंग्रेज पुलिस-अधीक्षक टूटी-फूटी, आधी हिन्दी-आधी अंग्रेजीमें बोलता रहा—'नो, ड्यूटी टाइम, ड्यूटी माँगता है, नो स्टडी। ड्यूटी इज ड्यूटी, नॉट अलाउड, ओ मैन, टुमको डिसमिस कर देगा, यह नहीं चलेगा।'

सन्तरीने उस अंग्रेज अफसरके सामने अपनी बन्दूक और पोशाक उतार फेंक दी—यह कहते हुए—'यह नहीं चलेगा तो यह भी नहीं चलेगी।' नौकरी छोड़ वह चल दिया। अंग्रेज-अफसर देखता रहा—'एक बुकके लिये सर्विस छोड़ दी। विदाउट परमीशन—ड्रेस फेंकी-गन फेंकी, ग्रेट-ओफेन्स (संगीन जुर्म)।'—अंग्रेज-अफसर अपने कार्यालय आया और उस सन्तरीके नाम वारन्ट निकाल दिया कि उसे शीघ्र गिरफ्तार कर लिया जाय।

बन्दूक एवं पोशाक फेंक, नौकरी छोड़कर जानेवाला वह गीताध्यायी सन्तरी ही आगे चलकर सिद्धशिरोमणि सन्त हुआ—बाबा श्रीमनोहरदास, जिस कर्मके साथ धर्म नहीं, उस कर्मको छोड़ उन्होंने धर्म-साधनाहेतु प्रस्थान किया। वे तो अपनी ड्यूटी देते हुए गीताका स्वाध्याय कर रहे थे—उनके लिये गीताका यह सन्देश था कि भगवान्का स्मरण हर समय करते हुए अपना कर्म करो। गीताके अध्याय ८ के ७वें श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश दिया है कि हे अर्जुन, तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

बाबा मनोहरदासजीका जन्म भरतपुर जिलेके एक छोटेसे गाँव वैरमें पण्डित श्रीभजनलालनगाइचके यहाँ भाद्रपद मास शुक्ल पक्षकी जलझूलनी एकादशी, विक्रम सम्वत् १९५२ (सन् १८९५)-को रात्रिके ११ बजे पुष्य नक्षत्रमें हुआ था। बचपनमें इन्हें लोग 'मूला' नामसे पुकारते थे। आध्यात्मिक नगरी लघुकाशीके नामसे प्रसिद्ध इस गाँव वैरमें ही बालक मूलाकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई। पिताने भी इनको अनेक विषयोंका अध्यापन कराया। बचपनसे ही वे शान्त एवं गम्भीर स्वभावके थे। 'गीता' और 'विष्णुसहस्रनाम' उन्हें कण्ठस्थ थे। असमयमें पहले माताका और फिर पिताका देहावसान हो गया। बालक मूला बहुत रोये, अब वे बे-सहारा थे। संसारकी असारता एवं जीवनकी क्षणभंगुरताका उन्हें ज्ञान हुआ। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णके कहे वचन याद आये—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥'

(गीता ९। ३३)

अर्थात्—तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्यशरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।

ईश्वरकी ओर उनका झुकाव बढ़ा और संसारके प्रति वैराग्य, लेकिन यह वैराग्य आपात-वैराग्य था, दृढ़ वैराग्य नहीं। माता-पिताकी मृत्युके कुछ समय बाद उनकी स्थिति सामान्य हुई और उन्हें आर्थिक-संकट सताने लगा। उनका शरीर मजबूत और कद अच्छा था, पुलिस-सेवामें सिपाहीकी नौकरी मिल गयी। पुलिस-सेवा, ईश-आराधना, स्वाध्याय और सत्संगमें अब इनका जीवन व्यतीत होने लगा। कभी-कभी कह देते थे—

हरि का भजन पेट का धन्धा। नहीं करे सो मूरख अन्धा॥

विवाहके प्रस्ताव आये। लोगोंने गृहस्थ-जीवन अपनानेकी सलाह दी, लेकिन वे विवाह एवं गृहस्थसे दूर रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय बीतता गया। ज्ञान एवं वैराग्यसे युक्त भक्ति बढ़ती गयी और पुलिस-सेवामें अरुचि। प्रारब्धके भोग तो प्रबल होते ही हैं। अंग्रेज पुलिस अधीक्षकके साथ सन् १९३८ ई० में उक्त घटना घटी, अनायास ही एक संयोग बना और घूमते-फिरते उदयपुरकी घाटियोंमें रमे हुए एक सिद्ध-पुरुष श्री श्री १००८ श्रीगणेशदासजी महाराजके पास पहुँचे और उनसे गुरु-दीक्षा ली। वे करीव १२ वर्ष गुरुके पास रहे और साधनाके द्वारा ईश्वरके वास्तविक स्वरूपकी प्राप्ति में लग गये। इसके बाद वे अपने गाँव लघुकाशी 'वैर' आये और लोगोंने उनके सत्संगका लाभ उठाया। बाबा मनोहरदासजी सदैव ईश्वरकी आराधना, नाम-जप एवं ध्यानमें अपने मन-प्राण और बुद्धिको लगाये रहते थे। उनका कहना था कि साधक भगवान्‌का भजन सच्ची-लगनसे करे तो ईश्वरको, उस परम तत्त्वको प्राप्त कर सकता है। वे सदैव सहज-साधनाके मार्गपर चलनेपर जोर देते थे—आडम्बररहित सादा एवं सरल जीवन।

बाबा मनोहरदासजी संसारके सभी क्लेशों—अविद्या, अहंकार, राग, द्वेष और मृत्यु-भयसे रहित महान् सन्त थे। उन्होंने ज्ञानके आधारपर सभी सांसारिक भोगोंको त्यागा और कभी उनका मनसे भी चिन्तन नहीं किया। वे सदैव ब्रह्ममें लीन रहा करते। उन्हें गीताका गहन अध्ययन था और गीता ही उनके जीवनका सार थी। वे ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी महात्मा थे। समकालीन लोगोंने बाबा मनोहरदासजीको एक सिद्धशिरोमणि सन्तके रूपमें देखा, माना और पूजा। उनमें अनेक प्रकारकी अलौकिक शक्तियाँ थी, वे सिद्धियोंके भण्डार थे। उन्होंने कभी भी उन सिद्धियोंका प्रदर्शन नहीं किया—जनहितमें मंगलकामनाकी भावनाएँ ही सिद्धियोंका रूप ले लेती थीं। बाबा मनोहरदासजीकी अलौकिक चमत्कारपूर्ण घटनाओंको वैर गाँवके निवासी, सन्त एवं शिष्य-समुदाय आज भी सत्य-स्मरणोंके रूपमें सुनाते हैं। यथा—

१. उन्हें भूख-प्यासका अनुभव नहीं होता था।

२. वे दूरकी बातोंको अपने स्थानपर सुन लेते थे।

३. दूसरोंके मनकी बात उनसे छिपी नहीं रहती थी।

४. वे कई स्थानोंपर एक साथ देखे गये।

५. सर्दी, गर्मी आदि कष्टोंका उनपर कोई प्रभाव नहीं था।

६. जन-कल्याणके अनेक कार्य उनकी इच्छा एवं आशीषसे पूर्ण हुए।

बाबा मनोहरदासजी अपने उपदेशोंमें कहा करते थे—माला, तिलक एवं गेरुवा वस्त्र धारण करनेसे कोई साधु नहीं होता और इस दोहेको सुनाना भूलते नहीं थे—

दया गरीबी बन्दगी, समता शील स्वभाव।
एते लच्छन साधु के, कहै कबीर विचार॥

ऐसे सिद्ध सन्त बाबा मनोहरदासजी आज हमारे बीच नहीं है, वे अपने नश्वर शरीरको मार्गशीर्ष (अगहन) मासके शुक्ल पक्ष, षष्ठी तिथि, मंगलवार, विक्रम सम्वत् २०१५ तदनुसार १६ दिसम्बर, १९५८ ई० को प्रात: ५ बजे छोड़कर सत्यलोक प्रस्थान कर गये। '**ध्रुवं जन्म मृतस्य च**'—भक्तोंका यह विश्वास है कि वे आज भी अपने प्रिय भक्तोंके साथ हैं; क्योंकि आत्मा अविनाशी है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
(गीता २। २०)

अर्थात् यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।

मैं कौन हूँ, यह दृश्यजगत् कैसे हुआ ?—इन सब बातोंका जबतक विवेकपूर्वक विचार नहीं किया जाता, तभीतक यह अन्धकारके समान संसारका आडम्बर खड़ा है। मिथ्या भ्रमसमूहसे उत्पन्न यह शरीर आपत्तियोंका घर है। जो आत्मभावनाके द्वारा इस दृश्यको नहीं देखता अर्थात् जो 'यह दृश्य नहीं है, सब कुछ आत्मा ही है'—ऐसा देखता है, वही यथार्थरूपसे देखनेवाला है। जो देश और कालवश शरीरमें उत्पन्न हुए सुख-दुःखोंको भ्रमरहित दृष्टिसे 'ये मेरे नहीं हैं' इस तरह देखता है, वही यथार्थ द्रष्टा है। [योगवासिष्ठ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकी आवश्यकता—गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

[गतांक सं० ५ पृ०-सं० ७०३ से आगे]

कथा आती है कि जनकमहाराजको जब नरकसे होकर ले जाया गया तो उनके जानेपर नरकके प्राणियोंको बड़ी शान्ति मिली। वे कहने लगे—महाराज! आप थोड़ा यहीं ठहरिये, तो जनकमहाराज रुक गये। सबने जनकमहाराजकी जय-जयकार की। तब जनकजीने धर्मराजजीसे पूछा कि हमने सुना है कि पापी मनुष्य ही यमलोक आते हैं, तो मुझे भी अपने पापकर्मके विषयमें जिज्ञासा है, बतलानेकी कृपा करें। इसपर धर्मराजने चित्रगुप्तसे पूछा। वे बोले—महाराज! ये तो महान् निष्काम कर्मयोगी हैं, इनके पुण्योंका तो कोई लेखा-जोखा और सीमा ही नहीं है, हाँ; एक पाप इनसे बन गया था धोखेसे। एक गाय सरोवरकी ओर जा रही थी, इन्होंने उसको हाँक दिया था। प्रकारान्तरसे प्यासी गायको पानी पीनेमें बाधा दी थी। यद्यपि उसमें भी इनकी भावना यह थी कि कहीं यह गाय कीचमें न धँस जाय। इसी भावसे इन्होंने गायको रोका था। बस इसी दोषके कारण इन्हें नरक देखना पड़ा। अतः बहुत सावधान रहना चाहये कि कहीं भी किसी भी प्रकारसे गायके प्रति कोई अपराध न बन जाय।

जहाँ हरि, हर, गुरु और गायकी निन्दा हो रही हो, ऐसी जगहपर जाना नहीं चाहिये। कदाचित् पहुँच गये तो निन्दाका श्रवण नहीं करना चाहिये—कानोंपर हाथ रख लेना चाहिये अथवा वहाँसे अन्यत्र चला जाना चाहिये।

शिवाजी महाराजके बाल्यकालकी घटना है। अपने पिताके साथ वे बादशाहके यहाँ जा रहे थे। बीजापुरकी बात है। रास्तेमें एक कसाई गायको घसीटते हुए ले जा रहा था और वहाँके बाजारके जो हिन्दू थे, वे सिर झुका करके बैठे थे। मुगलशासन था, कौन क्या कर सकता था? उस समय शिवाजीकी उम्र दस वर्षकी भी नहीं थी, नौ-दसके बीचकी रही होगी। बालक शिवाजीने तलवार खींची और पहले तो गायकी रस्सी काटकर उसे बन्धनमुक्त कर दिया और वह कसाई कुछ कहे, इससे पहले ही उसके

शिवाजी द्वारा गौ-रक्षा

मस्तकको धड़से अलग कर दिया—यह है शौर्य।

प्राचीन समयमें इतनी बड़ी संख्यामें गोधन हमारे देशमें था कि जब ग्वारिया गायोंको लेकर आते तो गायोंके खुरोंसे इतनी रज उड़ती थी कि दिनमें ही सूर्यास्तका अनुभव होता। महाभारतके 'अनुशासन-पर्व' में आता है कि धर्मराज युधिष्ठिरके यहाँ दस हजार गोसदन थे—गौवर्ग थे, तो वर्ग क्या है? एक वर्गमें ८ लाख गायें थीं। इससे लगता है कि जनसंख्या कम थी, गायें ज्यादा थीं। आगे फिर लिखा है कि एक लाख, दो लाख पचास हजार, तीन लाखके गोसदन तो अनेक थे।

महाभारतमें जहाँ पितामह भीष्मने युधिष्ठिरमहाराजको दान-धर्म, मोक्ष-धर्म, राज-धर्म आदिका विस्तृत उपदेश दिया है, वहीं गो-महिमाका भी बड़ा विस्तृत वर्णन किया है। उस समय पितामहके निकट जब युधिष्ठिर आये थे तो वे एक विशिष्ट रथपर बैठकर आये थे। उस रथके वर्णनमें लिखा है कि आठ हाथियोंके समान विशालकाय पुष्ट बैल उस रथमें लगे हुए थे। उन बैलोंकी चन्द्रमाके समान सफेद कान्ति थी, लेकिन जब पितामह भीष्मने गो-महिमाका वर्णन किया तो फिर युधिष्ठिर लौट करके उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैलवाले रथपर बैठ करके नहीं गये और बोले—अरे, ये इतने श्रद्धेय, पूज्य हैं तो ये हमको ढोकर ले जायँ, यह ठीक नहीं है। फिर घोड़ेवाले रथपर बैठकर गये। यद्यपि सवारीके रूपमें गाड़ीमें बैलका उपयोग किया जा सकता है, वह अशास्त्रीय नहीं है, पर उसपर उसकी सामर्थ्यसे अधिक भार लादना, इक्काबैलको जोतना अथवा उसको लाठी, डण्डे या चमड़ेकी चाबुकसे प्रताड़ित करना—यह अधर्म है। इसका शास्त्रमें स्पष्ट निषेध किया गया है। शास्त्रमें आया है कि बैलको पत्तोंसे युक्त जो पेड़की टहनी है, उससे सहारा देकर हाँकना चाहिये, जिससे उसको पीड़ा तथा कष्ट न हो। एक घटना हमारे बाल्यकालकी है। घरमें ही दो बैल थे। एकका नाम था पन्नालाल और दूसरेका पतंगीलाल। इनके कन्धेपर जो गाड़ीका जुआ रखे, उसके लिये इनाम रखा गया था। वे ऐसे शौर्यसम्पन्न बैल थे कि उन्हें कोई गाड़ीमें लगा दे, किसीकी हिम्मत नहीं थी। बैल इतने तेज थे कि जबतक बैलोंके ऊपर कोई जुआ रखे; तबतक तो वे उछल जाते थे। बड़े-बड़े लोग आये इनाम सुनकर, हाथ-पैर तुड़वाकर चले गये और जब दौड़ होती तो सबसे आगे वे होते। तो उस समय बड़ा शौक था लोगोंको। बैलोंको ऐसा सजा-धजाकर रखते थे। दीपावली आदि उत्सवोंमें तो सोने-चाँदीके आभूषण भी गाय-बैलोंको धारण करवाते थे। यह अनूठा बैल किसका है? इसके उत्तरमें 'यह हमारा बैल है'—ऐसा कहनेमें लोगोंको बड़ा गौरव होता था। आज तो चारों तरफ गाय-बैलोंकी दुर्दशा हो रही है। यह बड़े दुःख और दुर्भाग्यकी बात है।

गायकी समृद्धिसे ही इस देशकी समृद्धि निश्चित है। पृथ्वीका आहार ही गोबर और गोमूत्र है। गाय पृथ्वीको आहार प्रदान करती है। आज धरती भूखी है, उसको गव्य-पदार्थ नहीं मिल रहा है।

जो गायके विरोधी हैं, वे भगवान्, धर्म, गुरु और वेद—इन सबके विरोधी हैं। हमारा चाहे जैसा स्वार्थ हो, लेकिन हमें गायका विरोध करनेवालेके पक्षमें जाकर खड़ा नहीं होना चाहिये, चाहे जैसा पद-प्रतिष्ठाका लालच हो, ऐसे लोगोंको अपना मत भी नहीं देना चाहिये। गायके प्रति जिनकी निष्ठा नहीं, श्रद्धा नहीं, गायकी रक्षा जो नहीं चाहता। ऐसे व्यक्ति या दलको अपना मत देनेका तात्पर्य है कि हम गोवधमें हिस्सेदार बन रहे हैं और निश्चित ही हम गोवधके भागी भी होंगे। इस सम्बन्धमें बहुत सावधानी रखनी है।

शंकरजीके ध्वजपर वृषभ अंकित है इसीलिये उनको वृषभध्वज, 'वृषभांक' कहा जाता है। इसका मतलब है शंकरजी परम गोभक्त हैं और वे भगवान्के गोलोक धामके ग्वारिया हैं, इन्हें 'पशुपति' पदपर अभिषिक्त किया गया है।

गोरक्षाके लिये की जानेवाली भगवान्की स्वल्प भी आराधना-उपासना निष्फल नहीं होती है। एक गायकी भी यदि प्राणरक्षा हो रही है और वह गाय यदि सुखी है तो हमें गोरक्षाका पुण्य मिल ही रहा है—ऐसा विचार करके मन, वाणी और कर्मसे इस पवित्र कार्यमें सहयोगी बनना चाहिये।

गोवधके विषयमें सही बात तो यह है कि विधर्मियोंने गोसेवक हिन्दुओंकी भावनाओंको आहत करनेके लिये, उनको नीचा दिखानेके लिये ही यह कार्य प्रारम्भ किया और दूसरा कोई प्रयोजन नहीं था। एक सज्जन हमारे परिचित हैं, अच्छे विद्वान् हैं, उन्होंने सम्पूर्ण बाइबिल और कुरान देखी है। वे कह रहे थे कि इन ग्रन्थोंमें कहीं स्पष्टरूपसे नहीं लिखा है कि गोहत्या की जाय। फिर गोहत्या कहाँसे आयी? विधर्मियोंका जब शासन इस देशपर हुआ तो उन्होंने देखा कि इस समाजकी सर्वाधिक श्रद्धा कहाँ है? तो उन्हें गाय ही नजर आयी, फिर क्या था, उन्होंने सबसे पहले गोवध करना प्रारम्भ किया, लेकिन जब वे लोग यहाँ रहे, यहाँकी पवित्र रजका उन्हें स्पर्श प्राप्त हुआ, यहाँकी पवित्र वायुका स्पर्श प्राप्त हुआ, यहाँकी पवित्र गंगा-यमुना आदि नदियोंके दर्शन, पान और स्नानसे वे भी कुछ अंशमें पवित्र हो गये तो उनमें भी कुछ शासक ऐसे हो गये, जिन्होंने म्लेच्छ होनेपर भी गोवधपर प्रतिबन्ध लगाया, ऐसी बात इतिहासमें मिलती है।

मुगलशासक हुमायूँकी एक बात सुननेको मिलती है कि उसकी थालीमें मांस रखा गया तो उसने पूछा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसका मांस है, तो बावर्चीने बताया गोमांस है। वह बहुत नाराज हुआ। थाली फेंक दी और कहा—इस बावर्चीको

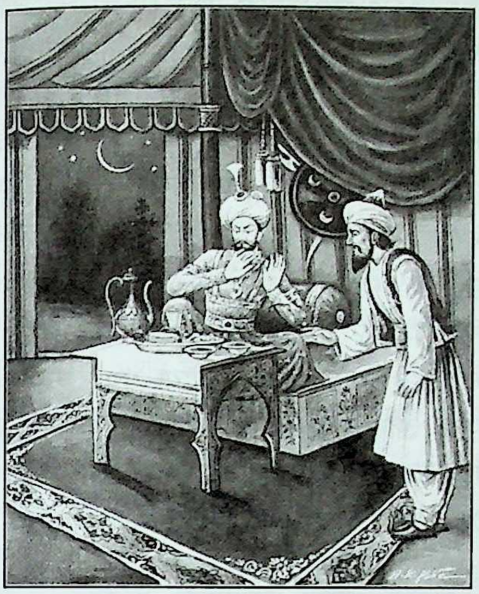

५० कोड़े लगाओ और कहो कि आइन्दा कभी ऐसा न करे। इसका कारण क्या है? पूछनेपर उसने बताया कि बचपनमें मेरी माँ मर गयी थी और मेरा पोषण गायके ही दूधसे हुआ था तो फिर जिस गायसे हमारा पोषण हुआ है, उस गायको हम खायें, ऐसे मुसलमान हम नहीं हैं। उसने इस प्रकारका विचार किया। अब यह कहाँतक सत्य है, इसको तो भगवान् ही जानें, परंतु सुननेमें ऐसा आता है।

अकबरने स्वामी श्रीहरिदासजीके, अन्य सन्तोंके तथा तुलसीदासजी और सूरदासजीके प्रभावमें आकर अपने शासनमें गोवधपर प्रतिबन्ध लगाया था। इसके भी प्रमाण प्राप्त होते हैं और ब्रजक्षेत्रमें तो जीवहिंसापर प्रतिबन्ध था। फिर जहाँगीरके कालमें कट्टरता रही, परंतु उस समय पंजाबमें पिण्डौरी धामके संत बाबा महेशदासजीके सम्पर्कमें आनेके बाद उसने भी गोवधपर प्रतिबन्ध लगाया था।

शाहजहाँने अपने पन्थके मुल्ला-मौलवियोंसे पूछा कि हमारे पूर्वजोंने तलवारकी नोकपर इनको इस्लाम बनाना चाहा फिर भी क्या बात है हिन्दू धर्म सुरक्षित है? तो उस समय उसके सलाहकारोंने यह सलाह दी कि 'जबतक सन्त-महात्माओंकी जमातें गाँव-गाँव घूमती रहेंगी, कथा, वार्ता, सत्संग चलते रहेंगे, तबतक चाहे जितनी बर्बरता आप दिखायें, हिन्दूधर्मको नष्ट नहीं किया जा सकता, इनकी गोभक्तिको मिटाया नहीं जा सकता। इसका एक ही उपाय है—ये साधु-सन्तोंकी जमातें जो घूम रही हैं, उनके घूमनेपर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाय।'

शाहजहाँने ऐसा ही आदेश कर दिया, लेकिन बाबा मलूकदासजीने शाही फरमानका उल्लंघन करके जमातके साथ सारे भारतका भ्रमण किया। दिल्ली पहुँचनेपर शाहजहाँने उन्हें कैद कर लिया तो सारे जेलकी चक्कियाँ अपने-आप चलने लगीं। जेलके कैदियोंकी हथकड़ी-बेड़ी खुल गयी। जेलके कर्मचारी जडवत् हो गये। वे बाबाका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। बाबा जमातके साथ वृन्दावन आ गये, उधर शाहजहाँके पूरे शरीरमें भयंकर जलन होने लगी जो किसी तरह ठीक नहीं हुई। सच्चे साधुके अपमानका यह फल था। तब वह बाबा मलूकदासजीकी शरणमें आया। बाबाने उससे गोवधके निषेधके साथ अन्य भी शर्तें स्वीकार करवायीं। तब वह स्वस्थ हुआ। इस बातका भी ऐतिहासिक प्रमाण है कि वैष्णवोंके १६ अखाड़ोंके सन्तोंने हिन्दू राजाओंके साथ मिलकर मुसलमानोंके विरुद्ध गोरक्षाकी लड़ाइयाँ भी लड़ी।

कहनेका तात्पर्य यह है कि उस कालमें सन्तोंके प्रभावमें आकर उन राजाओंने भले ही कुछ सीमित कालके लिये ही सही, गोवधपर प्रतिबन्ध लगाया और बड़ी आशा थी लोगोंको कि ये अंग्रेज गोभक्षी हैं, ये चले जायँगे यहाँसे तो गोवधपर प्रतिबन्ध लग जायगा, पर उन गोरे अंग्रेजोंसे ये काले अंग्रेज बहुत आगे निकल गये। आज गोवंशके साथ जो अत्याचार हो रहा है, वह किसीसे छिपा नहीं है। आज तो गोरक्षा और गोसेवाकी भावना और भी निरन्तर कम होती जा रही है।

अंग्रेजोंके समय भी गोवध होता था, लेकिन हमारे गोसदन भरे हुए थे। दूध-दहीकी प्रचुर उपलब्धता थी। गोघृतकी भरपूर उपलब्धता थी। विचार करनेपर यह बात बुद्धिमें आती है कि स्वतन्त्रताके पहलेतक सन्तोंकी बहुत जमातें घूमती थीं। राजा श्रीरघुवीरदासजी महाराज चित्रकूटवालोंकी जमातके सम्बन्धमें पुराने सन्तोंसे आज भी सुननेको मिलता है। १२०१-१२०० साधु जमातमें होते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़िया जगन्नाथदासजी महाराजकी जमात हजार-हजार, दो-दो हजार साधुओंकी होती थी। अयोध्यावाले खाक चौकके महन्त श्रीअर्जुनदासजी महाराजकी जमात एवं उस समय सैकड़ों सन्तोंकी जमातें भारतवर्षमें घूमती थीं और गाँव-गाँवसे होकर निकलतीं थीं। जिस गाँवमें रुकतीं, वहाँ महीना-पन्द्रह दिन ठाकुरजीका दरवार सज जाता। शंख, घंटा, घड़ियाल बजने लगते, लोग दौड़-दौड़कर आने लगते। आरती, सेवा, पूजा होती और एक खास बात यह कि जमातके साथ गायें चलती थीं। एक-एक जमातके साथ २०० से ४०० तक गायें चलतीं। ठाकुरजीको दूधका भोग धराना है, गैयाका गोबर चाहिये—यह सब कहाँसे होगा? तो गायें भी जमातके साथ चलती थीं और वहाँ कथा, कीर्तन-सत्संग, सेवा, पूजा होती तो गाँव-के-गाँव भक्त बन जाते, उन तमाम लोगोंमें गोसेवाके प्रति संस्कार जाग्रत् हो जाते।

आज जनजागरण और धर्मप्रचारका कार्य जैसा होना चाहिये, वैसा नहीं हो रहा है। इसलिये आवश्यक है कि गाँव-गाँवसे साधु-महात्मा घूमते हुए निकलें। गीताजी, रामचरितमानसका पाठ हो, कथा-कीर्तन हो, सत्संग हो तथा जन-जनमें गायके प्रति सेवा-भावना जाग्रत् की जाय, गायके प्रति महत्त्व बुद्धि जाग्रत् की जाय। गोरक्षाके कार्यमें लोग सन्नद्ध हों तो गोरक्षा होना कोई असम्भव कार्य नहीं है। पूरे देशमें सन्तोंका विचरण हो और एक ही संकल्प लेकर विचरण हो कि चाहे जैसे भी हो गायके प्रति लोगोंकी श्रद्धाबुद्धि, महत्त्वबुद्धि बने।

कहनेका तात्पर्य यह है कि परम विरक्त, त्यागी और लोककल्याणकारी भावना रखनेवाले सन्तोंद्वारा इस दिशामें बहुत बड़ा कार्य हो सकता है।

गोरक्षा-आन्दोलनमें कितने ही साधु मारे गये। एक साधु खाक चौकमें आते थे, अपंग थे। उनके शरीरमें कई जगह गोलियाँ लगी थीं। वे आँखोंदेखी घटना सुनाते थे तो रोना आता था। उन्होंने बताया कि गोपाष्टमीके दिनकी बात है, गोरक्षकोंके ऊपर गोलियोंकी बौछार की गयी। सैंकड़ों साधु मारे गये, कुछको जला दिया गया, कुछको दफना दिया गया और कुछको गटरोंमें डाल दिया गया। ऐसा भयंकर अत्याचार अंग्रेजी हुकूमतमें भी नहीं हुआ। गोपाष्टमी-जैसी पवित्र तिथिपर सत्याग्रह करनेवाले गोभक्तोंपर महान् अत्याचार हुआ।

अत: हम सबका कर्तव्य है कि गोमाताकी सेवा और रक्षा करते हुए हम अनन्य भावसे भगवान्‌की उपासनामें प्रवृत्त हो जायँ। प्रार्थनामें बहुत बड़ी शक्ति है, बहुत बड़ी सामर्थ्य है। यह एक बहुत उत्तम और सहज उपाय कि हम नित्यप्रति अपने इष्टमन्त्रकी कम-से-कम एक माला अथवा किसी स्तोत्रका पाठ गोरक्षाके निमित्त करें। भगवान् कृपा करके सबको सद्‌बुद्धि दें। [समाप्त]

दानकी महिमाका व्यावहारिक पक्ष

(श्रीजगदीशचन्द्रजी मेहता)

दान देना एक पुनीत और पवित्र कार्य है। दान एक प्रकारका परोपकार, त्याग और सेवा है। मदद और सहायताका प्रतीक दान ही है। जीवमात्रके प्रति प्रेम, उदारता, कृपा, दयालुताका भाव दान ही दर्शाता है। दान असहाय, निर्धन, निर्बलको सहारा देकर ऊँचा उठानेके लिये स्वसे हटकर पर-कल्याणकी भावनाको बताता है। मानवके गृहस्थ-जीवनमें उसके कल्याणहेतु दान करना अनिवार्य नित्यकर्ममें आता है।

हर धार्मिक, मजहबी लोग अपने-अपने धर्म-कर्मके अनुसार दान-दक्षिणा, खैरात आदि दिया ही करते रहते हैं। निष्काम-त्यागभावसे दिया गया दान श्रेष्ठतम माना जाता है। मानवजीवनमें दानसे ही अपरिग्रहकी उत्तम भावना बनती है।

जब हम प्रतिदिन नियत समयपर गौओं, कुत्तों, कौओं आदिको रोटी आदि खिलाते हैं और चिड़ियोंको दाना-पानी देते हैं तो वे सब जीव अपना ही घर समझकर अपनत्व लेकर मकानके द्वारपर चारों ओर एकत्रित हो जाते हैं और दाना-पानी-रोटीके दानकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, जबतक उनको दाना-पानी-रोटी नहीं मिल जाती, तबतक वे मूकदर्शक होकर हमारी ओर देखते रहते हैं। गोमाताकी आँखोंसे ममत्व, स्नेह और करुणाका रस झलकता दिखायी देता है। कुत्ते अपनी पूँछ हिलाकर प्यार और वफादारीका सन्देश देते हैं। कौए अपनी काँव-काँवकी ध्वनिसे और साथी कौओंको बुलाकर प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार घरके आँगनमें तुलसीका पौधा, फल-फूलके छोटे-बड़े पौधोंको जल देनेपर वे सब अपनी शीतल-मन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवन—प्राणवायु देकर हर्षित होते हैं। यह एक वैज्ञानिक सत्य है, जो जलदानका अनुभूतियुक्त प्रयोग है। दानकी प्रक्रियामें चेतनात्मक और भावनात्मक आदान-प्रदानकी क्रिया अनवरत सतत चलती रहती है।

भूखेको भोजन देना, प्यासेको पानी पिलाना, वस्त्रहीनको वस्त्र देना, रोगीको औषधि देना, प्राणरक्षाके लिये रक्त देकर अभयदान कर देना आदि सभी कार्य दानकी श्रेणीमें ही आते हैं। इससे प्राणीको तृप्ति, शान्ति, सन्तोष मिलता है। इसमें मानवका कल्याण निहित रहता है। सनातनधर्ममें दानधर्मपर अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये हैं।

दानसे सभी प्राणी वशमें हो जाते हैं। दानसे शत्रुताका नाश हो जाता है। दानसे पराया भी अपना हो जाता है। अधिक क्या कहें, दान सभी प्रकारकी विपत्तियों, त्रिताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक)-का नाश करता है।

दानेन भूतानि वशीभवन्ति
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-
र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

दान सर्वदा आसक्तिरहित, आशारहित, निःस्वार्थ, लोकहितार्थ, जनहितार्थ महायज्ञके रूपमें ही सफल होता है। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की शुद्ध भावनासे जरूरतमंदों, निर्धनों, दीन-हीन, रोगी, अपंग, निराश्रित, संकटग्रस्त, दुर्घटनाग्रस्त, बाढ़, भूकम्प, आग आदिसे पीड़ितोंको तन-मन-सेवाभावसे परोपकार और त्यागभावसे मुक्त हाथोंसे धनका दान करना चाहिये। यह मानवीय धर्म है। अथर्ववेद (३। २४। ५)-में कहा गया है—**'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर'** अर्थात् सैकड़ों हाथोंसे एकत्रित करो और हजारों हाथोंसे बाँटो।

सन्तुष्ट होकर प्रसन्नतासे स्वयंद्वारा श्रद्धापूर्वक दिया गया दान लौकिक, पारलौकिक सुख और आनन्द देता है। दानका भाव मानवजीवनको ऊर्ध्वगति—देवरूप प्रदान करता है। शास्त्रोंके अनुसार दानसे बढ़कर मानवका कोई धर्म नहीं है—

दानधर्मात् परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते।

गोस्वामी तुलसीदासजीने दानके लिये लिखा है—

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

संत तुलसीदासजीने दोहावलीमें लिखा है—

तुलसी पंछिन के पिये, घटै न सरिता नीर।
दान दिये धन ना घटै, जो सहाय रघुबीर॥

अर्थात् पक्षी आदिके पानी पीनेसे सरिता (नदी)-का पानी कम नहीं होता, उसी प्रकार दान देनेसे प्रभुकृपासे धन कम नहीं होता।

कबीरदासजीने दानको मानवधर्म बताया है—

पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

नावमें आवश्यकतासे अधिक पानी भर जायगा तो नाव पानीमें डूब जायगी। नावको बचानेके लिये पूरी शक्ति लगाकर पानीको दोनों हाथोंसे बाहर निकालो, जिससे नावकी रक्षा हो जाय। इसी प्रकार परिवारमें, घरमें आवश्यकतासे अधिक द्रव्य, धनका संग्रह हो जाय तो परिवारके मंगलके लिये उन्मुक्त दोनों हाथोंसे लोकहितार्थ दान देना चाहिये।

रामचरितमानस (७। १२७। ४)-में संत तुलसीदासजीने लिखा है—

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥

अर्थात् वह धन धन्य है, जिसकी पहली गति है यानी जो दान देनेमें व्यय होता है और वही बुद्धि धन्य तथा परिपक्व है, जो पुण्यमें लगी हुई है।

भर्तृहरिजीने नीतिशतक (४३) -में धनकी तीन गतियाँ मानी है—दान, भोग और नाश। इसमें दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश निकृष्ट गति है—

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

दान कैसा होना चाहिये—श्रीगीता (१७। २०—२२)-में सात्त्विक, राजस, तामस दानके लक्षणोंको स्पष्ट रूपसे बताया गया है—

दान देना ही कर्तव्य है—ऐसे भावसे जो दान, देश तथा काल और पात्रके प्राप्त होनेपर अनुपकारीको निष्कामभावसे दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकारके प्रयोजनसे अथवा फलको दृष्टिमें रखकर दिया जाता है, वह दान राजस कहा जाता है।

जो दान बिना सत्कार अथवा तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश, कालमें और कुपात्रके प्रति दिया जाता है, वह दान तामस कहा जाता है।

दानधर्मके बारेमें महाभारत, अग्निपुराण, कूर्मपुराण, स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थोंमें विस्तारसे वर्णन आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दानसम्बन्धी पूर्वोक्त श्लोकोंसे प्रतीत होता है कि दानको कर्तव्य, परोपकार, त्यागभावनासे ही देना चाहिये। दानके बदलेमें किसी प्रकारकी पुनः प्राप्तिकी लालसा, अभिलाषा, आकर्षण नहीं रखना चाहिये। दानको सर्वदा गुप्त रखना ही गुप्तदान होता है। बाइबिलमें कहा गया है—तुम्हारा दायाँ हाथ जो देता हो उसे बायाँ हाथ न जानने पाये। यह दानका सर्वश्रेष्ठ उत्तम भाव होता है। बुलाकर दान देना अधम दान है। स्वयं चलकर जाकर दान देना सात्त्विक दानमें आता है। अन्नदान महादान है। विद्यादान अन्नदानसे भी बड़ा है; क्योंकि अन्नसे क्षणिक तृप्ति होती है, किंतु विद्यादानसे जीवनपर्यन्त तृप्ति होती है।

आँसूकी दो बूँदें

(पं० श्रीशोभालालजी शास्त्री)

हृदय भीषण यन्त्रणाओंसे सन्तप्त था। इच्छाएँ अनेक थीं, पर एककी भी पूर्ति नहीं होती थी। इन यन्त्रणाओंसे पिण्ड छुड़ानेके लिये अनेक भगीरथ प्रयत्न किये। किसीने कहा 'द्रव्य ही सब बाधाओंकी निवृत्तिका उपाय है।' उसीके पीछे पड़ा। रात-दिन एक किया। चोटीका पसीना एड़ीतक बहाया। द्रव्यका ढेर लग गया। नौकर-चाकर घरमें खूब हो गये। घोड़ा-गाड़ी, मोटरकी भी कमी न रही। विलास-सामग्री सब उपस्थित थी, पर चित्तकी अज्ञात वेदना वैसी-की-वैसी थी। तृप्ति और शान्तिके दर्शन दुर्लभ ही थे। किसीने कहा 'सब सुखका मूल स्त्री है। उसके बिना सुख कहाँ?' '**मूलं नास्ति कुतः शाखा।**' उसका भी कहा माना। विवाह किया। पत्नी भी सुन्दरी और सुशीला मिली। आज्ञाकारिणी भी थी। परस्पर अनुराग भी अच्छा था। पर कुछ फल नहीं हुआ, हृदयका काँटा कसकता ही रहा। किसीने हुकूमतमें ही सुख बतलाया, किसीने आलसमें पड़े रहनेमें ही; किसीने गाना-बजाना ही आनन्दका उपाय बताया तो किसीने नाटक-सिनेमाको ही सुखका साधन सिद्ध किया। सबका कहना किया, पर किसीसे कुछ न हुआ। बात वही हुई कि '**मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।**' तब सब कुछ छोड़-छाड़ एकान्तमें बैठ यम, नियम, प्राणायाम आदि योगांगोंका साधन किया। सांख्यके मनन और वेदान्तके विचारमें लगा, पर मनचाही बात न मिली। चित्तकी उछल-कूद मिटी, संकल्पोंने बाधा देना छोड़ दिया, इच्छाएँ कम हो गयीं, पर मन तो इतनेसे नहीं मानता था। वह तो और ही कुछ चाह रहा था। तीर्थोंमें भ्रमण किया, मन्दिरों-मन्दिरोंमें भटका, साधु-महात्माओंके दर्शन किये, कथा-भागवत सुनी, फिर भी अतृप्ति, असन्तोष बना ही रहा।

समीप ही एक रमणीय सरोवर था। उसके तटपर हरित वृक्ष-वल्लरियोंसे लदी हुई एक छोटी-सी पहाड़ी थी। मैं उसी एकान्त पहाड़ीकी चोटीपर जाकर बैठ गया, प्रातःकालका समय था। वायुमण्डल शान्त और नीरव था। पक्षियोंके मधुर कूजन और सरोवरमें उठनेवाली छोटी तरंगोंके कोमल शब्दको छोड़ सर्वत्र निस्तब्धता थी। मेरा हृदय भी निराशापूर्ण, स्तब्धता (शून्यता)-से पूर्ण था। श्रीमद्भगवद्गीताको खोलकर पढ़ने लगा—यह श्लोक निकला—

'मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥'

मैंने धीरेसे पुस्तक बन्द कर दी।

हृदय किसीकी प्रतीक्षा करने लगा। पक्षियोंका कूजन सहसा शान्त हो गया। तरंगोंकी आवाज भी रुक गयी। पासहीकी दूसरी पहाड़ीकी चोटीपर बैठे हुए किसी ग्वालेके छोकरेने मुरलीकी मधुर तान छेड़ी। वातावरणकी नीरवताको भंग करते हुए उसके शब्दने मेरे कानोंमें प्रवेश किया। एक मधुर चित्र आँखोंके सामने आ गया। आँखें वहीं गड़ गयीं, मन भी वहीं चिपक गया। बुद्धि भी ठहर गयी। सिवा उस मधुर मूर्तिके, किसीका पता न था। उधर अधरोंपर मन्दस्मितकी रेखा झलकी, इधर नेत्रोंसे आँसुओंकी दो बूँदें ढलक पड़ीं। विविध प्रकारके सुख-भोगोंको पाकर भी जो हृदय 'नहीं-नहीं' ही कहता रहता था, वह इन दो बूँदोंको पाकर कह उठा 'बस यही।' इन दो बूँदोंमें पहले पापपुंज, फिर अभिलाषाएँ, तदुपरान्त संकल्प, धीरे-धीरे अहंकार, बुद्धि आदि सब विलीन हो गये। मैं भी इनमें घुल गया और ये दोनों बूँदें भी किसीकी चरण-नख-प्रभामें अदृश्य हो गयीं। अब उन यन्त्रणाओंका कहीं पता भी न था।

अबतक मैंने सब कुछ पाकर भी कुछ न पाया था, आज इस प्रकार सब कुछ खोकर सब कुछ पाया। आज ही प्रतीत हुआ कि संसारके सम्पूर्ण सुखोंका सार, योगीश्वरोंका परम धन और भक्तोंका प्राण इन्हीं आँसूकी दो बूँदोंमें अन्तर्हित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

परिस्थितिपर फिरसे विचार कीजिये

सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिले कुछ समय हो गया। समयाभाव और स्वभावदोषसे मैं उत्तर नहीं लिख सका, इसके लिये क्षमा चाहता हूँ। आपने अपनी परिस्थिति लिखी, वह अवश्य ही विचारणीय है। ऐसी परिस्थितिमें आपने जैसा लिखा है, दुर्बल-हृदय और अनिश्चित-बुद्धि मनुष्यके लिये बाध्य होकर इस प्रकारके कर्म करना स्वाभाविक हो जाता है, यह भी ठीक ही है। ऐसी परिस्थितिमें पड़े बिना कोई कैसे कह सकता है कि इस प्रकारके आपद्धर्ममें क्या करना चाहिये। वस्तुतः—

जाके कबहुँ न फटी बेवाँई। सो का जानै पीर पराई॥

—के अनुसार दूसरेकी परिस्थितिका अनुभव करना और उसे उस परिस्थितिमें इच्छा न रहते हुए भी क्यों ऐसा कार्य करना पड़ता है, इसका यथार्थ निर्णय करना बहुत ही कठिन है। तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि मनुष्य पापको पाप बताते हुए भी यदि उसे करता है तो या तो वह उसका दम्भ है या यथार्थमें समझता नहीं। संखिया खानेसे मनुष्य मर जाता है, यह पक्का विश्वास जिसको होता है, वह सुन्दर दीखनेवाले सुमिष्ट लड्डुओंमें भी संखियाका सन्देह हो जानेपर उन्हें नहीं खाता, क्योंकि वह समझता है कि खाऊँगा तो मैं मर जाऊँगा या इतना उन्मत्त हो गया है कि अपने भले-बुरेका ज्ञान ही खो बैठा है अथवा उसकी पापमें पापबुद्धि है ही नहीं, केवल दम्भसे उन्हें पाप बतलाता है और परिस्थितिका बहाना लेकर युक्तिवादके द्वारा अपनी दुर्बलताको अवश्यकर्तव्य बतलाकर उसका समर्थन करता है। बहुत बार अच्छाईके वेषमें बुराई आती है, धर्मके नामपर अधर्म आता है और कर्तव्यका स्वरूप धारण करके नितान्त अकर्तव्य आया करता है। ऐसी अवस्थामें मनुष्य उन शास्त्रीय शब्दों या लोकोक्तियोंका, जो अवस्थाविशेषके लिये कर्तव्य होती हैं, सहारा लेकर बुराई, अधर्म या अकर्तव्यका प्रसन्नतापूर्वक वरण करता है। जैसे—

(१) झूठ बोलनेवाला व्यापारी कहता है—व्यापारमें झूठ मिले हुए सत्यके बिना काम ही नहीं चलता। मनु महाराजने—**'सत्यानृतं तु वाणिज्यम्'** कहा है। महाभारतादिमें भी व्यापार-विवाह आदिमें मिथ्या भाषण अपराध नहीं माना गया है।

(२) परिवारमें मोह-आसक्ति रखनेवाला सोचता है— भगवान्ने इनको हमारे हाथों सौंपा है, इसलिये इनकी सार-सँभाल करना हमारा धर्म है। भरतजीने भी यही किया था।

(३) आलसी कहता है—

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै सबके दाता राम॥

(४) भक्त बनकर अपनी पूजा करानेवाला कहता है—

'राम तें अधिक राम कर दासा।'

(५) कड़वा बोलनेवाला कहता है—

बुरे लगें हितके बचन हिये बिचारो आप।
कड़वी भेषज बिनु पिये मिटै न तनकी ताप॥

(६) अपनेको गुरु बताकर पुजवानेवाला उपदेश करता है—

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेवकी जिन गोबिंद दिये मिलाय॥

(७) सन्त सजकर पूजा करानेवाला भगवान् रामके वचनोंका प्रमाण देता है—

'मोतें सन्त अधिक करि लेखा।'

(८) चोर कहता है—स्वयं श्रीकृष्णने माखन चुराया था। इसीसे उनका नाम 'चौराग्रगण्य' है।

(९) जुआरी मानता है—**'द्यूतं छलयतामस्मि'** गीताके वचनानुसार जुआ तो भगवान्का स्वरूप है।

(१०) शराबी और मांसाहारी मनुका प्रमाण देते हैं—

'न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।'

न तो मांसभक्षणमें दोष है, न मद्यमें और न मैथुनमें ही।

(११) स्त्री और सेवकोंपर अत्याचार करनेवाले सारा दोष तुलसीदासजीपर मढ़ते हुए कहते हैं—

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

(१२) क्रोधी कहता है—

साँच कहूँ होकर निडर कोई हो नाराज।
मैंने तो सीखा यही साँच बोलिये गाज॥

(१३) माता-पिताकी अवहेलना करके अपने मतका समर्थन करनेवाला गाता है—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

(१४) झूठा आश्वासन देनेवाले सोचते हैं—कुछ भी कह देना है, करना तो है नहीं **'वचने का दरिद्रता।'**

(१५) बात-बातमें डाँट-डपट करनेवाला कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'साँप काटे नहीं तो क्या फुफकारे भी नहीं।'

(१६) भाई-भाईसे लोभवश लड़नेवाला—कौरव-पाण्डवोंकी कथा उपस्थित करता है।

(१७) पर-दोष-दर्शन तथा परनिन्दा करनेवाले प्रमाण देते हैं—

बैद्य न जानैं रोगकौं औ जो नहिं देत बताहिं।
बैद्य धरमतें सो गिरैं रोगी प्रान नसाहिं॥

—और कहते हैं कि यदि हम किसीके दोष न देखें एवं लोगोंको बताकर सावधान न करें तो कैसे उसके दोष छूटें और कैसे लोग उसके दोषोंसे बचें।

(१८) वर्णाश्रमानुकूल धर्म, संयम-नियम, सन्ध्या-वन्दनादिका त्याग करनेवाले अपनेको प्रेमी घोषित करके कहते हैं—'भाई! ये सब तो उन लोगोंके लिये हैं, जिन्होंने प्रेमका मुख नहीं देखा है, प्रेम-राज्यमें इनका क्या काम? एवं नारायण स्वामीके ये दोहे पढ़ देते हैं'—

तब लौं यह फाँसी गले, बरनास्रम ब्रत नेम।
नारायण जब लौं नहीं, मुख दिखलावे प्रेम॥
धर्म धैर्य संयम नियम, सोच बिचार अनेक।
नारायण प्रेमी निकट, इनमें रहैं न एक॥

(१९) कर्तव्य-कर्मोंका त्याग करनेवाला अपनेको ज्ञानी मानकर भगवान्के शब्दोंकी दुहाई देता है—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

'जिसकी आत्मामें ही रति है, जो आत्मामें ही तृप्त है और आत्मामें ही सन्तुष्ट है, उस मनुष्यके लिये कोई भी कर्तव्य नहीं है।'

(२०) आहार-विहारमें पशुवत् व्यवहार करनेवाला गीताका श्लोक पढ़ देता है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

'विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मण, चाण्डाल, गौ, हाथी और कुत्ता—इन सभीमें ज्ञानी पुरुष समदर्शी होते हैं।'

इसी प्रकार और भी अनेकों बहाने होते हैं बुराईका समर्थन करनेके लिये। वस्तुतः यह इन सद्विचारों एवं सदुक्तियोंका भीषण दुरुपयोग और अर्थका अनर्थ है, जो मूर्खतासे, दम्भसे अपनी दुर्बलताको छिपानेके लिये मनुष्य करता है।

अतएव आप अपने हृदयको टटोलकर देखिये, उसमें कोई छिपा हुआ ऐसा दोष तो नहीं है, जो युक्तिवादसे परिस्थितिका बहाना करके आपको धोखा देता हो।

फिर जो धर्मका सच्चा सेवक है और भगवान्के पवित्र पथपर चलना ही जीवनका परम कर्तव्य समझता है, उसके लिये तो खुला मार्ग है, उसमें किंतु-परंतुको स्थान ही नहीं है। वह तो ऐसा कोई भी कर्म, किसी भी हेतुसे नहीं करता, जो अधर्म हो और भगवान्के पवित्र पथसे च्युत करानेवाला हो। शेष प्रभुकृपा।

(२)

ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके प्रश्नोंके संक्षिप्त उत्तर निम्नलिखित हैं—

१. ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है। तुकाराम, नामदेव, सूरदास, तुलसीदास, गौरांग महाप्रभु, श्रीरामकृष्ण परमहंस आदिपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। जो भी भगवान्का सच्चा भक्त हो, वह आज भी भगवान्के दर्शन प्राप्त कर सकता है।

२. लक्ष्मी और कीर्ति तो प्रारब्धजन्य पुण्यके फलस्वरूप बढ़ती हैं। इस जीवनमें जो दम्भ, छल, कपट आदि करते हैं, वे कोई भी हों और लोग उन्हें कुछ भी कहें या समझें, अपने कर्मोंके फलस्वरूप अनन्त दुःख तो आगे चलकर उन्हें भोगने ही पड़ेंगे।

३. धन, कीर्ति, स्वास्थ्यादि भगवान्की प्रार्थनासे भी मिल सकते हैं। प्रार्थनाके लिये न कोई प्रकार है, न स्थान और न समय। पूर्ण विश्वाससे, अनन्यभावसे जो सहज कातर-प्रार्थना होती है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाती। प्रार्थना हृदयसे उठती है, उसे पुस्तकके द्वारा सीखा नहीं जाता। बँधे शब्द प्रार्थना नहीं हैं। भगवान्के प्रति अपने हृदयके सच्चे भावोंका पूर्ण विश्वाससे निवेदन करना ही प्रार्थना है।

४. सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये। सन्ध्या न करनेसे प्रत्यवाय (एक प्रकारके दोष)-की प्राप्ति होती है।

५. मनकी एकाग्रता तो अभ्याससे होती है। धैर्य एवं नियमपूर्वक अभ्यास करते रहनेसे धीरे-धीरे मन एकाग्र होने लगेगा।

६. आत्महत्या बड़ा भारी पाप है। इससे किसी कष्टकी निवृत्ति नहीं होती। प्रारब्ध तो आगे भी भोगना ही पड़ेगा और आत्महत्याके पापके फलसे वह और घोरतर हो जायगा। अतः आत्महत्या-जैसी बात तो मनसे निकाल ही देनी चाहिये। भगवान् परम दयालु हैं। उनकी कृपापर पूर्ण विश्वास करके उन दयामयसे प्रार्थना करना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। शेष प्रभुकृपा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १२। १९ बजेतक	गुरु	मूल रात्रिमें १। ३ बजेतक	१६ जून	मूल रात्रिमें १। ३ बजेतक।
द्वितीया ,, ११। ४२ बजेतक	शुक्र	पू० षा० ,, १। ११ बजेतक	१७ ,,	× × × ×
तृतीया ,, ११। ३४ बजेतक	शनि	उ० षा० ,, १। ५० बजेतक	१८ ,,	भद्रा दिनमें ११। ३८ से रात्रिमें ११। ३४ बजेतक, **मकरराशि** प्रातः ७। २४ बजेसे।
चतुर्थी ,, ११। ५९ बजेतक	रवि	श्रवण ,, २। ५८ बजेतक	१९ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत** चन्द्रोदय रात्रिमें ९। ३८ बजे।
पंचमी ,, १२। ५२ बजेतक	सोम	धनिष्ठा रात्रिशेष ४। ३४ बजेतक	२० ,,	**कुम्भराशि** दिनमें ३। ४६ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ३। ४६ बजेसे।
षष्ठी ,, २। १३ बजेतक	मंगल	शतभिषा अहोरात्र	२१ ,,	भद्रा रात्रिमें २। १३ बजेसे।
सप्तमी ,, ३। ५५ बजेतक	बुध	शतभिषा प्रातः ६। ३७ बजेतक	२२ ,,	भद्रा दिनमें ३। ४ बजेतक, **आषाढ़मासारम्भ, मीनराशि** रात्रि २। २५ बजेसे, **आर्द्रा नक्षत्रमें सूर्य** रात्रिमें ११। १७ बजेसे।
अष्टमी अहोरात्र	गुरु	पू० भा० दिनमें ,, ८। ५९ बजेतक	२३ ,,	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत।**
अष्टमी प्रातः ५। ५२ बजेतक	शुक्र	उ० भा० ,, ११। ३४ बजेतक	२४ ,,	मूल दिनमें ११। ३४ बजेसे।
नवमी दिनमें ७। ५४ बजेतक	शनि	रेवती ,, २। १३ बजेतक	२५ ,,	भद्रा रात्रिमें ८। ५२ बजेसे, **मेषराशि** दिनमें २। १३ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें २। १३ बजे।
दशमी ,, ९। ५१ बजेतक	रवि	अश्विनी ,, ४। ४१ बजेतक	२६ ,,	मूल दिनमें ४। ४१ बजेतक, भद्रा रात्रिमें ९। ५१ बजेतक।
एकादशी ,, ११। ३१ बजेतक	सोम	भरणी रात्रिमें ६। ५४ बजेतक	२७ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें १। २१ बजेसे, **योगिनी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, १२। ५० बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, ८। ४४ बजेतक	२८ ,,	**भौमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १। ४१ बजेतक	बुध	रोहिणी ,, १०। ७ बजेतक	२९ ,,	भद्रा दिनमें १। ४१ बजेसे रात्रिमें १। ५२ बजेतक, **मासशिवरात्रिव्रत।**
चतुर्दशी ,, २। ३ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, ११। ० बजेतक	३० ,,	**मिथुनराशि** दिनमें १०। ३३ बजेसे, **श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या ,, १। ५३ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ११। २२ बजेतक	१ जुलाई	स्नान-दानकी अमावस्या।

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १। १४ बजेतक	शनि	पुनर्वसु रात्रिमें ११। १५ बजेतक	२ जुलाई	**कर्कराशि** सायं ५। १७ बजेसे, **चन्द्रदर्शन।**
द्वितीया ,, १२। ६ बजेतक	रवि	पुष्य ,, १०। ४२ बजेतक	३ ,,	**श्रीजगदीशरथयात्रा,** मूल रात्रिमें १०। ४२ बजेसे।
तृतीया ,, १०। ३६ बजेतक	सोम	आश्लेषा ,, ९। ५१ बजेतक	४ ,,	भद्रा रात्रिमें ९। ४१ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिमें ९। ५१ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी ,, ८। ४५ बजेतक	मंगल	मघा ,, ८। ३८ बजेतक	५ ,,	मूल समाप्त रात्रिमें ८। ३८ बजे, भद्रा दिनमें ८। ४५ बजेतक,
पंचमी प्रातः ६। ३७ बजेतक षष्ठी रात्रिशेष ४। १७ बजेतक	बुध	पू० फा० ,, ७। १२ बजेतक	६ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें १२। ४८ बजेसे, **श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत, कर्दमषष्ठी** (बंगाल) **पुनर्वसु नक्षत्रका सूर्य** रात्रिमें १२। ५१ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें १। ५१ बजेतक	गुरु	उ० फा० सायं ५। ३६ बजेतक	७ ,,	भद्रा रात्रिमें १। ५१ बजेसे।
अष्टमी ,, ११। २१ बजेतक	शुक्र	हस्त दिनमें ३। ५६ बजेतक	८ ,,	भद्रा दिनमें १२। ३६ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें ३। ६ बजेसे।
नवमी ,, ८। ५५ बजेतक	शनि	चित्रा ,, २। १७ बजेतक	९ ,,	× × × ×
दशमी सायं ६। ३५ बजेतक	रवि	स्वाती ,, १२। ४३ बजेतक	१० ,,	× × × ×
एकादशी दिनमें ४। २७ बजेतक	सोम	विशाखा ,, ११। २० बजेतक	११ ,,	भद्रा प्रातः ५। ३१ बजेसे दिनमें ४। २७ बजेतक, **वृश्चिकराशि** प्रातः ५। ४१ बजेसे, **श्रीविष्णुशयनी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, २। ३५ बजेतक	मंगल	अनुराधा ,, १०। १२ बजेतक	१२ ,,	मूल दिनमें १०। १२ बजेसे, **वामनपूजन, भौमप्रदोषव्रत, चातुर्मास्य व्रतारम्भ, शाकत्याग व्रतारम्भ।**
त्रयोदशी ,, १। ४ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा ,, ९। २४ बजेतक	१३ ,,	**धनूराशि** दिनमें ९। २४ बजेसे।
चतुर्दशी रात्रिमें ११। ५६ बजेतक	गुरु	मूल ,, ८। ५९ बजेतक	१४ ,,	मूल समाप्त दिनमें ८। ५९ बजे, **व्रतकी पूर्णिमा,** भद्रा दिनमें ११। ५६ बजेसे रात्रिमें ११। ३६ बजेतक, **चौमासी चौदश (जैन)।**
पूर्णिमा ,, ११। १६ बजेतक	शुक्र	पू० षा० ,, ९। १ बजेतक	१५ ,,	**मकरराशि** दिनमें ३। ८ बजेसे, **स्नान-दानकी पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, व्यासपूजा।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

(१)

भगवान् आशुतोषकी कृपा

मैं चार्टर्ड-एकाउन्टेन्सी (सी० ए०)-का एक छात्र हूँ। मैंने बी०एस-सी० थर्ड डिवीजनसे पास किया था। आगे किसी भी कोर्समें प्रवेश न मिलनेके कारण विवश होकर मैंने सी०ए० को ही चुना। मैं ग्यारहवीं कक्षातक प्रथम श्रेणीमें पास होता रहा हूँ, इससे मेरे मनमें गर्वकी भावना आ गयी थी। मैं भगवान्का भी काफी उपहास किया करता था। यानी कुल मिलाकर मैं पूरी तरहसे नास्तिक हो गया था। इसके साथ मेरा Academic Career भी बिगड़ता गया, यहाँतक कि बी०एस-सी० के बाद मेरी ऐसी स्थिति हो गयी कि मुझे कहींपर भी किसी भी कोर्सके लिये प्रवेश नहीं मिला। खैर, सी०ए० की प्रवेश-परीक्षा (Entrance Examination)-में बैठा, लेकिन दोनों बार असफलता मिली। मैं बहुत ही निराश हो गया। पूरी तरहसे हिम्मत हार चुका था। समझमें नहीं आता था कि क्या करूँ? इसी बीच मुझे ओंकारेश्वर जानेका मौका मिला। यह भगवान् शिवका एक पवित्र तीर्थस्थल है। यहाँपर पहली बार मैंने अपने अन्तस्तलसे प्रार्थना की और भगवान् शंकरजीसे दयाकी भीख माँगी। आखिर प्रभुने मेरी पुकार सुन ली तथा इसके बाद उस परीक्षामें मैं उत्तीर्ण हो गया तथा मुझे सी०ए०में प्रवेश भी मिल गया। इसके करीब डेढ़ साल बाद में सी०ए० की परीक्षामें बैठा। मेरी तैयारी कोई विशेष नहीं थी। चार्टर्ड-एकाउन्टेन्सीके बारेमें यह सर्वविदित है कि इसके प्रश्नपत्र बहुत कठिन होते हैं तथा बहुत कम लोगोंको प्रथम बारमें सफलता हासिल होती है। उत्तर शुरू करनेसे पूर्व मैं प्रतिदिन अपने परम इष्टदेव भगवान् शिवको मन-ही-मन श्रद्धासहित स्मरण किया करता था। फिर भी मेरे दो प्रश्न-पत्र काफी बिगड़ गये तथा मेरे पास होनेकी सारी आशा धूमिल पड़ गयी। मैंने हारकर प्रभुकी शरण ली। अब मैं नित्यप्रति प्रातः-सायं मन्दिर जाता तथा भगवान् शिवसे आर्त स्वरसे प्रार्थना किया करता। प्रार्थना मेरी सकाम थी, अपने स्वार्थके लिये थी। मैं किसी तरह पास हो जाऊँ। साथ ही मैंने 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका जप करना भी आरम्भ कर दिया। रिजल्ट निकलनेके करीब एक हफ्ते पूर्व मुझे भयानक बुखार आने लगा। इसी बुखारमें मैं जब बेसुध था तो मुझे स्वप्न हुआ। स्वप्नमें लगा कि भगवान् शिव मुझसे कह रहे हैं—'तू चिन्ता न कर, पास हो जायगा। अब जल्दीसे मन्दिर जा।' जब मैंने आँख खोली तो सन्ध्या हो चुकी थी। उस भयानक बुखारमें भी मेरे अन्दरमें न जाने इतनी शक्ति कहाँसे आ गयी कि मैं शीघ्र ही मन्दिर गया। उस समय भगवान्की आरती हो रही थी। मैं वहाँ आधे घण्टेतक खड़ा रहा। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि मैं अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। अन्ततः परीक्षाफल मिला, भगवान्की कृपासे मैं पास हो गया। विशेष आश्चर्यकी बात तो यह है कि काफी बुद्धिमान् (इन्टेलिजेन्ट) माने जानेवाले लड़के रह गये। मैं इसे कल्याणस्वरूप भगवान् सदाशिवकी अपने ऊपर महान् अहैतुकी कृपा मानता हूँ।

इस घटनाके पश्चात् मेरे आत्मबल तथा भगवद्विश्वासमें वृद्धि हुई है।—**एक भगवद्विश्वासी**

(२)

एक अलौकिक अनुभव

डेढ़ वर्ष पूर्व मैं अपने पुत्रके पास पनवेल, मुम्बई गया हुआ था। बेटेने महाबलेश्वर घूम आनेके लिये कहा और वहाँ अपने मित्रको फोन कर दिया कि पिताजीको घुमा देना। सी.एस.टी. स्टेशनपर पंढरपुर फास्ट पैसेंजर खड़ी देखकर मेरे मनमें अचानक पंढरपुर जानेकी तीव्र इच्छा हुई, मेरे मनमें विट्ठल-विट्ठल गूँजने लगा और मैं टिकट लेकर गाड़ीमें सवार हो दूसरे दिन सुबह पंढरपुर पहुँच गया। स्टेशनसे पैदल ही भीमानदीके तटपर पहुँचा। घाटपर स्नान करनेके बजाय धारके साथ चलता हुआ काफी दूर निर्जन टूटे-फूटे घाट पहुँचा तो वहाँ सुनसान देखकर सीढ़ियोंपर बैठ गया। तभी अचानक कहींसे करीब चार सालका बालक अपनेसे कुछ छोटी बालिकाकी अँगुली पकड़े सीढ़ियोंपर चढ़ता दिखा। उन्हें देखते ही मेरे होश-हवास खो गये। इतने सुन्दर स्वस्थ मनोहारी बच्चे मैंने अपने जीवनमें कभी नहीं देखे। वे दोनों मुझे देखकर मुसकराये। उनकी आँखोंसे आँखें मिलते ही मेरे ऊपर बेहोशी-सी छा गयी। कुछ देर बाद मोबाइलकी घण्टी सुनकर होश आया। देखा बेटेकी काल थी—पिताजी आप कहाँ हैं? महाबलेश्वर नहीं पहुँचे, मेरा मित्र आपकी राह देख रहा है। मैंने कहा मैं पंढरपुरमें विट्ठलके दरबारमें हूँ। सीढ़ियोंसे उठकर चारों ओर दूर-दूरतक ढूँढा, कहीं कोई नहीं मिला। दूर कुछ लोग मिले, बोले—क्या खो गया है? मैंने सोचा सब मिल गया है। आज भी वह सूरत, वे आखें और उनकी कृपामयी मूरत यादकर मदहोशी छा जाती है।—**सोमदत्त पाठक**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भगवान्‌का अनपढ़ भक्त किसान

गुजरातके प्रफुल्ल भाई एक बड़े कथाकार हैं। उनका आश्रम खरेगाय (गुजरात)-में है। उनके द्वारा कही गयी एक घटना इस प्रकार है—

एक किसान था। बहुत गरीब था। लेकिन सच्चा-ईमानदार था। उसने अपने गाँवके एक बनियेके पाससे कुछ रुपये कर्ज लिये थे। बादमें कर्ज लिये गये रुपयोंको उसने कभी पाँच सौ, कभी हजार और कभी दो हजार करके सारी रकम चुका दी थी, परंतु रुपये चुकानेकी रसीद नहीं ली; क्योंकि वह अनपढ़ था।

बादमें बनियेकी नीयतमें खोट आ गया, उसने दो साल बाद कोर्टमें केस दर्ज कराया कि किसानने मेरे पैसे चुकता नहीं किये हैं। कोर्टमें केस हुआ, दोनोंको समन भेजा गया। दोनों नियत तारीखको हाजिर हुए। न्यायमूर्तिने बनियेसे पूछा—तुम्हारी क्या फरियाद है? बनियेने कहा—हुजूर! इस किसानने मुझसे रुपये कर्ज लिये थे, काफी समय हो गया, पर अभीतक एक भी पैसा नहीं चुकाया है। किसानसे भी पूछा गया—तुमने इस बनियेसे कर्ज लिया था, और यदि लिया था तो चुकाया क्यों नहीं? किसानने कहा—मालिक! मैंने जो रुपये कर्जमें लिये थे वे रुपये तथा उन रुपयोंके ब्याजकी एक-एक पाई मैंने चुका दी है। न्यायमूर्तिने प्रश्न किया कि 'क्या तुम्हारे पास पैसे चुका देनेकी रसीद या कोई कागजात है?' किसानने उत्तर दिया—साहब! मैं ठहरा अनपढ़ आदमी, मैंने तो इनके विश्वासपर रुपये लिये तब भी मैंने नहीं जाना कि इन्होंने क्या लिखा-पढ़ी की और चुकानेके बाद भी मैंने कोई रसीद आदि नहीं ली। हम गरीब लोग तो ऐसे ही विश्वासपर लेन-देन करते हैं साहब! किसानके इस सरलताभरे उत्तरको सुनकर न्यायाधीशने मन-ही-मन सोचा कि किसान निर्दोष है, परंतु यह बनिया इसे फँसा रहा है। न्यायाधीशने किसानसे फिर पूछा—तुम्हारा कोई साक्षी है? किसान भगवान्‌का भक्त था, सो उसने कहा—साहब मेरे साक्षी तो रामजी हैं? इसपर न्यायाधीशने कहा—ठीक है, कल अपने साक्षीको लेकर आओ।

अगले दिन किसान और बनिया पुनः हाजिर हुए। किसानके साथ तो कोई साक्षी था नहीं, वह कहाँसे भगवान् रामको लाता, फिर भी उसके मनमें यह विश्वास था कि मेरे रामजी साक्षी बनकर जरूर आयेंगे। इधर बनिया मन-ही-मन बहुत प्रसन्न था कि आज इस किसानको तो अपने कहेका फल जरूर मिलेगा। बहरहाल केस शुरू हुआ। किसानसे बार-बार कहा जाने लगा—तुम्हारे रामजी कहाँ हैं? किसान मौन हो बाहर दरवाजेकी ओर ही ताकता जा रहा था। तभी एक व्यक्ति वहाँ आया, उसके कपड़े मैले थे। देखनेमें वह किसानकी तरह लग रहा था। उसने अपना नाम रामजी बताते हुए उस बनिये एवं किसानके लेने-देनका अपनेको साक्षी बताया तथा उसने जिस-जिस दिन किसानद्वारा कर्ज अदा किया गया था, उसकी तारीख, दिन सभी कुछ बता दिया। अब बनिया एकदम-से घबरा गया। न्यायाधीशको भी समझते देर न लगी और उन्होंने किसानको निर्दोष कहते हुए बनियेको सजा सुनायी। फिर शीघ्र ही वे स्वयं रामजी नामक उस व्यक्तिसे मिलनेके लिये बाहर आये, परंतु वह व्यक्ति कहीं नहीं दिखा। वे समझ गये कि इस ईमानदार किसानके लिये भगवान् श्रीराम वेष बदलकर स्वयं साक्षी बने। यह सोचकर वे भाव-विभोर हो गये और वे उसी समय अपने पदसे इस्तीफा देकर गंगा किनारे जाकर रहने लगे। चार-पाँच वर्षके बाद उनका स्वर्गवास हो गया।

प्रे०—किशोर रणछोड़ भाई

(२)

वफादारी एवं ईमानदारी मनुष्यका धर्म है

प्राचीन बड़ौदा राज्यमें एक भले अमलदारका नाम था श्री एस० आर० शिंदे। नौकरीके अन्तिम दिनोंमें वे मेहसानेके डिस्ट्रिक्ट जज थे। वे बहुत ईमानदार एवं स्पष्टवक्ता थे।

स्व० सयाजीराव महाराजके हृदयमें श्रीशिंदेकी कद्र थी। महाराजा जब-जब विदेश जाते थे, अपने निजी मन्त्रीके रूपमें वे श्रीशिंदेको अपने साथ ले जाते थे। किंतु श्रीशिंदे स्पष्टवादी एवं सत्यवक्ता होनेके कारण अन्य मन्त्रियोंके समान विशेष आर्थिक लाभ नहीं उठा सके।

एक बार महाराजाने फ्रांसके पेरिस नगरमें ठहरकर एक बड़े जौहरीकी दूकानसे बहुमूल्य जवाहरात खरीदे। दूसरे दिन दूकानका एक प्रतिनिधि श्रीशिंदेसे मिला और उसने उनसे पूछा—'आपका कमीशन नगद दिया जाय या चेकसे?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीशिंदे ऐसी बातोंके अभ्यस्त नहीं थे। अतः उन्होंने आश्चर्यसे प्रश्न किया—'मेरा कमीशन? किस बातका?'

दूकानका प्रतिनिधि कुशल व्यक्ति था। वह समझ गया कि मैं किस आदमीसे बातें कर रहा हूँ। अतः उसने बड़े विनयसे कहा—'साहब! आपको इस बातका बुरा नहीं मानना चाहिये। सराफोंकी दूकानोंमें यही रिवाज है कि अच्छे ग्राहक लानेवालेको कमीशन दिया जाता है और उसे सभी लोग बिना संकोच ले लेते हैं। कमीशनके ऊपर तो आपका हक होता है।'

'आपका रिवाज जो भी हो', श्रीशिंदेने कहा—'किंतु मैं सरकारका कर्मचारी हूँ, मैं इसे नहीं ले सकता।'

'कमीशन स्वीकार करनेसे महाराजाको कोई नुकसान नहीं पड़ता और न अस्वीकार करनेसे उन्हें कोई फायदा होता है।' प्रतिनिधिने परिस्थिति स्पष्ट करते हुए कहा। 'यह तो हमारी दूकानकी परिपाटी है। मैं यह बात आपके महाराजाके समक्ष स्पष्ट भी कर सकता हूँ।'

'आप कृपया ऐसा न करें। आप इस कमीशनको काट करके ही अपना बिल बना दीजिये, यह कमीशन ग्राहकको ही मिलना चाहिये न कि साथमें आनेवालेको।'—श्रीशिंदेने अपना निर्णय बता दिया।

'अच्छी बात है'—प्रतिनिधि बोला। 'अगर आपकी ऐसी ही इच्छा है तो ऐसा ही किया जायगा; किंतु आप इतना बड़ा स्वार्थत्याग कर रहे हैं। आपकी ईमानदारीकी सूचना मैं महाराजाके कानतक पहुँचाऊँ तो आपको कोई हर्ज तो नहीं?'

'देखो, भाई!' श्रीशिंदेने उत्तर दिया। 'वफादारी एवं ईमानदारी मनुष्यका धर्म है और धर्म कोई प्रदर्शन या प्रचारकी वस्तु नहीं है।' 'और दूसरी बात' थोड़ी देर रुककर श्रीशिंदेने कहा—'हमारे महाराजा यह बात जानकर भूतकालीन अधिकारियोंके प्रति शंका करेंगे। उस जाँच-पड़तालमें मेरे किसी पूर्ववर्ती निर्दोष अधिकारीको हैरान होना पड़ सकता है। अतः इस प्रश्नको यहीं दबा दें।'

'वाह, वाह!' नतमस्तक होकर वह प्रतिनिधि बोला—'भारतवर्षमें ऐसे व्यक्ति भी रहते हैं, जो धर्मके लिये इतनी बड़ी रकमको भी ठोकर लगा सकते हैं तथा उस त्यागका परिचय अपने मालिकको भी नहीं देते।'

श्रीशिंदेको वन्दन करके प्रतिनिधि विदा हुआ। 'अखण्ड आनन्द'—**विजयकुमार मा० त्रिवेदी**

(३)

आदर्श शिक्षक

घटना कुछ पुरानी है। अल्पवयस्क एक विद्यार्थी स्कूलसे छूटकर अपने साथियोंके साथ पेड़के ऊपर चढ़कर खेल रहा था। पेड़की ऊँची डालसे वह एकाएक गिर पड़ा और दैववशात् उसकी दोनों आँखें हमेशाके लिये जाती रहीं। बालकके अन्धे हो जानेसे उसके माता-पिताकी वेदनाका पार नहीं था।

स्कूलके मुख्य आचार्यको जब इस घटनाकी सूचना मिली, तब वे दौड़कर विद्यार्थीके पास पहुँचे। विद्यार्थीने रोते हुए कहा—'गुरुजी! अब मैं पढ़ नहीं सकूँगा।'

'अरे मेरे पागल बच्चे!'—हँसते-हँसते आचार्य बोले—'तू क्यों नहीं पढ़ सकेगा, मैं जो बैठा हूँ?' मैं तुझे अवश्य पढ़ाऊँगा।'

विद्यार्थीका चेहरा खिल उठा। आचार्यजीके ये शब्द केवल आश्वासनके लिये नहीं थे। आचार्यजी स्वयं रातको जागकर ब्रेललिपि (नेत्रहीनोंकी पढ़ने-लिखनेकी कला) सीखने लगे। प्रतिदिन रातको अपनी आँखोंपर पट्टी बाँधकर दो-तीन घण्टे वे ब्रेललिपिमें लिखी पुस्तकें पढ़नेका अभ्यास करने लगे। कुछ ही दिनोंमें वे उस लिपिके अभ्यस्त हो गये। अब वे प्रातः दस बजेसे उस विद्यार्थीको स्वयं स्कूलमें ले जाकर पढ़ाने लगे। एक-दो-तीन, नहीं पूरे सात वर्ष परिश्रम करके उन्होंने उसको एस०एल०सी०की परीक्षा पास करवा दी। इसके पश्चात् वह विद्यार्थी लगनसे पढ़ता रहा। कुछ ही वर्षोंमें उसने इण्टरमीडिएट, बी०ए० और एम०ए०की परीक्षाएँ पास कर लीं और अन्तमें वह पी-एच०डी० हो गया।

वही अन्ध विद्यार्थी अन्धजनोंकी हितकारिणी समितिका अधिकारी बन गया तथा वे आचार्य सच्ची लगन एवं कर्तव्यके आदर्श शिक्षक बन गये।—**गुणवन्तराय आचार्य**

(४)

इच्छा-मृत्यु

घटना लगभग ६० वर्ष पूर्वकी है, मेरी पूजनीया दादीजी अनन्य ईश्वरभक्त एवं पतिव्रतपरायण थीं। मैंने स्वयं देखा है और सम्पूर्ण दृश्य आज भी मेरे सम्मुख है कि हमारे बाबा प्रातः चार बजे उठकर बाहरसे भीतर बरोठेमें जैसे ही आते, दादीजी उनके पैरके अँगूठेका चरणोदक लेती थीं। पूजा-पाठ नियमसे करना, गाँव-मुहल्लेका कोई स्त्री-पुरुष घर आये तो दानस्वरूप कपड़ा, भोजन और दवाइयाँ देना उनके जीवन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्याका अभिन्न अंग था।

घटना यह हुई कि दादीजी जब अस्वस्थ हुईं तो ऐसा लगता था कि बचेंगी नहीं। दवा-इलाज होता रहा। उन्होंने पण्डितजीको बुलाया और पूछा सूर्य उत्तरायण कब होंगे? पण्डितजीसे उत्तर मिला कि दो माह बाद। धीरे-धीरे उनके स्वास्थ्यमें सुधार हुआ और वे तीन-चार दिनोंमें पूर्णतया स्वस्थ हो गयीं।

दो माह बीतनेके बाद जनवरी माहके अन्तमें एक दिन बड़े प्रात: दादीजीने मेरी माँको बुलाकर कहा कि जल्दी पूरे परिवारके लिये भोजन बनवाओ। माँ आश्चर्यचकित हो प्रयोजन पूछने लगीं। इसपर उन्होंने कहा कि हम जैसा कहते हैं बस, करती जाओ। मेरी माँने सदैव उनकी सेवा की थी एवं उनकी आज्ञाका पालन किया था। उन्होंने उस दिन भी उनके वचनोंको शिरोधार्य किया।

दादीजीके आज्ञानुरूप भोजन तैयार हुआ। परिवार, खानदानके सभी लोगोंको अपने पास बुलानेके आदेशका भी पालन हुआ। दादीजीने कहा कि आँगनमें गायके गोबर एवं गंगाजलसे लिपाई करो और कुशा बिछाओ। परिवारके सदस्य इकट्ठा हो चुके थे। दादीजीके इच्छानुसार सबने भोजन भी किया। इसके बाद पूज्य बाबाजीके जाँघपर सर रखकर उन्होंने अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की कि कोई भी रोयेगा नहीं, सब लोग कोई रामायण, कोई गीता, कोई भजन गाओ। साथ ही मेरे मुँहमें गंगाजल, तुलसीदल डालते रहो।

उन्होंने जैसे समयको अपने वशमें कर रखा था। सबसे उल्लेखनीय बात यह कि अन्त समयमें माया-मोहकी बात न कर उन्होंने ईश्वरका नाम लेकर प्राण त्यागे। दादीजीके प्रतापका स्मरणकर मुझे आज भी रोमांच हो आता है।

—सत्यदेव पाण्डेय

(५)

आंजनेयका वरद हस्त

आजसे लगभग सवा दो साल पूर्वकी बात है। उस दिन फरवरी मासका मंगलवार था। मेरे पतिको पोस्ट ऑफिसमें कुछ आवश्यक कार्य था। उस दिन मुझे घुटने और पीठमें थोड़ा दर्द था। मैंने एक बार सोचा कि आज उनके साथ न जाऊँ, पर भगवत्प्रेरणासे मैं उठकर खड़ी हो गयी और तैयार हो गयी। मैंने पीठदर्दके कारण बेल्ट पहन लिया, पर घुटनेका नीकैप बाँधना भूल गयी। दूर जाते समय हम सीटबेल्ट बाँध लेते थे, पर उस दिन पास जा रहे थे तो वह भी करना भूल गये। अभी हम पोस्ट ऑफिस पहुँचने ही वाले थे कि हमारी लेनमें ही विपरीत दिशासे आती सफेद इण्डिका दो गाड़ियोंको ओवर टेक करती हुई तेजीसे हमारी गाड़ीको टक्कर मार गयी, जिससे हमारी कार दाहिनी ओर मुड़ गयी। हमें दो-तीन बार आगे-पीछे धक्का लगा फिर हमारी कार रुक गयी। इतना सब कुछ मात्र कुछ सेकेण्डमें घट गया। हम दोनों किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। जबतक सँभले, देखा कि गाड़ीका सामनेका शीशा टूटकर, चूर-चूर होकर चारों ओर बिखर गया है, पर एक भी टुकड़ा हम दोनोंको नहीं चुभा, हमलोग घुटनोंके बल गाड़ीके भीतर गिर गये, मैं तो दर्दके मारे कराहने लगी। इतनेमें आस-पासके लोग हमारी सहायताके लिये पहुँच चुके थे। उन्होंने हमारा दरवाजा खोलकर मुझे तो पकड़कर निकाल लिया, किंतु मेरे पतिका दरवाजा उस भीषण आघातसे पिचककर लॉक हो गया था। वे मेरी ओरसे बाहर निकले। पासमें ही दैवयोगसे एक ऑटोरिक्शा खड़ा था। लोगोंने मुझे उठाकर उसमें बिठाया। म्यूजिक सिस्टमका भीतरी हिस्सा जो लोहेका बना था, वह मेरे पतिके घुटनेपर गिरा था। वह ऑटोवाला हमें बैठाकर रेलवे अस्पताल ले गया। वहाँ उसने मुझे पकड़-पकड़कर एक्स-रे आदि करवाया। 'हम अस्पतालमें भर्ती हो गये।' सुनकर मेरी बहू और मेरे छोटे भाई-भाभी दौड़े आये।

उस ऑटोरिक्शाचालककी मानवता मैं आजीवन नहीं भूल सकती, न ही हमारी सहायता करनेवालोंकी। आजके स्वार्थी युगमें भी ऐसे महान् लोग विद्यमान हैं, यद्यपि उनके पास पैसा नहीं है, पर उनका दिल महान् एवं बड़ा उदार है।

यह दुर्घटना थी या परम पिताका चमत्कार, जिन्होंने हमें मौतके मुखसे जाते-जाते रोक लिया। मैं हनुमान्‌जीकी परम भक्त हूँ। उन्होंने हमें बाल-बाल बचा लिया। मैं उनको कोटिश: प्रणाम करती हूँ। सच है—

जाको राखे साइयाँ मार सके न कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय॥

—सुषमा ओझा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

आनन्दका मूल्य

उन दिनों स्वामी रामतीर्थ अमेरिकामें थे। अपने वेदान्तसम्बन्धी प्रवचनोंसे उन्होंने अमेरिकावासियोंका मन मुग्ध कर लिया था। एक दिन स्वामीजीके पास एक स्त्री आयी। वह बहुत दु:खी दिखायी देती थी।

उसने स्वामी रामतीर्थजीसे कहा—स्वामीजी, मैं बहुत दु:खी हूँ, जबसे मेरा एकमात्र पुत्र इस संसारसे बीमारीके कारण चल बसा है, मेरा मन उदास हो गया है। किसी काममें मेरा मन नहीं लगता। मैं काफी हताश हो गयी हूँ। आप कृपा करके मुझे कोई उपाय बताइये। क्या मुझे कभी आनन्द मिलेगा?

स्वामीजीने कहा—बहन! राम आनन्द अवश्य बेचता है, पर उसका मूल्य अदा करना पड़ता है। आनन्द मुफ्तमें नहीं मिलता। इसपर उस अमेरिकन महिलाने कहा—आप जितनी कीमत चाहें, मैं देनेको तैयार हूँ। पैसेकी मेरे पास कोई कमी नहीं है। कहिये, क्या कीमत देनी होगी?

स्वामी रामतीर्थने तब मुसकराकर कहा—बहन! आनन्दके साम्राज्यमें ये दुनियाके सिक्के नहीं चलते, तुम्हें तो रामकी दुनियामें चलनेवाले सिक्कोंमें इसका मूल्य अदा करना होगा। बोलो तैयार हो?

महिलाने व्याकुल होकर कहा—आप जो चाहें, मैं देनेको तैयार हूँ, आप कहिये तो सही।

यह सुनकर स्वामीजीने एक अनाथ हब्शी बच्चेको अपने पास बुलाया और उसे महिलाको सौंपते हुए कहा—अच्छा, यह लो अपना पुत्र! इस अनाथ बच्चेको अपना बच्चा समझकर पालना।

यह बात सुनकर महिला बोली—स्वामीजी! यह काम तो बड़ा कठिन है, मुझसे कैसे होगा?

इसपर स्वामीजी बोले—तो फिर तुम्हें सच्चा आनन्द मिलना भी कठिन है।

अन्तमें महिलाने बच्चा स्वीकार कर लिया। वह उसका पुत्रवत् पालन-पोषण करने लगी। थोड़े दिनों बाद वह वापस स्वामीजीके पास आयी और बोली—स्वामीजी, अब मैं वास्तवमें सुखी हूँ, आनन्दकी अनुभूति लेती हूँ। सच है, निर्धन तथा अनाथोंकी सेवामें ही सच्चा आनन्द है।—**श्रीश्याममनोहरजी व्यास**

(२)

रणजीतसिंहकी उदारता

पंजाबके महाराणा रणजीतसिंह बड़ी उदार प्रकृतिके व्यक्ति थे। एक बार वे कहीं जा रहे थे। उनके साथ उनके अंगरक्षक और सेनाके अधिनायक भी थे। जब वे शहरके बीचोबीचवाली सड़कपर पहुँचे, तब अकस्मात् एक ढेला आकर उनके माथेपर लगा। इससे उन्हें बहुत तकलीफ हुई।

उनके अंगरक्षक और सेनाके लोग दौड़े और एक बुढ़ियाको लाकर उनके सामने उपस्थित कर दिया।

बुढ़िया भयके मारे काँप रही थी। उसने हाथ जोड़कर रोते हुए कहा—'सरकार! मेरा बच्चा तीन दिनसे भूखा था, खानेको कुछ नहीं मिला। मैंने पके बेलको देखकर ढेला मारा था। ढेला लग जाता तो बेल टूट पड़ता और उसे खिलाकर मैं बच्चेके प्राण बचा सकती, पर मेरे दुर्भाग्यसे आप बीचमें आ गये। ढेला आपको लग गया। मैं निर्दोष हूँ। मुझे मालूम न था कि आप आ रहे हैं। नहीं तो, मैं…मुझे क्षमा कर दीजिये महाराज!'

महाराजाने करुणाभरी दृष्टिसे बुढ़ियाकी ओर देखा। फिर अपने मन्त्रीसे बोले—'बुढ़ियाको एक हजार रुपये और खानेका सामान देकर आदरपूर्वक घर भेज दो।'

मन्त्री बोला—'यह क्या कर रहे हैं सरकार! इसने आपको ढेला मारा, इसे तो दण्ड मिलना चाहिये।'

महाराज हँस पड़े। उन्होंने कहा—'मन्त्रीजी, जब बिना बुद्धिवाला पेड़ ढेला मारनेपर सुन्दर फल देता है, तब मैं प्राण और बुद्धिवाला होकर उसे दण्ड कैसे दे सकता हूँ।'

महाराजाकी बात काटनेवाला वहाँ कोई नहीं था। सबने उनकी उदारता और सरल प्रकृति देखकर श्रद्धासे सिर झुका दिये। उस बुढ़ियाको उसी दिन एक हजार रुपये और भोजनका सामान खजानेकी ओरसे दिया गया।—**वल्लभदास बिन्नानी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ महत्त्वपूर्ण अनुपलब्ध पुस्तकें—अब छपकर तैयार

गीता-दर्पण (कोड 8)—सरल-से-सरल शैलीमें गीतोक्त जीवन-कलाके संवाहक ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी प्रणीत इस ग्रन्थरत्नके स्वाध्यायसे अनेक भावुक भक्त गीतारूपी दर्पणके द्वारा आत्मपरिष्कार कर चुके हैं। इसमें गीताको सुबोध रूपमें प्रश्नोत्तर शैलीमें प्रस्तुत किया गया है तथा गीताको विभिन्न दृष्टियोंसे विचारकी कसौटीपर कसते हुए प्रधान-प्रधान विषयोंको विशद व्याख्यासे समलंकृत किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें गीता-व्याकरण एवं छन्द-सम्बन्धी ज्ञानसे भी परिचित कराया गया है। मूल्य रु० ६० रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३५ अतिरिक्त।

श्रीप्रेम-सुधासागर (कोड 30)—स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी द्वारा अनुवादित श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णलीला-रस-रसिक भक्तोंके मनको स्वस्थ वैचारिक पुष्टिहेतु गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित सरस शैलीमें यह भाषानुवाद है। जगह-जगह गूढ़ भावोंके प्रकाशहेतु इसे श्रीकृष्णलीलाकी रसमयी विशद व्याख्यासे अलंकृत किया गया है, ताकि सामान्य जन भी श्रीकृष्णलीला-सिन्धुमें अवगाहन कर इस धरा-धामपर सुलभ अमृतका पान कर अमरत्व प्राप्त कर सकें। मूल्य रु० ८० रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३५ अतिरिक्त। (**कोड 1777**) ओड़िआमें भी।

उपनिषद्-अङ्क (कोड 659)—'कल्याण'के विशेषाङ्क रूपमें प्रकाशित नौ प्रमुख उपनिषदों (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर)-का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित संकलन है। इसके अतिरिक्त इसमें ४५ उपनिषदोंका हिन्दी-भाषान्तर, महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर टिप्पणी तथा प्रायः सभी उपनिषदोंका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। मूल्य रु० १५० रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ४५ अतिरिक्त।

श्रीगणेश-अङ्क (कोड 657)—भगवान् गणेश अनादि, सर्वपूज्य, आनन्दमय, ब्रह्ममय और सच्चिदानन्दरूप (परमात्मा) हैं। महामहिम गणेशकी इन्हीं सर्वमान्य विशेषताओं और सर्वसिद्धि-प्रदायक उपासना-पद्धतिका विस्तृत वर्णन इस विशेषाङ्कमें उपलब्ध है। इसमें श्रीगणेशकी लीला-कथाओंका भी बड़ा ही रोचक वर्णन और पूजा-अर्चना आदिपर उपयोगी दिग्दर्शन है। मूल्य रु० १०० रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ४० अतिरिक्त।

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593)—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। ग्रन्थके प्रारम्भमें आये हुए शताधिक प्रमाणोंको हिन्दी-अनुवादके साथ दिया गया है। ग्रन्थमें मूल प्रयोग-भाग संस्कृतमें तथा प्रक्रिया-सम्बन्धी सभी निर्देश हिन्दीमें दिये गये हैं। श्राद्धकी प्रक्रियाओंको समझनेके लिये यथास्थान चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य रु० ८० रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ४० अतिरिक्त।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित भक्तोंके प्रेरक एवं मनोरम चरित्र

इस असार संसारमें भगवान्‌के भक्तोंका चरित्र ही सार है। भक्त ही मानव-जातिके प्राण हैं, भक्त ही संसाररूपी वृक्षके अमृत फल हैं, भक्त ही सभ्य समाजको प्रकाश देनेवाले प्रदीप हैं। भक्तोंके चरित्र सदा ही नवीन, मंगलमय तथा मानव-जीवनमें सात्त्विक भावोंका संचार करनेवाले हैं। आदर्श व्यवहार, इन्द्रिय, मनपर विजय, पवित्र सेवाभाव, त्याग, भगवद्भक्ति, प्रेम आदिके सच्चे स्वरूपका दर्शन भक्तोंके चरित्रमें ही प्रत्यक्ष प्राप्त होता है। भक्तोंके चरित्र भक्तिके व्यावहारिक और पारमार्थिक उपदेश हैं। भक्त-चरित्रोंको पढ़नेसे भगवान्‌के प्रति सच्ची श्रद्धा और भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है। वास्तवमें भक्ति, भक्त, भगवान् और गुरुके केवल नाम अलग-अलग हैं, ये सब एक ही रूप हैं। गीताप्रेससे प्रकाशित विभिन्न धाराके भक्तोंके चरित्र-पढ़ने और सुननेसे जीवनके चरम लक्ष्य भगवान्‌की ओर बढ़ने और त्याग, वैराग्यकी मूर्तिमती प्रेरणा प्राप्त होती है।

भक्त-चरिताङ्क (कोड 40)—भक्तोंके चरित्र सदा ही नवीन तथा प्रेरणादायक हैं। त्याग, तपस्या, भगवद्भक्ति तथा पवित्र सेवाभाव आदिका सच्चा स्वरूप तो भक्त चरित्रोंमें ही प्रत्यक्ष देखनेको मिलता है। 'कल्याण'के विशेषाङ्क रूपमें प्रकाशित ९२८ पृष्ठोंके इस ग्रन्थमें भगवद्विश्वासको बढ़ानेवाले उपासकों, साधकों तथा महात्माओंके जीवन-चरित्रका ऐसा दुर्लभ संग्रह है, जो पाठकोंके हृदयमें भगवद्भक्ति और भगवद्विश्वासका सहज ही संचार कर देता है। मूल्य रु० १६० रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ४५ अतिरिक्त। —भक्त-चरित्रके कुछ प्रकाशनोंका विवरण अगले पृष्ठपर

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-५-२०११
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

गीताप्रेससे प्रकाशित भक्त चरित्रकी प्रमुख पुस्तकें

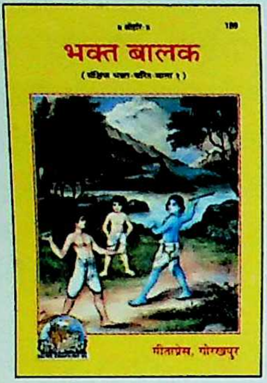

कोड 169 मूल्य रु० ६

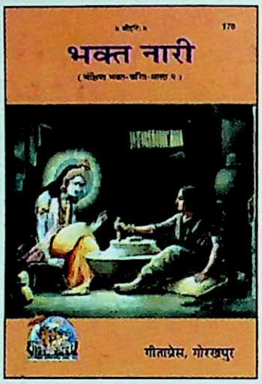

कोड 170 मूल्य रु० ५

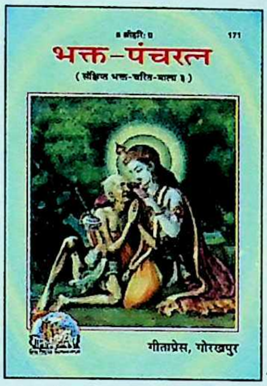

कोड 171 मूल्य रु० ८

कोड 172 मूल्य रु० ८

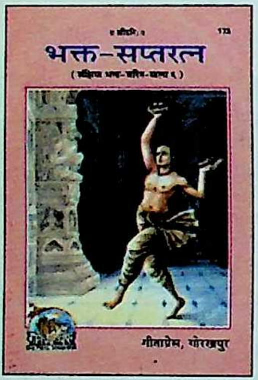

कोड 173 मूल्य रु० ६

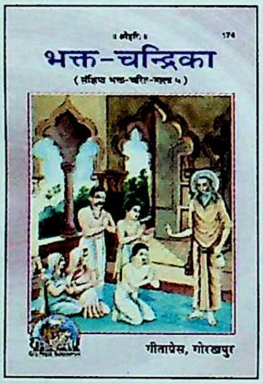

कोड 174 मूल्य रु० ६

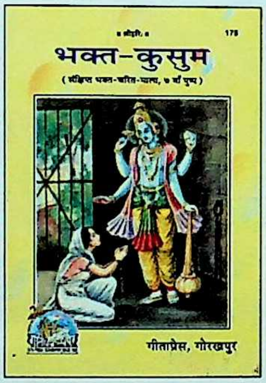

कोड 175 मूल्य रु० ६

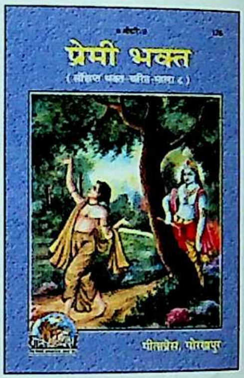

कोड 176 मूल्य रु० ८

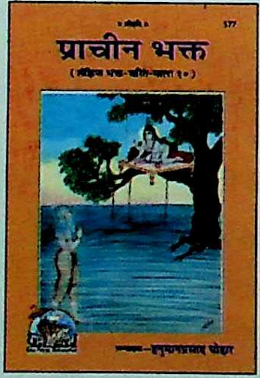

कोड 177 मूल्य रु० १५

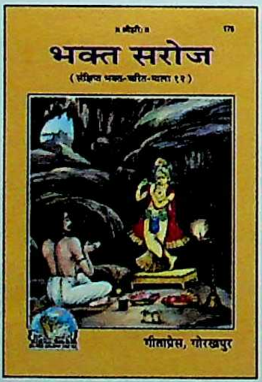

कोड 178 मूल्य रु० ८

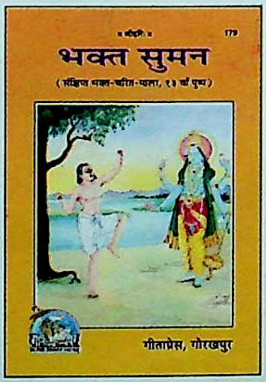

कोड 179 मूल्य रु० ८

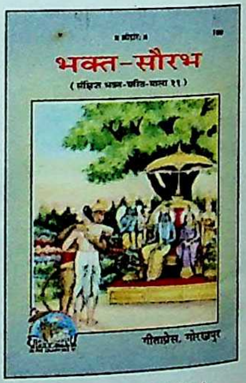

कोड 180 मूल्य रु० ८

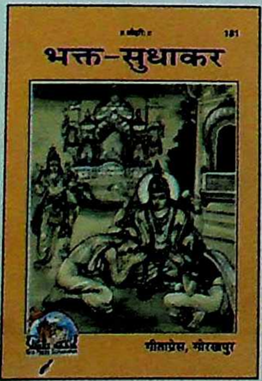

कोड 181 मूल्य रु० ८

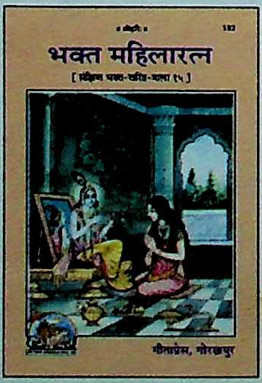

कोड 182 मूल्य रु० १०

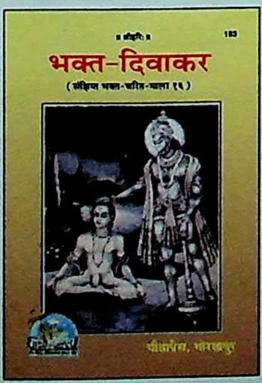

कोड 183 मूल्य रु० ८

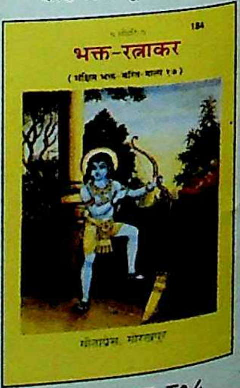

कोड 184 मूल्य रु० ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

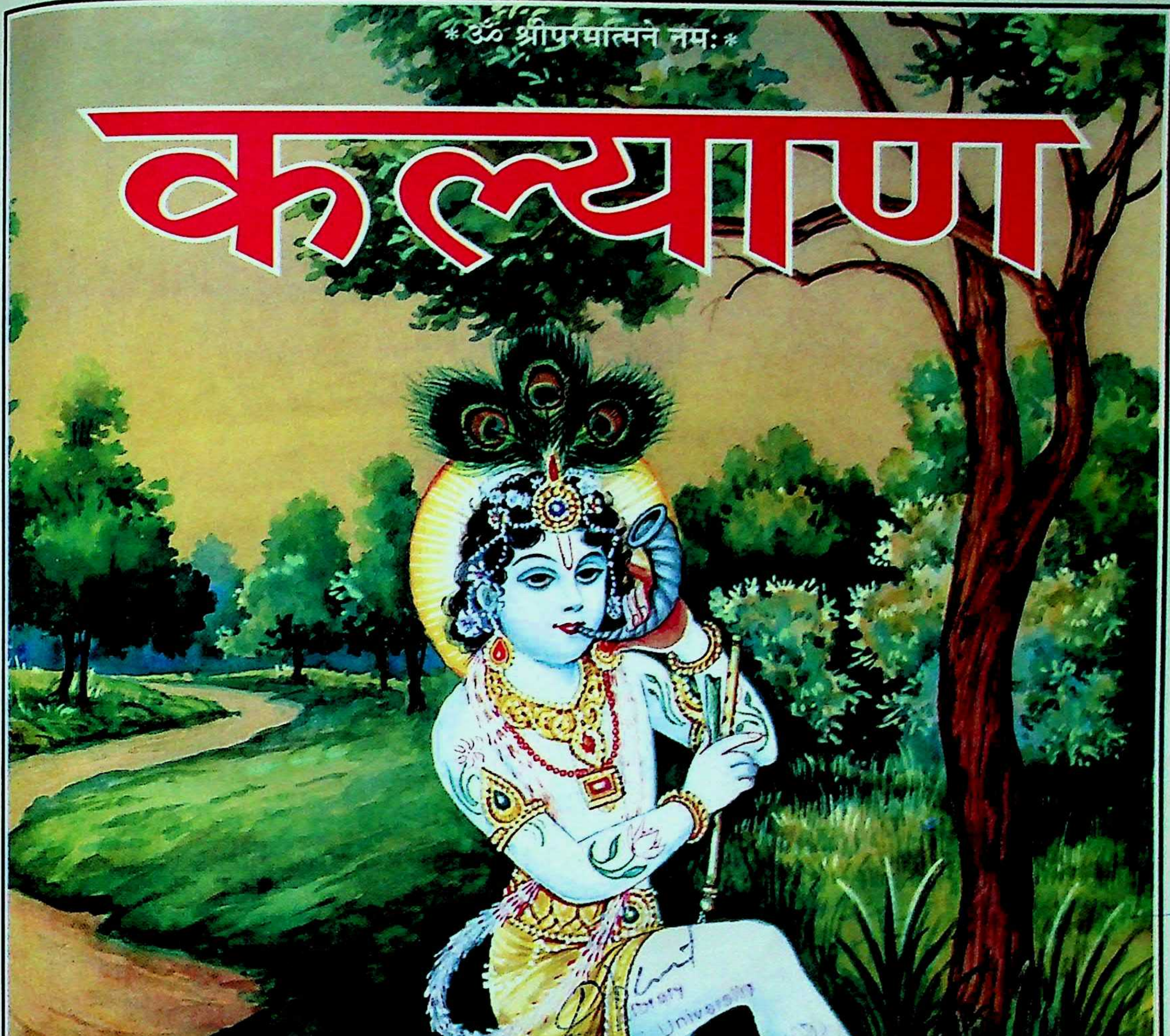

वर्ष ८५

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तोंके परम आराध्य श्रीभवानीशंकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—संसारमें जो कुछ भी ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, शक्ति, श्री, शौर्य, सुख, तेज, सम्पत्ति, स्नेह, प्रेम, अनुराग, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, रस, तत्त्व, गुण, माहात्म्य आदि देखते हो, सब वहींसे आता है, जहाँ इनका अटूट भण्डार है। अनादिकालसे अबतक इस भण्डारमेंसे लगातार इन सारी वस्तुओंका वितरण हो रहा है और अनन्तकालतक होता रहेगा, परंतु इस महान् वितरणसे उस भण्डारका एक तिलभर स्थान भी खाली न होगा। वह सदा पूर्ण, अनन्त और असीम ही रहेगा। जानते हो वह भण्डार कहाँ है और उसका क्या स्वरूप है? नहीं जानते, जानते होते तो भला उस अनन्त भण्डारको छोड़कर क्षुद्र और तुच्छ-सी चीजोंके पीछे क्यों पड़े रहते?

वह भण्डार हैं—भगवान् और वे सभी जगह हैं। उनका महत्त्व और उनका तत्त्व जाननेकी चेष्टा करो, जरा-सी भी उनके महत्त्वकी झाँकी हो जायगी, उनके तत्त्वका ज्ञान हो जायगा तो फिर तुम्हें दूसरी कोई चीज न सुहायेगी। उनके सौन्दर्य, माधुर्यकी जरा-सी छाया भी कहीं दीख जायगी तो फिर जगत्‌का सारा सौन्दर्य-माधुर्य चित्तसे सदाके लिये हट जायगा।

याद रखो—तुम जो उनका चिन्तन छोड़कर विषय-चिन्तन करते हो, एकमात्र उन्हें ही पानेकी कामना न रखकर विषयोंकी भी कामना करते हो, उन्हींके बलपर सर्वथा निर्भर न रहकर जगत्‌के जड बलका आश्रय ग्रहण करना चाहते हो, उनके कृपाकणसे ही अपनेको परमधनी न मानकर दुनियाकी दिखावटी और प्रतिक्षण नष्ट होती हुई धन-सम्पत्तिका मोह करते हो। उनके दासत्वका महान् पद पानेकी अनन्त कीर्तिका तिरस्कारकर दीवानी दुनियामें नाम कमाना चाहते हो और उनके नित्य-सान्निध्यमें रहनेपर भी अपनेको असहाय समझते हो, इससे यही सिद्ध होता है कि तुमने अबतक उनके महत्त्व और प्रभावकी ओर बहुत ही कम ध्यान दिया है।

श्रीभगवान् सच्चिदानन्दघन, परम पवित्र और ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं—परम प्रभु हैं; सबमें, सब जगह, सर्वदा और सर्वथा व्याप्त हैं, सारा उन्हींका पसारा है, वे तुम्हारे अपने हैं, तुम उनके निजजन हो, परम आत्मीय हो, वे नित्य तुम्हारे साथ सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते—सदा ही रहते हैं, एक क्षणके लिये भी तुमसे अलग नहीं होते। उन्हें जानो, देखो और पहचानो। तुम्हारे अभाव मिट जायँगे। तुम्हारे सब दुःखोंका सदाके लिये नाश हो जायगा। तुम्हें परम शान्ति मिल जायगी। फिर जगत्‌की कोई भी स्थिति—मृत्यु भी तुम्हें डरा न सकेगी। तुम नित्य निर्भय और सर्वथा निरामय हो जाओगे।

याद रखो—उन परम प्रियतम सच्चिदानन्दघन प्रभुको जानने, देखने और पहचाननेका सबसे पहला साधन है परम श्रद्धा। जिन अनुभवी महात्माओंने भगवान्‌को जाना, देखा और पहचाना है, उनके वचनोंपर श्रद्धा करो। शास्त्रोंने भगवान्‌को जानने, देखने और पहचाननेके जो साधन बतलाये हैं, उनपर श्रद्धा करो। ज्यों-ज्यों तुम्हारी श्रद्धा बढ़ेगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हें भगवान्‌का प्रकाश समीप आता हुआ दिखायी देगा। तुम अपने अन्दर एक प्रकारके आनन्द और शान्तिका अनुभव करोगे, जिससे साधन और भजनमें तुम्हारा मन अधिकाधिक लगता जायगा और ज्यों-ज्यों भजन बढ़ेगा, त्यों-ही-त्यों तुम भगवान्‌को कुछ-कुछ जानने, देखने और पहचानने लगोगे।

मन तभीतक भगवान्‌में नहीं लग रहा है, जबतक कि उसे आनन्द नहीं आता। जिस दिन थोड़ा भी आनन्द आ जायगा, उस दिनसे तो फिर यह वहाँसे हटाये भी नहीं हटना चाहेगा; क्योंकि उस आनन्दके एक कणके साथ भी जगत्‌के बड़े-से-बड़े आनन्दकी तुलना नहीं हो सकती। वह आनन्द अत्यन्त विलक्षण होता है। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

उत्तम गुण और उत्तम आचरण शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले हैं। उत्तम गुणोंसे अभिप्राय है—हृदयके उत्तम भाव और उत्तम आचरणोंसे अभिप्राय है—मन, वाणी और शरीरकी उत्तम क्रिया। इनमें उत्तम क्रियाओंसे उत्तम भावोंका संगठन होता है और उत्तम भाव होनेसे उत्तम क्रियाएँ स्वाभाविक ही होती हैं। ये परस्पर एक-दूसरेके सहायक हैं। फिर भी क्रियाकी अपेक्षा भाव प्रधान है। जैसे कोई मनुष्य दूसरोंके अनिष्टके लिये यज्ञ, दान, तप आदि करता है तो उसकी वह क्रिया तामसी है और वही क्रिया यदि पुत्र, स्त्री, धन और स्वर्गादिके लिये की जाती है तो राजसी है तथा निष्कामभावसे संसारके हितके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ करनेपर वही क्रिया सात्त्विकी हो जाती है। क्रिया स्वरूपके समान होनेपर भी भाव उत्तम होनेसे उत्तम फलदायक बन जाती है। इसलिये क्रियाकी अपेक्षा भाव ही प्रधान है।

जो दुराचार, दुर्व्यसन और व्यर्थकी क्रियाएँ हैं, वे सब तो नरकमें ले जानेवाली हैं, उनकी तो यहाँ कोई चर्चा ही नहीं है। वे तो सर्वथा त्याज्य हैं। जो कल्याणकारक आचरण हैं, जो भगवत्प्राप्तिमें सहायक हैं, उन्हींकी यहाँ चर्चा की जाती है। वे सब आचरण भी निष्कामभावसे किये जानेपर ही कल्याण करनेवाले होते हैं। इसलिये शास्त्रोक्त उत्तम क्रियाओंका आचरण निष्कामभावसे ही करना चाहिये। उत्तम क्रियाएँ कौन-कौन-सी हैं, उनका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है।

सबके साथ सरलता, विनय, प्रेम, आदर और निरभिमानितापूर्वक नि:स्वार्थभावसे व्यवहार करना।

मन, वाणी, शरीरसे किसी क्षुद्र-से-क्षुद्र प्राणीको भी किसी भी निमित्तसे किंचिन्मात्र भी कभी दु:ख न पहुँचाना, बल्कि अभिमानका त्याग करके नि:स्वार्थभावसे सबका सब प्रकारसे परम हित ही करते रहना। कोई अपना अनिष्ट भी करे तो भी उसका हित ही करना।

वाणीके द्वारा प्रेम और आदरपूर्वक भगवान्के नामका निरन्तर जप करना तथा सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय करना एवं जो सत्य और प्रिय हो तथा जिसमें सबका हित हो, ऐसा कपटरहित सरल वचन बोलना।

ब्रह्मचर्यका पालन करना। किसी भी सुन्दरी युवती स्त्रीका अथवा पुरुषका, बालकका अश्लीलभावसे दर्शन, भाषण, स्पर्श, चिन्तन, एकान्तवास आदि कभी न करना।

सदा श्रद्धापूर्वक शास्त्रकी मर्यादाका पालन करना। भारी-से-भारी कष्ट पड़नेपर भी लज्जा, भय, लोभ, काम अथवा किसी भी कारणसे मर्यादाका त्याग नहीं करना।

श्रद्धा-भक्तिपूर्वक महापुरुषोंका संग, सेवा-सत्कार, नमस्कार और उनकी आज्ञाका पालन करना।

शरीरको जल और मृत्तिकासे शुद्ध तथा स्वच्छ रखना एवं घर और वस्त्रोंको भी शुद्ध तथा स्वच्छ रखना इत्यादि।

इस प्रकारके उत्तम आचरणोंको नि:स्वार्थभावसे करनेपर अन्त:करणकी शुद्धि होकर भगवान्की प्राप्ति हो जाती है।

इसके सिवा, जिनके कान भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व, रहस्यकी बातोंको सुनते-सुनते अघाते नहीं, जिनके नेत्र भगवान्के दर्शनोंके लिये ही चातक और चकोरकी भाँति लालायित रहते हैं, जिनकी वाणी प्रेमपूर्वक भगवान्के गुणोंका ही गान करती रहती है, जिनकी नासिका भगवान्के प्रतीक अथवा भगवान्को अर्पण किये हुए पुष्प, चन्दन, माला, तुलसी, नैवेद्य आदिकी गन्धको लेकर मग्न होती रहती है, जिनकी जिह्वा भगवान्को अर्पण किये हुए प्रसादका ही आस्वादन करती है तथा जो नर-नारी भगवान्को अर्पण करके ही और भगवान्की प्रसन्नताके लिये ही भगवान्का प्रसाद समझकर वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं, जो मनुष्य अपने शरीरसे ईश्वर, देवता और ब्राह्मणोंका तथा वर्ण, आश्रम, गुण, पद और अवस्थामें जो अपनेसे बड़े हों, उनका प्रेम और विनयपूर्वक आदर-सत्कार, सेवा, आज्ञापालन और नमस्कार करते हैं, जो एकमात्र भगवान्पर ही निर्भर रहकर हाथोंके द्वारा भगवान्की सेवा-पूजा श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे करके मुग्ध होते हैं, जो भगवान्के लीला-विग्रहों और उनके भक्तोंके दर्शनार्थ ही चरणोंसे (पैदल) तीर्थोंमें जाते और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनमें स्नान करते हैं, जो भगवान्के मन्त्रका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जप करते हैं, जो शास्त्रविधिके अनुसार नित्य दान, श्राद्ध, तर्पण, होम, ब्राह्मण-भोजन श्रद्धा-प्रेमपूर्वक करते हैं, जो माता, पिता, स्वामी, आचार्य आदि गुरुजनोंको भगवान्के समान समझते हैं तथा उनकी सब प्रकारसे श्रद्धा, भक्ति और आदरपूर्वक सेवा, सत्कार और पूजा करते हैं—इस प्रकार जो केवल भगवान्में प्रेम होनेके लिये ही श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भक्तिसंयुक्त उपर्युक्त आचरण करते हैं, उनके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे निवास करते हैं।

जिनके हृदयमें सम्पूर्ण दुर्गुणोंका अभाव होकर सद्गुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठित हो जाते हैं, उनके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे निवास करते हैं और वे शीघ्र ही परमात्माके निकट पहुँच जाते हैं।

जिनमें काम-क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार-अभिमान, मद-मत्सर, दम्भ-दर्प, राग-द्वेष, छल-कपट, अशान्ति-क्षोभ, आलस्य-प्रमाद, पाप, भोगवासना और विक्षेप आदिका अत्यन्त अभाव हो गया है, जो सबके हेतुरहित प्रेमी, सबके हितमें रत, सुख-दुःख, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, जय-पराजय, लाभ-अलाभमें सम हैं, जिनके मनमें भगवान्के सिवा अन्य कोई आश्रय नहीं है, जो निरन्तर भगवान्के ही शरण हैं, जिन्हें भगवान् प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे हैं, जिनका भगवान्में ही अनन्य विशुद्ध प्रेम है, जो माता-पिता, भाई-बन्धु, मित्र, स्वामी, गुरु, धन, विद्या, प्राण—सर्वस्व एक भगवान्को ही मानते हैं, जो दूसरोंके दुःखसे दुःखी और दूसरोंके सुखसे सुखी रहते हैं, जो दूसरोंके अवगुणोंको नहीं देखते, उनके गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, जो गौ, ब्राह्मण और समस्त प्राणियोंके हितमें रत हैं, जो नीतिमें निपुण हैं, जो अपनेमें जो कुछ अच्छाई है, उसे भगवान्की कृपा समझते हैं और अपनेमें जो बुराई है, उसे अपने स्वभावका दोष मानते हैं, भगवान्के भक्तोंमें जिनका प्रेम है, जो धन, घर, परिवार, धर्म, बड़ाई आदि सबमें आसक्तिका त्याग कर भगवान्को ही हृदयमें धारण किये रहते हैं, जिनकी दृष्टिमें स्वर्ग, नरक और मोक्ष समान हैं, जो सर्वत्र भगवान्को ही देखते रहते हैं, जो मन, वाणी और शरीरसे भगवान्के ही सच्चे सेवक हैं और जो कभी कुछ भी नहीं चाहते, प्रत्युत जिनका एकमात्र भगवान्में ही स्वाभाविक निष्काम श्रद्धा-प्रेम है, ऐसे मनुष्योंके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे निवास करते हैं।

यों तो भगवान् सब जगह समान भावसे व्यापक हैं ही, किंतु जिनके हृदयका भाव उपर्युक्त प्रकारसे उत्तमोत्तम सद्गुण और भगवत्प्रेमसे युक्त है, उनके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे विराजमान हैं। गीतामें भी भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(९।२९)

'मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न कोई प्रिय है, परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।'

यद्यपि ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त, गुल्म या काण्डरहित पौधेतक समस्त प्राणियोंमें भगवान् अन्तर्यामीरूपसे समभावसे व्याप्त हैं, इसलिये उनका सबमें समभाव है और समस्त चराचर प्राणी उनमें सदा स्थित हैं, तथापि भगवान्का अपने भक्तोंको अपने हृदयमें विशेषरूपसे धारण करना और उनके हृदयमें प्रत्यक्षरूपसे निवास करना भक्तोंकी अनन्य भक्तिके कारण ही होता है।

जैसे समभावसे सब जगह प्रकाश देनेवाला सूर्य दर्पण आदि स्वच्छ पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होता है, काष्ठादिमें नहीं होता तथापि उसमें विषमता नहीं है, वैसे ही भक्तोंके हृदयमें विशेषरूपसे विराजमान होनेपर भी भगवान्में विषमता नहीं है।

जिनका किसीसे भी द्वेष नहीं, सबपर हेतुरहित दया और प्रेम है, जो क्षमाशील हैं, अहंकार और ममताका जिनमें अत्यन्त अभाव है, जिन्होंने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ वशमें करके भगवान्में ही लगा दिये हैं, जिनसे किसीको भी उद्वेग नहीं होता, जिनका हृदय इच्छा, भय, उद्वेग और आसक्तिके अत्यन्त अभाव होनेसे परम शुद्ध हो गया है, जो पक्षपातरहित और दक्ष हैं, जो संसारसे उदासीन और विरक्त हैं, जिनमें कर्मोंके कर्तापन और फलेच्छाका अत्यन्त अभाव है, हर्ष-शोकका भी जिनमें अत्यन्त अभाव है, जिनका वैरी-मित्रमें, शीत-उष्णमें, अनुकूलता-प्रतिकूलतामें और मिट्टी-स्वर्णमें समान भाव है, इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणी, पदार्थ, भाव, क्रिया और परिस्थितिमें जिनका समान भाव रहता है, जो भगवान्के विधानमें हर समय सन्तुष्ट हैं, घर और देहमें अभिमानसे रहित हैं, जिनकी बुद्धि स्थिर है और जो परमात्माके स्वरूपमें ही नित्य स्थित हैं—ऐसे भक्तिसंयुक्त सद्गुणोंसे सम्पन्न भगवान्के भक्त उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं।

इसलिये हमें चाहिये कि अपने भाव और क्रियाओंको उत्तम-से-उत्तम बनायें। वास्तवमें भाव उत्तम होनेसे क्रिया अपने-आप स्वाभाविक ही उत्तम होने लगती है, उसमें कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता और जो सर्वथा ईश्वरके ही शरण हो जाता है, अपने-आपको ईश्वरके समर्पण कर देता है, उसमें ईश्वरकी भक्तिके प्रभावसे उत्तम गुण स्वतः ही आ जाते हैं। अतः हमलोगोंको उत्तम गुण और उत्तम भावकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारसे ईश्वरके शरण होकर निष्काम प्रेम-भावसे ईश्वरका अनन्य चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार करनेपर ईश्वरकी कृपासे प्रमाद, आलस्य, भोगवासना, दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन और व्यर्थ संकल्पोंका अत्यन्त अभाव एवं परम कल्याणकारक विवेक और वैराग्ययुक्त सद्गुण-सदाचारोंका आविर्भाव होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-शरीर केवल ईश्वर-प्राप्तिके लिये ही है

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती, सिहोरवासी)

शास्त्रोंमें मनुष्य-शरीरकी बड़ी महिमा गायी गयी है। चलिये, अपने भी आज यथाशक्ति गायें—

लब्ध्वा सुदुर्लभतरं नरजन्म जन्तु-
स्तत्रापि पौरुषमतः सदसद्विवेकम्।
सम्प्राप्य चैहिकसुखाभिरतो यदि स्याद्
धिक् तस्य जन्म कुमतेः पुरुषाधमस्य॥

—यह श्लोक बड़ा ही रहस्यपूर्ण है, अतएव इसको क्रमसे समझना चाहिये। कहनेका तात्पर्य तो इतना ही है कि मानव-शरीर अमूल्य है; क्योंकि इसीके द्वारा नित्यानित्य वस्तुका विवेक करके, अनित्यको त्यागकर नित्यकी प्राप्ति की जा सकती है; परंतु जो मनुष्य ऐसा दुर्लभ शरीर पानेपर भी उसे विषय-सेवनमें ही खो देता है, उसके जन्मको धिक्कार है। वह तो 'मनुष्य' नामके योग्य नहीं है, उसका चोलामात्र मनुष्यका है। उसने आचरण पशुके सदृश ही किये हैं।

अब इसपर क्रमसे देखें। जो वस्तु महान् कष्टसे मिल सकती है, वह 'दुर्लभ' कहलाती है। ऐसी दुर्लभ वस्तुओंमें भी जो दुर्लभतामें बढ़ी हुई हो, उसे 'सुदुर्लभ' कहते हैं और सुदुर्लभ वस्तुओंमें भी जो विशेष मूल्यवान् हो, वह 'सुदुर्लभतर' कहलाती है। अतएव 'सुदुर्लभतर' का यह अर्थ हुआ कि मानव-शरीर अनुपम और अमूल्य है और उसके साथ तुलना की जा सके, ऐसी दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है।

'नर-जन्म' का अर्थ मनुष्य-जन्म ही करना चाहिये; क्योंकि ईश्वरकी प्राप्तिमें नर और नारी दोनोंका, शारीरिक विलक्षणता होनेपर भी समान अधिकार है। अतएव 'नर जन्म' का अर्थ पुरुषका जन्म नहीं, अपितु मनुष्य-जन्म ही यथार्थ है।

जन्तु अर्थात् जीव। अब यहाँ जो 'जीव' शब्दका व्यवहार न करके 'जन्तु' शब्द दिया गया है, उसका भाव यह है कि केवल सूक्ष्मशरीरकी दृष्टिसे देखें तो क्षुद्र-से-क्षुद्र जन्तुसे लेकर बड़े-से-बड़े प्राणीके शरीरोंमें किसी प्रकारकी विलक्षणता नहीं है। मानव-शरीर भी आज इसी कोटिमें आ जाता है और इन स्थूलशरीरोंका स्वभाव भी एक-सा ही होता है, उसके व्यवहारको शास्त्रोंने केवल चार ही शब्दोंमें समझा दिया है—'आहार, निद्रा, भय और मैथुन।' बस, इन चार ही शब्दोंमें शरीरमात्रका स्वभाव और व्यवहार समाया है। तात्पर्य यह कि जीव यदि मानव-शरीरमें रहनेवाली सूक्ष्मशरीरकी सामग्रियोंका यथायोग्य उपयोग नहीं करता और स्थूलशरीरके स्वभावानुसार ही व्यवहार चालू रखता है तो वह 'जीव' कहलानेके योग्य नहीं है और इसीलिये यहाँ 'जन्तु' शब्दका व्यवहार किया गया है।

पहले चरणमें 'नर-जन्म' शब्द व्यवहार करके दूसरे चरणमें जो 'पौरुषम्' शब्दका व्यवहार किया गया है, इसे पुनरुक्ति ही कहना चाहिये; पर ऐसी बात नहीं है। उसकी ध्वनि यह है कि केवल मनुष्य-शरीरसे ही चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो सकती है, दूसरे किसी शरीरसे पुरुषार्थचतुष्टय सिद्ध नहीं होता। देव-शरीर भी केवल भोगशरीर ही है और उसकी इतनी ही विशेषता है कि जहाँ इस लोकके भोग पार्थिव हैं, वहाँ उस लोकके भोग यहाँकी अपेक्षा दिव्य हैं।

दूसरे प्राणियोंमें विवेक-बुद्धि नहीं होती; अतः वे अपने कर्मोंके लिये उत्तरदायी नहीं माने जाते, परंतु मनुष्यको तो ईश्वरने विवेक-बुद्धि दी है; इसलिये उसको क्या नित्य है और क्या अनित्य है, क्या विनाशी है और क्या अविनाशी है तथा क्या आत्मा है और क्या अनात्मा है—इसका निश्चय कर लेना चाहिये और फिर अनित्य, विनाशी तथा अनात्म वस्तुओंका त्याग करके नित्य, अविनाशी और आत्मतत्त्वका ग्रहण कर लेना चाहिये, तभी मानवजीवन सफल कहलाता है।

ऐसी योग्यतावाले मनुष्य-शरीरको पाकर भी जो मनुष्य विषय-भोगमें ही जीवन बिताता है, उस नराधमको हजारों धिक्कार हैं। यहाँ ऐसे मनुष्यको 'कुमति' कहा है। इसका भाव यह है कि ईश्वरने बुद्धि दी है नित्यानित्यका विवेक करनेके लिये; पर वैसा न करके जो मनुष्य उसका उपयोग भोग-पदार्थोंके संग्रहमें ही करता है, वह तो प्रभुके अमूल्य दानका दुरुपयोग करता है। अतः ऐसे मनुष्यको 'कुमति' न कहा जाय तो फिर क्या कहा जाय? फिर ऐसे मनुष्यको 'नराधम' कहकर यह सूचित किया गया है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह तो मनुष्य कहलानेके भी योग्य नहीं है; क्योंकि वह पशुके सदृश ही आचरण कर रहा है।

यह श्लोक 'सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह' का है और वेदान्तकी तो सिंहगर्जना होनी ही चाहिये। आपने वेदान्तकी प्रखरता देख ली; अब चलिये, भक्तिकी मृदुता देखें। चलिये, सुनें—भक्तिकी कोमल कलध्वनि। श्रीमद्भागवतमें ऐसा ही एक श्लोक निम्नरूपमें है—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

(११।९।२९)

कितना बढ़िया श्लोक है! प्रत्येक चरणका पहला शब्द ले लें तो पूरे श्लोकका तात्पर्य समझमें आ जायगा—ऐसी रचना है। चलिये देखें। **'लब्ध्वा मानुष्यं तूर्णं यतेत निःश्रेयसाय।'** अर्थात् यह मनुष्य-शरीर मिला है तो बिना विलम्ब 'आत्मकल्याण' कर लेना चाहिये। कोई पूछे कि 'बिना विलम्ब क्यों? बुढ़ापेमें भगवान्को भजेंगे तो काम नहीं चलेगा?' इसके उत्तरमें कहा गया है कि यह शरीर क्षणभंगुर है; इसका कब नाश हो जायगा, कुछ भी पता नहीं लगता। मृत्यु न तो दस-पाँच दिन पहलेसे यह सूचना देती है कि मैं कब आ रही हूँ और न इस बातको पूछनेके लिये ही क्षणभर ठहरती है कि इस भाईके सारे मनोरथ पूरे हो गये हैं या नहीं। वह तो बस, समय आते ही मनुष्यको झटसे, एक क्षणके लिये भी पहलेसे खबर दिये बिना, उठा ले जाती है। इसीलिये कहा गया है कि 'जरा भी प्रमाद न करके प्रयत्नमें लग जाओ।' ऐसा प्रयत्न करनेवाला कौन होता है? कहते हैं कि—**'धीरः।'** धीर या चतुर पुरुष वही है, जो अपना हित समझता हो। मनुष्य-शरीर मिलनेपर भी जो अपना हित नहीं समझता, उसे शास्त्रमें 'आत्महत्यारा' कहा गया है—**'स भवेदात्मघातकः।'** इसी भावको व्यक्त करते हुए श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(रा०च०मा० ७।४४)

अब यह देखना रहा कि मनुष्यका 'हित' किसमें है। इसी प्रसंगको समझाते हुए उद्धवजीसे भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्॥

अर्थात् चतुर मनुष्यकी चतुराई और बुद्धिमान्की बुद्धिमानी इसीमें है कि इस संसारमें ऐसे क्षणभंगुर और विनाशशील देहके द्वारा मुझ अमृतस्वरूप—अविनाशीको प्राप्त कर ले।

अब मनुष्य-शरीरकी महत्ता बतलाते हुए कहते हैं—**'इदं बहुसम्भवान्ते (लब्धं अतः) सुदुर्लभम्।'** यह मनुष्य शरीर चौरासी लाखके चक्करमें फिरते-फिरते प्रभुदयासे प्राप्त होता है। इसीसे इसको सुदुर्लभ अर्थात् अतिशय दुर्लभ या देवदुर्लभ कहा है; क्योंकि देवता भी मनुष्य-शरीरकी प्राप्तिके लिये अकुलाया करते हैं। कोई पूछे कि 'यह किसलिये?' तो कहते हैं—**'अनित्यमपि इह अर्थदम्।'** अर्थात् यह मनुष्य-शरीर यद्यपि स्वभावसे तो अनित्य है तथापि इस मर्त्यलोकमें 'अर्थ' प्रदान करनेवाला है। यहाँ 'अर्थ' क्या है, इस बातको समझना है। अर्थ चार हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मनुष्यको अपने मनुष्य-जन्ममें इन चारों ही अर्थोंको प्राप्त करना चाहिये। इसीलिये इनको 'पुरुषार्थ-चतुष्टय' कहते हैं। अब इन चारों पुरुषार्थोंमें बीचवाले दो अर्थात् 'अर्थ' और 'काम' तो प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुआ करते हैं। खास प्रयत्न तो करना है—धर्म और मोक्षकी प्राप्तिके लिये। इनमें भी 'धर्माचरणके द्वारा ही मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है' अतएव धर्म तो मोक्षकी प्राप्तिका साधन है। सुतरां मनुष्य-जन्ममें परम पुरुषार्थ तो 'मोक्ष' की प्राप्ति ही सिद्ध होता है। इसीलिये प्रस्तुत श्लोकमें भी निःश्रेयस—मोक्षके लिये ही यत्न करनेको कहा गया है।

अब दूसरे शरीरोंसे मानव-शरीरकी विलक्षणता बतलाते हुए कहते हैं—**'विषयः खलु सर्वतः स्यात्।'** यानी विषय-भोग—इन्द्रिय और उनके विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाला सुख तो सभी योनियोंमें समानरूपसे प्राप्त है। षट्रस भोजनसे मनुष्यको जो तृप्ति मिलती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अमृत-भोजनमें इन्द्रको जिस सुखका अनुभव होता है, उसी तृप्ति और उसी सन्तोषका एक सूअरको विष्ठा खाते समय अनुभव होता है। राजाको जो सुख मखमली गद्दीपर सोनेमें मिलता है, वही सुख गधेको राखकी ढेरीपर लोटनेमें मिलता है। इन्द्रियजनित सुखका अनुभव सभी योनियोंमें एक-सा ही है। तारतम्य तो एक-दूसरेकी दृष्टिमें प्रतीत होता है, अर्थात् इन्द्रकी दृष्टिमें मनुष्यका भोग तुच्छ प्रतीत होता है। इसी प्रकार मनुष्यको सूअर और गधेका भोग तुच्छ लगता है। स्वदृष्टिसे तो सभी प्राणी एक-सरीखे सुखका ही अनुभव करते हैं। अतः विषय-सुखकी प्राप्तिको मनुष्य-जीवनका ध्येय नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वह तो प्रत्येक योनिमें समान रूपसे प्राप्त है। इसीलिये मनुष्य-जीवनकी सार्थकता मृत्युके पहुँचनेसे पहले-पहले ही मोक्षकी प्राप्ति कर लेनेमें ही है, विषयोंकी प्राप्तिमें नहीं। एक दूसरे प्रसंगपर भगवान्ने मनुष्य-शरीरकी महिमा गाते हुए कहा है—

यो लब्ध्वा मानुषं देहं मोक्षद्वारमपावृतम्।
गृहेषु खगवत् सक्तः तमारूढच्युतं विदुः॥

अर्थात् जो व्यक्ति मनुष्य-शरीर मिलनेपर भी पक्षीकी भाँति घरमें ही आसक्ति रखकर पड़ा रहता है, उसे ऋषिगण स्वर्गसे नरकमें पड़ा हुआ कहते हैं। मनुष्य-शरीर कैसा है?—'**मोक्षद्वारमपावृतम्।**' यह खुले दरवाजेवाले मोक्षका मन्दिर ही है। मनुष्य-शरीर मिला कि मोक्षमन्दिरका द्वार अपने-आप खुल गया। द्वार खोलनेकी भी तकलीफ नहीं पड़ती। बस, प्रवेश करनेमात्रकी देर है, परंतु जबतक घरमें—संसारके प्राणिपदार्थोंमें—धन-वैभवमें आसक्ति है, तबतक दरवाजा खुला रहनेपर भी मोक्षमन्दिरमें प्रवेश नहीं किया जा सकता। यह आसक्ति मनुष्यको उस ओर नहीं जाने देती। वह तो उसे नरकके द्वारकी ओर ही ढकेलती है। मनुष्य-शरीर मिला है और उसके कारण मोक्षमन्दिरका द्वार भी खुला है; तथापि मनुष्य जबतक संसारमेंसे आसक्ति निकालकर मोक्षमन्दिरमें जानेका प्रयत्न नहीं करता, तबतक मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती और अमूल्य जीवन व्यर्थ चला जाता है। इस सम्बन्धमें एक कविकी उक्ति है—

बाजी चौपड़ की लगी पौ पर अटकी आय।
जो अब के पौ ना पड़े तो फिर चौरासी जाय॥

कवि कहता है कि मनुष्य-शरीर मिलनेका अर्थ यह समझना चाहिये कि चौपड़का खेल जीता गया। तीन सार तो पक गयी, अब आखिरी सार पौके पासतक पहुँच गयी है। अब बाजी जीतनेमें बस, एक ही पौ बाकी रही है; यह पौ पड़ गयी तो बाजी जीत ली गयी। पर यदि यह दाँव खाली गया तो विपक्षी सारको अवश्य मार देगा और फिर उसे चौरासी घरोंमें भटकना पड़ेगा। इस अमूल्य अवसरको जो व्यर्थ जाने दिया तो उसे मूर्ख ही कहना चाहिये। संसारका जीवन संसारकी चौपड़ है और उसमें एक ही पौ शेष रहना है—मनुष्य-जन्मकी प्राप्ति। मनुष्य-जीवनमेंसे संसारकी आसक्ति निकालकर मोक्षकी साधनामें लगना—यह पौ पड़ना है तथा मोक्षकी साधना न करके विषयसुखमें ही रचे-पचे रहना पौ न पड़ना है और पुनः चौरासीके चक्करमें पड़ना है।

भगवान्ने मनुष्य-जन्म दिया है—भजन करनेके लिये और जीव संसारमें फँसकर जीती बाजी हार गया; क्योंकि उसने न तो अपने हितको समझा और न उसको साधा ही!

'नाथ मेरे नयन नीर बहे'

(श्रीतेजपालजी उपाध्याय)

नाथ मेरे नयन नीर बहे।
उर में बसी जो बाल छवि है, दरस को तरस रहे।
सुंदर नयन, होठन बिच दँतुली, मुख मुस्कान रहे।
पीत झँगुली, घुँघराले केशन, गले मनिमाल रहे।
मधुर ध्वनि पैंजनी करत हो, घुटुरुन चलति रहे।
तेजपाल एहि छवि देखन को, अँसुअन धार बहे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीनता या स्वराज्य

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

स्वाधीनता आत्माका स्वभाव है, इसलिये सभी जीव परतन्त्रतासे घबराते हैं और स्वतन्त्रता चाहते हैं। परतन्त्रताको दुःख और स्वतन्त्रताको ही सुख बतलाया गया है—

'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।'

परंतु विचार इस बातका करना है कि वास्तविक पराधीनताका स्वरूप क्या है? शास्त्रके नियमोंकी, धर्मकी, राजाकी, माता-पिताकी, गुरुकी, स्वामीकी और सत्यादि सद्गुणोंकी परतन्त्रता यानी इनके वशमें रहकर इनके आज्ञानुसार जीवनयापन करना पराधीनता है या इनसे सर्वथा स्वतन्त्र यानी इनके वशमें न रहकर इनके आज्ञानुसार जीवनयापन न करना पराधीनता है या इनसे सर्वथा स्वतन्त्र होकर मन-इन्द्रियोंकी अधीनतामें यथेच्छ आचरण करना पराधीनता है? असलमें 'पर' क्या है, इसपर विचार करना है। अवश्य ही अत्याचारपरायण स्वेच्छाचारी राजा 'पर' है, संतान और शिष्यका अहित चाहनेवाले माता-पिता और गुरु भी 'पर' हैं, स्वार्थी स्वामी भी 'पर' है और अन्यायाचरणमें प्रवृत्त करानेवाला धर्म-नामधारी मत-विशेष भी 'पर' है। इनका विरोध करना और इनकी वशतासे मुक्त होना आवश्यक भी है और ऐसा होता भी आया है। 'वेन' और 'कंस'-सरीखे राजाओंका विरोध और उनका विनाश धर्मसंगत माना गया। हिरण्यकशिपु-से पिता और कैकेयी-सी माता तथा शुक्राचार्य-से गुरुकी बात भी नहीं मानी गयी। अधर्मपरायण भगवद्विमुख स्वामियोंका भी त्याग किया गया और अधर्ममूलक मतोंका भी बहिष्कार करना पड़ा तथा ऐसा करना उचित भी था। इसीसे तुलसीदासजीने गाया—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥

(विनय-पत्रिका, पद १७४)

यह सब सत्य होनेपर भी असलमें ये ही 'पर' नहीं हैं। 'पर' तो हैं हमारे अन्तःकरणकी मलिन वासनाएँ, भोगकामनाएँ और विविध प्रकारके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, वैर, हिंसा, दम्भ, द्रोह, अभिमान, स्वार्थ, अधिकारलोलुपता, आसक्ति और ममता आदि मानसिक दोष। इन दोषोंकी उत्पत्ति अज्ञानसे है और अज्ञानका कारण है 'प्रकृति-परवशता।'

श्रीभगवान्ने गीतामें कहा है—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

(१३।२१)

'प्रकृतिमें स्थित ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है।'

यह ऐसी परवशता है, जिसके कारण बिना इच्छा भी भाँति-भाँतिकी योनियोंमें भटकना और प्रारब्धानुसार सुख-दुःखोंका भोग बाध्य होकर करना पड़ता है। मनुष्य जबतक इस प्रकृतिके दासत्वसे नहीं छूट जाता, तबतक उसकी आत्माको स्वराज्य नहीं मिल सकता, वह सच्ची स्वाधीनता नहीं प्राप्त कर सकता। हमारा मन, शरीर और इन्द्रियाँ ये सभी, यदि हमारे वशमें नहीं हैं तो हमारे 'स्व' के प्रतिद्वन्द्वी हैं—विरोधी हैं। आजकल जो यह कहा जाता है कि 'हम किसीके भी अधीन नहीं रहेंगे, किसी भी नियमके बन्धनमें नहीं रहेंगे, केवल अपनी अबाध असंयत प्रवृत्तियोंके अधीन रहेंगे, अपने मन-इन्द्रियोंकी इच्छाका अनुसरण करेंगे।' यही पराधीनता है और ऐसा माननेवाले ही वस्तुतः पूरे पराधीन हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाजबद्ध होकर रहनेमें सभीको कुछ-न-कुछ परतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ती है। परंतु मनुष्यके यथेच्छाचारी हो जानेसे समाजकी यह श्रृंखला टूट जाती है और फलतः दुःख-ही-दुःख आ जाते हैं। स्वाधीनताके इस विकृत स्वरूप यथेच्छाचारका ही यह फल है कि आज कहीं भी व्यवस्था या अनुशासनका सम्मान नहीं है। पिता-पुत्रमें, मा-बेटीमें, गुरु-शिष्यमें, राजा-प्रजामें, मालिक-नौकरमें, पति-पत्नीमें, सास-पतोहूमें और भाई-भाईमें अनवरत मनोमालिन्य और असद्भाव पैदा हो गया है। इसीसे आज राष्ट्रगत, समाजगत, परिवारगत और व्यक्तिगत—सब प्रकारकी सुख-शान्ति नष्ट होती जा रही है।

भगवान्ने गीतामें कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(१६।२३)

'जो मनुष्य शास्त्रकी विधिको छोड़कर मनमाना आचरण करता है, वह न तो सिद्धिको प्राप्त होता है, न सुखको ही और न (मरनेके बाद) परम गतिको ही।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रके किसी भी नियन्त्रणको न माननेवाले मनुष्यकी मन-इन्द्रियाँ सर्वथा अनियन्त्रित और निरंकुश हो जाती हैं। उसका चित्त असंयत कामना-वासनाकी क्रीडास्थली बन जाता है और उनके वशमें होकर वह नाना प्रकारसे लोभ-मोह, वैर-विरोध, दम्भ-दर्प और द्वेष-हिंसाकी क्रियाएँ करता है। इससे उसको जीवनमें कभी भी निर्बाध और सत्य सिद्धि नहीं मिलती। वह प्राणपणसे चेष्टा करके जिस सिद्धिको प्राप्त करता है, वही असिद्धिके रूपमें परिणत हो जाती है; क्योंकि उसकी प्रत्येक क्रिया ही होती है कामना-लोभ और क्रोध-वैरको लेकर। ऐसे 'काम-क्रोधपरायण' पुरुषके बाहरी शत्रुओंका कभी अभाव नहीं होता। वह किसी भी स्थितिको क्यों न प्राप्त कर ले, वहीं उसके प्रतिद्वन्द्वी, उसके वैरी, उसके मार्गमें विघ्न पैदा करनेवाले तैयार रहते हैं और साथ ही उसकी दुर्दमनीय लोभ-वृत्ति उसे किसी भी स्थितिमें सन्तुष्ट नहीं होने देती। फलतः वह निरन्तर मानसिक शत्रुओंके परवश होकर ऐसी क्रियाएँ करता रहता है, जिससे बाहरके शत्रु सदा ही बढ़ते रहते हैं। इससे उसको जीवनमें कभी सुख नहीं होता और जीवनभर उद्दाम कामनाके वशमें होकर न्यायान्याय—धर्माधर्म-विचारसे रहित यथेच्छाचरण करनेवालेको परमगति तो मिल ही कैसे सकती है? इसीसे भगवान् कहते हैं—

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। १८—२०)

'अहंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोध आदिका आश्रय लिये हुए, दूसरोंके गुणोंमें दोषारोपण करनेवाले और अपने तथा दूसरोंके शरीरोंमें स्थित मुझ भगवान्से द्वेष करनेवाले, ऐसे उन द्वेषयुक्त पापकर्मा, निर्दयी नराधमोंको मैं बार-बार आसुरी योनियोंमें गिराता हूँ। अर्जुन! वे मूढ़ मनुष्य जन्म-जन्ममें बार-बार आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं। मुझको न पाकर उस (आसुरी योनि)-से भी और अति नीच गति (घोर नरकादि)-को प्राप्त होते हैं।'

आज शान्तिप्रिय सुकोमलमति भारतीय तरुणवर्गके मनमें स्वाधीनता-लाभका जो उद्दाम भाव उदित हुआ है, उसका भारतवासियोंको गर्व होना चाहिये। देशके युवकोंमें ऐसी लहरका बह जाना बड़े-से-बड़े त्याग-तपकी और उसके फलस्वरूप महान् सुफलकी पूर्व सूचना मानी जा सकती है, परंतु भयकी बात इतनी ही है कि दूसरोंकी देखा-देखी स्वाधीनताका अर्थ यदि अनुशासनशून्यता, उच्छृंखलता, स्वार्थपूर्ण अधिकारप्रियता, मनमाना आचरण या मन-इन्द्रियोंकी दासता हो गया तो उसका फल कभी शुभ नहीं होगा।

सच्ची स्वाधीनता प्राप्त करनेका और उनके फलस्वरूप सब दुःखोंके नाश करनेवाले प्रसादको प्राप्त करनेका उपाय भगवान्ने गीतामें बतलाया है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

(२। ६४-६५)

'अन्तःकरणको जिसने अपने वशमें कर लिया है, ऐसा पुरुष राग-द्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा जब विषयोंका सेवन करता है, तब वह प्रसादको प्राप्त होता है और उस प्रसादके प्राप्त होनेपर उसके समस्त दुःखोंका नाश हो जाता है।'

यही सच्ची स्वाधीनता है। सच्ची बात तो यह है कि हमलोग किसी दूसरेके दास नहीं हैं। शरीर परतन्त्र रहनेपर भी यदि हमारा मन और हमारी इन्द्रियाँ तथा मानसिक वासनाएँ हमारे अधीन हैं तो हम स्वाधीन ही हैं। ऐसी स्थितिमें शारीरिक पराधीनताका नाश करना बहुत सहज है। परंतु मन-इन्द्रियोंकी और कामना-वासनाओंकी गुलामी तो ऐसी चीज है कि इनके रहते शारीरिक और वैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेनेपर भी मनुष्य कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता और कभी सच्चे स्वराज्य-सुखका उपभोग नहीं कर सकता। अतएव आत्माकी अपार शक्ति और नित्य विशुद्धिको समझकर बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके मन-इन्द्रियोंमें रहनेवाले इस दुर्जय कामरूप शत्रुको मारना चाहिये।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

(गीता ३। ४३)

ऐसा करनेसे ही असली स्वाधीनता प्राप्त होगी। भारतवर्ष इस समय वैधानिक या शारीरिक स्वतन्त्रता—स्वराज्यकी प्राप्तिकी ओर बढ़ रहा है। यह बड़े आनन्दकी बात है, परंतु यहाँ बहुत बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। हमारी यह स्वाधीनता केवल शरीरतक ही सीमित न रहे। भगवान्को आश्रय बनाकर हम यदि इस स्वाधीनताको—इस स्वराज्यको आत्माका स्वराज्य बना सकें, मन-इन्द्रियोंकी उद्दाम असंयम प्रवृत्तियोंपर विजय प्राप्त करके उनके दासत्वसे छूट सकें, तभी हमारा वह स्वराज्य परम आदर्श होगा और लोक-परलोक दोनोंमें कल्याणकारक होगा। भारतीय स्वराज्य या रामराज्यका यही स्वरूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशक्तिका आवाहन

(श्रीमहेन्द्रजी मधुकर, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)

निरन्तर क्रियाशीलता ही शक्ति है। संसारके प्रत्येक पदार्थमें किसी-न-किसी रूपमें शक्तिका स्रोत छिपा हुआ है। वह शक्ति अपने समान अथवा विषम तत्त्वोंके मेलसे जाग्रत् हो उठती है। आज हम विज्ञानके युगमें जी रहे हैं। आज मनुष्य जड़-पदार्थोंसे शक्ति-संचय करना सीख गया है। प्रकृतिके बिखरे हुए पदार्थोंके आन्तरिक तत्त्वोंसे मनुष्य परिचित हो गया है, तो फिर मनुष्यमें छिपी हुई शक्तिका भी सन्धान सम्भव है। मनुष्य और प्रकृतिमें इतना ही अन्तर है कि प्राकृतिक शक्तियाँ बिखरी हुई होती हैं और मनुष्यमें वे सन्तुलित रूपमें एकत्र हो जाती हैं। अतः तत्त्वोंका एकत्र हो जाना ही शक्ति है।

विज्ञानकी भाँति धर्मने भी क्रियापर बल दिया है। उपासना, साधना, योग, पूजा आदिके अनुशासनोंद्वारा भावको नियमित बनाकर उसे एक विशेष दिशामें प्रवाहित किया गया है। नदीका मार्ग जब निश्चित होता है तो मैदानों और गाँवोंमें खेत सींचे जाते हैं। नदीकी धाराका अनियन्त्रित होना बाढ़ और विनाशको ले आता है। इसलिये धर्मने नियमित नित्य क्रियाओंके रूपमें हमारे प्रत्येक कार्यको व्यवस्थित किया है।

जैसे मानव-शरीरमें शक्तिके निश्चित केन्द्र होते हैं, समर्थ इन्द्रियाँ होती हैं, मर्मस्थल होते हैं, वैसे ही धर्म और शास्त्रने शक्ति-केन्द्रोंका निरूपण किया है। पर्वत, नदी, भूमि, लता, तृण, वृक्ष, जीव आदिकी भाँति देवरूपमें महाशक्ति दुर्गा, शिव, विष्णु, सूर्य, गणपति, हनुमान् आदि अनेक रूपोंमें इन शक्ति-केन्द्रोंको देखा जा सकता है। महाशक्ति सम्पूर्ण सृष्टिमें व्याप्त चिति शक्ति है। 'कालिकापुराण' में कहा गया है कि वह शक्तिका क्रियान्वित रूप है अर्थात् पत्थरके टुकड़ेमें शक्ति होती है, पर जबतक उसे हाथोंमें उठाकर तीव्र वेगसे फेंका न जाय तबतक वह आघात नहीं कर पाता। शक्तिकी वह चालन-क्रिया ही शक्तिमान्‌के साथ उसका सम्बन्ध सिद्ध करती है।

महादुर्गाका एक रूप महाकालीके रूपमें व्यक्त हुआ है। महाशक्तिका काल-तत्त्वसे गहरा सम्बन्ध है। ये ही महाकाल शिव हैं। महाकालीका श्याम रंग भारतीय चिन्तनकी सूचना देता है। काले रंगमें सभी समा जाते हैं, वैसे ही जैसे कालमें सभी मिट जाते हैं। रूप और अरूपका भेद मिटते ही रंगोंकी विविधता समाप्त हो जाती है। यही काल-तत्त्व जब पृथ्वीसे जुड़ता है तो कला, आकाशसे जुड़कर काल और पूरे ब्रह्माण्डसे जुड़कर कालीका रूप ले लेता है। यही भाव राम, कृष्ण, विष्णु या शिवके नीले रंगमें फैला हुआ दिखायी देता है। वास्तवमें कृष्णवर्ण आदि वर्ण है। जब सृष्टिके पूर्व प्रलय-काल था तो चारों तरफ अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था। प्रलय-कालमें तीन तत्त्व प्रबल होते हैं—अन्धकार, अशना (क्षुधा) और जल। यह श्याम रंग सबको समान बना देता है। काली या महाशक्ति अन्धकारकी तरह व्याप्त है। वहाँ देश और दिशाका ज्ञान नहीं रहता। कालमें एक विराटता और व्याप्ति होती है। हम जिस कालमें जीवन जीते हैं, वह एक कालखण्ड होता है और गति-चक्रमें उसमें होनेवाली क्रियाएँ क्रमशः पीछे छूटती या विलीन होती चली जाती हैं। परमात्माने मनुष्यको एक बड़ी विशेषता प्रदान की है, वह है—विस्मरण, धीरे-धीरे भूलते जाना। अगर यह विस्मरण नहीं होता तो मनुष्यका जीवन सदैव अस्थिर और तरंगित होता रहता। उसके मनको कभी विश्रान्ति नहीं मिलती। विस्मरणका विपरीतार्थक शब्द है—स्मरण। हम दुनियाकी बातोंको भूल जायँ, इसीमें हमारा कल्याण है और हमें केवल अपने प्रभुका स्मरण रहे। स्मरण भी इसलिये कि इससे मन एक बिन्दुपर केन्द्रित रहता है। तभी तो नवधा भक्तिमें स्मरणको भक्तिका एक स्वरूप माना गया है।

काल व्यापक होनेके साथ-साथ बहुरूपात्मक है। हमारा संसार लम्बाई-चौड़ाई और मोटाईके रूपमें पदार्थ या ठोसका वाचक तीन आयामोंमें बँटा हुआ है, पर काल चौथा आयाम है। मनुष्य पदार्थसे ऊपर उठकर उसे भेदकर चौथे आयाम—कालमें अमर होना चाहता है। हम जब ब्रह्माण्डके क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं तो कालकी स्थिति और गति सीमाहीन दिखायी पड़ती है, तभी तो कहीं प्रातःकाल है तो कहीं दिन-दोपहर, कहीं सन्ध्या तो कहीं रात। हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हाथकी जिस घड़ीपर विश्वास करते हैं और समयके पालनकी सीख देते हैं, वह समय हमारी व्यावहारिक सुविधाके अनुसार हमारे द्वारा ही किया गया एक कृत्रिम विभाजन है। यह काल जैसे इतने रूपोंमें व्यक्त होता है, वैसे ही सत्, चित् और आनन्दकी सम्मिलित शक्ति अनेक रूपोंमें प्रकट होती है। उसे हम कभी पुरुष, कभी स्त्री, कभी बालक, कभी वामन, कभी विराट्, कभी बिलकुल विलक्षण तो कभी बिलकुल अपने समान देखते हैं। हम जैसा चाहते हैं, परमात्मा उसी रूपमें हमें प्राप्त होता है, जैसे—जल जिस पात्रमें जाता है, उसी पात्रका रूप ले लेता है, घटमें रखे जानेपर वह घटाकार होता है, पर यह उसका वास्तविक परिचय नहीं होता। परमात्माको भी मनुष्यने यादृच्छिक रूपमें देखा है अर्थात् अपनी इच्छाके अनुसार उसे सजाया, सँवारा और निखारा है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि परमात्माने सृष्टिकी रचना की है, उसने सोचा, उसने कामना की कि 'मैं एक से बहुत हो जाऊँ—**'सोऽकामयत, एकोऽहं बहु स्याम्।'** सभी धर्मोंने उस ईश्वरकी महाशक्तिके जागरणका दिव्य अनुभव किया है।

पृथ्वी इस कालका कला-तत्त्व है। यों कहें कि यह प्रकृति या यह विश्व कला-सामग्री है। यहाँ भाँति-भाँतिके रंग और बदलती हुई ऋतुएँ हैं, जो परिवर्तनके द्वारा मानव-जीवनकी नवीनताको सूचित करती रहती हैं। वे बताती हैं कि जन्मसे मृत्युतककी यह यात्रा रंगमयी है। उसमें निरन्तर परिवर्तन ही उसे सुन्दर बनाता है। इसका अर्थ हुआ कि कला जड़ताको तोड़नेका दूसरा नाम है। वह एक गतिमय अनुभव है। काव्य, चित्र, वास्तु, मूर्ति, छन्द, नृत्य आदि सभी कलाएँ हैं। सभी कलाएँ प्रकृतिके बदलते हुए ताल-छन्दका परिचय देती हैं। कलाके माध्यमसे हम देखे हुएको फिर देखना चाहते हैं। यह दर्शन ही भक्तिके क्षेत्रमें मूल्यवान् हो जाता है। हम बार-बार मन्दिर जाते हैं, पूजा-गृहमें परमात्माकी उपासना करते हैं। उसे अनिमेष निहारते हैं। इस प्रकार दर्शन, मज्जन और पान—ये सभी तृप्त होनेकी विधियाँ हैं। हमें रस तभी मिलता है, जब उसका बार-बार अनुभव हो, तभी तो विचारकोंने भक्तिको भी रस माना है।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि एक ही वस्तु एकके लिये भयावह और दूसरेके लिये सुखद होती है। श्रीमद्भागवतके एक प्रसंगके अनुसार कृष्ण कंसके लिये भयावह, पर ग्वाल-बालोंके लिये परम सखा हैं। इसी प्रकार महाकालीका स्वरूप भी भय और आनन्दका अद्भुत मिश्रण है। समस्त सृष्टिको अपने पद-चापसे थर्राती हुई, अपने रौद्ररूप और वेगसे समस्त भूगोल, खगोलको प्रकम्पित करती हुई महाकालीकी लील जानेवाली महामुद्रा भक्तोंके लिये अभयदायिनी प्रतीत होती है। उनके खड़खड़ाते हुए मुण्डमाल और करवालसे चूती हुई दैत्य-रक्तकी धारा प्राणियोंको निर्भय और नि:संशय कर देती है। उनमें क्रोध और करुणाका, अग्नि और जलका, मृत्यु और जीवनका सनातन खेल चल रहा है।

भगवती भक्तसे न धन चाहती हैं न दक्षिणा, न पूजा चाहती हैं न उपचार, न साधन और न क्रिया। माँ चाहती हैं केवल रुदन, गहरी आर्त्ततासे छना हुआ रोदन-मधु ही उनका नैवेद्य है। नामोच्चार और प्रार्थनाओंसे पिघली हुई तरल अश्रु-बूँद ही उनका अर्घ्य है। भक्तकी एक ही पुकारपर स्तनभारसे नमित करुणामयी माँ भक्तको अपनी गोदमें उठा लेती हैं—**'सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता।'**

महाशक्तिकी परिकल्पनाके मूलमें देव या शुभ तत्त्वोंकी एकाकारता मिलती है। अत: शक्तियोंका समग्र रूप ही महाशक्ति है। मनुष्यमें कई प्रकारकी शक्तियाँ होती हैं। जैसे—चिति-शक्ति, देह-शक्ति और प्राण-शक्ति। चिति-शक्ति मानसिक शक्ति है। मन निरंकुश होता है, उसमें व्यवस्था नहीं होती। उसकी क्रियाएँ कुछ दिखायी भी देती हैं, पर जो वस्तु दिखायी नहीं देती, उसकी अधीनता हम जल्दी स्वीकार कर लेते हैं। योग, प्राणायाम, संयम आदिसे मानसिक शक्तिको धीरे-धीरे विकसित किया जाता है। जैसे—शरीरका व्यायाम शरीरको सुगठित और आकर्षक बना देता है, वैसे ही मनका व्यायाम मन और आत्माकी गतिको नियमित रखता है। शरीरकी शक्तिको वह व्यर्थ प्रवाहित नहीं होने देता।

आज हम तनाव एवं कुण्ठाके वातावरणमें जी रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, आज हमारे मनमें अनेक चिन्ताएँ व्याप्त हैं, दुःख और विषाद है, पर विचार करनेकी बात है कि चिन्ता तो चित्तका सहज धर्म है। साधनाके द्वारा हम यह आत्म-निरीक्षण करते हैं कि हम क्या सोच रहे हैं? हमारे चिन्तनकी दिशा क्या है? स्वामी रामकृष्ण परमहंससे किसीने पूछा कि आप दिन-रात माँ-माँ कहते रहते हैं,क्या आप पागल हैं? रामकृष्णने उत्तर दिया कि संसारमें तो सभी पागल ही हैं। एक-न-एक तृष्णा सबके मनमें है। कोई धनके पीछे पागल है तो कोई स्त्रीके पीछे, तो मैं यदि माँके लिये पागल हूँ तो आश्चर्य ही क्या है? इस मानसिक शक्तिका उदाहरण मानस जप या अजपा जप या मानसपूजाके विधानमें देखनेको मिलता है। भक्त जितना कातर होगा, वह भक्तिके उतने तरीके आविष्कृत कर लेगा। इसलिये मानसपूजामें भक्तके द्वारा जो कमल पुष्प अर्पित करना है, उसे देवलोकसे या मानसरोवरसे वह तोड़ लायेगा। अपने प्रभुपर अर्पित करनेके लिये नन्दनवनमें जाकर पारिजातके पुष्प चुन लायेगा। मलयगिरिसे चन्दन माँग लेगा, गंगा, कावेरी, नर्मदा तथा विराट् समुद्रका जल अपनी अंजलिमें भरकर लायेगा। वह समस्त सृष्टिका सार-रस परमात्माको अर्पित कर देगा। इसलिये मानसिक पूजामें भक्त साधनहीन या दरिद्र नहीं होता, वह ऐश्वर्यशाली परमात्माकी तरह दिव्य और श्रीसम्पन्न होता है। अतः भक्ति परमात्माका सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य-भाव है।

वल्लभाचार्यजीने सेवाकी तीन विधियाँ बतायी हैं—वित्तज-सेवा, तनुजा-सेवा और मनसा-सेवा। पहली कोटिमें धनसे पूजा और सेवा होती है, दूसरेमें शरीरके व्रत और उपवाससे, लेकिन मानससेवामें जनशून्य नीरव स्थानपर भी भक्त मन्दिर बना लेता है और जैसे चाहता है, वैसे उन्हें रिझा लेता है। यही भाव मिट्टीकी मूर्तिको भी जाग्रत् बना देता है। हमारी सृष्टि हमेशा नयी हो रही है। नदीके प्रवाहकी तरह सबकुछ बदल रहा है। इसलिये लोकपूजामें मिट्टीकी प्रतिमाएँ बनती हैं। हम पूरे मनोयोगसे पूजा, प्रार्थना करते हैं और पुनः प्रतिमाको विसर्जित कर देते हैं। मन्त्रोंसे भगवान्का आवाहन करते हैं और उन्हें विदा भी कर देते हैं। मनुष्य जैसा है, वैसा ही उसने परमात्माको भी देखना चाहा है। हमारे परिवारकी तरह परमात्माके परिवारकी भी परिकल्पना की गयी है।

चितिशक्तिकी तरह देह और प्राणका भी स्वरूप-विकास आवश्यक है। इन्द्रियाँ शक्तिशाली होंगी, तभी तो हमारी आज्ञा भी मानेंगी। दुर्बल सेवक तो कभी भी भटक सकता है। स्वस्थ शरीर और स्वस्थ इन्द्रियोंमें ही स्वस्थ आत्मा खोजी जा सकती है। हमारी सारी इन्द्रियोंके द्वार बहिर्मुखी हैं। अर्थात् हमारे भटकनेके लिये दस दरवाजे खुले पड़े हैं, ऐसी स्थितिमें साधकको भी इन्द्रियोंके साथ अन्तर्मुखी होना पड़ता है। जो साधक मन, प्राण और देहको एकत्र करता है, वही महाशक्तिके रहस्यको पा सकता है।

प्राणका सम्बन्ध वायुसे है। वायुसे आन्तरिक ऊर्जाकी सतत वृद्धि होती रहती है तथा सम्पूर्ण शरीरका भी प्रक्षालन होता रहता है, अतः हमारा पर्यावरण जितना शुद्ध होगा, हमारी प्राणवायु उतनी ही स्वच्छ होगी। वायुके मेलसे ही प्राणशक्तिका इतना महत्त्व है। यह शरीरबलसे भी चौगुनी-सौगुनी अधिक बलशाली हो सकती है। एक मोटर-कारका उदाहरण लें—कारके चारों पहियोंमें हवा भरनेके बाद कई लोग उसमें सफर कर लेते हैं। यही नहीं अगर कुर्सीपर बैठे दो सौ किलो वजनवाले किसी पहलवान् व्यक्तिको उठाना पड़े तो कई लोगोंकी आवश्यकता पड़ेगी, पर यदि वह पहलवान् स्वयं उठना चाहे तो अपनी प्राणशक्तिके बूतेपर वह झट उठ खड़ा होता है। उसे खड़े होनेमें जरा भी श्रम नहीं लगता। यह प्राणशक्तिका ही चमत्कार है, जो शरीरबलसे ज्यादा सक्षम सिद्ध होती है।

आज समाज और राष्ट्रमें अधिक हलचल मची हुई है। मनुष्यको जैसे-जैसे विज्ञान या शक्तिका ज्ञान होगा, वैसे-वैसे आपाधापी भी मचेगी, अन्तर्विरोध बढ़ेगा। सबमें बढ़नेकी प्रतियोगिता होगी। इस स्थितिमें कलह और युद्ध भी सम्भावित है, किंतु इतिहास और पुराणकी दीर्घ परम्पराको देखनेपर निराशा नहीं होगी; क्योंकि युद्ध और विनाशके कीचड़ और दलदलमें धँसकर, गिरकर भी मनुष्यता मरी नहीं है। महादुर्गा या महाशक्तिकी ओर हम आशाभरी दृष्टि और प्रार्थनाके भावसे देखते हैं। महाशक्तिका आवाहन हम इसीलिये करते हैं कि मनुष्यको उसके वास्तविक स्वरूप और सत्यका ज्ञान हो, उसके विचारोंमें एकता हो और वह विराट्के सुख-दुःखमें साझीदार बने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

पुरुषोंमें तो धन-संग्रहकी अधिकता हो रही है और स्त्रियों तथा बच्चोंमें भोगोंकी अधिकता हो रही है। भोग न मिलें तो वे आत्महत्या कर लेंगे। भोगोंको शरीरसे भी अधिक कीमती मान लिया। परीक्षामें पास या फेल होना कामकी चीज है, शरीर कामकी चीज नहीं है—यह बुद्धि हो रही है। फेल होनेपर आत्महत्या कर लेंगे। ऐसे लोग धर्मको क्या जानें? विदेशोंमें आत्महत्या ज्यादा होती थी। अब वही संस्कृति यहाँ आनेसे वही घटनाएँ यहाँ होंगी।

परमार्थमें लगे मनुष्य तो दूसरेकी बात सुन लेते हैं, पर भोगोंमें लगे मनुष्य दूसरेकी बात सुन नहीं सकते।

मनके माध्यमसे ही भोग होता है—यह बात है ही नहीं। सुषुप्तिके सुखमें क्या मन रहता है? नहीं रहता।

यदि आप अपनेसे निर्बलकी रक्षा नहीं करते, तो फिर भगवान्‌से अपनी रक्षा माँगना क्या न्याय है?

× × ×

अपने साधनमें प्रेम, ममता अथवा पक्षपात होना बाधक नहीं है, प्रत्युत दूसरेकी निन्दा या खण्डन करना बाधक है—*'भगति पच्छ हठ नहिं सठताई'* (मानस, उत्तर० ४६।४)। साधक तो स्वार्थके लिये अपने मतका मण्डन और दूसरेके मतका खण्डन करते हैं, पर आचार्य ऐसा करते हैं—अपने मतका प्रचार करनेके लिये। साधकके लिये तो अपने मतका पालन करना ही ठीक है।

× × ×

मनुष्यमात्र सबसे श्रेष्ठ, ऊँचा बनना चाहता है। श्रेष्ठ बननेके लिये नाशवान् शरीर-संसारसे ऊँचा उठना चाहिये। ऊँचे-से-ऊँचे परमात्मा हैं। उन परमात्माका आश्रय लेनेसे ही मनुष्य ऊँचा हो सकता है।

भगवान्‌ने उपदेश भी युद्धके समय, युद्धभूमिमें दिया है, जबकि उपदेश एकान्तमें, शान्तिके समय, पवित्र स्थानपर दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि युद्ध-जैसे मौकेपर भी उपदेश दिया जा सकता है और युद्ध-जैसी क्रिया करते हुए भी कल्याण किया जा सकता है।

× × ×

संसारका ज्ञान संसारसे अलग होनेपर होता है—यह नियम है, क्योंकि वास्तवमें संसार अलग है। संसारके साथ रहते हुए संसारका ज्ञान नहीं कर सकते। संसारसे कुछ भी चाहना, संसारके साथ रहना है।

भोग भोगनेसे श्वास अधिक खर्च होते हैं। आज आयु कम होनेका कारण है कि भोग बढ़ गये। परिवार-नियोजन कार्यक्रमसे आयु और कम होगी तथा रोग बढ़ेंगे। भोगोंके सिवाय भी सुख है—यह कोई समझ सकेगा ही नहीं। परिवार-नियोजनके कारण मनुष्य अब पशुओंसे भी नीचा हो गया है। कुत्ते, गधे आदि भी मर्यादामें रहते हैं, वर्षमें एक महीना ही बिगड़ते हैं, पर मनुष्य बारहों महीने बिगड़ता है। मूलमें भोगके सिवाय कुछ नहीं है। सारा जीवन भोगपर ही आधारित हो गया है।

× × ×

गीता अलौकिक ग्रन्थ है। इसके समान भी कोई ग्रन्थ नहीं है। वेदोंका सार उपनिषद् हैं और उपनिषदोंका सार गीता है। इस प्रकार गीता परम्परासे तो श्रेष्ठ है ही, इसकी अपनी भी एक विशेष विलक्षणता है। गीता बहुत अगाध ग्रन्थ है। इसकी विलक्षणताका कोई पारावार नहीं है। यदि मनुष्य गीताके अनुसार कार्य करे तो उसके सब कार्य साधन हो जायँगे। गीताके अनुसार व्यवहार करते हुए परमार्थकी सिद्धि हो जाती है।

'कल्याण' में सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-के लेख पढ़नेसे ऐसा असर पड़ा कि ये शास्त्रके पण्डित तो नहीं हैं, पर शास्त्रके मर्मको जाननेवाले हैं, अनुभवी, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुष हैं। ये विद्याके जोरसे नहीं लिखते, प्रत्युत अनुभवके जोरसे लिखते हैं।

अभी जो गीता समझमें आ रही है, वह तो सूर्यकी उस किरणके समान है, जो कमरेके भीतर आयी है, कमरेके बाहर सूर्यका कितना प्रकाश होगा।

'गीता-जयन्ती' के दिन गीताका अवतार हुआ था, जन्म नहीं—**'स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गीता ४।३)। दर्शनोंमें उतना गहरापन नहीं दीखता, जितना गीतामें दीखता है। मुक्त होनेके बाद भी दार्शनिकोंमें जो मतभेद रहता है, वह मतभेद गीता दूर करती है।

भगवान्‌से प्रार्थना करके हम जो प्राप्त कर सकते हैं, वही कपड़ेके एक टुकड़ेसे प्रार्थना करके भी प्राप्त कर सकते हैं—यही **'वासुदेवः सर्वम्'** का तात्पर्य है। अधिभूत (अपने शरीरसहित सम्पूर्ण पांचभौतिक जगत्) भी भगवान्‌का ही स्वरूप है (गीता ७।३०)।

× × ×

जैसे भगवान्‌से अधिक विलक्षणता भक्तोंमें दीखती है, ऐसे ही भक्तोंसे भी 'भक्तोंके भक्त' में अधिक विलक्षणता आती है—***'कारन तें कारजु कठिन'*** (मानस, अयो० १७९)।

अन्यायपूर्वक भोग भोगना और परायी चीजोंपर दृष्टि रखना—ये पारमार्थिक मार्गमें बहुत बड़ी बाधाएँ हैं। सुख-भोग, ऐश-आरामकी तरफ दृष्टि बहुत घातक है। सुखासक्ति मिटेगी दूसरेके दुःखसे दुःखी होनेपर। दूसरेके दुःखसे दुःखी होना सबसे ऊँची सेवा है और गोपनीय सेवा है, सेवाका मूल है। दूसरेके दुःखसे दुःखी हो जायँ तो आपके पास जो वस्तु है, वह दूसरेकी सेवामें लग जायगी। जैसे आपको प्यास लगे और पासमें जल हो तो आप उस जलको पी लेते हो, ऐसे ही दूसरा प्यासा हो तो क्या आपके पास जल पड़ा रह सकेगा? एक मार्मिक बात है कि आपके पास कुछ नहीं हो और आप दूसरेके दुःखसे सच्चे हृदयसे दुःखी हो जायँ तो वह दुःख भगवान्‌को हो जायगा। उसके दुःखनाशका उपाय भगवान् करेंगे।

भगवान्‌को **'सर्वभाषाविद्'** (सब भाषाओंको जाननेवाले) कहा गया है। इसमें एक मार्मिक बात है कि पहले मनमें भाव उठता है, पीछे मनुष्य उसे अपनी भाषामें व्यक्त करता है। भगवान् तो मनमें उठनेवाले भावको ही जान लेते हैं, भाषा तो पीछे रही। जहाँ भाव उठता है, वहीं भगवान् मौजूद हैं।

सच्चा दुःख भगवान् सह नहीं सकते। भगवान्‌की प्राप्तिके लिये, अपने कल्याणके लिये जो दुःख होता है, वह असली दुःख है, जिसे भगवान् सह नहीं सकते। संसारके लिये दुःखी होना तो दुःखके लिये दुःखी होना है, जिसे भगवान् सह लेते हैं। दयालु होते हुए भी भगवान्‌को उसपर दया नहीं आती, जो दुःखके लिये दुःखी होता है।

देशका असली नेता वही होता है, जो देशके दुःखसे दुःखी होता है। सन्तोंके हृदयमें दुःख होता है कि दूसरेका दुःख कैसे मिटे और वे अपनेमें असमर्थताका अनुभव करते हैं तो यह दुःख भगवान् सह नहीं सकते। इसलिये ऐसे सन्तोंके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे दूसरोंका दुःख मिटता है।

× × ×

हम संसारके साथ मिलते हैं, पर परमात्माके साथ तो मिले हुए ही हैं। भगवान् हैं—यह विश्वास है, ज्ञान नहीं। विचारके विषय जीव और जगत् हैं।

पहले भक्त होता है, फिर भक्ति होती है, फिर भगवान् रह जाते हैं। ज्ञानमार्गमें पहले जिज्ञासु होता है, फिर जिज्ञासा होती है, फिर ज्ञानमात्र रह जाता है। ऐसा सब साधनोंमें होता है।

भगवान्‌का विश्वास मुख्य है। बुद्धिकी तीक्ष्णता मुख्य नहीं है। बुद्धि शुद्ध नहीं होगी तो भगवान्‌की तरफ नहीं चल सकते। बुद्धिकी शुद्धि काम आती है, तीक्ष्णता नहीं। बुद्धिकी तीक्ष्णता जज-बैरिस्टर आदि बननेमें काम आ सकती है। बुद्धिकी शुद्धिमें भी विश्वास विशेष है। विश्वास तेज हो तो भगवत्प्राप्ति तत्काल हो जाती है। भगवान्‌पर विश्वास न होनेसे जगत् ईश्वररूप नहीं दीखता। पक्षपात, मतभेद करना बुद्धिकी अशुद्धि है। राग-द्वेषके कारण जगत् ईश्वररूप नहीं दीखता। जितनी भेदबुद्धि होगी, उतनी भगवत्प्राप्तिमें देरी होगी।

भक्त जगत्‌को भगवत्स्वरूप देखते हैं और सन्तोंको भगवान्‌से भी अधिक देखते हैं—***'मोतें संत अधिक करि लेखा'*** (मानस, अरण्य ३६।२)।

श्रोता—भगवान्‌पर विश्वास कैसे हो?

स्वामी—विश्वासकी कमी दूर होगी भगवान्‌की कृपासे। प्रेम और विश्वास भगवान्‌से माँगनेकी चीज है। विश्वास कैसे हो—यह लगन हो गयी तो यहाँ भगवान्‌से माँगना हो गया, प्रार्थना हो गयी। आपकी आवश्यकता ही भगवान्‌की प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदमें दीर्घायुष्यप्राप्तिका उपाय

(आयुर्वेदाचार्य पं० श्रीरामनारायणजी शास्त्री)

शरीर, तदन्तर्गत इन्द्रिय, मन और आत्माके संयोगको आयुर्वेदमें जीवन कहा गया है—यही आयुष्य है। यह संयोग अधिक-से-अधिक अवधितक स्थायी रहे—यही दीर्घायुष्य है।

आयुर्वेदमें बताया गया है कि मृत्यु १०१ प्रकारकी होती है। उनमेंसे जो अवश्यम्भावी समयोचित मृत्यु है, उसे काल-मृत्यु कहते हैं, शेष सौ प्रकारकी मृत्यु अकाल मृत्यु है। इन सौ मृत्युओंसे मनुष्यकी रक्षा की जा सकती है। जैसे दीपकमें तेल और बत्ती यथोचित रूपमें होनेपर भी यदि पवनसे यथायोग्य रक्षा न की जाय तो दीपक बुझ सकता है, उसी प्रकार सब भाँति आयु होनेपर भी अकाल-मृत्यु हो सकती है। आयुर्वेद इन अकाल-मृत्युओंसे मनुष्यकी रक्षा करनेका उपदेश करता है। अकाल-मृत्युपर विजयकी क्षमता प्राप्त करनेकी विधिको आयुर्वेदने रसायन-विधि कहा है और इसके इतिहासमें बताया है कि जिस प्रकार देव अमृतसे और नाग सुधासे दीर्घ आयुतक जीवित रहते हैं, वैसे ही महर्षि लोग पुराने समयमें रसायन-विधिसे दीर्घजीवी हुए। वे रसायन-सेवी होनेके कारण हजार वर्षतक भी वृद्धावस्था, दुर्बलता, रोग और मृत्युको प्राप्त न हो सके।

रसायन-सेवनसे निःसन्देह दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है, किंतु आयुर्वेदके उपदेष्टाओंने बताया है कि जबतक शरीर और मनके दोष-समुदायसे मनुष्य शुद्ध नहीं होता, तबतक वह कभी भी रसायनके गुणोंको प्राप्त नहीं कर सकता। चरकसंहिताके चिकित्सा-स्थानके रसायनाध्यायमें महर्षि आत्रेय बताते हैं कि रसायन-सेवनकी अर्हता किस व्यक्तिको है। वे कहते हैं—'जो जन सत्यवादी, क्रोधरहित, मद्य-मैथुनसे रहित, अहिंसा-परायण, अति श्रम न करनेवाला, शान्त स्वभाव, प्रियवादी, जप-शौचाचारपरायण, धैर्य आदिसे विभूषित, नित्य दानशील, तपस्वी, देव, गौ-ब्राह्मण-आचार्य-गुरु और वृद्धजनोंकी सेवामें संलग्न, क्रूर कामोंको न करनेवाला अर्थात् मधुर स्वभाववाला, दयाशील, उचित रीतिसे ठीक समयपर जागने और सोनेवाला, अपने भोजनमें दूध-घीको प्रधान स्थान देनेवाला, देश-काल-प्रमाण और युक्तिको जाननेवाला, अहंकार-रहित, प्रशंसनीय आचारको धारण करनेवाला, संकीर्ण विचारसे शून्य, समस्त इन्द्रियोंको जीतकर ज्ञानमें लगनेवाला, ज्ञानवृद्ध-आस्तिक और जितात्मा पुरुषोंका सत्संग करनेवाला तथा धर्मशास्त्रकी आज्ञाका पालन करनेवाला हो—वह रसायन-सेवनके लिये सर्वथा उपयुक्त पुरुष है।'[१] महर्षि आत्रेय कहते हैं कि इस प्रकारके पुरुषको रसायन-सेवनके बिना भी रसायनका गुण और दीर्घजीवन प्राप्त होता है और यदि ऐसा व्यक्ति रसायनका प्रयोग करे तो फिर कहना ही क्या है, उसे रसायनकी परिपूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि आयुर्वेदीय रसायन-विधिसे केवल दीर्घजीवन ही प्राप्त नहीं होता, अनेक मानवीय गुणोंका भी विकास होता है। मात्र दीर्घ आयुष्यकी ऋषियोंने प्रशंसा नहीं की। राक्षसी वृत्तियोंसे पूर्ण दीर्घजीवन प्राप्त भी हुआ तो मनुष्य संसारका अहित ही करेगा, अतः उससे क्या लाभ? महर्षि आत्रेय चरक-संहितामें कहते हैं कि ऐसे ही गलित-पलित शरीरसे असामर्थ्ययुक्त दीर्घायु भी प्रशंसनीय नहीं है, अतः उन्होंने उन रसायन-प्रयोगोंका विधान किया है, जिनके द्वारा सत्य, शिव और सुन्दर गुणोंसे समन्वित नवजीवन प्राप्त होता है। महर्षिके ही शब्दोंका भावार्थ है—रसायनके सेवनसे मनुष्यको दीर्घायु तो प्राप्त होता ही है, साथ ही स्मृति, मेधा, आरोग्य, यौवन, प्रभा, वर्ण, स्वरका उदार होना, देह और इन्द्रियोंमें अद्भुत बल, वाणीमें सिद्धि, लोक-वन्दनीय गुणोंकी प्राप्ति और कान्तिका लाभ भी होता है—

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम्॥

---

१. सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्। अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्। देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम्। समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्॥
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहङ्कृतम्। शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्। धर्मशास्त्रपरं विद्यान्तरं नित्यरसायनम्॥
गुणैरेतैः समुदितैः प्रयुङ्क्ते यो रसायनम्। रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्नुते॥ (चरकसं०, चि० रसाय० १।४।३०—३५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात्।

(चरकसं०, चि०रसा० १।१।७-८)

आयुर्वेद मानता है कि ये सब मनुष्यके सहज गुण थे। धीरे-धीरे मनुष्यने अपने ही अधर्म और अनाचारसे इन्हें खो दिया। आयुर्वेद मनुष्यके उस आदिरूपका बड़े आनन्द और उल्लाससे स्मरण करता है। आदिकालमें मनुष्य कैसा महान् था, उसका आयुर्वेदोक्त वर्णन इस प्रकार है—'आदिकालमें मनुष्य देवताओंके समान बलवान् होते थे। वे अत्यन्त विमल और विपुल प्रभाव-सम्पन्न थे। देवता तथा देवर्षि उनसे प्रत्यक्ष मिलते थे। वे लोग विधिपूर्वक धार्मिक अनुष्ठान और यज्ञादि किया करते थे। उनकी देह पर्वतके तुल्य, सारयुक्त, संगठित और स्थिर रहती थी। वर्ण और इन्द्रियाँ सब प्रसन्न रहती थीं तथा वे पवनके समान बल, वेग और पराक्रमयुक्त होते थे। उनके शरीरके अंग सुन्दर गठन-युक्त, उचित प्रमाणवाले, आकारमें मनोहर तथा सुपुष्ट होते थे। वे सत्य, सदाचार, दया, लज्जा, दान, नियम, दम, तप, उपवास, ब्रह्मचर्य तथा अन्य व्रतोंका पालन करते थे और भय, राग, द्वेष, मोह, लोभ, क्रोध, शोक, अहंकार, रोग, निद्रा, श्रम, क्लम और आलस्यको पास भी नहीं फटकने देते थे। वे कभी दूसरेकी वस्तु नहीं छीनते थे। इन सब गुणोंके कारण वे असीम आयुका उपभोग करते थे।'

इस युगमें यह सब जानकर आजके व्यक्तिको आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। साथ ही अनायास यह प्रश्न हो सकता है कि जब मानवपुत्र इस प्रकार किसी युगमें महान् रहा है तो आज वह इस दशाको कैसे पहुँच गया? इस प्रश्नका उत्तर भी महर्षि आत्रेय ही देते हैं। वे कहते हैं—'उस आदि-युगके व्यतीत होनेपर कुछ मनुष्योंने अधिक आहारादि ग्रहण करना प्रारम्भ किया। इससे सम्पन्नता आयी, सम्पन्न होनेपर शरीरमें गौरव (भारीपन) बढ़ा, गौरवसे श्रम उत्पन्न होने लगा। श्रमसे आलस्य और आलस्यसे संचय प्रारम्भ हुआ। इसी प्रकार संचयसे परिग्रह और परिग्रहसे लोभने जन्म लिया। लोभसे अभिद्रोह, अभिद्रोहसे असत्य, असत्यसे काम, कामसे क्रोध, क्रोधसे मान, मानसे द्वेष, द्वेषसे निष्ठुरता, निष्ठुरतासे अभिघात, अभिघातसे भय, ताप, शोक, उद्वेग इत्यादि उत्पन्न हुए। इन सबके कारण आहार-विहारादिमें विकृति आयी और रोगोंने जन्म लिया। इन्हीं अपनेसे उपजाये मन और शरीरके रोगोंने मनुष्यकी आयुका नाश कर डाला।'

अस्तु, यह तो संक्षेपमें आयुर्वेदमें वर्णित दीर्घायुष्य-सम्बन्धी जानकारी हुई, किंतु आज इस वर्तमान युगमें हम किस प्रकार दीर्घजीवी हो सकते हैं, अब इसपर हम आयुर्वेदके विचार बताते हैं। आयुर्वेदके अनुसार शरीररूपी महल तीन स्तम्भोंपर टिका हुआ है। वे तीन स्तम्भ हैं—आहार, शयन और ब्रह्मचर्य—'**त्रय उपस्तम्भा इति—आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।**' (चरकसं० सू० ११।३५) आहारके अन्तर्गत वे सब बातें आ जाती हैं, जिन्हें शरीर अपने पोषणार्थ ग्रहण करता है यथा—भोजन, जल, प्राणवायु आदि। आहारका युक्तियुक्त सेवन प्रथम जीवनाधार है। इसके उपरान्त शयनका निर्देश है। शयनके अन्तर्गत निद्राप्रदायक श्रमादिका महत्त्व, चिन्तात्याग तथा पूर्णतया शरीर एवं मानस-शान्ति-प्रदायक विश्रामका अन्तर्भाव होता है। इस शयनको दूसरा जीवनाधार माना गया है। तदुपरान्त ब्रह्मचर्यका महत्त्व है। ब्रह्मचर्यके अन्तर्गत सदाचार, प्राणायाम, यम-नियमादिके पालनका निर्देश है, जिनसे आहार-शयनादिके द्वारा संचित शक्तिका दुरुपयोग न हो। बस, इन तीन स्तम्भोंको यदि मनुष्य सुदृढ़ और सुव्यवस्थित रखे तो इस कायाके जीवित महलमें अवर्णनीय स्थायित्व आ जाता है।

दीर्घायुष्य प्रदान करनेवाली उपर्युक्त जिस रसायन-विधिका कथन किया गया है, उतनी समस्त आचारादिकी व्यवस्था आजके मानवको बहुत दुःसाध्य अनुभव होगी, अतः आचार्य वाग्भटने सूत्ररूपमें इतनी बात कह दी है—दीर्घजीवन चाहते हो न? तो औषधियोंके अतिरिक्त इतनी हमारी बात माननी होगी। सुनो—सत्यपरायण बनो, क्रोध मत करो, अपनी इन्द्रियोंको अध्यात्मकी ओर लगाओ, मनको शान्त रखो और उसे सदाचारमें संलग्न करो, आयुर्वेदशास्त्रके अनुसार अपनी दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या बना लो तथा बुद्धिको ठोकर न खाने दो। यह सब नित्य रसायन हैं। इनके सेवनसे निश्चय ही दीर्घ-जीवन प्राप्त होगा।

दीर्घायुष्यके लिये रसायन-सेवन-विधि आयुर्वेदका एक मुख्य अंग है। आयुर्वेदमें दो प्रकारसे रसायन-विधिका प्रयोग होता है—कुटीप्रावेशिक और वाततपिक। कुटी-प्रावेशिक विधिमें दीर्घायुष्य चाहनेवाले व्यक्तिको धूप-हवासे बचते हुए त्रिगर्भा कुटीमें तपस्वीकी भाँति शास्त्रानुसार रहकर औषधि-सेवन करना होता है। वाततपिक रसायन-सेवनके लिये धूप, हवा आदिका उतना परहेज नहीं है और न इसमें कुटीमें ही रहना पड़ता है। किंतु इन दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधियोंके लिये यह आवश्यक है कि सबसे पहले शरीर और मनका पंचकर्मादिके द्वारा शोधन कर लिया जाय। जैसे मैले कपड़ेपर अच्छा रंग नहीं आता, उसी प्रकार अशुद्ध शरीरमें रसायन-विधि सम्पन्न नहीं होती। आयुवर्द्धक योग जितात्मा और मन तथा शरीरकी शुद्धि किये हुए व्यक्तियोंके लिये ही लाभदायक बनते हैं।

रसायन-विधियोंमें वैद्य शिलाजतु, आँवला, हरड, विडंग, नागबला, भल्लातक, पारद-लौह-स्वर्ण, ब्राह्मी-शंखपुष्पी, पिप्पली, त्रिफला, जीवनीय गुणकी औषधियों इत्यादि विविध औषधियोंको शास्त्रवर्णित विधिसे शरीरकी स्थितिका विचारकर प्रयोग करते हैं।

एक और चमत्कारिक विधि है, जिसे द्रोणीप्रावेशिक रसायन-विधि कहा गया है। इस प्रयोगमें ब्रह्मसुवर्चला, आदित्यपर्णी, अश्वबला, काष्ठगोधा, सर्पा, सोम, अजा और नीला—इन आठ औषधियोंमेंसे किसी एकका प्रयोग किया जाता है। शुद्धकाय मनुष्य कुटीप्रावेशिक विधिद्वारा निर्मित कुटीके भीतर पलाशकी लकड़ीसे बनी द्रोणीमें विधिपूर्वक ६ मास शयन करता है। औषधिका रस और थोड़ा-सा दूध ही उसका आहार रहता है। आयुर्वेदमें यह एक दिव्य रसायन विधि मानी गयी है।

मनुष्य अमृतका पुत्र है, अतः अमरत्वकी इसकी अभिलाषा स्वाभाविक है। इसी आकांक्षामें जिन दीर्घायुष्यके साधनोंको पुरातन भारतीय वैज्ञानिकों (ऋषि-महर्षियों)-ने खोज निकाला है, उनका यथाविधि पालन करनेसे व्यक्ति दीर्घायुष्य प्राप्तकर अपने जीवनके साफल्यकी ओर सतत अग्रसर हो सकता है।

पुरुषार्थ और भगवत्तत्त्व

(श्रीघनश्यामदासजी मोदानी)

पुरुषार्थका साधारण अर्थ किसी सदुद्देश्यकी सफलताके लिये किया गया प्रयत्न अर्थात् क्रिया है। कोई भी प्रयत्न या क्रिया कर्ताके बिना सम्भव नहीं हो सकती और कोई भी कर्ता किसी कारणके बिना कोई क्रिया नहीं कर सकता। इसलिये पुरुषार्थ करनेमें कर्ता, क्रिया और कारण इन तीनोंका होना आवश्यक है। हम सभीका प्रतिदिनका अनुभव है कि कुछ प्रयत्न सफल हो जाते हैं और कुछ प्रयत्न सफल नहीं होते। कर्ताद्वारा बार-बार प्रयत्न करनेपर भी सफलता हाथ नहीं लगती, इसका तात्पर्य हुआ कि किसी कार्यकी सफलतामें पुरुषार्थका महत्त्व तो अवश्य है, किंतु कार्यकी सफलता किसी अन्य विधानके अन्तर्गत होती है। इसको आस्तिक व्यक्ति कर्मफलके सिद्धान्तका परिणाम या भगवत्कृपाका परिणाम मानते हैं। अगर पुरुषार्थपर ही कर्मकी सफलता निर्भर रहती तो फिर कोई भी प्रयत्न असफल होता ही नहीं, किंतु ऐसा दिखता नहीं।

पुरुषार्थको उद्देश्यकी दृष्टिसे दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—लौकिक पुरुषार्थ और पारलौकिक पुरुषार्थ। प्रकृतिके सारे कार्य तीन गुणोंमें विभक्त किये जा सकते हैं—सत्त्वगुणसम्बन्धी, रजोगुणसम्बन्धी और तमोगुणसम्बन्धी। लौकिक पुरुषार्थकी सफलतापर कर्ताके अपने गुणोंका काफी प्रभाव पड़ता है। कर्ताको क्रियाकी सफलता मिलनेपर सुखका अनुभव होता है, जो कर्तामें रागको उत्पन्न करता है और असफलता मिलनेपर कर्ताको दुःख होता है, जो कर्तामें द्वेषको उत्पन्न करता है। क्रियामें सफलता या असफलता मिलनेके उपरान्त व्यक्ति क्रिया प्रारम्भ करनेके पूर्वकी स्थितिमें आ जाता है अर्थात् नयी क्रिया करनेकी इच्छाका फिर जन्म हो जाता है और यह क्रम अनन्तकालतक चलता रहता है या यों कहिये कि जीवनपर्यन्त इच्छाएँ कभी पूरी होती ही नहीं हैं। वास्तवमें सांसारिक इच्छाएँ कभी पूरी हो जायँ, यह सम्भव ही नहीं है।

मनुष्यको पुरुषार्थ तो अवश्य करना चाहिये, किंतु उसका अपने आपको कर्ता न मानकर भगवान् मुझसे ऐसा करा रहे हैं या भगवान् स्वयं ऐसा कर रहे हैं, मैं तो केवल एक खिलौनामात्र हूँ, ऐसा माननेसे व्यक्ति कर्मबन्धनके दोषोंसे बच जायगा। भगवान्ने इस शरीरमें जितनी इन्द्रियाँ दी हैं, उनका स्वभाव ही है प्रतिक्षण कुछ न कुछ करते रहना। ये इन्द्रियाँ कभी अकर्मरूपसे रह ही नहीं सकतीं, यह जानना ज्ञान है और मैं किसी कार्यका कर्ता हूँ, यह मानना अज्ञान है।

व्यक्तिको जैसे-जैसे पुरुषार्थ करनेमें सफलता मिलती जाती है, वैसे-वैसे उसके मनमें अपनेको अपने भाग्यका निर्माता माननेकी भावनामें दृढ़ता आती जाती है। इस प्रकारके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति अपने जीवनमें कभी पीछे मुड़कर नहीं देखते और उनके अहंका इतना विस्तार हो जाता है कि उनमें कर्तापनेकी—अहंताकी प्रवृत्तिका जन्म हो जाता है और वह अहं व्यक्तिके पतनका कारण बन जाता है। आजकल विश्वमें जितनी विनाशकारी गतिविधियाँ चल रही हैं, वे सभी तथाकथित पुरुषार्थी व्यक्तियोंकी तथाकथित सफलताके बलपर चल रही हैं; क्योंकि उनसे सम्बन्धित व्यक्तिको उसकी अपनी सफलताने भगवत्-सत्तासे विमुख कर दिया है और उसके अहंकी सत्ताको दृढ़ता प्रदान कर दी है। आर्थिक प्रतिस्पर्धाके परिणामस्वरूप व्यक्तिका जीवन अशान्त हो गया है। जबतक ऐसे व्यक्तिका जीवन रहता है, तबतक वह विध्वसंक गतिविधियाँ करता रहता है और फिर अपने पतनकी ओर चला जाता है। इसलिये किसी कार्यको करनेके पूर्व उसके परिणामपर अवश्य ध्यान रखना चाहिये और उस कार्यको भगवान्के अर्पण करके करना चाहिये, जिससे व्यक्ति सफलताके अभिमानसे बच सके, साथ ही उसके द्वारा गलत कार्य भी न हो सके अन्यथा व्यक्तिमें विकार उत्पन्न हो जायगा और उसका पतनकी ओर जाना निश्चित हो जायगा। पुरुषार्थको ही कर्मकी सफलताका साधन माननेसे कर्मफलके सिद्धान्तकी सत्यतापर प्रश्नचिह्न लग जायगा।

पारलौकिक कार्योंकी सिद्धिमें कर्ताकी अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति, भगवान्के प्रति उसका श्रद्धा-विश्वास और भगवत्कृपा हेतु बनती है। श्रद्धा और विश्वास होनेसे व्यक्तिमें सद्गुणोंका विकास होता रहता है और अपवित्र मनका मैल धुलता रहता है, इसलिये व्यक्तिको जहाँ-कहीं किसी अनुभवी महापुरुषका सत्संग मिल जाय तो अवश्य करना चाहिये, भगवान्के भक्तोंका संग मिल जाय तो अपना सौभाग्य मानना चाहिये, भगवान्के गुणोंका श्रवण करना चाहिये, भगवान्की लीलाओंका गान करना चाहिये, प्रतिदिन कुछ न कुछ सेवा-कार्य अवश्य करना चाहिये, भगवान्के धामों अर्थात् तीर्थस्थानोंकी यात्रा करनी चाहिये। भगवान्ने कृपाकर मनुष्यशरीर प्रदानकर इस जीवनको चलानेकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति की है, अतः कृतज्ञता माननी चाहिये और उन्हें धन्यवाद देना चाहिये। इन सभी श्रेष्ठ कार्योंको यथासम्भव करनेसे मन निर्मल हो जायगा। भगवान्के शरण होना ही सच्चा पुरुषार्थ है, इससे उद्देश्यकी प्राप्ति हो जायगी। सत्संकल्पोंकी पूर्ति अर्थात् सत्पुरुषार्थकी सिद्धिमें भगवान् स्वयं सहायक बनते हैं। स्वल्प भी किया गया सत्पुरुषार्थ महान् विपत्तिसे रक्षा करनेमें सहायक होता है।

भगवान् निर्दोष हैं, दोष उन्हें छूतक भी नहीं सकते, अतः पुरुषार्थकी सिद्धि एवं असिद्धिमें उन्हें हेतुरूप ठहराना उचित नहीं है। कर्मसिद्धिमें कर्ताका प्रारब्ध मुख्य है, वही प्रेरक बनता है। प्रबल प्रारब्ध भोगसे जाता है, किंतु दुर्बल प्रारब्धको उत्कट पुरुषार्थसे सिद्ध किया जा सकता है। भगवत्कृपासे भगवान्के सम्पर्कमें आ जानेसे व्यक्ति भी निर्दोष हो जायगा। वास्तवमें भगवान् स्वयं ही इस संसारमें सब कुछ बने हुए हैं। सारा संसार भगवान्ने बनाया है—ऐसा माननेसे यह बात धीरे-धीरे अनुभवमें आ जायगी कि दोष आगन्तुक हैं और यह नियम है कि जो चीज आती-जाती है वह स्थायी नहीं होती। ये दोष भी हमारी मान्यतापर आधारित हैं, इनकी सत्ता ही नहीं है, किंतु अपने स्वार्थके अनुरूप कार्य करनेसे दोष हममें पैदा हो जाते हैं, अगर हम प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग सर्वजनहितायके उद्देश्यसे करेंगे, तो निर्दोषता स्वतः सिद्ध हो जायगी।

भगवत्तत्त्व किसी क्रियाके अधीन नहीं है। वह साधकके मनका विषय है, भगवत्तत्त्वकी विस्मृतिके कारण अज्ञान पैदा हो गया है, इसलिये भगवत्कृपासे स्मृति आनेपर ज्ञान हो जायगा। जिन व्यक्तियोंकी प्रकृतिमें ज्ञानकी प्रधानता नहीं है, उन्हें भगवान्की भक्ति करनी चाहिये, भगवान् कृपाकर ज्ञान करवा देंगे।

मानवशरीर मिलनेका प्रयोजन एक ऐसे ज्ञानकी प्राप्ति या आनन्दकी प्राप्ति करना है, जो हमेशा हमारे साथ रहे और प्रतिक्षण बढ़ता रहे, एक बार मिल जानेके बाद चले जानेका भय न हो। भगवान् और आनन्द पर्यायवाची शब्द हैं, इसलिये भगवान् आनन्दस्वरूप हैं और वे प्रेमानन्दका भोग करते हैं। अगर व्यक्ति भगवान्को प्रेम कैसे मिले, इसके लिये प्रयत्न करता है—पुरुषार्थ करता है और उनसे किसी प्रकारकी प्राप्तिकी आशा नहीं करता, यहाँतक कि भगवान् मिलें या दर्शन दें, यह अभिलाषा भी नहीं करता तो यह भावना ही व्यक्तिको भक्त बना देती है। प्रेमानन्दकी प्राप्तिकी सफलता ही इसमें है कि भगवान्को प्रेम या सुख कैसे मिले, इस देनेमात्रकी इच्छासे और तदनुरूप प्रयत्न करनेसे मनुष्य भक्तिकी चरम सीमातक पहुँच सकता है और भगवान्को अपने प्रेमके वशमें कर सकता है, यह उनकी भक्तवत्सलता है और सच्चे पुरुषार्थकी सिद्धि है। इसलिये भगवान्ने कहा है कि मैं भक्तके वशमें हूँ **'अहं भक्तपराधीनः।'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चा धर्म—प्रेम और सेवा

(श्रीभगवानदासजी केला)

धर्मका मतलब सत्य यानी ईश्वरकी प्राप्ति है। धर्म प्रेमका पन्थ है, फिर घृणा कैसी, द्वेष कैसा, मिथ्याभिमान कैसा? मनुष्य एक ओर तो ईश्वरकी पूजा करे, दूसरी ओर मनुष्यका तिरस्कार करे, यह बात बनने लायक नहीं।—गाँधीजी

आज हम लोगोंको केवल एक नैतिक उपदेश देते रहें तो उससे काम नहीं होगा। आज तो हमें लोगोंकी मुश्किलें, दुश्वारियाँ दूर करनी होंगी, तभी उनमें सद्विचार स्थिर होंगे। जिस वक्त आस-पास आग लगी हो, उस वक्त हम मूर्तिका ध्यान करने बैठें तो यह भक्ति-मार्गका लक्षण नहीं होगा। उस समय तो हाथमें बाल्टी लेकर आग बुझानेके लिये दौड़ना ही भक्ति-मार्गका लक्षण होगा।—विनोबा

धार्मिक उपदेश और शिक्षाएँ अनन्त हैं

इस समय संसारमें अनेक धर्म, मजहब या पन्थ प्रचलित हैं। प्रत्येक धर्मके उपदेशों और शिक्षाओं-सम्बन्धी बहुत-सा साहित्य है। खासकर मुख्य-मुख्य धर्मोंके साहित्यका परिमाण तो निरन्तर बढ़ता जाता है। आदमी अपने-अपने धर्मोंके प्रवर्तक तथा अन्य मान्य पुरुषोंके वाक्योंकी तरह-तरहकी व्याख्याएँ और टीकाएँ विविध भाषाओंमें छपवाते और प्रचार करते रहते हैं। इस प्रकार एक-एक धर्मसम्बन्धी इतने ग्रन्थ हैं कि आदमी जन्मभर उन्हें ही पढ़ता रहे तो भी सबको न पढ़ सके; और साधारण आदमी अकेले इसी काममें लगा भी नहीं रह सकता। अस्तु, धार्मिक उपदेशों और शिक्षाओंका तथा टीका-टिप्पणियोंका कोई अन्त नहीं।

धर्मका सार

साधारण मनुष्यको धर्मकी बारीकियों और उलझनोंमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं। मुख्य तत्त्वकी बात जान लेनी चाहिये। कबीरने ठीक बताया है—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय॥

इसी प्रकार तुलसीने भी कहा है—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

इस तरह सरल-सीधी भाषामें धर्मका अर्थ प्रेम और परहित-साधन या सेवा है। आदमीको इन्हें अमलमें लाकर अपना जीवन सार्थक करना चाहिये।

सद्व्यवहार ही भगवान्‌की पूजा है

हम सब भगवान्‌की पूजा-उपासना करनेका दम भरते हैं, पर भगवान् हमें दरिद्रनारायणके रूपमें दर्शन देता है तो हम उसकी उपेक्षा करते हैं। इसलाम-धर्म-ग्रन्थोंमें कहा गया है कि एक धनवान्‌के मरनेपर अल्लाह उससे कहता है कि 'ऐ आदमीके बेटे! मैं भूखा था, तूने मुझे खानेको नहीं दिया।' आदमी पूछता है, 'तूने मुझसे खाना कब माँगा और कब मैंने तुझे खाना नहीं दिया?' अल्लाह जवाब देता है—'मैं मजदूरके रूपमें तेरे पास गया और तूने मुझे मुनासिब मजदूरी नहीं दी। इससे मैं भूखा रहा।' फिर अल्लाह कहता है, 'ऐ आदमीके बेटे! मैं प्यासा था, तूने पानी नहीं दिया।' आदमी हैरान होकर पूछता है—'कब तूने मुझसे पानी माँगा और कब मैंने पानी नहीं दिया?' अल्लाह जवाब देता है कि 'मैं मेहनत करनेके बाद प्यासा होनेपर तेरे दरवाजेपर गया और तुझसे पानी माँगा, पर तूने मुझे पानी नहीं दिया।' यह बात हमारे सामाजिक व्यवहारपर कितनी ठीक बैठती है!

प्रेममें ऊँच-नीच नहीं, समदर्शिता है

असली धर्म माननेवाले व्यक्तिके लिये यह सारा संसार ईश्वरमय है। वह सब प्राणियोंसे प्रेम करेगा, उसके प्रेमका क्षेत्र उसके परिवार या रिश्तेदारोंतक ही या उसकी जाति-बिरादरीके लोगोंतक ही सीमित नहीं होता, वह सबमें ईश्वरका स्वरूप देखता है। वह सबसे स्नेहका नाता रखता है, सबको अपने परिवार या कुटुम्बका मानता है। वह सबको समभावसे देखता है, सबसे प्रेम करता है, ऊँच-नीचकी थोथी कल्पनाको उसके मनमें स्थान नहीं मिल सकता। वह किसीको कष्ट दे ही कैसे सकता है; उसके लिये दूसरोंको पीड़ा पहुँचाना स्वयं अपने-आपको पीड़ा पहुँचाना है। वह किसीके मजहबकी निन्दा नहीं करता, वह सबमें समदृष्टि रखता है और सबकी अच्छी-अच्छी बातें ग्रहण करनेको तैयार रहता है।

सेवामय जीवन

ऐसा प्रेमी व्यक्ति प्राणिमात्रमें एकताका अनुभव करता है और वह ऐक्य-साधन करता है। ऐक्य-साधनका मार्ग लोकसेवा है, यही प्रेमका व्यावहारिक स्वरूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा किसीसे प्रेम करनेका अर्थ यही नहीं है कि हम उसके लिये कुछ मीठे शब्द कहकर रह जायँ। प्रेम तभी सार्थक है जब हम अपने प्रेमपात्रका हित चाहें और हित-साधनाका प्रयत्न करें, उसके कष्टों और अभावोंको दूर करनेका उपाय निकालें और उसकी उन्नति तथा विकासका मार्ग प्रशस्त करें। धर्म-भावनावाले अपने कर्तव्यपालनमें सब प्रकार कष्ट सहते और त्याग करते हैं और वे इसमें कोई दु:ख अनुभव नहीं करते। उनके हृदयमें सबके लिये माताका-सा प्रेम होता है। वे अपने पासके सब आदमियोंको सुख पहुँचानेमें अपना सुख मानते हैं। सेवा करना उनका स्वभाव ही होता है, इसके लिये उन्हें विशेष प्रयत्न करना नहीं पड़ता।

सेवाके अनेक क्षेत्र

सेवा किसी खास प्रकारके नपे-तुले कामका नाम नहीं है और यह कोई खास पेशा नहीं है। हम चाहे जो कार्य करें, उसमें परहितका लक्ष्य हो तथा सत्य, अहिंसा आदि गुणोंके अभ्यासका निरन्तर ध्यान रखें तो वही कार्य सेवा-कार्य हो जायगा। उदाहरणके लिये व्यापारकी बात लीजिये। प्राय: आदमी समझते हैं यह सेवा-कार्य नहीं हो सकता। इसे धन कमानेका साधन माना जाता है, परंतु वास्तवमें यह बहुत बड़ी सेवाका कार्य है। एक गाँवमें लोगोंके भोजन-वस्त्र आदिकी प्रमुख आवश्यकताके किसी पदार्थकी कमीके कारण बहुत संकट है। व्यापारी इस पदार्थको दूसरे स्थानसे लाकर वहाँ पहुँचाता है और इसकी मूल लागतमें मार्गव्यय तथा अपना मामूली मेहनताना जोड़कर इसे साधारण मूल्यमें जनताके हाथों बेचता है तो यह व्यापार सेवाकार्य ही है। हाँ, अगर व्यापारीका लक्ष्य अपने कार्यद्वारा अधिक-से-अधिक धन बटोरना हो, वह लोगोंकी प्रमुख आवश्यकताओंका विचार न कर ऐसे पदार्थोंका प्रचार करता है, जो जनताके भोग-विलासके साधन हों और जिन्हें खरीदनेके लिये आदमी भारी मूल्य भी देनेको तैयार हों या तैयार किये जाते हों तो यह कार्य सेवाकार्य नहीं माना जा सकता। वास्तवमें इसे व्यापार कहना ही भूल है। यह तो सरासर लूट है, चाहे वह समाजमें खूब चल रही हो और कानूनसे अपराध न मानी जाती हो। अस्तु, परहितका ध्यान रखते हुए तथा साधारण पारिश्रमिक या मेहनताना लेकर किया हुआ व्यापार सेवा ही है। वास्तविक व्यापार और सेवामें कोई विरोध नहीं है।

इसी प्रकार यदि कोई डॉक्टर या वैद्य इस बातके लिये प्रयत्नशील है कि आदमी बीमार न पड़े, वह जनतामें स्वास्थ्यके नियमोंका प्रचार करता है और उन्हें सावधान करता है कि अमुक ऋतुमें ऐसा खान-पान आदि करना रोगोंको आमन्त्रित करना है, वह बीमारोंको जल्दी-से-जल्दी तथा अल्प व्ययसे ही नीरोग करनेके लिये चिकित्सा करता है तो उसका यह कार्य सेवा-कार्य ही है, भले ही वह डॉक्टर या वैद्य अपने निर्वाहके लिये लोगोंसे अपने कामकी साधारण फीस क्यों न लेता हो। इसके विपरीत, यदि वह धन-संग्रहके लिये रोगियोंको दवाईके चक्करमें डालता है, मँहगी और खूब मुनाफा देनेवाली विधियोंका उपयोग करता है, यहाँतक कि गरीब और असमर्थ लोगोंसे भी भारी-भारी फीस वसूल करता है और रोगियोंके स्वस्थ न होने तथा मर जानेपर भी अपनी फीसका अधिकार नहीं छोड़ता तो इस कार्यको सेवा-कार्य नहीं माना जायगा और ऐसा करनेवालेको वास्तवमें डॉक्टर या वैद्य कहना इन शब्दोंका दुरुपयोग करना है!

इसी तरह शिक्षक, लेखक, प्रकाशक, चौकीदार, मुनीम, दूकानदार आदिके कार्योंका विचार किया जा सकता है।

विशेष वक्तव्य

किसी कार्यके सेवा-कार्य होनेके लिये यह आवश्यक ही है कि वह निरहंकार तथा निष्कामभावसे किया जाय। सेवा करनेवाला अपना काम कर्तव्य समझकर करता है। उसके मनमें यह विचार नहीं आता कि मैं समाजपर कोई उपकार या एहसान करता हूँ। वह अपने-आपको समाजका एक अंग मानता है और अपनी बुद्धि, शक्ति तथा योग्यता आदिको समाजद्वारा प्राप्त समझता है। इसलिये वह समाजका हिस्सा चुकाकर उससे यथाशक्ति उऋण होनेका प्रयत्न करता है, इसमें अहंकार या अभिमानकी गुंजाइश ही कहाँ! अस्तु, प्रेमी और सेवा-भावी सज्जन ही वास्तवमें धर्मात्मा हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-जीवनकी महिमा एवं लक्ष्य

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

मानव कौन है—किसी विशेष प्रकारकी आकृतिका नाम मानव नहीं है। 'शरीर' के लिये भगवान् श्रीरामने कहा है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(रा०च०मा० ४। ११। ४)

इसका अर्थ है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पाँच तत्त्वोंसे यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है।

मानव वह है, जिसको भगवान्ने तीन अलौकिक शक्तियाँ—बल, विवेक, विश्वास और इनके सदुपयोगकी स्वाधीनता दी है। जो इनका सदुपयोग करता है, उसका नाम है मानव और जो इनका दुरुपयोग करता है, उसका नाम है अमानव। मानवकी तुलना देवताओंसे करना मानवका बड़ा भारी अपमान है; क्योंकि मानव देवताओंसे बहुत महान् है। अमानवकी तुलना पशुओंसे करना बेचारे मूक पशुओंका घोर अपमान है, क्योंकि पशु अमानवसे बहुत अच्छे हैं, अमानव पशुओंसे अत्यन्त निम्न है।

प्रभु कृपाका फल है मानव-जीवन—मानव-जीवन भगवान्की कृपासे मिलता है। यह जीवन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी वाणी है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(रा०च०मा० ७। ४३। ७, ७। ४४। ६)

इसका अर्थ है—बड़े भाग्यसे यह मनुष्य शरीर मिला है। सब ग्रन्थोंने यही कहा है कि यह शरीर देवताओंको भी दुर्लभ है (कठिनतासे मिलता है)।

बिना ही कारण स्नेह करनेवाले ईश्वर कभी दया करके इसे मनुष्य शरीर देते हैं।

आपके पास पुरुषका शरीर है तो भी आप मानव हैं, स्त्रीका शरीर है तो भी आप मानव हैं।

महिमा एवं लक्ष्य—मानव-जीवनमें आप तीन विशेष कार्य कर सकते हैं—परम शान्तिकी प्राप्ति, जीवन्मुक्ति और भगवद्भक्तिकी प्राप्ति। परम शान्तिका अर्थ है—चिन्ता एवं दुःखको मिटा लेना; बड़ीसे बड़ी शारीरिक, पारिवारिक, आर्थिक, व्यावसायिक प्रतिकूलतामें लेशमात्र भी दुःख चिन्ता, तनाव, अशान्ति, निराशा, डिप्रेशनका न होना। जीवन्मुक्तिका अर्थ है—अपने लिये किसी भी नाशवान् वस्तु, व्यक्ति, परिवारजन, शरीर, इन्द्रियाँ आदिकी जरूरत महसूस न होना। भगवद्भक्तिका अर्थ है—हर समय, हर स्थानपर, हर परिस्थिति एवं शरीरके नाशके समय भी सही रूपमें भगवान्की अखण्ड स्मृति बनी रहना और उस स्मृतिके आधारपर रोम-रोमसे आनन्दकी लहरियाँ निकलना। इसीका नाम है—सादर सुमिरन। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शंकरकी वाणी है—

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

(रा०च०मा० १। ११९। ४)

इसका अर्थ है—जो मनुष्य आदरपूर्वक भगवान्का स्मरण करते हैं, वे तो संसाररूपी (दुस्तर) समुद्रको गायके खुरसे बने हुए गड्ढेके समान (अर्थात् बिना किसी परिश्रमके) पार कर जाते हैं।

भगवान्की सही रूपमें स्मृति ही भगवान्का भजन है, उनकी पूजा है, उनकी प्रेमा भक्ति है।

ये तीन कार्य आप केवल मानव-जीवनमें ही कर सकते हैं, चौरासी लाख योनियोंमें अन्य किसी भी योनिमें नहीं। इसीलिये मानव-जीवनकी बहुत महिमा है और यही इस जीवनका विशेष लक्ष्य है।

न करनेपर नुकसान—यदि आपने अपने जीवनके लक्ष्यको प्राप्त नहीं किया तो आपको कितना बड़ा नुकसान होगा, यह बात श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने बतायी है—

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(रा०च०मा० ७। ४३। ८, ७। ४३-४४)

इसका अर्थ है—मानव-जीवन साधनका धाम और मोक्षका दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया, वह परलोकमें दुःख पाता है, सिर पीट-पीटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पछताता है तथा (अपना दोष न समझकर) कालपर, कर्मपर और ईश्वरपर मिथ्या दोष लगाता है।

जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागरसे न तरे, वह कृतघ्न और मन्द-बुद्धि है और आत्महत्या करनेवालेकी गतिको प्राप्त होता है।

लक्ष्यप्राप्तिका उपाय—परमशान्ति, जीवन्मुक्ति और भगवद्भक्तिकी प्राप्तिका उपाय है—भगवान्के द्वारा दी गयी तीनों शक्तियोंका सदुपयोग करना। सदुपयोगका विवेचन इस प्रकार है—

बल—बलका अर्थ केवल शारीरिक बलसे नहीं है, अपितु इसका सम्बन्ध भावनासे है। बलका सदुपयोग है—सेवा करना। सेवाका मतलब है—सबके, मानवमात्रके-प्राणिमात्रके प्रति हृदयमें हितकी भावना रखना। जो व्यक्ति हमें दुःख देता है; हमारी निन्दा, आलोचना, अपमान, तिरस्कार, विरोध, नुकसान करता है, उसके प्रति भी हितकी भावना रखना। सबको यथाशक्ति क्रियात्मक सहयोग देना; जिनको सहयोग देते हैं उनको भगवान् मानना; बदलेमें उनसे, अन्य किसीसे कभी अपने लिये कुछ न चाहना। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी वाणी है—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(रा०च०मा० ३।३१।९, ३।३३, ४।३)

इसका अर्थ है—जिनके मनमें दूसरेका हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिये जगत्में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है।

मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणों (तथा प्राणिमात्र)-की सेवा करता है, मुझसमेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वशमें हो जाते हैं।

हे हनुमान्! अनन्य भक्त वही है, जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्का रूप है।

विवेक—विवेकका सदुपयोग है—मोह, ममता, कामना, राग, द्वेष और अहंकारका त्याग कर देना; यह अनुभव कर लेना कि मैं शरीर नहीं हूँ। मोह, ममताका अर्थ है—नाशवान् वस्तुओं, व्यक्तियों, अपने शरीर और इन्द्रियोंके बारेमें मनमें यह भावना रखना कि ये सब मेरी व्यक्तिगत चीजें हैं, इनका मालिक मैं हूँ, ये सब मेरे काम आयेंगी, ये मेरे लिये बहुत उपयोगी हैं। कामनाका अर्थ है—दूसरे मेरे साथ वैसा ही करें जैसा मैं चाहूँ, वैसा कभी नहीं करें जो मैं नहीं चाहता हूँ। 'दूसरे' का अर्थ उन सबसे है, जिनके साथ मैं सदैव नहीं रह सकता और जो मेरे साथ सदैव नहीं रह सकते। रागका अर्थ है—नाशवान् वस्तुओं एवं व्यक्तियोंमें अपने सुखके लिये मनमें रहनेवाली प्रियता एवं आवश्यकता। द्वेषका अर्थ है—दूसरोंको बुरा समझना, उनका बुरा सोचना, उनका बुरा करना। अहंकारका अर्थ है—मैंपन या कर्तापनका आभास। मनमें यह भाव रहना कि अमुक कार्य मैंने किया, अमुक कार्य मैंने नहीं किया। विवेकके प्रकाशमें विचार करके निर्मम, निष्काम, अहंकाररहित होकर अपनेको शरीर न मानना विवेकका सदुपयोग है।

विश्वास—विश्वासका सदुपयोग है—बिना देखे, बिना जाने, बिना मिले परमात्माके अस्तित्व, महिमा एवं अपनत्वको स्वीकार करके उनके सहारे निश्चिन्त, निर्भय, निडर, निर्मम, निष्काम, निर्मल, निर्विकार, निर्वैर, निरभिमान हो जाना। चार बातोंको स्वीकार कर लेना—पहली—इस जगत्के मालिक परमात्मा हैं, मेरे पास जो शरीर, स्वजन, सामान, सम्पत्ति है, उसके मालिक भी परमात्मा हैं। दूसरी—उनका अनुकूल विधान तो हितकारी है ही, प्रतिकूल विधान भी परम मंगलकारी है। तीसरी—वे समर्थ हैं, सदैव हैं, सबके हैं, सबमें हैं, सर्वत्र हैं, सर्वज्ञ हैं, परम सुहृद् हैं, पतितपावन हैं, दीनबन्धु हैं। ऐसे परमात्मा मेरे मालिक हैं, स्वामी हैं, माता-पिता हैं, उन्हींके साथ मेरा नित्य, सजातीय एवं आत्मीय सम्बन्ध है। चौथी—जगत् उनका प्रकट स्वरूप है। जगत्के रूपमें जो कुछ दिखायी दे रहा है, वह परमात्मरूप है और उनकी लीला है।

सेवासे आपको परमशान्ति; मोह-ममताके त्यागसे जीवन्मुक्ति और भगवान्के अस्तित्व, महत्त्व आदिको माननेसे भगवद्भक्ति मिल जायगी। यही आपके इस अनमोल मानव-जीवनकी सर्वोच्च सफलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँकी लीला

(श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम० ए०, बी० एस-सी०)

मेरे कमरेमें कुछ दिनोंसे चिड़ियोंके एक जोड़ेने घोंसला बना रखा था। एक दिन जब मैं दो बजे कालेजसे वापस आया तब मैंने देखा कि कमरेमें उन चिड़ियोंकी कृपासे बड़ा कूड़ा पड़ा हुआ है। मैंने उस घोंसलेकी ओर ऊपर सिर उठाकर देखा, उसमेंसे एक लम्बी सुतली और बहुत-से तिनके इत्यादि लटके हुए थे। मेरे मित्रोंका कहना है कि मैं अपने जीवनमें सौन्दर्यका कुछ विचार रखता हूँ। ऐसे व्यक्तिके लिये वह कमरेमें बिखरा कूड़ा और वह लटकती सुतली तथा तिनकोंका ढेर जो उस घोंसलेसे गिरनेके शुभ मुहूर्तकी प्रतीक्षा करता दिखलायी दे रहा था, क्रोधजनक हुए, मुझे प्यास लग रही थी। नौकरको आवाज दी। वह भी अकस्मात् बहरा हो गया मालूम पड़ता था, मेरा पारा चढ़ा। स्वयं पानी पीने उठा। मेरा पानी पीनेका एक खास शीशेका गिलास है जो कि खास तौरपर साबुनसे साफ किये जानेपर एक खास स्थानपर रखा रहता है। इन 'खास' बातोंसे पाठक समझ गये होंगे कि मेरा मिजाज भी कुछ 'खास' तरहका है। वह गिलासका स्थान उस घोंसलेवाले कोनेके पास है। चिड़ियोंका वह जोड़ा इतना मूर्ख था कि उनको यह ज्ञान नहीं था कि वह कोना हुक्कू साहबके गिलासका स्थान है और उन्होंने वहीं अपना घोंसला अज्ञानतावश बनाया तो जब मैं पानी पीने उठा और गिलासकी ओर देखा उसे मैंने तिनकोंसे काफी भरा पाया। मेरा पारा चढ़ना तो शुरू हो ही चुका था। ऊपर देखा तो लटकती हवामें मस्त झूलती वह गन्दी सुतली। नीचे आँखें की तो कमरेमें बिखरे कूड़ेके दर्शन हुए, मैंने पानी नहीं पिया। कुछ इधर देखा कुछ उधर। फिर अपनी पुस्तकका जो अध्याय मैं कालेज जाते समय अपूर्ण छोड़ गया था, उसे पूरा करने बैठ गया।

थोड़ी देरमें राम जाने कहाँसे १५-२० बरैंये मेरे कमरेमें आ गयीं। वे इधर-उधर छतके पास उड़ती अपना स्थान कोई नये घरके लिये ढूँढ़ रही थीं। मुझे इनके स्वागत करनेका कोई लालच नहीं हुआ। मैं इनको देख रहा था। मन-ही-मन झुँझला रहा था कि इतनेमें घोंसलेसे तिनकोंका ढेर नीचे गिर गया और बमके गोलेकी तरह बिखर गया। मैंने नौकरको बड़े जोरसे आवाज दी।

वह दौड़ता हुआ ऊपर आया। उसने मेरी सूरत देखी एवं कूड़ा और वह समझ गया। भागकर नीचे गया और झाड़ू लाकर लगा साफ करने।

लेकिन मेरे चित्तको शान्ति नहीं हुई। बरैंयोंका नम्बर बढ़ गया था। उधर हवामें लटकती बलखाती वह सुतली मेरी सफाईको, मेरे सौन्दर्य-प्रेमको चुनौती देती हुई दिखायी दे रही थी। इस घोंसलेके झगड़ेकी ही वजहसे मैं अभीतक पानी भी नहीं पी पाया था। मैंने नौकरसे कहा 'बाँस लाकर इसे साफ कर डालो।' वह बाँस चट ले आया और लगा घोंसला नोचने।

कुछ देर बाद घोंसला नुच गया। मेरा कमरा साफ हो गया। बरैंया जो राम जाने कहाँसे मेरी झुँझलाहट और उन चिड़ियोंके प्रति क्रोध भड़काने आ गयी थीं, अपने-आप लोप हो गयीं। मैं फिर पढ़ने बैठ गया।

लेकिन मैं काम नहीं कर पाया। चिड़ियाँ तिनका लेकर आयी चूँ-चूँ-चूँ-चूँ। मैंने उठकर उसे भगा दिया। मैं बैठा ही था कि चिड़ियाँ और उसका चिड्डा दोनों कमरेमें घुस पड़े और चूँ-चूँका शोर मचाया। मैं फिर उठा और उनको कमरेसे निकाल डालनेकी कार्यवाही आरम्भ की। लेकिन वे कमरेसे न गये। इधरसे उड़कर उधर, उधरसे उड़कर इधर चूँ-चूँ-चूँ-चूँ। मैं कमरेमें दौड़ता रहा और वे उड़ते रहे। लेकिन मैंने उनको निकाल ही डाला। उनके निकाल देनेपर मेरे बल-बुद्धिजनित अभिमानको सन्तोष मिला।

मैंने मुश्किलसे दो-तीन लाइन लिखी होगी कि वे पति-पत्नी फिर कमरेमें घुस आये और मेरी ओर देख-देखकर अपने चूँ-चूँके नारे लगाये। मुझे पिछली दौड़ने पसीने-पसीने कर दिया था। इसलिये मैंने अपनी बुद्धिकी शरण ली। उसने सुझाया कि इस तरह चिड़ियोंके पीछे दौड़ें, यह तो अपमानजनक है। इसलिये मैं बेबीके खेलनेकी रबड़की गेंद ले आया।

जहाँ बैठता हूँ वहीं बैठकर उन चिड़ियोंके पास दीवारपर तसवीरें बचाकर गेंद मार देता। वे बेचारी उड़ जातीं और वह गेंद सुदर्शनचक्रकी तरह मेरे पास आ जाती। थोड़ी देरमें वे कमरेके बाहर उड़ गयीं। लेकिन फिर आयीं। फिर मैंने अपने रबड़के गेंदरूपी चक्रसे उन्हें भगा दिया। यों ही कोई ३५-४० मिनटतक मेरी उनकी लड़ाई होती रही।

फिर वे नहीं आयीं। शायद वे मुझे आखिरकार पहचान गयी थीं। वे मुझे मनुष्य समझी थीं। मेरा घर अपना घर उन्होंने समझा था, लेकिन मैं तो राक्षस निकला!

जब गोधूलिवेला हुई तो मैं उठा, पानी पीनेके लिये गिलासके पास गया। लेकिन गिलास न उठा पाया, सब चिड़ियाँ बसेरेको जा चुकी थीं, सड़कपर भी सन्नाटा था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साँझकी उस धुँधली शान्तिमें एक हल्का-हल्का चूँ-चूँका शब्द मेरे कानोंमें पड़ा। वह स्वर ऐसे ही धीरे-धीरे हो रहा था जैसे कि पाप करनेपर किसीकी आत्मा उसे उस दुष्कर्मके लिये चुटकी काट रही हो। उस घोंसलेमें चिड़ियोंके अनाथ बच्चे थे। उनकी हल्की पुकारने मेरे हृदयमें तीव्र वेदना उत्पन्न कर दी।

मेरी राक्षसी प्रकृतिने इस विचारको मनमें आनेका अवसर नहीं दिया कि जिस घोंसलेको मैं नुचवा रहा था, उसमें बच्चे भी हो सकते थे। मेरे उत्साही नौकरने खूब कुरेद-कुरेदकर घोंसला नोच फेंका। लेकिन माँ दुर्गाकी इच्छा यह थी कि वे जीवें! 'जाको राखे साइयाँ'।

जितना मैंने उनके विषयमें सोचा, उतनी ही मेरी वेदना बढ़ती गयी। वे निस्सहाय बच्चे! उनके माँ-बाप कैसे दुःखमें पड़े होंगे! अब मैं समझा कि वे दोनों मेरे बार-बार उड़ा देनेपर भी क्यों वापस आ-आकर चिल्लाया करते थे। शायद वे अपनी भाषामें मेरे कार्यका विरोध कर रहे थे, शायद वे मुझसे विनती कर रहे थे कि हम माँ-बाप हैं, तुम्हें माँ भगवतीने मनुष्य बनाया है, दया करो, शायद वे रो-रोकर मुझसे अनुरोध कर रहे थे। लेकिन उस समय मैं तो ऐसा राक्षस हो गया था कि अगर उनके आँसू मैं देख भी पाता तो यह विश्वास न करता कि वे आँसू हैं, कुछ मूल्य रखते हैं।

वे बच्चे! अगर वे आदमी होते तो चिल्लाकर जो उनपर निर्दयता की गयी थी, उसका ज्ञान लोगोंको कराते। उनकी सहानुभूतिकी भीख पाकर कृतार्थ होते। लेकिन वे तो चिड़िया-चिड्डे थे और बच्चे! इस मानव-अभिमान, मानव-स्वार्थ, मानव-क्रूरतासने संसारमें दुःखियोंकी कौन सुनता है! और फिर इनकी! मेरा हृदय जिसपर उनके माँ-बापकी बार-बारकी चिल्लाहट न असर कर सकी, उनकी हल्की, निस्सहायसूचक आवाजने पिघला दिया। मेरा जी चाहा कि मैं उनकी सहायता करूँ, लेकिन मैं उनको कैसे समझाता, कैसे सान्त्वना देता? कैसे विश्वास दिलाता कि तुम्हारे माँ-बाप कल प्रातःकाल फिर आ जायेंगे? क्या वे फिर आयेंगे? मुझे तो इसमें भी सन्देह था। मैंने उनको इतना तंग किया था कि अब शायद वे भूलसे भी उस कमरेमें आनेका विचार करनेका साहस न करेंगे। वे चिड़ियोंके बच्चे मेरे ही कमरेमें थे। मैं उनकी सहायता करनेको अधीर था, लेकिन मुझसे १५ फीट दूर होनेपर भी वे मुझसे उतने ही दूर थे, जैसे कि दूसरे लोकमें!

अँधेरेके साथ-साथ मेरा दुःख बढ़ता गया। उन चिड़िया-चिड्डे माँ-बापकी अकथ निराशामय वेदना रात्रिकी कालिमा बन मेरे चारों ओर छा गयी।

सवेरा हुआ, लेकिन वे चिड़ियाँ-चिड्डे न आये। मुझे उनके आनेकी आशा अब बहुत कम हो गयी थी। नौ बजेतक वे नहीं आये, अब क्या आयेंगे? शायद आ ही जायँ, इसलिये मैं कमरेकी एक खिड़की खुली छोड़कर कालेज चला गया। वहाँसे एक बजे बैंक गया। इतनेमें बड़े जोरसे घटा आयी। मैंने बैंकसे निकलकर पास ही एक मित्रके घरमें शरण ली। पानी मूसलाधार बरसने लगा। मैं बातें कर रहा था। पानी और हवाकी तेजी बढ़ती गयी। जहाँ मैं बैठा था, वहाँतक बौछार सामनेका कमरा पार करके आने लगी। मेरे मित्र उस कमरेके दरवाजे बन्द करने दौड़े। मैंने उनसे पूछा, 'पूरब किधर है?' उन्होंने हाथ उठाकर कहा, 'इधर'। मैं सन्नाटेमें आ गया; क्योंकि इस हिसाबसे बौछार उधरसे ही आ रही थी जिस दिशाकी कमरेकी खिड़की मैं चिड़ियोंके आनेके लिये खुली छोड़कर आया था। इस खिड़कीसे लगा एक छोटा बेबीका पलंग था। बेबी तो आजकल यहाँ था नहीं; क्योंकि मेरी स्त्री अपने मायके गयी हुई थीं। कमरेमें मेरी किताबें और कागज बिखरे पड़े थे और खिड़कीके पासवाले पलंगपर भी कुछ कीमती चीजें, पड़ी थीं। ऐसी तेज बौछारमें वे सब खराब हो गयी होंगी। मुझे विशेष दुःख अपनी तीन छोटी-छोटी कापियोंका था। ये मेरे कई बरसोंकी मेहनतकी निशानी थीं। इनमें मेरे नोट्स थे—ये सब जरूर खराब हो गये होंगे। मैं उठ खड़ा हुआ। कहा, 'जाता हूँ।' मेरे मित्रने कहा, 'अरे, ऐसी बारिशमें कहाँ जाइयेगा?' लेकिन मैंने न सुनी। बस चल दिया। कालेज जाते समय बड़ी करारी धूप निकली हुई थी, इसलिये आज बरसाती नहीं ले गया था। भीगता-भीगता घर आया। रास्तेमें अपनी किताबोंकी, उन तीन छोटी कापियोंकी, खिड़कीसे पासवाले पलंगपर रखी चीजोंकी दुर्दशाको सोचता आया। मुझे कभी-कभी अपनी मूर्खतापर दुःख भी होता कि मैंने खिड़की खुली क्यों छोड़ी। घर पहुँचते ही सीधा ऊपर दौड़ा। जो बौछार एक कमरा पार करके दूसरे कमरेमें मेरे पासतक आयी थी, ऐसी बौछारने उस खुली खिड़कीसे घुसकर मेरी सब चीजें, रद्दी कर दी होंगी। वह मेरे कल शामके पापका परिणाम था—इसी विचारमें मग्न मैंने ताला खोला। दरवाजोंको धक्का दिया। कमरा सूखा था। खिड़की खुली थी। ऊपर देखा तो वे माँ-बाप चिड़ियाँ और चिड्डे चुपचाप अपने घोंसलेके स्थानपर बैठे थे। मैं चकित रह गया। मुझे पापका परिणाम जैसा मैं समझा था, नहीं मिला। मैंने माँ दुर्गाको प्रणाम किया। उन्होंने मेरी रातकी वेदना पश्चात्तापस्वरूपमें स्वीकार कर ली थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मका प्रधान स्तम्भ—अक्रोध

(श्रीरघुनाथप्रसादजी पाठक)

क्रोधादि दोषोंको छोड़कर शान्त्यादि गुणोंको ग्रहण करना अक्रोध कहलाता है। क्रोध मनके उन विकारोंमेंसे एक है, जो मनुष्यको धर्ममार्गसे च्युत कर देते हैं।

क्रोधके अभिशाप

एक स्त्रीने एक नेवला पाल रखा था, जिसे वह बहुत प्यार करती थी। एक दिन वह अपने बच्चेको पालनेमें सुलाकर और उसे नेवलेकी देख-रेखमें छोड़कर कुएँसे पानी लेने गयी। इसी बीचमें एक भयंकर साँप कमरेमें आ निकला। ज्यों ही उसने बच्चेको खाना चाहा, त्यों ही नेवलेने उसपर हमला कर दिया। दोनोंमें देरतक लड़ाई हुई और अन्तमें नेवला विजयी रहा। उसने साँपको मारकर उसके कई टुकड़े कर डाले। जब वह स्त्री पानी भरकर लौटी और नेवलेको लहूलुहान पाया, तब उसने सोचा कि नेवलेने उसके बच्चेको मार डाला है। क्रोधमें आकर उसने नेवलेपर घड़ा दे मारा और वह तत्काल मर गया। नेवलेको मारकर जब वह स्त्री कमरेमें घुसी, बच्चेके पालनेके पास साँपके टुकड़े देखे और अपने बच्चेको ठीक पाया, तब उसे अपनी भूल ज्ञात हुई और वह फूट-फूटकर रोने लगी। निश्चय ही क्रोधका आरम्भ मूर्खता और अन्त पश्चात्तापके साथ हुआ करता है। क्रोधकी अवस्थामें मनुष्यका विवेक जाता रहता है और मनुष्य स्वयं ऐसी अवस्था उत्पन्न कर लेता है, जबकि वह क्रोधके पात्रके स्थानमें स्वयं अपनेपर क्रोध करने लग जाता है। अतः क्रोध आ जानेपर मनुष्यको रुककर पहले उसके परिणामोंपर विचार कर लेना चाहिये। जो व्यक्ति विवेकके द्वारा अपने क्रोधपर विजय प्राप्त करते हैं, वे मनुष्योंमें उत्तम माने जाते हैं।

क्रोध एक प्रकारका नशा होता है

क्रोध एक प्रकारका नशा होता है, जो मनुष्यके आभ्यन्तरको मनुष्यसे तो छिपाता है, परंतु दूसरोंपर प्रकट कर देता है। क्रोधीजन अपनी आत्माका विकास करनेमें न केवल असमर्थ ही रहते हैं, प्रत्युत अपनी आत्माके विनाशका कारण बनकर दुःख पाते हैं। गीताकारने ठीक ही कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥

अर्थात् काम, क्रोध तथा लोभ—ये आत्मनाशक तथा नरक (दुःखमयी गति)-के तीन प्रकारके द्वार हैं; इसलिये मनुष्य इन तीनोंका त्याग करे।

क्रोध स्वास्थ्यविनाशक है

क्रोधका मनुष्यके स्वास्थ्यपर भी बुरा प्रभाव पड़ता है, इससे शरीरकी शोभा नष्ट होती है और आयु क्षीण होती है। क्रोधसे पराभूत हुआ सुन्दर-से-सुन्दर व्यक्ति भी असुन्दर दीख पड़ता है।

क्रोध ही अपना शत्रु होता है

काम और लोभकी भाँति क्रोध भी मनुष्यका शत्रु होता है, जिसके कारण मनुष्यके अमित्रोंकी संख्या बढ़ती और मित्रोंकी संख्या घटती जाती है, परिणामस्वरूप मनुष्यका सामाजिक एवं वैयक्तिक विकास कुण्ठित हो जाता है। इतना ही नहीं, अपने भी पराये होकर मनुष्यके अनिष्टका कारण बन जाते हैं। रावणके क्रोधने विभीषणको पराया बनाकर उसके सर्वनाशकी भूमि तैयार कर दी थी। रावणने अहंकार, कामुकता, पशुबल और क्रोधके वशीभूत होकर जो आग जलायी, उससे बचनेके लिये महात्मा विभीषणने सत्प्रयत्न किया, परंतु रावणको अपनी जलायी हुई आगमें जलकर नष्ट होना था और वह नष्ट होकर रहा। बालिने क्रोध और अनीतिका आश्रय लेकर अपने सहोदर भाई सुग्रीवपर ज्यादती की, जिसका परिणाम प्रायः सभी जानते हैं। यदि सुग्रीवके साथ अन्याय न हुआ होता और बालि उसके उद्बोधनको मानकर अनीतिका मार्ग त्याग देता तो वह रामके हाथों न मारा जाता। विभीषण और सुग्रीव रावण और बालिके शत्रु न थे, अपितु इन दोनोंका पशुबल और क्रोध ही उनका शत्रु था।

क्रोधसे उत्पन्न आठ दुर्गुण

चुगली करना, बलात्कार करना, वैर रखना, ईर्ष्या करना, गुणोंमें दोषारोपण करना, अधर्मयुक्त बुरे कामोंमें धनादि व्यय करना, कठोर वचन बोलना और बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराधके कड़ा वचन बोलना या विशेष दण्ड देना—ये आठ दुर्गुण क्रोधसे उत्पन्न होते हैं।

चुगली करना, पीठ पीछे किसीकी बुराई करना और कड़वे वचन बोलना—ये दुर्गुण वाणीके विष समझे जाते हैं। कल्याणके अभिलाषियोंको इस विषसे बचना चाहिये। चुगली करना या पीठ पीछे बुराई करना कायरता है। जिन लोगोंमें नैतिक बल नहीं होता, वे ही इस प्रकारके निन्दनीय व्यापारमें रत होते हैं। जिन व्यक्तियोंसे किसीकी चुगली या निन्दा की जाती है, यदि वे समझदार हों तो उनकी दृष्टिमें चुगली या निन्दा करनेवालोंका कोई मूल्य नहीं होता। निर्बुद्धि व्यक्ति ही चुगलियों और परनिन्दासे प्रभावित होकर अपना अहित कर बैठते हैं। ईर्ष्या और वैरकी आगमें दूसरोंको जलानेके बजाय मनुष्य स्वयं जलता है और अपना विनाश उपस्थित करता है। कठोर वचनोंके प्रयोगसे मनुष्य शान्त व्यक्तियोंके पुण्यमें और अपने पापमें वृद्धि कर देता है। हम ऐसे व्यक्तियोंको जानते हैं, जिनमें आपसमें बड़ा प्रेम था। दुर्भाग्यसे किसी बातपर उनमें मनमुटाव हुआ और तीखे एवं कड़वे वचनोंके प्रयोगने उन्हें एक-दूसरेसे ऐसा अलग कर दिया, मानो उनमें कभी प्रेम रहा ही न था। तभी कहा जाता है कि तलवारका घाव भर सकता है, परंतु वाणीका घाव कभी नहीं भरता।

क्रोधका स्वभाव मत बनाओ

क्रोध छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े प्रायः सब प्राणियोंमें होता है। बहुतसे व्यक्ति जरा-जरा-सी बातपर क्रोध कर बैठते हैं। बहुतसे व्यक्तियोंको छोटी बातोंपर क्रोध नहीं आता और आता भी है तो बहुत कम। बहुत-से व्यक्तियोंको बहुत देरमें क्रोध आता है। जरा-जरा-सी बातपर अकारण क्रोध करना लड़कपन होता है। क्रोधमें आपेसे बाहर होकर भयानक रूप धारण करना पाशविक माना जाता है। क्रोधको निरन्तर बनाये रखना राक्षसोंका स्वभाव और व्यवहार होता है। छोटी-छोटी बातोंपर आवेशमें आ जानेसे क्रोधका स्वभाव बन जाया करता है, जिसका अन्त प्रायः कटुता और शत्रुतामें होता है। बढ़ते हुए क्रोधको दबा लेना बुद्धिमत्ता और गौरवपूर्ण होता है और ऐसे व्यक्ति वीर और दिव्य होते हैं। क्रोधको दबाना अच्छा और क्रोधको रोकना उससे भी अच्छा होता है। गुणवान् और वीरपुरुष हीन गुणवालोंपर क्रोध नहीं किया करते। ऐसे ही व्यक्तियोंको बहुत कम क्रोध आता है। प्रसन्नचित्त, बुद्धिमान् और तबीअतमें लापरवाह व्यक्तियोंका क्रोध विवेकपूर्ण हुआ करता है और वह बहुत देरमें आता और बहुत शीघ्र समाप्त हो जाता है। निर्बुद्धि और कायर व्यक्ति जब भूल करता है और उस भूलको स्वीकार नहीं करता, तब वह सदा तैशमें आ जाता है। वह अपनी बुद्धिकी कमीको क्रोधके द्वारा पूरा करनेका विफल प्रयत्न करता है। बुद्धिमान् व्यक्तियोंके क्रोधका गुबार निकल जानेपर वह क्षमाका रूप ग्रहण कर लेता है, परंतु क्रोधको छिपानेसे वह प्रायः बदलेकी भावनामें परिणत हो जाता है। क्रोधको मनमें रखकर उसे पी लेनेसे कम समझदार व्यक्ति मन-ही-मन कुढ़ता है, जिससे उसके स्वास्थ्यपर घातक प्रभाव पड़ता है। क्रोधको पी जाना अच्छा है, परंतु यह अत्यन्त समझदार और सज्जन पुरुषोंका काम होता है। वे इस बातसे प्रभावित होते हैं कि मनुष्यको शत्रुता मोल लेने और दूसरोंकी गलतियों एवं अपराधोंका लेखा रखनेके लिये ही जीवन प्रदान नहीं किया जाता।

क्रोध कब आवश्यक होता है?

सुधार और नियन्त्रणके लिये क्रोध आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी होता है। उस अवस्थामें वह विकारोंसे नहीं, अपितु उच्च भावनाओंसे अर्थात् हितभावनासे प्रेरित और शासित रहता है। हितभावनासे किये जानेवाले क्रोधमें अन्तर्दाह—हृदयमें जलन नहीं होती। यही उसकी पहचान है। वैर, द्वेष, बदलेकी भावना और अन्य निम्न विकारोंसे प्रेरित होनेपर वह दोषपूर्ण बन जाता है। सुधार और हितसे प्रेरित सकारण क्रोधमें पूर्ण सामर्थ्यका होना आवश्यक है। तभी उसकी उपादेयता होती है। इसके लिये क्रोध गुणोंसे तेजोमय बनना चाहिये।

क्रोध किन-किनसे न करना चाहिये?

क्रोध तो किसीपर भी नहीं करना चाहिये; परंतु निर्बलों, असहायों, रोगियों, गुरुजनों, बूढ़ों, बच्चों और स्त्रियोंपर तो क्रोध करनेसे सदा ही बचना चाहिये। वास्तवमें तो क्रोधको पूर्ण नियन्त्रणमें रखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालिवधके पश्चात् राज्य पा लेनेपर सुग्रीव भोगविलासमें निमग्न होकर सीताजीकी खोजके कार्यको भूल गया। लक्ष्मण उसकी कृतघ्नताका दण्ड देनेके लिये किष्किन्धापुरीमें गये। जब सुग्रीवको अपने भृत्योंसे यह पता लगा कि लक्ष्मणने रौद्ररूप धारण कर रखा है तो वह बहुत डरा और लक्ष्मणके सामने जानेका उसे साहस न हुआ। उसने पास बुलाकर ताराको लक्ष्मणका क्रोध शान्त करनेके लिये प्रेरणा की। परंतु वह भी लक्ष्मणके सामने जाते हुए डरी और जब वह जानेसे इनकार करने लगी, तब सुग्रीवने कहा—'डरो मत, लक्ष्मण महान् पुरुष हैं।' वे स्त्रियोंपर कोप नहीं किया करते।* तारा गयी और ताराके सामने होते ही लक्ष्मणका क्रोध शान्त हो गया।

बहुत-से व्यक्ति अपनेसे निर्बल व्यक्तियोंपर अपना क्रोध निकाला करते हैं। यह उनकी दुर्बलता तथा बड़ी भारी भूल है।

सहनशील व्यक्तिके क्रोधसे सावधान रहो

सहनशील व्यक्तिको बहुत कम और बहुत देरमें क्रोध आता है। ऐसे व्यक्तियोंके क्रोधसे बहुत सावधान रहना चाहिये; क्योंकि वह क्रोध भयंकर होनेके साथ-साथ बहुत देरमें शान्त होता है। सहनशीलताका दुरुपयोग होनेपर वह कभी-कभी बड़ी भयावनी आँधीका रूप ग्रहण कर लेता है।

अंग्रेजोंने महारानी लक्ष्मीबाईके दत्तक पुत्रको राज्याधिकारसे वंचित किया। महारानी इस अन्यायको सहन कर गयीं। इतना होनेपर भी डलहौजीने रानीका राज्य अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया। इस अत्याचारपर भी वे मौन रहीं। महारानीने अपने दत्तक पुत्रके उपनयन-संस्कारके लिये उसके लिये सुरक्षित छः लाख रुपयेमेंसे एक लाख रुपयेकी माँग की। दुष्ट अंग्रेज शासकोंने इस राशिको भी देनेसे इनकार कर दिया। रानीने आग्रह किया तो उस राशिको देनेकी यह शर्त रखी गयी कि यदि कोई महाजन अपनी जमानत देनेको उद्यत हो तो यह राशि दी जा सकती है। रानीने अपमानका यह घूँट भी शान्तिपूर्वक पी लिया। जमानत दी गयी और रानीने राशि प्राप्त करके अपने प्यारे पुत्रका उपनयन-संस्कार किया। रानी उस समयतक भी अपनी सहनशीलताका परिचय देती हुई अंग्रेजोंके प्रति निष्ठावान् रहीं, परंतु जब कुचक्रियोंके षड्यन्त्र और शासकोंकी अदूरदर्शिताके कारण वह देवी राजविद्रोही घोषित कर दी गयीं, जिन्होंने अंग्रेज स्त्री-बच्चोंको अपने महलमें शरण देकर उनकी प्राण-रक्षा की थी, तब उनकी सहनशीलताका बाँध टूटते देर न लगी और उन्होंने जो भयंकर रूप धारण किया, वह इतिहासके प्रत्येक विद्यार्थीको ज्ञात है। जिन महापुरुषों और वीरांगनाओंने अंग्रेजी दासतासे भारतको मुक्त करनेके सत्प्रयत्न एवं अपने रक्तसे स्वराज्य-भवनकी नींव पक्की की, उनमें लक्ष्मीबाईका नाम मूर्धन्य स्थान रखता है।

क्रोधको शान्त करनेके उपाय

क्रोधका सामना क्रोधसे नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे क्रोध शान्त होनेके स्थानमें बढ़ता है, घटता नहीं। मीठे और कोमल शब्दोंसे क्रोध सहज ही शान्त हो जाता है। कहावत है कि कोमल वचन पत्थरको भी पिघला देते हैं। विलम्ब क्रोधकी सर्वोत्तम दवा मानी जाती है। जब मनुष्य स्वयं क्रोधका शिकार होने लगे, तब उसे ठंडा पानी पीना चाहिये या दसतक गिनती गिन लेनी चाहिये। यदि क्रोध चढ़ता जाय तो १०० तक गिनती गिन लेनेसे क्रोध शान्त होने लगता है। क्रोधसे पागल हो जानेपर मनुष्यको यह सोचना चाहिये कि मेरे क्षणभरके क्रोधसे मेरा पूरा दिन, पूरा सप्ताह या इससे अधिक समय अशान्त बना रह सकता है। मेरा जीवन क्षणभंगुर है। परमात्मा मेरे इस अवांछनीय व्यवहारको देख रहा है, जो मुझसे रुष्ट हो जायगा।

उदाहरण

आर्यसमाजके प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जब गुरु विरजानन्दजीके यहाँ पढ़ते थे, तब एक दिन वे किसी अपराधपर दयानन्दसे रुष्ट होकर उन्हें पीटने लगे। विद्यार्थी दयानन्दने गुरुदेवके क्रोधको शान्त करनेके लिये कहा—'महाराज! क्षमा करें, मुझे पीटते हुए आपके हाथोंको कष्ट हो रहा होगा।' ज्यों ही दयानन्दके मुखसे ये शब्द निकले, त्यों ही गुरुदेवका क्रोध पानी-पानी हो गया।

नादिरशाहकी क्रोधाग्निमें दिल्ली जल रही थी। बड़े भयंकररूपमें कत्ले-आम जारी था। हताहतोंके करुण-क्रन्दन और चीत्कारसे आकाश भी रो रहा था। नादिरशाहके

*त्वद्दर्शने विशुद्धात्मा न स्म कोपं करिष्यति। न हि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम्॥
(वाल्मीकिरामायण, किष्किन्धा०, सर्ग ३३ श्लो० ३६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खूनी सैनिक लोगोंके रक्तसे दिल खोलकर फाग खेल रहे थे। निस्सहाय मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रनवासमें पड़ा अपनी बेबसीका मरसिया (करुणरसकी कविता) पढ़ रहा था। नादिरशाहके हुक्मपर वह बाहर लाया गया और वह सिर झुकाकर नादिरशाहके पास बैठ गया। हरमसरा (अन्त:पुर-रनवास)-में विलास करनेवाले बादशाहको नादिरशाहकी अविनयपूर्ण बातें सुननेको मिलीं, पर मजाल न थी कि जबान खोल सके। उसे अपनी ही जानके लाले पड़े थे। पीड़ित प्रजाकी रक्षा कौन करे? वह सोचता था मेरे मुँहसे कुछ निकले और वह मुझीको डाँट बैठे तो?

अन्तमें जब सेनाकी पैशाचिक क्रूरता पराकाष्ठाको पहुँच गयी, बादशाहके वजीरसे न रहा गया। वह जानपर खेलकर नादिरशाहके सामने पहुँचा और उसने यह शेर पढ़ा—

कसे न मांद कि दीगर बतेगे नाज कुशी।
मगर कि जिंदा कुनी खल्क रा ब बाज कुशी॥

अर्थात् तेरी निगाहोंकी तलवारसे कोई नहीं बचा। अब यही उपाय है कि मुर्दोंको फिर जिलाकर कत्ल कर।

शेरने दिलपर चोट की। पत्थरमें भी सुराख होते हैं। पहाड़ोंमें भी हरियाली होती है। पाषाण-हृदयोंमें भी रस होता है। इस शेरने पत्थर को पिघला दिया। नादिरशाहने सेनापतिको बुलाकर कत्ले-आम बन्द करनेका हुक्म दिया। एकदम तलवारें म्यानमें चली गयीं। कातिलोंके उठे हुए हाथ उठे ही रह गये। जो सिपाही जहाँ था, वहीं बुत बन गया।

उपसंहार

संसारमें लोगोंके दिलोंपर शान्ति और अक्रोधका शासन हुआ करता है—शान्त और चरित्रवान् व्यक्तियोंको ही सुख और आदर प्राप्त होता है। वे व्यक्ति धन्य हैं, जो क्रोधको रोककर शान्तिका प्रसाद देते हैं। ऐसे महाभागोंको महात्माओंकी पदवी मिलती है। मानव-जीवनकी सफलता और सुन्दरता समाजमें भय और आतंक व्याप्त करनेमें नहीं, अपितु शान्ति और आनन्दकी धारा प्रवाहित करनेमें निहित है। जो व्यक्ति संसारमें भय, आतंक और अत्याचार व्याप्त करते हैं, लोग उनके नामपर थूकते हैं और वे अपने ही पापसे विनष्ट हो जाते हैं।

महावीरदर्शन—पंच महाव्रत

(श्रीप्रकाशजी रातड़िया)

तीर्थंकर भगवान् महावीरने आत्मकल्याणके लिये पाँच महाव्रतोंका प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य—इन पाँच महाव्रतोंको मन, वचन और कर्मसे अपनानेपर प्रत्येक आत्मा परमात्माके स्वरूपमें परिणत होनेमें समर्थ है। आत्माकी शाश्वतता और शरीरकी नश्वरता महावीरके चिन्तनका मूल आधार है। महावीरद्वारा प्रतिपादित महाव्रतोंको अपनाकर जीव कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इन महाव्रतोंको संसारकी सभी दार्शनिक विचारधाराओंमें मान्यता प्राप्त है। सनातन धर्ममें यमके रूपमें इनका निरूपण है। यहाँ संक्षेपमें इन्हें प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) अहिंसा—सब प्राणियोंके प्रति स्वयंकी तरह व्यवहार अहिंसा है। जैसा व्यवहार हमें अपने लिये पसन्द है, वैसा व्यवहार हमें सबके प्रति करना चाहिये, यह धारणा स्वाभाविक और न्यायपूर्ण है। संसारके सभी प्राणियोंको अपना जीवन प्रिय है। मरना किसीको पसन्द नहीं है। सुख-शान्ति सब चाहते हैं; दु:ख, वेदना, कष्ट, पीड़ा कोई नहीं चाहता। इसलिये न तो किसी प्राणीको मारना चाहिये, न किसीको पीड़ा पहुँचानी चाहिये। अहिंसाका अर्थ है—प्राणिमात्रके प्रति करुणा, प्रेम, दया, सहयोग, वात्सल्य तथा मैत्रीभावपूर्ण व्यवहार। किसी प्राणीपर शासन करना, उसे दास बनाना, पीड़ा देना, अशान्त करना हिंसा है। यहाँतक कि किसीका मन दु:खाना भी हिंसा है। प्राणियोंके अतिरिक्त अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और वनस्पतिमें विद्यमान जीवनके प्रति भी हमारा व्यवहार अहिंसक रहे, इसपर महावीरने बहुत जोर दिया है। अहिंसक व्यवहार मनुष्य, अन्य प्राणियों, वनस्पतियों एवं पर्यावरणके सह-अस्तित्वके लिये अपरिहार्य है।

(२) सत्य—महावीर स्वामीने मन, वचन और कर्मसे सत्यको अपनानेका उपदेश दिया है। सत्यको परमेश्वर ही माना गया है। सत्यकी साधना करनेवालेके लिये और कोई साधना शेष नहीं रह जाती है। व्यवहारमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य एवं अहिंसाका रास्ता जितना सीधा मालूम होता है, उतना ही कठिन और तलवारकी धारपर चलने-जैसा है। सत्य जीवनका ध्येय तथा अहिंसा उसे पानेका साधन है। आचारांगसूत्रमें कहा गया है कि जो साधक सत्यका अनुसरण करता है, वह मुक्तिका मार्ग प्राप्त कर लेता है। सत्य सदैव विवेकपूर्ण, अहिंसक, पापरहित, मधुर, प्रिय, हितकारी और असंदिग्ध होना चाहिये। सत्य और अहिंसाका आचरण सभी नैतिक मूल्योंका सार है।

(३) अस्तेय—भौतिक साधनोंमें सुखकी सम्भावना तलाश रहे लोग येन-केन-प्रकारेण अधिकाधिक धन अर्जित करनेके उपक्रममें व्यस्त हैं और इस दौड़में हकके बिना ही हड़प लेनेके प्रयासमें जीवनको कटुतापूर्ण, तनावपूर्ण तथा कष्टपूर्ण बना रहे हैं। अस्तेयव्रतके माध्यमसे महावीरने यह सन्देश दिया कि किसीकी भी वस्तुको बिना अनुमति एवं बिना अपने हकके प्राप्त नहीं किया जाय। आत्मकल्याणकी दृष्टिसे अस्तेयव्रतकी महत्ता असंदिग्ध है। साथ-साथ लोक-जीवनमें भी सुख, शान्तिका रास्ता इसमें निहित है। बिना अनुमति वस्तु ले लेना तो प्रत्यक्ष रूपसे दिखायी देनेवाला व्रतभंग है, किंतु जिस चीजकी हमें जरूरत नहीं है, उसे इजाजत लेकर भी अपने कब्जेमें रखना व्रतभंगकी श्रेणीमें ही आयेगा। मनसे भी बिना हककी किसी वस्तुको पानेकी अभिलाषा करना चोरीकी श्रेणीमें आता है। जिस प्रकार उपवास—व्रत करनेवाला कोई व्यक्ति किसी वस्तुको मुँहसे तो नहीं खाये, किंतु दूरसे देखकर स्वादकी कल्पना करे तो भी व्रतभंग होता है, उसी प्रकार अपने अधिकारसे परेकी वस्तुओंके लिये ललचाना अस्तेयव्रतका भंग ही है।

(४) अपरिग्रह—अपरिग्रह अस्तेयव्रतका ही व्यापक स्वरूप है, जिसे स्वतन्त्र महाव्रतके रूपमें प्रतिपादित किया गया है। रोटी, कपड़ा, मकान, दवाई, शिक्षा मनुष्यकी बुनियादी आवश्यकताएँ हैं, किंतु इससे कई गुना अधिक संग्रह करनेकी प्रवृत्तिको अपरिग्रहव्रतके माध्यमसे निषिद्ध किया गया है। वस्तुतः इस विश्वकी सम्पूर्ण सम्पदा किसी एक व्यक्तिको सौंप दी जाय तब भी वह उससे संतुष्ट नहीं हो सकता, यह प्रवृत्ति ही तृष्णा कहलाती है और यह तृष्णा संसारके सारे विवादोंका कारण एवं आत्मकल्याणमें सबसे बड़ी बाधा है। संग्रहकी प्रवृत्तिके कारण ही आर्थिक विपन्नता, ईर्ष्या, द्वेष एवं संघर्ष सर्वत्र व्याप्त है। महावीर-दर्शनमें अहिंसापर सर्वाधिक जोर दिया गया है, किंतु जो व्यक्ति नितान्त परिग्रही है, वह अहिंसक हो ही नहीं सकता; क्योंकि अधिकांश पापोंका कारण परिग्रह ही होता है। सत्य, अहिंसा एवं अस्तेयव्रतका आचरण तभी सम्भव है, जबकि अपरिग्रहको अपनाया जाय। अधिक धन-संग्रहसे अहंकार एवं दुराचार पनपता है। आर्थिक हित प्रभावित होनेपर क्रोध एवं हिंसा-भाव उत्पन्न होते हैं, जो स्वयं एवं समाजके लिये घातक हैं।

(५) ब्रह्मचर्य—पाँचवें महाव्रत ब्रह्मचर्यको सर्वोत्तम तप बताया गया है। वासनाको समस्त लोकमें दुःखका कारण माना गया है। ब्रह्मचर्य-व्रतके साधकको देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस सब नमस्कार करते हैं; क्योंकि यह साधना सर्वोपरि है। सत्य और अहिंसाकी साधना ब्रह्मचर्यके बिना पूर्ण नहीं हो सकती। सभी इन्द्रियोंका संयम ही ब्रह्मचर्यके ध्येयको प्राप्त कर सकता है। आँखोंसे विकार करनेवाली दृष्टि, कानोंसे विकार करनेवाला श्रवण, जीभसे विकार उत्पन्न करनेवाला स्वाद ग्रहण करना इस व्रतके ध्येयमें बाधक हैं। अहिंसाका अर्थ सर्वव्यापी प्रेम है। जब इसे सीमित किया जायगा तो यह सर्वव्यापी नहीं रह जायगा, इसलिये अहिंसाके ध्येयको पानेके लिये भी ब्रह्मचर्य व्रतकी महत्ता बुनियादी है। ब्रह्मचर्यका अर्थ होता है ब्रह्मकी—सत्यकी खोजका आचरण करना। भारतीय दर्शनोंमें इसे सर्वोपरि स्थान प्राप्त है।

प्रत्येक आत्मा अपने कर्मोंके अनुसार परिणाम पाती है। क्रोध, मद, माया, लोभ-जैसे कषायोंमें लिप्त रहनेके कारण उसे मुक्तिके परम आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो पाती। इन कषायोंसे मुक्त होनेके लिये पंच महाव्रत अत्यन्त उपादेय हैं। आत्मकल्याणके साथ-साथ लोक-जीवनमें सुखी, आनन्दपूर्ण एवं सन्तोषप्रद तनावमुक्त जीवनके लिये इन व्रतोंका पालन श्रेष्ठ परिणामदायी होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सब कर फल हरि भगति सुहाई'

(श्रीरामकृष्ण रामानुजदास 'श्रीसन्तजी महाराज')

मानवजीवनकी प्राप्ति एकमात्र भगवान्‌की भक्तिके लिये भगवत्कृपासे होती है, लेकिन सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि मनुष्य अपने जीवनके लक्ष्यको भूलकर अपने शरीर तथा संसारको महत्त्व देकर सारे जीवनको नष्ट कर देता है। साथ ही वह जीवनमें अनेक दुर्गुणों तथा दोषोंको अर्जितकर पहलेसे भी अधिक अपने जीवनको मैला एवं दूषित बना लेता है। अपनेमें भगवान् ही हैं, ऐसा विश्वास न करना पाप है। अपने स्वरूपको जानना जीवनका लक्ष्य है।

धर्मशास्त्रोंके पढ़ने, संतोंका सत्संग करने तथा स्वयं विवेक-बुद्धिका विकास करनेपर मनुष्यको स्वत: ही यह विश्वास हो जाता है कि भगवान्‌की भक्ति करनेमें ही जीवनकी सफलता है। *'भगति सुहाई'* का भाव यही है कि जीवनमें सबसे अधिक सुन्दर और आनन्दप्रद एकमात्र भक्ति ही है। भगवान्‌की भक्तिकी दृष्टिसे हमारा देश महान् है। भगवान् भी हमें सौभाग्यशाली बनानेके लिये इस देशमें बार-बार अवतारके रूपमें आते हैं और आकर इस देशकी गौरवमयी संस्कृतिको उजागर करते हैं। भक्तिकी संस्कृति ही वास्तविक भारतीय संस्कृति है। भक्तिका शाश्वत सुख ही मानवजीवनका सर्वश्रेष्ठ सुख है। मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ सुख—भगवद्भक्ति पानेका अधिकारी है। संसारके सारे धर्मोंसे भी बढ़कर भगवान्‌की भक्ति है। इसी दृष्टिसे भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीता (१८।६६)-में कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

श्रीरामचरितमानस, गीता आदि हमारे सारे धर्मग्रन्थ भक्ति करनेके लिये आदेश देते हैं। हमारे कल्याणके लिये एकमात्र भगवान् ही हैं। उनका भजन करना ही हमारा सच्चा जीवन है। हम सब जीव हैं और हमारी सदा रक्षा करनेके लिये भक्तवत्सल भगवान् हमारे स्वामीके रूपमें रहते हैं। प्रकाशमयी भक्तिचिन्तामणि हमारा अज्ञान तथा विकार दूर करती है तथा हमें सुचरित्रवान् बनाती है।

भक्तिके बिना सारे साधन व्यर्थ बताये गये हैं। जितने भी सत्कर्म और ज्ञान आदि हैं, वे सब साधनके रूपमें भगवान्‌की भक्तिके लिये हैं। भक्तिका मार्ग पूर्ण सुरक्षित है। भक्तिके अन्तर्गत चरित्र, ज्ञान, वैराग्य और मुक्ति सब कुछ है। ज्ञान और वैराग्य तो भक्तिके पुत्र हैं और मुक्ति उसकी दासी है। भक्ति भगवान्‌की परम प्रिया है और वे उसीके वशीभूत रहते हैं। मनुष्यमें भगवान्‌का अनन्य प्रेम तथा शाश्वत आनन्द पानेकी पूर्ण क्षमता है। आनन्दसागर भगवान्‌को जीव भूल गया है, लेकिन भगवद्भक्तिद्वारा वह भगवान्‌के नित्य-योगको अवश्य प्राप्त कर सकता है, इसीलिये भगवद्भक्तिका जीवनमें सबसे अधिक महत्त्व है। इसीका गीत गाते हुए उद्धवजीने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा है—भगवन्! आप स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं। न आपका आदि है और न अन्त है। भक्तिद्वारा ही आप प्राप्य हैं। (श्रीमद्भागवत ११।१६।१)

ज्ञान, वैराग्य आदि सारे साधन वृक्षकी तरह हैं। सारे वृक्ष अन्तमें फल देते हैं। इसी प्रकार सारे साधनोंका फल एकमात्र हरिभक्ति है। फलमें ही रसकी प्राप्ति होती है। अत: भक्तिमें ही परमानन्दरसकी प्राप्ति होती है। इसी भावसे कहा गया है—

जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥

(रा०च०मा० ७।१२६।७)

भगवान् और उनकी भक्ति भावना-प्रधान है। भगवान्‌की भावनामें जीवन जीना आनन्दपूर्वक जीना है। प्रभुभावनाका नाम भगवत्प्रेम है। तुलसीदासजीने भी कहा है—

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

(रा०च०मा० ७।४९।३-४, छन्द ७।९२।४)

इस प्रकार भगवान् भक्तका भाव देखते हैं। भक्तिमें भाव प्रधान होता है। भगवान् सत् हैं। उनसे सम्बन्ध रखनेवाली भावना—भक्ति सत् है। श्रीमद्भागवत (११।१४।१२)-में भगवान् श्रीकृष्णने अपने भक्त उद्धवजीसे कहा है—प्रिय उद्धव! जो सब ओरसे निरपेक्ष—बेपरवाह हो गया है और जिसने शरीर एवं संसारका चिन्तन छोड़ दिया है एवं जिसने मुझको जानकर अपने अन्त:करणको सब प्रकारसे मुझमें लगा दिया है, परमानन्दस्वरूप मैं उसकी आत्माके रूपमें स्फुरित होने लगता हूँ। जो मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर विषय-चिन्तन किया करता है, उसका चित्त विषयोंमें फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है, उसका चित्त मुझमें तल्लीन हो जाता है। इसलिये उद्धव! दूसरे सभी साधनोंको छोड़कर एक मेरी भक्तिकी साधना करो। (श्रीमद्भा० ११। १४। २७)

भक्तिकी साधना कितनी सुगम है? भगवान्‌का नाम लेनेमें न कोई बन्धन है, न कोई नियम है और न किसी प्रकारकी बाधा है। भजनकी सर्वश्रेष्ठता बतानेके लिये श्रीरामचरितमानसमें अनेक दृष्टान्त दिये गये हैं, लेकिन विचारकर देखा जाय तो भजनकी महिमा पूर्णरूपसे कोई नहीं बता सकता है। भजन ही मानवजीवनको पूर्ण रूपसे सफल बना सकता है। इसकी तुलना किसीसे करना उचित नहीं है। फिर भी भगवान्‌की ओर मुड़नेके लिये संत अनेक उपाय करते हैं। संत ही मनुष्यको भजन और भक्तिकी ओर लगाते हैं। इस सन्दर्भमें तुलसीदासजीकी आलंकारिक भाषा द्रष्टव्य है—

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥
(रा०च०मा० ७। ११९। ९-१०)

यही भाव श्रीमद्भागवत (११। २। ४२)-में बताते हुए कहा गया है—जैसे भोजन करनेवालेको प्रत्येक ग्रासके साथ तुष्टि, पुष्टि तथा क्षुधानिवृत्ति तीनोंकी प्राप्ति होती है; वैसे ही जो मनुष्य भगवान्‌की शरण लेकर उनका भजन करता है, उसे भजनके प्रत्येक क्षणमें भगवान्‌के प्रति प्रेम, अपने प्रभुके स्वरूपका अनुभव और संसारके सभी विषयोंसे वैराग्य—तीनोंकी प्राप्ति होती है। जिस प्रकार भोजन शरीरके लिये आवश्यक है, उसी प्रकार अपने कल्याणके लिये भजन आवश्यक है। भजन करनेसे ही आत्मा और परमात्माका शाश्वत ज्ञान होता है। हमारा पारमार्थिक रूप आत्मा है।

भाव ही भगवान्‌का स्वरूप है। भगवान्‌के भाव-राज्यमें रहनेपर मनुष्यको किसी प्रकार कोई कष्ट नहीं होता। सब मनुष्योंसे प्रेम करना भक्तका स्वभाव होता है। अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार भगवद्भावसे कार्य करना स्वधर्म है। श्रीमद्भगवद्गीतामें इसे भगवद्भक्तिका सर्वश्रेष्ठ भजनस्वरूप बताया गया है।

भजन और सत्संगद्वारा जब हृदय पवित्र होता है, तब भगवत्प्रेमकी बात समझमें आती है। शरीरका विषय-प्रेम भोग कहलाता है और आत्मासे प्रेम भक्ति कहलाती है। शूर्पणखा और शबरीकी कथाद्वारा विषयभोग एवं भक्तिकी प्रवृत्ति बतायी गयी है। शूर्पणखामें विषयभोगकी प्रवृत्ति थी, अतः उसकी दुर्दशा हुई और शबरीमें भगवद्भक्तिकी प्रवृत्ति थी, इसलिये वह भक्तिके इतिहासमें अमर हो गयी।

वास्तवमें हरिभक्ति अनुभवस्वरूप और भावस्वरूप है। भगवान् सब जगह प्रत्यक्ष हैं, लेकिन अभागा और अज्ञानी मनुष्य इस सत्य बातपर विश्वास नहीं करता है, यही हरिभक्तिकी अनुभूतिमें बाधक है। तुलसीदासजीने भी कहा है—

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥
(रा०च०मा० ७। १२०। ११-१२)

अतः भगवान्‌की भक्तिमें जीवन लगाना जीवनका सच्चा सौन्दर्य है। भक्तिके प्रभावसे मनुष्य ज्ञानवान्, गुणवान्, शीलवान् तथा चरित्रवान् बनता है।

'ईश चरण में शरण चाहिये'

(डॉ० श्रीकमलेश्वरप्रसादजी त्रिपाठी)

जीवन के उद्भव से लेकर, जीवन के अवसान पहर तक,
कभी नहीं विश्वास किया है, क्षण-प्रतिक्षण दुर्वाक्य कहा है,
भला छद्म में बुरा किया है, पुण्य रूप में पाप किया है,
इसीलिये अब आप जहाँ हों, मेरे सब अपराध भुला कर,
अपने कर को इधर बढ़ा दें, उन्हीं करों का वरण चाहिये।

गंगातट हो या सरयूतट, दूषित जल हो या अक्षयवट,
प्रात समय या संध्या वेला, अपने हों या निपट अकेला,
बाहर हो या फिर घर हो, निपट भूमि हो या बिस्तर हो,
जिस स्थिति में जहाँ कहीं हों, मुझे तुम्हारे ही चरणों में,
सदा-सदा का मरण चाहिये, ईश चरण में शरण चाहिये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हे गोविन्द! राखो शरण'

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी, विद्यावारिधि)

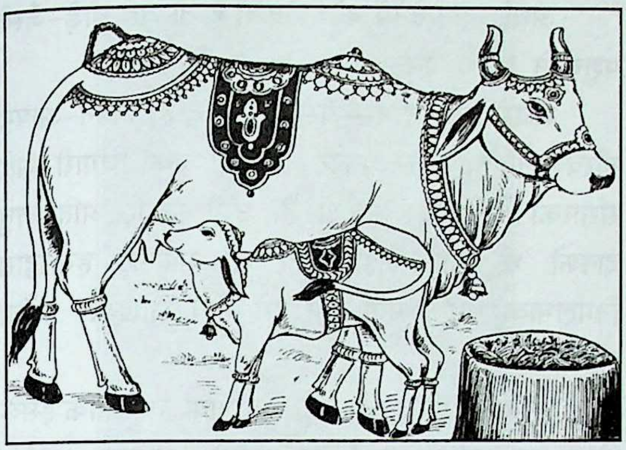

मैं हूँ गाय, कामधेनुकी वंशजा। जबसे मैं धरतीपर आयी हूँ, तभीसे मैं अपना मधुर दूध पिलाकर मानव-जातिका पालन कर रही हूँ। मेरे बच्चे भी नाना प्रकारसे मनुष्योंकी सेवा कर रहे हैं, किंतु दु:ख है कि मानव-जाति मेरा समुचित सम्मान नहीं कर रही है। विशेषत: आधुनिक युगका मनुष्य तो मेरे प्रति सर्वथा निर्दयी हो गया है।

मुझे अपना स्वर्णिम अतीत याद है। मेरी रक्षाके लिये भगवान् संकल्पित भावसे समय-समयपर अवतरित होते रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्णने मेरी अद्भुत सेवा की थी। राजा दिलीप व्याघ्रसे मेरी रक्षाहेतु अपने शरीरका मांस देनेको तत्पर हो गये थे। प्राचीन कालमें मुझे गोमाता कहकर आदर दिया जाता था। लोग अत्यन्त श्रद्धाके साथ मुझे अपने आँगनमें बाँधते थे और मुझे देवतुल्य जानकर सुबह-शाम (मुझे) प्रणाम करते थे। मेरे दर्शनको वे शुभ शकुन मानते थे। वे प्रतिदिन मुझे हरा चारा खिलाने दूरतक ले जाते तथा लौटनेपर नहला-धुलाकर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके रखते थे।

वे प्राचीन लोग अपनी रसोईमें बनी हुई पहली रोटीको मुझे गुड़के साथ खिलाकर ही स्वयं भोजन करते थे। वे मुझे परिवारका एक सम्मानित सदस्य मानते थे तथा मेरी सुख-सुविधाका पूरा ध्यान रखते थे। वृद्धा हो जाने तथा दूध न दे सकनेकी स्थितिमें भी वे सहसा मेरा परित्याग नहीं करते थे, अपितु यावज्जीवन मेरा पालन-पोषण करके मेरी मृत्यु हो जानेपर मेरा अन्तिम संस्कार कर देते थे।

वे पुराने लोग मेरे दूधपर मेरे बच्चोंका प्रथम अधिकार मानते थे तथा जब मेरे बच्चे मेरा दूध पीकर तृप्त हो जाते थे, तभी वे अपने लिये मेरा दूध दुहते थे। मैं उनकी निष्ठासे अभिभूत होकर स्वयं ही उनके बच्चोंके लिये पर्याप्त दूध दे देती थी।

किंतु अब ऐसा नहीं रह गया है। आज लोग मुझे अपने घरोंमें नहीं पालते। ले-देकर कुछ लोग तथा कुछ दुग्ध-व्यवसायी ही हैं, जिनके यहाँ मुझे शरण मिलती है, किंतु ये ठहरे व्यवसायी। अधिकाधिक लाभार्जन ही इनका उद्देश्य रहता है। थोड़ा-सा चारा खिलाकर मेरे थनसे प्रथमसे लेकर अन्तिम बूँदतक समस्त दूध निकाल लेना इनका रोजमर्राका काम है। इतना ही नहीं, इसके लिये कुछ तो आजकल मेरी नाजुक गरदनमें और कभी-कभी तो मेरे थनमें सुई चुभोनेका क्रूर कृत्य भी करने लगे हैं। इस सुईसे मुझे जो मर्मान्तक पीड़ा होती है, उसे तो सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीगोविन्द ही जान सकते हैं। मैं सीधी-सादी नारीजातिकी एक बेजुबान जीव हूँ। मैं किसीसे लड़ती-झगड़ती नहीं। यदि कोई दो डण्डा मुझे मार भी देता है तो मैं चुपचाप सह लेती हूँ, किंतु अब सहा नहीं जाता। मैं अपना दु:ख सुनाना चाहती हूँ, पर कहूँ किससे? यह समझमें नहीं आता। देशकी सरकार बाघों आदिके लिये अभयारण्य बनाती है, किंतु मेरी रक्षाके लिये मौन रहती है। प्रतिदिन मेरे सहस्रों वंशजोंको अकाल मौतके घाट उतार दिया जाता है, परंतु सरकार चुप रहती है। नारीविमर्श करनेवाली मेरी मानवी बहनें भी मेरी पीड़ापर दृष्टिपात नहीं करतीं। अब तो भगवान् श्रीकृष्ण ही शरण्य हैं। 'हे गोविन्द! राखो शरण।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति'

(श्रीतुकारामजी असफल)

दानका अर्थ—हवन और दान कभी नष्ट नहीं होते। दिया जाय, पर उसका हिसाब न रखा जाय, सही दान है। अर्थात् हम किसीकी किसी प्रकारकी सहायता करें, पर उसके बदलेमें कुछ न चाहें, यही दानका वास्तविक स्वरूप है। देना ही दान नहीं है, देनेके पीछे हमारी भावना क्या है? यह मुख्य बात है किसीकी स्वार्थ या प्रेम, अपनत्व या वापस लेनेसे प्रेरित होकर देते हैं। तो वह दान नहीं है। निष्काम, निष्कपट, नि:स्वार्थ एवं निर्मल भावसे देनेकी क्रियाको दान कहते हैं।

यदि कोई पिता अपने पुत्रके लिये या नौकर, सगे सम्बन्धी या दूरके रिश्तेदारके लिये कुछ करता है तो वह दान नहीं है। यह तो उसका कर्तव्य है या अपनेपनसे प्रेरित होकर की गयी सहायता है। किसीको कुछ देना दान है कि नहीं, इसका निर्णय दाताके मनोभावोंपर निर्भर है।

दानका महत्त्व—मनीषियोंने संसारको क्षणभंगुर कहा है, प्रत्येक जड़-चेतन सब एक न एक दिन नष्ट होगा ही, परंतु दानको संसारमें अक्षय कहा गया है। सब नष्ट हो जायगा, पर दान कभी भी नष्ट नहीं होता, महाभारतमें वेदव्यासजी लिखते हैं—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात् सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति॥
(कर्णभार)

जब महादानी कर्णसे कवच-कुण्डल माँगने ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र आये तो उनके मित्र शल्यराजने उन्हें मना किया तो कर्णने कहा—मित्र मुझे इसके लिये टोकिये मत; क्योंकि विद्या जो कभी नष्ट नहीं होती, वह भी समयके साथ नष्ट हो जाती है, कितना ही मजबूत जड़वाला वृक्ष हो, एक न एक दिन वह भी नष्ट हो जाता है। जल या तो सूख जाता है या समुद्रमें बहकर चला जाता है, किंतु निष्काम भावसे किया गया हवन और दान कभी नष्ट नहीं होता।

आप यदि दानदाताको रोकेंगे तो अपयशके भागी होंगे। कहा भी गया है—

दान देत में बरजय जो कोई । वह तो लदवा घोड़ा होई॥

अर्थात् दान देनेमें कोई रोकता है तो वह घोड़े-जैसी पशुयोनि धारण करता है।

सबसे बड़ा दान—वैसे दान शब्द ही अपने-आपमें गौरवशाली है, जिस प्रकार अग्निकी एक चिंगारी सारे संसारको भस्म कर सकती है, उसी प्रकार अति लघु दानको भी छोटा नहीं कहा जा सकता। हमारेद्वारा निर्मलभावसे दिया गया दान हमें ऊँचे शिखरपर पहुँचा सकता है।

संसारमें अन्नदानको बड़ा कहा गया है; क्योंकि इसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते **'अन्नाद् भवन्ति भूतानि...।'** उससे भी अति परम बढ़कर विद्यादान कहा गया है; क्योंकि हम जीवित हैं और विवेक नहीं तो मानवताका अभाव हो जायगा। यदि दानके सम्बन्धमें विशेष विचार करें तो प्रेमदान सर्वोत्तम है। कहते भी हैं कि—

सबसों ऊँची प्रेम सगाई।
दुरजोधन के मेवा त्यागे, साग बिदुर घर खाई॥

जिस जीवमें प्रेम-भाव उत्पन्न हो गया, समझिये उसने सबको जीत लिया। प्रेमके वशमें सारा संसार है।

दान किसे दिया जाय—दान किसे दिया जाय? यह भी विचारणीय है। कोई भी दान तबतक सार्थक नहीं है, जबतक उसका सम्पूर्ण उपयोग न हो। इसके अलावा वस्तुकी उपयोगिता आवश्यकता निर्धारित करती है। जैसे किसीको जोरोंसे भूख लगी है और उसे स्वर्णाभूषण दान करें, यह कहाँतक ठीक है? हमें ऐसे सुयोग्य पात्रको दान देना चाहिये, जो उस वस्तु या राशिका अधिकतम उपयोग कर सके। इसके सम्बन्धमें कहा गया है—

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तस्य भोजनम्।
वृथा दानं समर्थस्य वृथा दीपो दिवापि च॥

जिस तरह समुद्रमें वर्षा वृथा है, तृप्त आदमीको भोजन कराना वृथा है, दिनमें दीपकका प्रकाश निष्प्रयोजन है, उसी प्रकार धनी आदमी या कुपात्रको दान देना बेकार है। जिसे जिस तरहकी आवश्यकता हो, उसे उसी प्रकार सहायता प्रदान करना श्रेयष्कर होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत-चरित—

बाबा श्रीचन्दजी महाराज

(श्रीबलविन्द्रजी 'बालम')

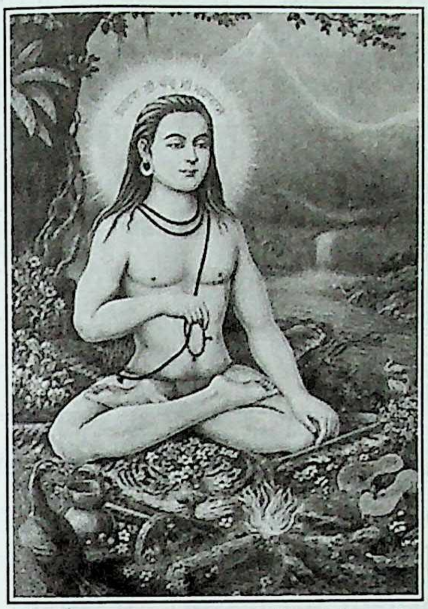

बाबा श्रीचन्दजी श्रीगुरुनानकदेवजीके बड़े सुपुत्र थे। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ल ९, संवत् १५५१ को ननकाना-साहिबमें हुआ था। बाबा श्रीचन्दजी उदासीन साधु हुए हैं। बाबा श्रीचन्दजीने लगभग ६२ वर्षतक गुरुद्वारा श्रीबारठ साहिब*के समीपमें तपस्या की। श्रीगुरु अमरदासजी, श्रीगुरु रामदासजी तथा पंचम पातशाही श्रीगुरु अर्जुनदेवजीतक समस्त गुरु बाबा श्रीचन्दजीसे मिलने आते रहे।

जब श्रीगुरु अर्जुनदेवजी श्रीगुरुग्रन्थसाहिबजीका सम्पादन कर रहे थे और सुखमनीसाहिबकी वाणी भी लिख रहे थे। तब लगभग १६ अष्टपदियाँ लिखनेके बाद वे आगे लिखनेमें अटक गये। आगे उनसे वाणी नहीं लिखी जा रही थी। उन्होंने सोचा कि इस समय कौन महापुरुष हो सकता है जो इस वाणीको आगे लिखनेके लिये शक्ति प्रदान करे। तब उस समय गुरु अर्जुनदेवजीके हृदयमें बाबा श्रीचन्दजीका ध्यान आया; क्योंकि उस समय सबसे ऊँचे तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तिके संत बाबा श्रीचन्दजी ही थे। गुरु अर्जुनदेवजी नंगे पाँव अमृतसरसे श्रीबारठसाहिब आये। उस समय बाबा श्रीचन्दजी समाधिमें लीन थे। उन्होंने समाधिसे उठाना या बुलाना ठीक न समझा; क्योंकि समाधिमें लीन संतको जगाना ठीक नहीं। यह गुरु-मर्यादाके विरुद्ध है। इसलिये गुरु अर्जुनदेवजी समाधिवाले स्थानसे लगभग एक फर्लांगकी दूरीपर एक स्थानपर ठहर गये। वहाँसे प्रतिदिन नंगे पाँव आकर समाधिके सामने थोड़ी दूरीपर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते। शामतक इन्तजार करते तथा फिर चले जाते। इस तरह ५ महीने तथा १३ दिन प्रतिदिन प्रातः आते और शामको बाबा श्रीचन्दजीको समाधिमें देखकर वापस चले आते। जब एक दिन अचानक उनकी समाधि खुली तो गुरु अर्जुनदेवजीको पहचानकर उन्होंने कहा, 'आओ किधर आये हो? यह दाढ़ी बहुत बढ़ा रखी है।'

गुरु अर्जुनदेवजी नतमस्तक हुए तथा हाथ जोड़कर बोले महाराज, यह दाढ़ी तो आपके चरण साफ करनेके लिये है। तब बाबा श्रीचन्दजीने प्रसन्न होकर कहा कि इसी विनम्रताके कारण ही आप गद्दीके हकदार हैं। आपकी विनम्रता महान् है। फिर गुरु अर्जुनदेवजीने आदरभावसे कहा—महाराज! मैं सुखमनीसाहिबकी वाणी लिख रहा हूँ। अलग-अलग लेखकोंकी वाणीका सम्पादन भी कर रहा हूँ। सुखमनीसाहिबकी २४ अष्टपदियाँ लिखनी हैं, परंतु १६ अष्टपदियोंके बाद वाणी लिखी नहीं जा रही। तब बाबा श्रीचन्दजीने आशीर्वाद दिया, जिससे वाणी आगे लिखनेमें श्रीगुरु अर्जुनदेवजीको बल मिला।

बाबा श्रीचन्दजीने जिस स्थानपर तपस्या की थी, वह स्थान बारठसाहिबसे कुछ ही दूरपर स्थित है। उस समयका वट वृक्ष अब भी वहाँ मौजूद है। बारठसाहिबमें जहाँ बाबा श्रीचन्दजीने दातून फेंकी थी, वहाँ बहुत बड़ी बेरी है। वह पीपलका पेड़ भी मौजूद है, जहाँ बाबा श्रीचन्दजीने तपस्या की थी। इतिहासमें वर्णित है कि जब श्रीगुरु अर्जुनदेवजी लोहेकी गर्म चादरपर बैठे तो उस समय उन्होंने बाबा श्रीचन्दजीको याद किया। बाबा श्रीचन्दजीने तपस्या करते हुए धूनीसे जल रही लकड़ीको निकालकर पीपलमें ठोक दिया। उधर ज्यों-ज्यों लोहेकी

* 'श्रीबारठसाहिब' गुरुद्वारा गुरदासपुर (पंजाब)-से लगभग २५ किलोमीटरकी दूरीपर पठानकोट जी०टी० रोडसे लगभग ३ किलोमीटर दूर बायीं ओर स्थित है। सड़कके ऊपर गुरुद्वारेको जाते रास्तेपर बारठसाहिबका एक बड़ा गेट बना हुआ है। सिक्ख इतिहासकी साखियोंमें इस स्थानकी बहुत ही महत्ता बतायी जाती है। बताया जाता है कि इस स्थानका पूर्वनाम हरीमपुर था, जो पठानोंका गाँव था। बारठसाहिब श्रीगुरुनानकदेवजीके ननिहालका गाँव था, परंतु इसकी महत्ता उदासीन साधु बाबा श्रीचन्दजीके नामके साथ जुड़ी हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्म चादरके नीचे शत्रु आग जलाते रहे, त्यों-त्यों इधर वह पीपल ऊपरकी ओर जलता चला गया। वह पीपल आज भी मौजूद है और जड़से लेकर ऊपरतक आज भी जला हुआ साफ नजर आता है। उनको गुरु अर्जुनदेवजीके गर्म लोहेपर बैठनेका गहरा दुःख हुआ, परंतु धैर्य, विनम्रता, कर्मठता तथा सच्चाईपर पहरा देनेकी शहीदीकी मिसालकी प्रसन्नता भी हुई। बताया जाता है कि इससे थोड़ी दूरपर एक गाँव है खोभा। उस समय वहाँके लोग बाबाजीके पास आये कि इस गाँवमें पानी नहीं होता, चारों ओर खोभा (कीचड़) ही रहता है। बाबा श्रीचन्दजीने वहाँ पानीकी प्राप्ति करायी तथा उस गाँवका नाम खोभा पड़ गया।

एक बार बाबा श्रीचन्दजी जंगलसे गुजर रहे थे कि एक लड़का शिकार खेलते हुए मिला। उसने कई जानवर मार गिराये थे। बाबा श्रीचन्दजीने उस लड़केसे कहा कि भाई, तुम इन जानवरोंको क्यों मार रहे हो? यह पाप है और ऐसा करनेसे उसे मना किया, परंतु उस लड़केने कहना नहीं माना तथा शिकार खेलनेके पश्चात् वह घर चला गया। उसके पेटमें इतनी तीव्र पीड़ा उठी कि वह मृत्युशय्यापर ही चला गया। वह लड़का उस क्षेत्रके एक पठानका पुत्र था। जब उसके पिताको शिकारवाली बातका पता चला तो वह बाबा श्रीचन्दजीके पास गया। हाथ जोड़कर पुत्रके स्वस्थ होनेकी प्रार्थना की और क्षमा माँगी। तब बाबा श्रीचन्दजीने उसके पुत्रको जीवनदान दिया तथा उसे इलाका छोड़नेको कहा। वह पठान इलाका छोड़कर चला गया। उसके नामपर पठानकोट शहरका नाम प्रचलित हुआ।

जिस नाथकी गुरुनानकदेवजीके साथ बातचीत हुई थी, उस चरपटनाथने बाबा श्रीचन्दजीकी शक्तिको आजमानेके लिये एक आम भेजा। उसका चेला जब आम लेकर पहुँचा तो बाबा श्रीचन्दजीने कहा कि भाई हम यहाँ तीन हैं, तुम आम केवल एक लेकर आये हो। वह आम लेकर वापस चला गया। उस समय बाबा श्रीचन्दजीके समीप श्रीधर्मचन्द (उनका भानजा) तथा बाबा कमलियाजी बैठे थे।

उस नाथने चेलेको फिर एक आम देकर भेजते हुए कहा कि उनसे कहो कि नानकने तो एक तिल कई लोगोंमें बाँट दिया था, तुम एक आम तीनोंमें नहीं बाँट सकते। चेलेने ऐसे ही बाबाजीको आकर कहा। यह सुनकर बाबा हँस पड़े और आमको निचोड़ दिया। जहाँ-जहाँ आमके कतरे पड़े, वहाँ आज भी आमके वृक्ष मौजूद हैं।

बाबा श्रीचन्दजीमें असीम शक्ति थी तथा वे आध्यात्मिक शक्तिकी सभी सीढ़ियाँ चढ़ चुके थे, जिस कारण उनकी एकाग्रताकी गहराई समाधिका रूप ले लेती थी।

१५१ वर्षकी आयुके बाद वे यात्रापर निकल पड़े। वह यहाँसे ममून गये तथा वहाँके लोगोंकी मजबूरीको देखकर पहाड़ीसे जल निकाला। उस पहाड़ीसे आज भी जल निकलता है। उसके पश्चात् वे चम्बाकी ओर चले गये। उनके साथ संगत भी थी। उन्होंने संगतको वापस भेज दिया तथा फिर आप कहाँ गये, मालूम नहीं।

उनके पश्चात् उनके भानजे बाबा धर्मचन्दजी, जो विवाहित थे, इस स्थानके अनुयायी बने। इनका वंश आज भी कीरतपुरमें चल रहा है। बाबा श्रीचन्दजीकी अनेक साखियाँ मिलती हैं।

बाबा श्रीचन्दजी उदासीनसम्प्रदायके प्रथम आचार्य हुए हैं। आजकल भी पट्टी तथा सिरसासे उदासीन साधु प्रत्येक वर्ष पाँच दिनोंके लिये श्रीबारठसाहिब आकर श्लोक-जाप करते हैं। यहाँ दिन-रात पाठ चलते रहते हैं। बाबा श्रीचन्दजीकी ओरसे बनवायी गयी बावलीमें लोग स्नान करके सुखकी अनुभूति करते हैं।

'सखा श्याम सम नाहीं'

(वैद्य श्रीभँवरेश्वरजी मिश्र)

स्वजन सनेही सखा श्याम सम नाहीं

होत भोर चरावन गइया, बाल सखन संग जाहीं। लै लै छींका बाँधि डारन मँह, खेलहिं श्याम डारि गलबाहीं॥
करत कलेऊ भोजन मिलि सब बैठत मिलि बट छाहीं। किसलय पात बिछावत तरु तर, पौढ़त साथ सबै संग माहीं॥
करि बिश्राम पियत यमुना जल, साँझ भए घर आहीं। लै निज अंक मातु दुलरावत, यहि समान कोउ नाही॥
बैढ़ि जिमावत श्याम सखन को, निरखि श्याम मुसकाहीं। श्याम सखा सनेहु सरस आते, कबहुँ न बिलगाहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्‌की चाह

प्रिय महोदय, सादर सप्रेम हरिस्मरण! आपके प्रश्नके उत्तरमें मेरा यह निवेदन है कि न तो घर छोड़नेसे ही तत्काल भगवत्प्राप्ति होती है और न घरमें फँसे रहनेसे ही। भगवत्प्राप्ति होती है—भगवान्‌को पानेकी तीव्र आकांक्षासे प्रेरित होकर की जानेवाली अखण्ड साधनासे। इस साधनामें सबसे पहले आवश्यक है भगवान्‌की चाह होना, चाह इतनी बढ़े कि उसके सामने अन्य सारी इच्छाएँ दब जायँ—मर जायँ। किसी भी वस्तुमें मन न रहे—दिल न अटके। फिर चाहे घरमें रहें या घरसे बाहर। कहीं रहा जाय, जबतक शरीर है तबतक शरीरसे कुछ-न-कुछ करना ही पड़ेगा। हाँ, वह करना चाहिये अनासक्त होकर नाटकके पात्रकी भाँति। ऐसी निपुणताके साथ कि किसीको जरा भी असन्तोष न हो। पिता समझें ऐसा सुपुत्र किसीके नहीं है, माता समझें मेरा बेटा सबसे बढ़कर सुपूत है। भाई समझें कि यह तो राम या भरत-सा भाई है; स्त्री समझे कि ऐसा स्वामी मुझे बड़े पुण्यसे मिला है। स्वामी समझे—ऐसी पतिव्रता साध्वी स्त्री तो बस एक यही है। इसी प्रकार हमारे व्यवहारसे—जिनसे भी हमारा काम पड़े; छोटे-बड़े—सभी सन्तुष्ट और परितृप्त हों, सभी हमसे अमृत-लाभ करें, परंतु हमारी दृष्टि सदा अपने लक्ष्यपर लगी रहे। प्रत्येक व्यवहारको करें भगवान्‌की सेवा या भगवान्‌का प्रिय कार्य समझकर। हमारा सोना-जागना, खाना-पीना, कहना-सुनना, रोना-हँसना, देना-लेना सभी हो केवल भगवान्‌के लिये—भगवान्‌की प्रीतिके लिये। अपने लिये कुछ भी न हो। अपनेको भी श्रीभगवान्‌के ही अर्पण कर दिया जाय। फिर किसी भी स्थितिमें न दुःख होगा, न चिन्ता व्यापेगी और न संसारके किसी काममें अड़चन ही आयेगी। नाटकके निपुण पात्रकी तरह सभी खेल सुचारु रूपसे सम्पन्न होते रहेंगे। मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, हँसना-रोना सभी भगवान्‌की लीलाके मधुर अंग हो जायँगे। इस प्रकारका अभ्यास करके देखिये। कुछ ही दिनोंमें अपूर्व शान्ति और आनन्दका अनुभव होगा। पाप-ताप तो अपने-आप ही दूर चले जायँगे! शेष भगवत्कृपा।

(२)

प्रेमके नामपर पाप

प्रिय महोदय, सादर सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। आपने जो एक घटना लिखी और उसपर मेरी सम्मति चाही, यह आपकी कृपा है। मेरी समझसे तो वह विदुषी बहन और आपके पढ़े-लिखे मित्र दोनों ही बड़ी भारी गलती कर रहे हैं। सच्चे प्रेममें देहका आकर्षण क्यों होने लगा? यदि यथार्थ प्रेम है तो दोनोंमें भाई-बहनका पवित्र सम्बन्ध रहना चाहिये। एक जमाना था, जब राजपूत देवियाँ राखी भेजकर किसीको भी अपना भाई वरण कर लेती थीं और वह भाई रक्षाबन्धनके पवित्र बन्धनमें बँधकर उस बहनके लिये अपने प्राणोंको न्योछावर कर डालता था। किसी विवाहिता स्त्रीके बाह्य सौन्दर्यको देखकर उसपर आसक्त हो जाना और किसी पुरुषकी युनिवर्सिटीसे मिली हुई डिग्रियोंको और उसके ढंग-ढाँचेको देखकर अपनी कुलमर्यादा, शील, सदाचार, लज्जा और सबसे बढ़कर महत्त्वकी वस्तु सतीत्वको नष्ट करनेपर उतारू हो जाना कदापि प्रेम नहीं है, यह तो निरी पाशविकता है। दुःख है कि हमारे पढ़े-लिखे नवयुवक और नवयुवतियाँ आज धर्मकी, सदाचारकी और परलोककी कुछ भी परवा न करके मोहवश अपनेको भीषण नरकाग्निमें झोंक रहे हैं। आप अपने मित्र और उन विदुषी बहनको समझा दीजिये कि वे इस पापबुद्धिका त्याग कर दें और प्रेमके नामपर मुझ-जैसे व्यक्तिसे अपने कुविचारोंका समर्थन प्राप्त करनेकी चेष्टा न करें। जिस भारतमें पवित्र सतीधर्मको स्त्रियाँ अपना परम गौरव समझती थीं और सतीत्वकी रक्षाके लिये हँसते-हँसते धधकती आगमें सहर्ष कूद पड़ती थीं, उसी भारतकी विदुषी कहानेवाली नवयुवतियाँ आज अपने सारे गौरवको खोकर परपुरुषोंके मोहमें फँसनेको पवित्र प्रेम बतलाकर प्रेम शब्दको कलंकित कर रही हैं, यह बड़े ही परितापका विषय है।

आपके पत्रमें यह पढ़कर कि और कई कुमारी और विवाहिता विदुषी बहनें ऐसा ही विचार कर रही हैं—बहुत ही खेद हुआ। क्या विदुषी होनेका यही परिणाम है? भगवान् ऐसी विद्या और शिक्षासे आर्यदेवियोंको बचायें!

आपने ये बातें बहुत ही सद्भावसे पूछी हैं, यह ठीक है; परंतु मैं इसके सिवा इन बातोंका दूसरा उत्तर नहीं दे सकता। मेरा तो विश्वास है कि इन सारी पाप-वृत्तियोंका परिणाम बहुत ही बुरा होगा। आत्माकी नित्यता, परमात्माके न्याय, परलोकके सुख-दुःख-भोग एवं जन्मान्तरमें विश्वास करनेवाला होनेके नाते मैं यह कह सकता हूँ,—ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाले, करानेवाले और ऐसी बातोंका समर्थन करनेवाले सभी जन्मान्तरमें बड़ा भारी दु:ख उठायेंगे।

याद रखिये, यह प्रेम नहीं है, महापातक है और इससे बड़ी सावधानीसे बचना चाहिये। जो भाई इस कामके लिये तैयार हुए हैं, आपने लिखा है वे मुझमें और मेरी बातोंमें श्रद्धा रखते हैं, सो यह उनकी कृपा है। मेरा उनसे या आपसे कोई साक्षात् परिचय न होनेके कारण मैं तो कुछ नहीं कह सकता, परंतु यदि मेरी बातमें जरा भी उनका विश्वास हो तो उन्हें तुरंत अपना विचार सर्वथा छोड़ देना चाहिये और प्रेम ही हो तो उसे पवित्रतम बनाकर उन्हें भाई-बहनके रूपमें रहना चाहिये। मैं तो कहूँगा कि शारीरिक कोई भी सम्बन्ध जोड़कर प्रेम रखनेकी अपेक्षा केवल आत्मासे आत्माका प्रेम रहना और भी निरापद, उत्तम और सराहनीय है। एक स्थानमें रहना, मिलना-जुलना और परस्पर प्रेमपत्रोंका व्यवहार करना कतई बन्द कर देना चाहिये। दोनोंको अपने-अपने घरोंमें सन्तोष और सुखके साथ रहकर भगवान्‌का भजन करते हुए एक-दूसरेकी सच्ची पारमार्थिक उन्नति चाहनी चाहिये, सच्चा प्रेम तो इसीमें है।

हमारी आर्यसंस्कृतिका तो यह आदेश है कि कुमार-कुमारी वर-कन्याके निर्वाचनमें माता-पिताका ही अधिकार होना चाहिये और इसीमें लाभ है। उत्तम विवाह और गृहस्थाश्रमकी सुख-शान्तिके लिये माता-पितापर ही यह भार रहना हितकर है। माता-पिताका अपनी सन्तानमें सहज स्नेह होता है, वे स्वाभाविक ही सन्तानका हित चाहते हैं और वे उसके भविष्य-जीवनको सुखी देखना चाहते हैं। उनको अवस्थाकी अधिकताके कारण अनुभव भी विशेष होता है। इसलिये उनके द्वारा जो सम्बन्ध किया जायगा, उसमें केवल क्षणिक मोह नहीं होगा। उसमें वर-कन्याके कुल, शील, स्वास्थ्य, चरित्र, स्वभाव, घरकी आर्थिक स्थिति और धर्मभाव आदि सभीकी यथासाध्य जाँच-पड़ताल होगी और धीरताके साथ कार्य सम्पन्न होगा। यद्यपि इसमें उनकी भूल भी हो सकती है और कोई-कोई माता-पिता स्वार्थवश इन बातोंका विचार नहीं भी करते, परंतु यह अपवादरूप है। सन्तानके प्रति स्वाभाविक स्नेह प्राय: उन्हें सन्तानका अहित-चिन्तन करनेसे रोकता ही है। अतएव माता-पिताके द्वारा जो वर-कन्याका निर्वाचन होता है, वह प्राय: निर्दोष और उत्तम होता है। उसमें क्षणिक आवेग नहीं है। केवल चमड़ीके रंगका परीक्षण नहीं है, परंतु इसके विपरीत युवावस्थामें युवक-युवतियोंका जो अपने लिये कन्या-वरका निर्वाचन होता है, वह तो अधिकांशमें भूलभरा होता है; उनमें बड़ी उम्रका अनुभव नहीं है। युवावस्थाका जोश, कामवासना, इन्द्रियसुखकी लालसा, रूपका मोह और जल्दबाजी आदि उनकी विचारशक्तिको ढक लेते हैं और वे फतिंगे बनकर रूपकी आगमें पड़कर भस्म हो जाते हैं। फिर आजकलके वातावरण और कालेजोंकी दूषित सहशिक्षाने तो बड़ी भयानक स्थिति उत्पन्न कर दी है। स्कूल-कॉलेजोंकी शिक्षाका परिणाम ही है जो उक्त विदुषी बहन और आपके मित्र भाई इस प्रकार बहक रहे हैं। भला, जो अभीतक ससुराल गयी ही नहीं, जिसने अपने पतिसे अभीतक बातचीत ही नहीं की, उसने कैसे जान लिया कि पति पढ़े-लिखे होनेपर भी उसके योग्य नहीं हैं और स्कूलके ये पुराने मित्र उनके पति होनेयोग्य हैं। ससुराल जानेपर भक्ति-श्रद्धापूर्वक पतिसेवा करनेपर आपकी परिचिता विदुषी बहनको यह अनुभव हो सकता है कि वे जिनको चाहती थीं, उनकी अपेक्षा उनके पति कहीं अधिक सुयोग्य और सुशील हैं, फिर आर्यरमणी तो यह विचार भी कैसे कर सकती है कि पति योग्य है या अयोग्य? उसके लिये तो पति परमेश्वर ही है। पतिके सिवा दूसरा कोई पुरुष है ही नहीं—

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥

माता-पिताने जो वर चुन दिया और भगवान्‌की इच्छासे जिनसे विवाह हो गया, उन्हींको जीवन अर्पण कर देना चाहिये। अर्पण तो हो ही चुका। मनमें जो कभी दूसरा भाव आता है, उसे निकाल देना चाहिये और आपके मित्रको परनारीसे साँपके जहरके समान परहेज करना चाहिये। बुरी नीयतसे जरा भी परस्त्रीका चिन्तन करना पाप है और जो दूसरी कुमारी युवती बहनें भी कुलमर्यादाको तोड़कर पिता-माताकी सम्मतिके विरुद्ध मनमाना वर खोजना चाहती हैं, उन्हें भी समझ रखना चाहिये कि इसमें बड़ा खतरा है। ऐसे स्वेच्छा-विवाहोंका परिणाम तलाक होता है और हिन्दूशास्त्रोंकी सत्यताके आधारपर यह कहा जा सकता है कि स्त्रीके लिये यह एक बड़ा पाप और उसके लिये भविष्य दु:खका महान् कारण है। उक्त विदुषी बहनको भी, जो ऐसे महापातकका विचार करती हैं, सावधान कर देना चाहिये। मेरा यह पत्र उनके पास पहुँचा देना चाहिये। आपने उनके नाम-पते नहीं लिखे सो अच्छा किया, मुझे जाननेकी आवश्यकता भी नहीं है। आपने अपना नाम न लिखकर पत्रका उत्तर कल्याणद्वारा चाहा, इसीसे कल्याणमें उत्तर छापा जा रहा है। शेष प्रभुकृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११।६ बजेतक	शनि	उत्तराषा० दिनमें ९।३० बजेतक	१६ जुलाई	अशून्यशयनव्रत २
द्वितीया ,, ११।२८ बजेतक	रवि	श्रवण ,, १०।३२ बजेतक	१७ ,,	भद्रा रात्रिमें ११।५३ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ११।१८ बजेसे कुम्भराशि रात्रिमें ११।१८ बजेसे, वर्षा-ऋतु प्रारम्भ, **कर्क संक्रान्ति** दिनमें १।५९ बजेसे, दक्षिणायन प्रारम्भ।
तृतीया ,, १२।१८ बजेतक	सोम	धनिष्ठा ,, १२।३ बजेतक	१८ ,,	**सौर श्रावणमासारम्भ, श्रावण सोमवारव्रत,** भद्रा दिनमें १२।१८ बजेतक, **संकष्ठी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।४४ बजे।
चतुर्थी ,, १।३७ बजेतक	मंगल	शतभिषा ,, २ बजेतक	१९ ,,	**भौम चतुर्थीपर्व, दुर्गायात्रा, गौरीपूजन, हनुमद्दर्शन, भौमव्रत।**
पंचमी ,, ३।१८ बजेतक	बुध	पू० भा० ,, ४।१९ बजेतक	२० ,,	मीनराशि दिनमें ९।४५ बजेसे, पुष्य नक्षत्रमें सूर्य रात्रिमें २।१८ बजेसे।
षष्ठी सायं ५।१४ बजेतक	गुरु	उ० भा० रात्रिमें ६।५१ बजेतक	२१ ,,	भद्रा सायं ५।१४ बजेसे, मूल रात्रिमें ६।५१ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें ७।१६ बजेतक	शुक्र	रेवती ,, ९।३० बजेतक	२२ ,,	भद्रा प्रातः ६।१५ बजेतक, **भानुसप्तमी,** मेषराशि रात्रिमें ९।३० बजेसे शुक्रवार्द्धक्यारम्भ रात्रिमें १२।११ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ९।३० बजे।
अष्टमी ,, ९।१३ बजेतक	शनि	अश्विनी ,, १२।२ बजेतक	२३ ,,	मूल रात्रिमें १२।२ बजेतक।
नवमी ,, १०।५५ बजेतक	रवि	भरणी ,, २।१९ बजेतक	२४ ,,	× × × ×
दशमी ,, १२।१७ बजेतक	सोम	कृत्तिका ,, ४।१५ बजेतक	२५ ,,	**श्रावण सोमवारव्रत,** शुक्रास्त पूर्वमें रात्रिमें १२।१ बजे, भद्रा दिनमें ११।३६ बजेसे रात्रिमें १२।१७ बजेतक, वृषराशि दिनमें ८।४९ बजेसे।
एकादशी ,, १।१० बजेतक	मंगल	रोहिणी अहोरात्र	२६ ,,	**कामदा एकादशीव्रत (सबका), भौमव्रत, दुर्गायात्रा, गौरीपूजा, हनुमद्दर्शन।**
द्वादशी ,, १।३७ बजेतक	बुध	रोहिणी प्रातः ५।४६ बजेतक	२७ ,,	मिथुनराशि सायं ६।१६ बजेसे।
त्रयोदशी ,, १।३० बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, ६।४६ बजेतक	२८ ,,	भद्रा रात्रिमें १।३० बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १२।४६ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ७।१५ बजेतक	२९ ,,	भद्रा दिनमें १।८ बजेतक, **मासशिवरात्रिव्रत,** कर्कराशि रात्रिमें १।१५ बजेसे।
अमावस्या ,, ११।४९ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, ७।१५ बजेतक	३० ,,	**स्नान-दान-श्राद्धादिकी अमावस्या।**

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।२० बजेतक	रवि	पुष्य प्रातः ६।४८ बजेतक	३१ जुलाई	मूल प्रातः ६।४८ बजेसे।
द्वितीया ,, ८।३१ बजेतक	सोम	आश्लेषा ,, ६ बजेतक मघा रात्रिशेष ४।५१ बजेतक	१ अगस्त	**धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जयन्ती,** सिंहराशि प्रातः ६। बजेसे, **चन्द्रदर्शन।** मूल समाप्त रात्रिशेष ४।५१ बजे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
तृतीया सायं ६।२५ बजेतक	मंगल	पू०फा० रात्रिमें ३।२७ बजेतक	२ ,,	भद्रा रात्रिशेष ५।१६ बजेसे, **दुर्गायात्रा, गौरीपूजा, हनुमद्दर्शन, मधुश्रवा३ स्वर्णगौरीव्रत, भौमव्रत।**
चतुर्थी ,, ४।७ बजेतक	बुध	उ०फा० ,, १।५३ बजेतक	३ ,,	भद्रा सायं ४।७ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत,** कन्याराशि दिनमें ९।३ बजेसे, आश्लेषा नक्षत्रमें सूर्य रात्रिमें २।३९ बजेसे।
पंचमी दिनमें १।४१ बजेतक	गुरु	हस्त ,, १२।१४ बजेतक	४ ,,	**नागपंचमी।**
षष्ठी ,, ११।१२ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, १०।३३ बजेतक	५ ,,	तुलाराशि दिनमें ११।२३ बजेसे।
सप्तमी ,, ८।४१ बजेतक	शनि	स्वाती ,, ८।५८ बजेतक	६ ,,	भद्रा दिनमें ८।४१ बजेसे रात्रिमें ७।३३ बजेतक, **श्रीगोस्वामीतुलसीदास जयन्ती।**
अष्टमी प्रातः ६।२६ बजेतक नवमी रात्रिशेष ४।१८ बजेतक	रवि	विशाखा ,, ७।३३ बजेतक	७ ,,	वृश्चिकराशि दिनमें १।५४ बजेसे।
दशमी रात्रिमें २।२४ बजेतक	सोम	अनुराधा सायं ६।२० बजेतक	८ ,,	**श्रावणसोमवारव्रत,** मूल सायं ६।२० बजेसे।
एकादशी ,, १२।५२ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, ५।२९ बजेतक	९ ,,	भद्रा दिनमें १।३९ बजेसे रात्रिमें १२।५२ बजेतक, **पुत्रदाएकादशीव्रत (सबका) झूलन यात्रा प्रारम्भ, भौमव्रत, दुर्गायात्रा, गौरीपूजा, हनुमद्दर्शन,** धनूराशि सायं ५।२९ बजेसे।
द्वादशी ,, ११।४३ बजेतक	बुध	मूल ,, ४।५६ बजेतक	१० ,,	**श्रीविष्णुपवित्रारोपण,** मूल सायं ४।५६ बजेतक।
त्रयोदशी ,, ११।३ बजेतक	गुरु	पू० षा० ,, ४।५१ बजेतक	११ ,,	मकरराशि रात्रिमें १०।५७ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १०।५२ बजेतक	शुक्र	उ० षा० ,, ५।१५ बजेतक	१२ ,,	भद्रा रात्रिमें १०।५२ बजेसे, **श्रीशिवपवित्रारोपण (उड़ीसा)।**
पूर्णिमा ,, ११।११ बजेतक	शनि	श्रवण ,, ६।८ बजेतक	१३ ,,	भद्रा दिनमें ११।१ बजेतक, **स्नान-दान-व्रतादिकी पूर्णिमा, श्रावणीकर्म, (यज्ञोपवीतपूजन) रक्षाबन्धन, संस्कृत दिवस, श्रावणी पूर्णिमा, झूलनयात्रा समापन।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

(१)

वे अपरिचित रक्तदाता

बात सन् २००७ ई० के सितम्बर मासकी है। मैं गुर्दाप्रत्यारोपणहेतु अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान-संस्थान, नयी दिल्लीमें भरती था। इस रोगमें धन अधिक खर्च होता है, अतः मैं धनकी व्यवस्थाके लिये व्याकुल था। घरसे केवल डेढ़ लाख रुपयेका ड्राफ्ट एवं पाँच-छः हजार नगद लेकर चला था। पूरा परिवार पत्नी एवं पुत्री तथा ज्येष्ठ भ्राता, जिन्होंने एक गुर्दा देकर मुझे नवीन जीवन-दान दिया, मेरे साथ थे, मुझे घबराहट तो बहुत हो रही थी, पर मनमें यह विश्वास भी जमा हुआ था कि हनुमान्‌जीके होते हुए तू व्यर्थ चिन्ता क्यों कर रहा है? सारी व्यवस्था वे कर देंगे।

मेरी हनुमान्‌जीपर अटूट श्रद्धा है। बारह-तेरह वर्षोंसे श्रीरामचरितमानसका नियमित मासपारायण करता आ रहा था और मनमें सोच रहा था कि अब सौ पारायण हो चुके होंगे। इसलिये बड़ी शान्ति प्राप्ति होगी, पर कौन जाने—**'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'** मेरे दोनों गुर्दोंने काम करना बन्द कर दिया, पर प्रभुने जिस धैर्य और सहजतासे उस भयानक घड़ीसे मुक्ति दी, वह बतायी नहीं जा सकती। एक दिन तो मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब सीनियर रेजीडेण्टने मुझे बुलाकर कहा—तुमने ब्लडकी व्यवस्था की है या नहीं। मैंने सहज ही उत्तर दिया—डॉक्टर साहब! आपने ऑपरेशनकी तिथि नहीं बतायी, इसीलिये अभीतक नहीं कर सका हूँ। वे नाराज हो गये और बोले—जब ऑपरेशन होगा, उस समय लाओगे ब्लड? कलतक यदि व्यवस्था न हुई तो ट्रान्सप्लाण्ट नहीं हो सकेगा, अतः जैसे भी हो ब्लडकी व्यवस्था कर लो।

मैं हताश किंकर्तव्यविमूढ़ था, इतने कम समयमें क्या हो सकता था, फिर भी मैंने वाराणसी अपने मित्रको फोन किया, जिन्होंने वक्तपर रक्तकी व्यवस्थाका पहले आश्वासन दिया हुआ था, वे बोले—इतनी जल्दी व्यवस्था कैसे हो सकती है?

फिर मैंने अपने एक मित्रकी पत्नीको अहमदाबाद फोन किया, उस सदाशया देवीने अपने पुत्रको फोन किया, जो उस समय मुम्बईमें था, उसने अपने मित्र श्रीवास्तवजीको दिल्ली फोन किया।

नतीजा यह हुआ कि रात आठ बजे मेरे पास फोन आया कि कल हम आपको रक्तदान करना चाहते हैं, बताइये किस समय आयें?

मैंने कहा—मित्रवर! मैं तो कल डायलिसिस करवाने जा रहा हूँ। मेरे एक मित्र वहाँपर आपको मिलेंगे। फिर मैंने अपने बहनोईको फोनकर अनुरोध किया कि आप कल ब्लडबैंक आ जायँ, वहाँ कुछ लोग रक्तदानके लिये आ रहे हैं, उनमें एक लम्बे बालोंवाला व्यक्ति होगा; यही उसकी पहचान है।

भगवत्कृपासे दूसरे दिन छः के स्थानपर सात आदमी रक्तदानके लिये पहुँच गये। मुझे छः यूनिटके स्थानपर सात यूनिटके कार्ड मिले। मैं उन महादानी व्यक्तियोंकी सूरत भी नहीं देख पाया, केवल नामसे उनका उपकार मानता हूँ, जो अलग धर्म और जातिके थे, जिनके पवित्र रक्तसे मेरा जीवन धन्य हुआ। यह चमत्कार केवल हनुमान्‌जीकी कृपाका ही प्रत्यक्ष फल था, उनके सिवाय ऐसा चमत्कार चौबीस घण्टेमें और कौन कर सकता है!

मैं आज भी नित्य एक हजार रामनामका लेखन और श्रीरामचरितमानसका मासपारायण करता हूँ तथा प्रत्येक मंगलवारको सुन्दरकाण्डका पाठ करता हूँ। उनकी कृपासे आज मैं अपने नित्यकर्मके साथ-साथ नियमितरूपसे अध्यापनका कार्य कर रहा हूँ और श्रीरामजीकी भक्तिका आनन्द ले रहा हूँ। धन्य है हनुमान्‌जीकी अहैतुकी कृपा।—**चक्रधरकर्नाटक**

(२)

सच्ची कृपा

मेरी छोटी बुआजी अत्यन्त भक्तहृदय एवं स्वभावसे शान्तिप्रिय हैं। वे हमारे घर आयी हुई थीं। इसलिये हम सभी खुश थे। घटनाके दिन बृहस्पतिवार होनेके कारण बुआजीका व्रत था।

हमारे पड़ोसमें एक बाबाजी रहते थे, उनके घर एक बछिया थी, जो बहुत दुर्बल हो गयी थी। उसे न कोई चारा देता था और न पानी ही, उसे खुला छोड़ दिया गया था। वही बछिया घूमते-फिरते संयोगसे हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घरके पास आ गयी। हमारे द्वारपर सूखनेके लिये गेहूँ फैलाया गया था। बछिया आकर गेहूँ खाने लगी। इतनेमें मेरी बुआजीकी दृष्टि उस बछियापर पड़ी और वे उसे भगानेके लिये दौड़ीं। बछिया बुआजीको आते देख तेजीसे भागी, लेकिन दुर्बल होनेसे भाग न सकी और थोड़ी ही दूरीपर जाकर धम्मसे गिर पड़ी। बुआजी बछियाके पास गयीं तो बछिया बेसुध पड़ी थी। बुआजीके हाथ-पाँव काँपने लगे तथा उसे होशमें लानेके लिये वे प्रयत्न भी करने लगीं। थोड़ा-सा पानी लेकर मुँहपर डाला, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। बुआजी निराश हो गयीं, अब करतीं भी क्या? अचानक बुआजी दौड़ते हुए पूजा-कक्षमें पहुँचीं और भगवान्के आगे दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करने लगीं—हे भगवान्! बछियाको होश आ जाय, मुझपर कृपा कीजिये। हे नारायण! हे नाथ! दया कीजिये, चमत्कार कीजिये, मुझपर कृपा कीजिये। अगर वह बछिया कहीं मर गयी तो मुझे गोहत्याका महान् पाप लगेगा, भगवन्! मुझे अपना जीवन अब पापमय दीखता है, ऐसा कहते हुए वे विष्णुभगवान्का थोड़ा-सा नैवेद्य लेकर बछियाकी तरफ दौड़ीं और मन-ही-मन उन्होंने भगवान्का ध्यान किया और वह प्रसाद बछियाके मुँहमें डाल दिया, फिर आँखें मूँदकर भगवान् विष्णुका नाम जप करने लगीं। थोड़ी ही देरमें अचानक चमत्कार हो गया—बछिया उठकर खड़ी हो गयी और पास ही मैदानमें घास चरने लगी। आँखें खोलते ही बुआजी बछियाको इस हालतमें देखकर मारे खुशीके पागल हो गयीं। उनकी आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। उन्होंने भगवान्को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। उन्हें लगा कि आज उनपर भगवान्की सच्ची कृपा हो गयी है, जो उन्होंने बछियाको जीवनदान दिया।

यह घटना बुआजीने मुझसे बतायी तो मैं सुनकर भाव-विभोर हो गयी। सच ही तो कहा गया है कि जो सच्चे मनसे भगवान्का नाम लेता है, भगवान् उसे सब संकटोंसे निवृत्त कर देते हैं। मेरी आँखें भी नम हो गयी थीं।—**लक्ष्मी द्विवेदी**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

धर्मपुत्री

कुछ समय पूर्वकी बात है, मैं अपने एक रिश्तेदारसे मिलनेके लिये अस्पतालमें गया। उनकी चारपाईके सामने एक मारवाड़ी वृद्धाकी खाट थी। उसके पास एक युवक मधुर मन्द-स्वरमें भजन गा रहा था। भजनमें रस आनेसे मैं भी उसके पासमें जा बैठा।

'बेटा! एक दूसरा भजन गाओ तो।' एक भजन पूरा होते ही वृद्धा बोली। 'तेरे कण्ठमें भगवान्ने जितनी मिठास भरी है, उससे कहीं अधिक मिठास तेरे हृदयमें भर दी है। तेरी सेवाका बदला तो भगवान् ही देंगे।'

वृद्धाके इच्छानुसार उस भाईने सिन्धी भाषामें दूसरा भजन आरम्भ किया। वह भाई सिन्धी था। थोड़ी देरके बाद थरमसमें दूध, ताजे फल एवं खिचड़ी लेकर उसकी पत्नी आयी और उस वृद्धाके सामने आकर बैठ गयी।

'बेटा!' वृद्धाने भजन पूरा हो जानेके बाद कहा—'सगा पुत्र भी जितनी सेवा नहीं कर सकता, उतनी सेवा तुमलोग आज दस दिनसे कर रहे हो।'

'माँजी!' युवककी पत्नीने कहा—'आप अधिक कहेंगी तो हमलोग चले जायँगे। हमने इसमें कौन-सा उपकार किया है, जो हमें इतना यश आप दे रही हैं?'

'यह ठीक बात है, बेटी!' वृद्धाकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह बोली—'मेरा बेटा तो खबर मिलनेके बाद भी नहीं आया, न उसने अपनी बहूको ही भेजा और तुम·······'

—'तो क्या हमलोग कोई पराये हैं?' भैया और भाभीको कोई खास काम आ गया होगा, इसलिये वे नहीं आ सके होंगे। अभी तो अस्पतालसे छुट्टी मिलनेपर हमलोग आपको अपने घर ले जानेवाले हैं। जबतक आपको पूर्ण आराम न हो जाय, तबतक अपने साथ ही आपको रखेंगे—सिन्धी भाई बोला।

—'और माँजी'! पत्नी बोली—'शुरू-शुरूमें जब हमलोग आपके मकानमें रहनेके लिये आये थे, तब आपने मुझसे कहा था—'बेटी! तुझे देखकर मुझे अपनी बेटी मोहिनीकी याद आ जाती है।' अब आप ही कहिये," माँजी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि आपकी यह मोहिनी आपको बीमार हालतमें अकेली कैसे छोड़ सकती है? हमलोगोंने संयोगवश मकान बदल लिया, किंतु मकान बदलनेसे आपसे मिले हृदयको कैसे बदल सकते हैं?

—मैंने उस वृद्धा और युवा सिन्धी-दम्पतीके साथ जितना समय व्यतीत किया, वह मेरे लिये स्वर्गीय सुखका समय था। 'अखण्ड आनन्द'—**गुणवन्ती त्रिवेदी**

(२)

ईमानदारी बेमिसाल

घटना सन् २००९ ई० की है। मैं लखनऊसे सपत्नीक ग्वालियर अपने भानजेके विवाहमें गया हुआ था। ग्वालियर पहुँचनेपर जहाँ हमें रुकवाया गया था, उनके बेटेसे मैंने कहा कि बेटा! क्या मेरा कोट प्रेस हो सकता है? उसने कहा—हाँ, क्यों नहीं। धोबी यहीं पासमें ही है। मैंने उसे कोट तथा २० रुपये प्रेसके लिये दिये। उसने तुरंत मेरे सामने कोटको तह किया और एक अखबारमें लपेटकर साइकिलके कैरियरमें बाँधकर धोबीके यहाँ देने चला गया। एक घण्टे बाद वह पुनः कोट लेने गया। जब कोट लेकर आया तो मुझे याद आया कि कोटकी जेबमें पाँच सौ रुपयेका एक नोट भी था। जब जेबमें देखा तो नोट नहीं मिला। उस लड़केको मैंने वह बात बतायी। वह बेचारा भागता हुआ जाकर धोबीके पास गया, पर तबतक प्रेस करनेवाला धोबी जा चुका था, पर जो लड़का प्रेस कर रहा था, उसने नोटके प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। वह लड़का बेचारा निराश होकर घर आया और मुझसे बोला धोबी तो मना कर रहा है। खैर, मैंने उस लड़केको ढाड़स बँधाया और स्वयं भी अपनेको संयत किया। चूँकि रात्रिके नौ बज चुके थे, बारातकी तैयारी हो रही थी। अतः हमलोग अपनी कारमें बैठकर बारातके साथ जनवासेमें पहुँचे। बारात लौटनेपर रात्रिमें जब सोनेके लिये लेटा तो मैं सोचने लगा कि मैंने तो कभी अपनी जानकारीमें गलत कमायी की नहीं, फिर मेरा यह नुकसान क्यों हुआ? खैर मुझे यह भरोसा सदैव रहा है कि जब भी कभी मेरी क्षति हुई है, ऊपरवालेने भरपाई की है। सुबह जागकर दिनचर्या सम्पन्नकर स्वल्पाहार लेकर हमने वापस लखनऊके लिये प्रस्थान किया। समय बीतता गया, धीरे-धीरे नोटकी बात आयी-गयी हो गयी।

संयोगवश मैं दो वर्ष बाद अपनी बेटीके लिये वर ढूँढ़नेके क्रममें पुनः ग्वालियर गया हुआ था तो बहनोई श्रीपरिहार साहबके यहाँ कार खड़ी की और चायपानकर पास-पड़ोसवालोंसे मिलने चला गया। चूँकि सायंकालका समय था, अतः सभी लोग घरमें मिल गये। जहाँ श्रीसेंगर साहबके यहाँ दो वर्ष पूर्व रुका था, वहाँ भी सौहार्द-भेंटहेतु गया। घरके बाहर श्रीसेंगरका वही लड़का मिला, जो मेरे कोटको प्रेस करवाने गया था। उसने मेरे पैर छुए और भागते हुए घरमें गया तथा अपने पिताजीको आवाज लगायी और कहा—पापा! लखनऊवाले अंकलजी आये हैं। श्रीसेंगरसाहब अपने हाथमें वही ५०० रुपयेका नोट, जिसपर मैंने कभी ३४००० लिख रखा था, लेकर आये और दुआ-सलामके बाद बोले—यह सँभालो अपना नोट, मैं दो वर्षोंसे सँभाल रहा हूँ। सुनकर मेरी आँखोंमें आँसू आ गये और आसमानकी ओर देखकर मैंने कहा—ऊपरवाले तू महान् है, कितना दयालु है। तूने मेरी आस्था और मजबूत कर दी। मुझे उस नोटके मिलनेकी खुशी तो कम थी, परंतु उस धोबीकी और सेंगर-परिवारकी महानताके प्रति ज्यादा थी। मैं सोच रहा था कि राह चलते ५ रुपयेका नोट भी मिल जाय तो अकसर लोग चुपचाप रख लेते हैं, यह तो पाँच सौ रुपयेका नोट था। यह नोट दो वर्षोंसे खोया था, ऊपरवालेका लाख-लाख शुक्र है। मैंने श्रीसेंगर और उस धोबीका धन्यवाद ज्ञापित किया।

पता चला कि धोबीने प्रेस करनेसे पूर्व कोटकी जेबें टटोलीं तो उसे वह नोट मिला और उसने नोटको अपने पास रख लिया और प्रेस करनेवाले लड़केको यह बात नहीं बतायी। बादमें उसने वह नोट सेंगरसाहबके घर पहुँचा दिया।

वास्तवमें रुपयेकी बात नहीं है, बात है आदमीके ईमान और नीयतकी। भले और ईमानदार व्यक्ति अपने सिद्धान्तके पक्के होते हैं। श्रीसेंगरसाहब भी इतने दिनोंसे मेरी प्रतीक्षामें नोटको सँभाले रहे, यह भी महानताकी ही बात है।—**वीरेन्द्रसिंह चौहान**

(३)

रामरक्षास्तोत्रने जान बचायी

एक क्रिश्चियन परिवारसे सम्बद्ध घटना है। वे लोग मेरे अत्यन्त निकट परिचित थे और बहुत ही सात्त्विक स्वभावके थे। उस परिवारमें ५ बेटियाँ और दो बेटे, एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ और एक आँटी थे। माँ बच्चोंसे अलग ही रहती थी, बेटे-बेटियाँ आँटीके साथ रहते थे। बेटियोंमेंसे किसीकी शादी नहीं हुई थी और बेटे बेटियोंसे छोटे थे। लड़कियाँ पढ़-लिखकर काममें लग गयीं। बड़े लड़केका नाम जोयस सालदाना है, वह बहुत नेक दिलका है, सात्त्विक है। वह हमारे परिवारमें इतना घुल-मिल गया कि सब लोग उसे हमारे परिवारका ही एक सदस्य समझकर प्यार करने लगे। वह लड़का और उसके घरवाले सभी सदस्य मुझे 'पिताजी' कहकर ही पुकारते हैं। उस लड़केको बचपनसे थोड़ी दमेकी शिकायत थी। दिनांक ३ जून २००७ ई०के दिन वह अचानक बुखारसे पीड़ित हुआ। डॉक्टरोंकी दवासे लाभ नहीं हुआ तो उसे दक्षिण कन्नड़ जिलेके बड़े सिटी मंगलूरमें एक बड़े नर्सिंग होममें भर्ती किया गया। वहाँके डॉक्टरोंकी बड़ी कोशिशके बाद बुखार कम तो हुआ, परंतु नाड़ी गिरती गयी। हृदयकी गति २०से नीचे आने लगी और कई इंजेक्शन देनेके बाद भी गिरती ही गयी। लड़का बेहोश हो गया और उसको आई०सी०यू० में रखा गया। दूसरे अस्पतालसे विशेषज्ञ डॉक्टरोंको भी बुलाया गया, पर सब बेकार रहा। आखिर डॉक्टरोंने हार मान ली और यहाँतक कह दिया कि सिर्फ आधे घंटे ही अब यह जीवित रह सकता है और किसी भी हालतमें और ज्यादा देर इसको बचाया नहीं जा सकता। परिवारवाले रोने लगे। इसमें एक आश्चर्यकी बात यह है कि किसी एक भक्त डॉक्टरने रोनेवाले परिवारजनोंके कानमें यह कहा कि किसी अदृश्य शक्तिकी कृपासे यह बच भी सकता है, अतः किसी सज्जनसे प्रार्थना कराओ, प्रार्थनाकी शक्ति अपार है। फौरन उन लोगोंको मेरी याद आयी, परंतु मैं वहाँ नहीं था। सोलह सौ कि०मी० दूर हैदराबादके एक गाँवमें मैं अपने कारोबारमें निमग्न था और इस घटनासे सर्वथा अपरिचित था। पाँच जून रात ९ बजे मुझे मेरे और उनके परिवारसे फोनसे समाचार मिला। दोनों परिवारके लोगोंने रोते हुए ही यह घटना बतायी। श्रीरामजीकी कृपासे मुझे गीताप्रेससे प्रकाशित आदर्श उपकार (पढ़ो, समझो और करो) पुस्तकमें पढ़ी हुई घटना याद आयी और मैंने पूरे विश्वाससे उनसे कहा—'आप सब निश्चिन्त होकर रामनामका जप कीजिये और क्रिश्चियन होनेके नाते यदि रामनाम लेना पसन्द नहीं करते तो यीशुसे ही प्रार्थना करें। प्रार्थनामें महान् बल है। जोयस सालदानाको कुछ नहीं होगा, मैं पूरी श्रद्धासे अब रामरक्षास्तोत्रका जप निरन्तर करूँगा और जबतक उसका स्वास्थ्य पूरा-पूरा ठीक होकर, वह नीरोग होकर खुद फोनपर बात नहीं करेगा, तबतक जप करता ही रहूँगा।' ऐसा कहकर मैंने स्नान करके रामजीकी प्रतिमाके सामने दीप, अगरबत्ती आदि जलाकर हाथमें माला लेकर पाठ शुरू कर दिया। उसकी हृदयकी गति रुक जानेका खतरा था, इसलिये मैंने रामरक्षास्तोत्रमें आये '**हृदयं जामदग्न्यजित्**' इस मन्त्रपर विशेष जोर दिया और इसको हजारोंकी संख्यामें जपा। बस, अब देखना क्या था। हजारों किलोमीटर दूरसे मेरी पुकार कृपासागर, दीनदयालु अनाथरक्षक श्रीरामने सुनी और जोयस सालदानाकी हृदयकी गति जो बहुत कम हो गयी थी, बढ़कर सामान्य होने लगी और यह देखकर डॉक्टर लोग आश्चर्यचकित हो गये। आधे घंटेमें वह मरनेके बदले अच्छा होने लगा। दूसरे दिन सुबह मुझे यह खुशखबरी फोनपर सब लोगोंने बड़ी प्रसन्नतासे बतायी और मुझे धन्यवादोंकी माला पहनायी तो मैंने उन्हें कृपावारिधि श्रीरामजीको पहनाया और उन लोगोंसे भी कहा कि मेरी प्रशंसा कभी न करें, श्रीरामजीको हृदयमें बिठा लें, बस यही मेरा सौभाग्य है। उसके बाद उसे मूत्रपिण्डोंकी बीमारी, लीवरकी बीमारी, श्वासकी बीमारी, एक-एक करके दीखने लगी तो मैंने हिम्मत न हारकर फिर रामरक्षास्तोत्रमें आये उन अंगोंके नाम लेते हुए जप किया तो वे सब बीमारियाँ भी उसी आश्चर्यजनक रीतिसे गायब हो गयी थीं, जैसे हृदयकी बीमारी दूर हुई थी। यह सब भगवान् रामजीका विशिष्ट अनुग्रह ही है।—**के० रामचन्द्र राव**

(४)

जो संकल्प कर दिया, वह हाथसे छूट ही जाना चाहिये

प्रयागका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपनी सेवाओंके लिये प्रसिद्ध हो चुका था। देशके गण्यमान्य पुरुष उसके कार्यके प्रशंसक थे और उसकी योजनाओंमें शक्तिभर योगदान देते थे। इन्हीं दिनों सम्मेलनकी एक महत्त्वपूर्ण योजना बनी, जिसमें पर्याप्त धनराशिकी आवश्यकता थी। धन एकत्रित करनेका भार मुख्यरूपसे सम्मेलनके मन्त्रीपर था। श्रीमौलिचन्द्रजी शर्मा उन दिनों सम्मेलनके प्रधान मन्त्री थे।

धन एकत्रित करनेके लिये उसका श्रीगणेश विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण होता है। आरम्भमें किन्हीं बड़े व्यक्तिसे ही रकम लेनेका प्रयत्न किया जाता है। श्रीशर्माजीने इस शुभ कार्य का आरम्भ दानवीर सेठ श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लासे ही करनेका निश्चय किया। वे सेठजीके पास गये और योजनाका परिचय देकर उनसे आग्रह किया—'चिट्ठेमें पहली कलम आपकी ही होनी चाहिये।' श्रीसेठजीने योजनाको बड़े मनोयोगपूर्वक सुना और उसकी प्रशंसा करने लगे। इसके पश्चात् बड़े संकोचसे बोले—'पण्डितजी! आप जानते हैं, मैं व्यापार करना कभीका छोड़ चुका हूँ। अब मेरे हिस्सेका जो मिलता है, उसीमें सब कार्य चलाता हूँ। इस कारण मैं थोड़ा-सा ही दे सकूँगा।'

—यों कहते हुए उन्होंने चिट्ठेका कागज हाथमें लिया और उसपर पचीस हजार (२५,०००) रुपये लिख दिये। चिट्ठेका कागज शर्माजीके हाथमें देते हुए हाथ जोड़कर वे बोले—'पण्डितजी! क्षमा कीजियेगा। यह काम तो ऐसा है कि एक लाख भी देता तो कम ही था। अब जो बन पड़ा, लिख दिया।'

मन्त्री महोदय पहली रकम इतने बड़े रूपमें देखकर प्रसन्न थे, पर इतना देनेपर भी श्रीसेठजीकी दैन्यभरी ग्लानिने उनको मुग्ध कर दिया। ऐसा उदाहरण उनके लिये जीवनमें यह पहला था।

इस घटनाके कुछ दिन बाद श्रीसेठजीने अपने निजी सचिवके द्वारा पचीस हजार रुपयेका चेक श्रीशर्माजीके पास भेज दिया। इस प्रकार अप्रत्याशित शीघ्रतासे चेक प्राप्तकर श्रीशर्माजी बड़े ही प्रसन्न हुए। वे इसके लिये कृतज्ञता व्यक्त करनेके लिये श्रीसेठजीके पास पहुँचे। उन्होंने धन्यवाद देनेके पश्चात् सेठजीसे कहा—'ऐसी क्या जल्दी थी, मैं स्वयं आकर चेक ले ही जाता।'

श्रीसेठजी सहजभावसे बोले—'पण्डितजी! दान किया हुआ धन मेरे पास पड़ा था। शरीरका क्या भरोसा, अगला श्वास आये न आये और मैं धर्मका ऋण कन्धेपर लिये चला जाऊँ! जो संकल्प कर दिया, वह हाथसे छूट ही जाना चाहिये।'

(५)

'रामजी करेंगे बेड़ा पार'

११ अगस्त १९७८ ई० की बात है। मैं अपनी जन्मभूमि सुजानगढ़ (राजस्थान)-से अपने परिवारके कुछ सदस्योंके साथ आवश्यक कार्यसे मोटरद्वारा व्यापार-संस्थान जयपुर जा रहा था। मोटरका मार्ग मात्र साढ़े तीन-चार घण्टेका ही है, परंतु सुजानगढ़से दोपहर ३ बजे रवाना होकर भी उस दिन हम ९ बजे रातमें लगभग ६ घण्टोंमें जयपुर पहुँचे।

बात यह हुई कि सुजानगढ़से चलकर सालासरजीमें श्रीबालाजीका दर्शन (जहाँ श्रीहनुमान्‌जीका पीठ-स्थल है) करते हुए हम साधारण वर्षा होते रहनेपर भी ठीक समयसे सीकर पहुँच गये थे; परंतु सीकरसे रींगसके आगे मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हो जानेसे बाढ़का पानी नदीका रूप धारण करके बहने लगा था। लगभग २-३ फुट गहरे पानीमें चलते रहनेसे गाड़ीका स्टार्टर बन्द हो गया था; ड्राइवर गाड़ीको पानीमें पीछेसे ढकेलने लगा, जिससे गाड़ी तो स्टार्ट नहीं हुई, पर वह सड़कपर भरे हुए पानीपर तैरने-सी लग गयी। ड्राइवर पानीसे तर-बतर होकर, हताश हो गाड़ीमें बैठ गया।

रातका अन्धकार बढ़ने लगा था, ऊपरसे मूसलाधार वर्षा, नीचे मिट्टी मिला हुआ बाढ़का पानी हिलोरें मार रहा था। इस विकट समयमें सहायताके लिये आये भी तो कौन और कैसे? उसी समय किसी अज्ञात प्रेरणासे मैं अपना वह अनुभूत, प्रिय भजन गुनगुनाने लगा—***'तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार मन तू काहे को डरे।'*** इसकी एकाधिक बार आवृत्ति करनेपर मनको शान्ति एवं आत्मबल मिला। तभी कपड़ा ओढ़े दो अज्ञात व्यक्ति कहींसे आकर पीछेसे मोटरको ढकेलने लगे। वे गाड़ीको धीरे-धीरे ढकेलते हुए सड़कके पास छोड़कर सहसा कहीं गायब हो गये। फिर चामत्कारिकरूपसे गाड़ी भी स्टॉर्ट हो गयी। यह हुई श्रीरामजीकी प्रत्यक्ष कृपा!

सुजानगढ़में हमारे एक परम श्रद्धेय सन्तजीके सान्निध्यमें सत्संगके आयोजनमें यह मार्मिक भजन प्रायः प्रतिदिन गाया जाता था। इस भजनको श्रद्धाविश्वासपूर्वक, विह्वल-मनसे गाने या भावपूर्वक मन-ही-मन गुनगुनानेसे आकस्मिक संकटके समय रक्षा होती देखी गयी है। यह मेरे अनुभवमें एकाधिक बार प्रत्यक्ष रूपमें आया है। इसमें भगवद्-विश्वास, श्रद्धा-प्रेम, भाव-भक्ति तथा अन्तःकरणकी विह्वलताका योग होनेसे निश्चय ही अभीष्ट सफलता मिलती है।—**रंगलाल बेडिया**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

त्यागमय जीवनके महकते फूल

यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्यके लिये मरे॥

जिन लोगोंके जीवनमें राष्ट्रकवि गुप्तजीका उपर्युक्त कथन चरितार्थ हुआ है, उन लोगोंके जीवनके कुछ महकते प्रसून यहाँ सेवामें प्रस्तुत हैं—

१-त्यागकी पराकाष्ठा

स्वतन्त्रता-पूर्वकी बात है। एक दिन लालबहादुर शास्त्रीजीके घर उनके एक मित्र आये। मित्रका इकलौता बेटा किसी असाध्य रोगसे पीड़ित था। मित्रने शास्त्रीजीसे विनीत स्वरमें कहा—'शास्त्रीजी! यदि आप बच्चेके इलाजके लिये पचास रुपयेकी सहायता कर दें तो बच्चेके प्राण बच सकते हैं।'

मित्रकी व्यथा और प्रार्थना सुनकर तथा उनके नेत्रोंमें आँसू देखकर शास्त्रीजीके नेत्र भी सजल हो गये। वे विवशताभरे शब्दोंमें बोले—'मुझे खेद है कि ऐसे संकटकालीन समयमें भी मैं आपके काम नहीं आ पा रहा हूँ। आपको यह तो जानकारी है ही कि पार्टीकी ओरसे जीवन-निर्वाहके लिये पचास रुपये प्रतिमास दिये जाते हैं। यह महीनेका अन्तिम सप्ताह है, ऐसी स्थितिमें आपके बच्चेका, जो मेरा ही बच्चा है, इलाज करानेमें मैं असमर्थ हूँ।'

शास्त्रीजीकी पत्नी ललिताजीका हृदय करुणासे भर आया। उन्होंने अन्दरसे लाकर पचास रुपये शास्त्रीजीके मित्रको दे दिये। मित्र रुपये लेकर चला गया।

मित्रके जानेके बाद शास्त्रीजीने ललिताजीसे आश्चर्यपूर्ण शब्दोंमें पूछा—'ये रुपये कहाँसे आये?'

ललिताजीने कहा—'बड़ी कठिनतासे दस रुपये प्रतिमाह संकटकालीन समयके लिये बचाये थे।'

दूसरे दिन शास्त्रीजीने पार्टी कार्यालयको पत्र लिखा—'अगले माहसे मुझे चालीस रुपये ही दिये जायँ, क्योंकि मेरी पत्नीने चालीस रुपयेमें घर चलाना सीख लिया है।'

२-देशहितार्थ फाँसीसे प्यार

सरदार भगतसिंहको फाँसीसे बचानेहेतु उनके कुछ क्रान्तिकारी मित्रोंने उन्हें जेलसे बाहर निकालनेकी योजना बनायी और उसके लिये उनसे अनुमति चाही। अपनी अनुमतिके सम्बन्धमें श्रीभगतसिंहने अपने मित्रोंको एक पत्र लिखकर गुप्तरूपसे उनके पास भेजा। पत्रमें लिखा था—

'साथियो! मैं अपना जीवन देशको समर्पित कर चुका हूँ। मेरा जीवन मेरे लिये नहीं, देशके लिये है। आजकी स्थितिमें जीनेकी अपेक्षा मेरा मरना देशके लिये हितकर है। मुझे फाँसी लगनेपर देशमें क्रान्तिकी ऐसी ज्वाला भड़केगी, जो एक दिन विदेशी सरकारको जलाकर खाक कर देगी। अतः मेरे जीवनको बचानेकी कोशिश मत करो, कोशिश करो विदेशी सरकारके खिलाफ क्रान्तिकी ज्वाला भड़कानेकी। व्यक्तिसे बड़ा राष्ट्र है, अतः व्यक्तिको नहीं, राष्ट्रको बचानेकी कोशिश करो।

आज मेरा नाम क्रान्तिका प्रतीक बन चुका है। क्रान्तिकारी दलके आदर्शों तथा कुरबानियोंने मुझे इतना ऊँचा उठा दिया है कि जीवित रहनेकी स्थितिमें इससे ऊँचा मैं कभी नहीं उठ सकता। यदि मैं फाँसीसे बच गया तो क्रान्तिकी प्रतीक मेरी छवि धूमिल पड़ जायगी। हँसते-हँसते फाँसीके झूलेपर झूलनेकी सूरतमें वह दमक उठेगी, जनमानसको आलोकित करेगी। भारतीय माताएँ अपने बच्चोंको भगतसिंह बनानेकी ईश्वरसे प्रार्थना किया करेंगी। इन सबके फलस्वरूप वतनके लिये तन, मन, धन कुरबान करनेवालोंकी तादाद इतनी बढ़ जायगी कि क्रान्तिको रोकना, आजादीको रोकना अंग्रेज सरकारके बलबूतेकी बात न रह जायगी।

मुझसे अधिक भाग्यशाली कौन होगा, जो वतनके लिये जिया और वतनके लिये मरा? आज मुझे स्वयंपर गर्व है कि मैं भारतमाताका सच्चा सपूत बन गया।'

भगतसिंहके पत्रको पढ़कर उनके साथी उनके प्रति नतमस्तक हो गये।

३-समाजको रोगसे बचानेहेतु प्राण त्यागे

एक बार मारसेल्स नगरमें प्लेग फैला। हजारों लोग मौतके मुँहमें जाने लगे। कारण, उन दिनों प्लेगका कोई कारगर इलाज उपलब्ध नहीं था। रोगके कारणोंकी खोज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेहेतु चिकित्सकोंकी एक सभा बुलायी गयी। इस सभामें एक चिकित्सकने कहा—'जबतक हममेंसे कोई एक चिकित्सक मरे हुए मनुष्यके शवको चीरकर उसकी जाँच नहीं करेगा, तबतक प्लेगके कारणोंका पता लगना असम्भव है, किंतु कठिनाई यह है कि जो जाँच करेगा, वह प्लेगका शिकार बन जायगा। यदि कोई योग्य चिकित्सक समाजको प्लेगके कष्टोंसे बचानेहेतु अपना जीवन दाँवपर लगा दे तो प्लेगके कारणोंका पता लग सकता है और कारणोंके आधारपर प्लेगकी कोई कारगर दवा बनायी जा सकती है।'

यह सुनकर हेत्रिगाइन नामक एक युवा चिकित्सक आगे आया। वह अपने घरमें अकेला था, अभी उसकी शादी नहीं हुई थी, इस वर्ष होनी थी। उसने अपनी सारी सम्पत्ति अस्पतालके नाम कर दी और प्लेगसे मरे हुए व्यक्तिको चीरकर प्लेगके कारणोंकी खोजबीन करने लगा। जाँचके समय वह समझ रहा था कि प्लेगके कीटाणु उसके शरीरमें प्रवेश कर रहे हैं, किंतु उसने साहसका दामन नहीं छोड़ा, वह अपने लक्ष्यसे जरा भी नहीं डिगा। जीवनके अन्तिम क्षणतक उसकी जाँच जारी रही।

उसका त्याग और श्रम सफल हुआ, चिकित्सकोंको प्लेगके कारणोंकी जानकारी हो गयी, किंतु वह सदाके लिये गहरी नींदमें सो गया। चिकित्सा-जगत्में वह आज भी अमर है।

४-सिविल सर्विसको ठुकरा दिया

सुभाषचन्द्रबोसने लन्दन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयसे सन् १९२१ ई०में आई०सी०एस० परीक्षा उत्तीर्ण की। ब्रिटिश सरकारने उन्हें सिविल सेवाके लिये चुन लिया, किंतु इस महत्त्वपूर्ण पदको सुभाषने ठुकरा दिया। उन्होंने भारतके तत्कालीन ब्रिटिश राज्य सचिव लार्ड लिण्टनको लिखा—'मैंने अपने हृदय तथा आत्माकी सम्पूर्ण निष्ठाके साथ देश-सेवा करनेका संकल्प लिया है। अतः मुझसे ब्रिटिश सरकारके अधीन अफसरशाहीका निर्वाह नहीं हो सकेगा। मेरे विचारसे जो व्यक्ति देशसेवाका संकल्प रखता हो, वह विदेशी सत्ताके प्रति वफादार नहीं रह सकता। अतः मैं ब्रिटिश सरकारके अधीन कार्य नहीं कर सकता।'

जब सुभाषके पिता जानकीनाथ बोसने उनसे आग्रह किया कि वे भारतीयोंके लिये दुर्लभ इस महत्त्वपूर्ण पदका त्याग न करें तो उत्तरमें सुभाषने कहा—'पिताजी! यदि मेरे जीवनका लक्ष्य आई०सी०एस० अधिकारी बनना होता तो मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य थी, किंतु मेरे जीवनका लक्ष्य भारतको आजाद कराना है। मुझे जिनसे लड़ना है, मैं उनके अधीन कार्य कैसे कर सकता हूँ? आई०सी०एस० अधिकारी रहकर मैं नैतिकता तथा स्वतन्त्रताके साथ अपनी आत्मा तथा अपने देशके प्रति न्याय न कर सकूँगा। सम्पन्न पिताके प्रतिभावान् पुत्रके लिये आई०सी०एस० अधिकारी बनना कोई बड़े गौरवकी बात नहीं हैं, किंतु इसी सम्पन्नता तथा प्रतिभाका प्रयोग यदि देशको आजाद करानेके लिये किया जाता है तो वह गौरवकी बात होगी।'

पिताजीसे ऐसा कहकर सुभाष स्वतन्त्रता-संग्राममें कूद पड़े।

५-पुनः राष्ट्रपति बननेसे इनकार

जार्ज वाशिंगटनकी सूझबूझ तथा कुशल सैन्य-संचालनसे अमेरिका सन् १७८१ ई०में इंग्लैण्डकी दासतासे मुक्त हुआ। वहाँ लोकतन्त्रकी स्थापना हुई। जार्ज वाशिंगटन राष्ट्रपति चुने गये। दूसरी बार भी वही राष्ट्रपति चुने गये। तीसरी बार जब जनताने सर्वसम्मतिसे उन्हें पुनः राष्ट्रपति बनाना चाहा तो उन्होंने राष्ट्रपति बननेसे इनकार कर दिया और कहा—'बार-बार एक ही व्यक्तिके राष्ट्रपति बननेसे राजतन्त्र या अधिनायकवादकी नींव पड़ सकती है।'

उपर्युक्त जीवन-प्रसंगोंसे स्पष्ट है कि मनुष्यको सच्चे अर्थमें मानव बनाता है उसका विशाल हृदय, उसकी सेवा एवं त्यागकी भावना।

विद्या-बुद्धि, शक्ति-सामर्थ्य, बल-पौरुष, पद-प्रतिष्ठा, धन-ऐश्वर्य, कला-कौशल, सौन्दर्य-माधुर्य, ज्ञान-विज्ञान आदि भौतिक उपलब्धियाँ मनुष्यको सुखी-सफल तथा अपने लिये उपयोगी तो बना सकती हैं, किंतु वे उसे सच्चे अर्थमें मनुष्य नहीं बना सकती हैं, उसे मनुष्येतर प्राणियोंसे श्रेष्ठ नहीं बना सकतीं, मनुष्यका व्यक्तित्व तभी निखरता है जब वह भौतिक उपलब्धियोंके साथ-साथ मानवीय गुणोंसे भी सम्पन्न होता है।—**श्रीहरनारायणजी महाराज**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रष्टाचारकी मुहिम

पिछले कई दिनोंसे देशमें भ्रष्टाचार और कालेधनकी चर्चा किसी न किसी रूपमें जोरोंपर चल रही है। भ्रष्टाचार खत्म होना चाहिये—यह बात सभी कहते हैं। एक अनोखी बात यह है कि जो भ्रष्टाचारमें लिप्त हैं, वे भी भ्रष्टाचारके समाप्तिकी बात करते हैं। कालाधन विदेशोंमें जमा है, पर इसके साथ ही अपने देशमें भी यह कम नहीं है। प्रायः व्यापारी, अफसर, अधिकारी तथा उच्च पदोंपर आसीन महानुभाव भी अपने स्वार्थ-साधनमें कालेधन एवं भ्रष्टाचारसे अछूते नहीं हैं। देशमें कुछ विवेकशील और बुद्धिमान् व्यक्ति भी हैं, जो अपने सिद्धान्तकी रक्षा करते हुए सच्चाई और ईमानदारीसे जीवन व्यतीत करते हैं, पर ये बहुत थोड़े है। इनकी संख्या नगण्य-जैसी है।

कहते हैं कि कहीं आग लग जाय तो उसे पानीसे बुझाया जाता है, पर पानीमें ही यदि आग लग जाय तो उसे कैसे बुझाया जाय? एक पुरानी कहावत है—कुएँमें भाँग पड़ गयी अर्थात् प्यास बुझानेके लिये कुएँका पानी पीना पड़ेगा, जो भी पीयेगा, वह बौरा जायगा तो फिर इससे बचेगा कैसे? वास्तवमें आज देशकी स्थिति यही है, जिम्मेदार पदोंपर आसीन महानुभाव भी भ्रष्टाचारसे अछूते नहीं हैं और कभी-कभी संयोगवश किसीकी पोल खुल जाती है तो जाँच-समिति बना दी जाती है अथवा जाँच-विभागको वह मैटर सौंप दिया जाता है। इन सब बातोंसे प्रायः सब अभ्यस्त हैं, भ्रष्टाचार और कालेधनको कोई गम्भीर अपराध नहीं माना जाता, अधिक-से-अधिक कुछ समयके लिये उन्हें पदसे हटा दिया जाता है, कुछ दिनों बाद यह सब विस्मृत हो जाता है और वे पुनः पदपर आसीन भी हो जाते हैं। इस प्रकार यह भ्रष्टाचार जीवनचर्याका एक अंग बन गया है।

इन सबके समाधान के लिये आजकल 'लोकपाल' की चर्चा होती है। लोकपाल-विधेयकको कारगर बनानेके लिये पिछले दिनों अनशन और आन्दोलन भी हुए। सरकारने लोकपाल-विधेयक बनाना स्वीकार भी किया, परंतु विधेयकका स्वरूप क्या हो, इसपर एकमत अभी भी नहीं है।

वास्तवमें भ्रष्टाचारके कई रूप हैं। असत्य-भाषण, चोरी, हिंसा, हत्या, व्यभिचार, धोखाधड़ी और बेईमानी आदि भ्रष्टाचारके ही तो स्वरूप हैं, परंतु आजकल अपने स्वार्थ-साधनमें आर्थिक बेईमानीको ही मुख्य भ्रष्टाचार माना जाता है।

भारतीय संस्कृतिमें आचार-विचारको विशेष महत्त्व दिया गया—'आचारः परमो धर्मः।' जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, उसे आचारको परम धर्म मानकर उसके नियमोंका पालन सबसे पहले करना चाहिये। अपने शास्त्रोंमें आचार-विचारके दो विभाग हैं। एक शौचाचार और दूसरा सदाचार।

सदाचारके अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि जो आन्तरिक दुर्गुण हैं, उनसे बचना और सत्य, अहिंसा आदि नियमोंका पालन करना आवश्यक है।

शौचाचारके अन्तर्गत जीवनमें पवित्रता और बाह्यशुद्धिकी आवश्यकता बतायी गयी है। बाह्यशुद्धिकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात है—'आर्थिक शुद्धि'। कल्याणकामी व्यक्तिको अर्थकी शुद्धिका विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

अर्थकी शुद्धिका तात्पर्य है—चोरी, बेईमानी, धोखाधड़ी, ठगी तथा असत्यका आश्रय लेकर धनका उपार्जन न करना। सत्यता और ईमानदारीसे कमाया गया धन ही पवित्र धन है, जिसकी बरक्कत होती है और इसी धन से मनुष्यका कल्याण भी होता है, परंतु आजकल दुर्भाग्यवश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके विपरीत स्थिति बनी है। एकमात्र लक्ष्य है जिस किसी प्रकार धनकी प्राप्ति करना, भले ही इसके लिये झूठ-फरेब, चोरी-बेईमानीके साथ-साथ सच्चाईका मुखौटा लगाकर असत्यका आश्रय भी क्यों न लेना पड़े।

आज देशमें यह समाचार मिलते रहते हैं कि उच्च पदोंपर आसीन पदाधिकारी भी ईमानदारीकी ओटमें बेईमानी कर रहे हैं और आर्थिक घोटालेमें शामिल हैं। वे यह भूल जाते हैं कि यह धन टिकनेवाला नहीं है तथा इसकी बरक्कत भी नहीं होनी है, यदि ये धैर्य रखें और दृढ़तापूर्वक सच्चाईसे रहें तो उन्हें अपने प्रारब्धानुसार जो मिलना है, वह सच्चाई करनेपर भी अवश्य मिलेगा और उसकी बरक्कत भी होगी।

131851

आजकल कुछ महानुभाव दृढ़तापूर्वक देशको काले धन एवं भ्रष्टाचारसे मुक्त करने, लोकपाल-विधेयकद्वारा इसपर अंकुश लगानेपर जोर दे रहे हैं, इसके लिये वे अनशन-आन्दोलन और सत्याग्रह आदि भी कर रहे हैं, यद्यपि सरकार भी भ्रष्टाचार रोकनेमें अपनी सहमति दिखा रही है, किंतु उसके कार्यान्वयनमें एकमत और एकरूपता न होनेके कारण परस्पर कटुता और संघर्षका वातावरण बना है। सरकार अपने टर्म्सपर कूटनीतिकरूपसे समझौतेका प्रयास करती है, सफलता नहीं मिलनेपर दमनकी नीति अपनाकर आन्दोलनको कुचलनेकी चेष्टा करती है, वास्तवमें यह समाधान नहीं है।

सत्यता और ईमानदारीसे भ्रष्टाचार समाप्त करनेकी मुहिम सब तरफसे सद्भावपूर्वक चलायी जाय तो कुछ अंशमें सफलता मिल सकती है।

उन्नति तथा उत्थान का वास्तविक अर्थ है—चरित्रका उत्थान। मानस-उच्चता और तदनुरूप व्यवहार-बर्तावमें विशुद्धि—यही वास्तविक जीवनकी सफलता या संस्कृति है, जिससे हमारे अन्दरके दुर्विचारों, दुर्गुणों तथा दोषोंका नाश होकर अन्तरके भावोंका सात्त्विक सुधार हो जाय, वासना, कामना आदि विशुद्ध हो जायँ, उनमेंसे भोगासक्ति, हिंसा, असत्य, उच्छृंखलता आदि दोष निकल जायँ, जीवन विशुद्ध, संयमपूर्ण तथा पर-सुख-हितस्वरूप बन जाय और विचारोंके अनुसार आचार भी सत्य, शिव, सुन्दर हो जाय—तभी उसकी संस्कृति का उदय समझना चाहिये।

आज तो हमारी सारी संस्कृति समाजके हिताहितकी दृष्टिसे शून्य केवल कलाप्रदर्शक संगीत-वाद्य, अभिनय तथा नृत्य और उसके सहयोगी सहभोज पानेमें ही सीमित हो गयी है। देशमें अनाचार इसलिये बढ़ रहे हैं कि हमारी बुद्धि भोगवाद, अधिकारलिप्सा और भौतिकताको ही परम आदर्श मानकर सर्वथा तमसाच्छन्न हो रही है। इस अवस्थामें सच्चे भगवद्भाव, भगवद्विश्वास तथा हमारे ऋषि-मुनिसेवित जीवनके त्यागमय लक्ष्यकी ओर समाजका और सत्तामें लिप्त नेतृत्व-वर्गका ध्यान खींचनेकी आवश्यकता है तथा यह काम कोरे अनर्गल व्याख्यानोंसे और निरीह जनताके दमनसे नहीं होगा, यह होगा जीवनके पवित्र यथार्थ आचरणसे।

ये सत्याग्रह और आन्दोलन भी इसी उद्देश्यसे होते हैं कि समाजमें आचारवान् व्यक्तियोंका निर्माण हो सके।

—राधेश्याम खेमका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

श्रीहनुमानचालीसा (मूल) वि० सं०, पॉकेट साइज रंगीन, (कोड 1917)—(कोड 1181) के स्थानपर हनुमानचालीसाके इस नवीन संस्करणको अब मोटे कागजपर आकर्षक रंगीन टाइपोंमें प्रकाशित किया गया है। मूल्य रु० ३

सन्त नामदेवांची अभंग गाथा (कोड 1915) मराठी—महाराष्ट्रकी संत-परम्परा सन्त नामदेवका विशिष्ट स्थान है। ये भक्ति, ज्ञान और परोपकारके मूर्तिमान् विग्रह थे। उनके अभंगोंमें जगत्‌की नश्वरता, आध्यात्मिक चिन्तन, भगवद्विश्वास, भक्ति और ज्ञानका अद्‌भुत वर्णन है। प्रस्तुत पुस्तकमें उनके द्वारा रचित अभंगोंका संग्रह प्रकाशित किया गया है। मराठी भक्तोंके स्वाध्याय और संग्रहके लिये यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। मूल्य रु० १००

श्रीरामचरितमानस मझला-सटीक (कोड 1883) बँगला—बँगला भाषा-भाषी पाठकोंकी माँगपर पूर्वप्रकाशित (कोड 954) के स्थानपर अब इसका मझला साइज प्रकाशित किया गया है। मूल्य रु० १५०

ईश्वरलाभके विविध उपाय (कोड 1884) बँगला—मानवजन्मका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति करना तथा कर्म-बन्धनको तोड़कर जन्म-मरणसे छुटकारा प्राप्त करना है। प्रस्तुत पुस्तकमें विभिन्न प्रकरणोंके माध्यमसे परमात्मप्राप्तिके लिये कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि विभिन्न मार्गोंका सुन्दर विवेचन किया गया है। मूल्य रु० २

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, खण्ड-३ (कोड 1904) तमिल—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण इस पृथ्वीका आदिकाव्य तथा भगवान् श्रीरामके पावन चरित्रकी सरस एवं सर्वोत्तम प्रस्तुति है। इस खण्डमें सुन्दरकाण्डके श्लोकोंके साथ तमिल अनुवाद दिया गया है। मूल्य रु० १०० पूर्वप्रकाशित (कोड 1807) खण्ड-१ (बालकाण्ड-अयोध्याकाण्ड) मूल्य रु० २०० (कोड 1903) खण्ड-२ (अरण्यकाण्ड-किष्किन्धाकाण्ड) मूल्य रु० १५० भी उपलब्ध।

अभी उपलब्ध—सम्पूर्ण श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण—केवल हिन्दी [अठारह हजार श्लोकोंका श्लोक-संख्यासहित भाषानुवाद] (कोड 1793-1842) 'कल्याण' वर्ष २००८ एवं २००९ के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित। **अब पुस्तक-रूपमें रंगीन लेमिनेटेड कवरके साथ**—इसके प्रथम खण्डमें १ से ६ स्कन्ध एवं द्वितीय खण्डमें ७ से १२ स्कन्धकी कथाएँ दी गयी हैं। प्रत्येक खण्डका मूल्य रु० १०० (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)।

श्रीतुलसी-जयन्तीके अवसरपर उपलब्ध—तुलसी-साहित्य

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०	कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
105	विनय-पत्रिका	३०	108	कवितावली	१५	112	हनुमानबाहुक	३
106	गीतावली	३०	110	श्रीकृष्ण-गीतावली	५	113	पार्वती-मंगल	४
107	दोहावली	१४	111	जानकी-मंगल	५	114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण	३

एक साथ सम्पूर्ण सेट मँगवानेके लिये रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्चसहित रु० १४० भेजें। (श्रीतुलसी-जयन्ती ६ अगस्त शनिवारको है।)

१७ वाँ दिल्ली-पुस्तक-मेला—२०११

इस वर्ष भी प्रगति मैदान, नयी दिल्लीमें (दिनांक २७ अगस्तसे ४ सितम्बरतक) आयोजित पुस्तक-मेलेमें गीताप्रेसद्वारा एक भव्य पुस्तक-स्टॉल लगाकर विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित अपने प्रकाशनोंके प्रदर्शन एवं बिक्रीकी व्यवस्था करनेका प्रयास है। व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

पुराना स्वरूप

चित्र सर्वदेवमयी गौ (कोड 630)—गोमाताके इस चित्रका नया स्वरूप छापकर प्रकाशित किया गया था, यह चित्र अभी स्टॉकमें उपलब्ध है। लोगोंकी माँगपर पुराने स्वरूपके चित्रको भी छापकर उपलब्ध करा दिया गया है। पुस्तक-विक्रेता बन्धु आवश्यकतानुसार नये स्वरूप व पुराने स्वरूपका स्पष्ट आर्डर भिजवायें। मूल्य रु० ८

नया स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-६-२०११
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-20
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-201

श्रावणमासमें पाठ-पारायण एवं स्वाध्यायहेतु गीताप्रेसके प्रमुख प्रकाशन

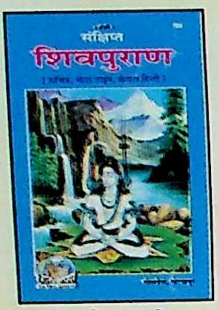

संक्षिप्त शिवपुराण (कोड 789) मोटा टाइप, सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार— इस पुराण परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाव विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पञ्चदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीक किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्र आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। मूल्य रु० १५०, डाकखर्च रु० ३ अतिरिक्त। **(कोड 1468) विशिष्ट संस्करण,** मूल्य रु० १९०, डाकखर्च रु० ४३ अतिरिक्त गुजराती **(कोड 1286)** मूल्य रु० १५०, डाकखर्च रु० ३७

श्रावणमासमाहात्म्य-सानुवाद (कोड 1899)— स्कन्दमहापुराणके ३० अध्यायोंमें श्रावणमासका माहात्म्य विस्तारसे वर्णित है। इस मासमें किये गये शुभकर्म अनन्त फलदायी होते हैं। इसमें सोमवार आदि प्रत्येक दिनके व्रतोंके सुन्दर विवेचनके साथ मंगलागौरी, स्वर्णगौरी, दूर्वागणपति, संकटनाशन, नागपंचमी, रक्षाबन्धन आदि व्रतोंका सुन्दर वर्णन है। मू० रु० २७, डाकखर्च रु० २२ अतिरिक्त।

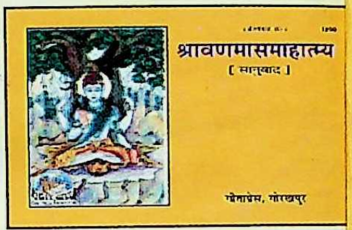

रुद्राष्टाध्यायी (कोड 1627), सानुवाद, पुस्तकाकार— भगवान् शिवकी उपासन रुद्राष्टाध्यायीका विशेष महत्त्व है। इसके द्वारा भक्तगण रुद्राभिषेक कर मनोभिलषित सिद्धि प्राप्त करते हैं। इस पुस्तकमें रुद्राष्टाध्यायीके मन्त्र, उनव हिन्दी-अनुवाद, संकल्प, गौरी-गणेश-पूजन, शिव-पूजन, ध्यान, उत्तर-पूज आरती, क्षमा-प्रार्थना आदि संगृहीत हैं। मूल्य रु० २०, डाकखर्च रु०२२ अतिरिक्त

शिवस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1417) सचित्र, सजिल्द, पुस्तकाकार— भगवान् शिवके चरित्र बड़े ही उदात्त तथा अनुकम्पापूर्ण हैं। ये थोड़ी ही उपासनासे प्रसन्न होकर अपने भक्तोंको सब कुछ प्रदान कर देते हैं। इस पुस्तकमें भक्तोंके लिये उपयोगी भगवान् शिवके विभिन्न स्तोत्रों, स्तुतियों, सहस्रनाम तथा आरती आदिका सुन्दर संकलन किया गया है, जिससे भक्तजनोंको पठन-पाठन, कीर्तन और मनन करनेमें सुविधा हो। मूल्य रु० २५, डाकखर्च रु० २० अतिरिक्त।

श्रीमद्भागवतमहापुराणम् (कोड 29) मूल, मोटा टाइप, ग्रन्थाकार— इसके प्रत्येक श्लोक भक्ति, प्रेमकी अनुपम सुगन्धि है। भव-बन्धनोंसे मुक्ति प्राप्त करनेकी कामनासे इस पुराण सप्ताह अनुष्ठानकी परम्परा है। मूल श्लोकोंका पाठ करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है मूल्य रु० १२५, डाकखर्च रु० ३५ अतिरिक्त। **(कोड 124) मूल, मझला,** मूल्य रु० ७ **विशिष्ट संस्करण (कोड 1855)** मूल्य रु० ८५, डाकखर्च रु० २८ अतिरिक्त। **(कोड 26, 27** हिन्दी-व्याख्यासहित दो खण्डोंमें सेट, मूल्य रु० ३००, डाकखर्च रु० ७५ अतिरिक्त।

प्रत्येक पुस्तकके डाकखर्चमें पैकिंगखर्च तथा रजिस्ट्रीके रु० १७ शामिल हैं। एकसे अधिक पुस्तक एक पैकेट जानेपर रजिस्ट्रीखर्च मात्र रु० १७ ही लगता है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar